नानकचन्द्रोदय महाकाव्य : एक सांस्कृतिक अध्ययन

Nanak Chandrodaya Mahakavya : A Cultural Study

पञ्जाब विश्वविद्यालय, चण्डीगढ़ की पी-एच्. डी. की उपाधि हेतु प्रस्तुत

शोध-प्रबन्ध

अनुसन्धाता

खेमराज

विश्वेश्वरानन्द विश्वबन्धु भारतभारती अनुशीलन संस्थान
पञ्जाब विश्वविद्यालय
होशियारपुर

अप्रैल, १९८६

Khem Raj

शोध-प्रमाण-पत्र

हर्ष प्रमाणित किया जाता है कि श्री खेम राज ने मेरे निर्देशन में पंजाब विश्वविद्यालय की "पी-एच॰डी॰" उपाधि के लिए शोध-कार्य किया है । प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध शोध छात्र का सर्वथा मौलिक तथा शोध के क्षेत्र में नवीन कार्य है, अत: इसे "पी-एच॰डी॰" उपाधि के लिए प्रस्तुत करने की अनुमति दी जाती है ।

दिनांक - 23.4.1986

(डॉ॰ घनश्याम शर्मा),
प्राध्यापक, शिक्षण विभाग,
विश्वेश्वरानन्द विश्वबन्धु भारत भारती
अनुशीलन संस्थान, पंजाब विश्वविद्यालय,
होशियारपुर (पंजाब)

= = = = = =

श्रीमद्बुद्धिसुधाकरः पटुतरः सर्वागमज्ञानभृद्
वेदान्तैकविचारचारुचतुरश्चैतन्यचिन्तामणिः ।
सद्वर्णाश्रमसिद्धशुद्धविलसत्साम्राज्यतत्त्वोत्सुकः
सर्वैश्वर्यसमन्वितो विजयते श्रीनानकाख्यः सुधीः ।।

- ना॰चं॰ 1॰6

- - - - -

जुह्वानाज्वलनं श्रुतिस्मृतिविदः सन्तोषशीलद्विजा ।
राजन्या बहुजन्यजन्यशमा ख्याताः प्रजारक्षिणः ।।
वार्तायां कुशलाविशः प्रमुदिता देवद्विजाराधने ।
शूद्रा यत्र भ्रमन्ति भव्यचरिता वर्णत्रयं निर्मदाः ।।

- ना॰चं॰ 2॰15

- - - - -

सर्वेषां श्रवणसुखावहा कथेयं
श्रोतव्या सुतसुकृतार्थदानदक्षा ।
ये भक्तिं विदधति नानकेन केन
ते श्रुत्वा सुखमखिलं सदा लभन्ताम् ।।

- ना॰चं॰ 21॰239

- - - - -

प्रस्तावना

वैदिकयुग के पश्चात् लौकिक संस्कृतयुग का प्रारम्भ महर्षि वाल्मीकि के आदिकाव्य रामायण से माना जाता है, इसी लिये महर्षि बाल्मीकि आदिकवि और उनकी रामायण आदिकाव्य माना जाता है । बाल्मीकि के बाद व्यास, भास, कालिदासादि महाकवि उल्लेखनीय हैं, जिन्होंने अपने काव्यरत्नों से संस्कृतसाहित्य की महती समृद्धि की है । इसी काव्यनिर्माण-परम्परा में उदासी सम्प्रदाय में दीक्षित कविवर देवराजशर्मा का नानक-चन्द्रोदय महाकाव्य भी उल्लेखनीय है । प्रकृत महाकाव्य में कवि ने 21 प्रस्तावों में प्राधान्येन श्रीगुरुनानक देव का व्यक्तित्व ही चित्रित किया है । यद्यपि काव्यशिल्प की दृष्टि से नानकचन्द्रोदय महाकाव्य में सभी प्रकार के काव्यीयगुणों का विवेचन मिलता है, तथापि तत्कालीन संस्कृति का इसमें प्रचुरमात्रा में वर्णन मिलता है, जिस कारण यह महाकाव्य संस्कृति-प्रधान भी सिद्ध होता है ।

नानकचन्द्रोदय महाकाव्य के सांस्कृतिक अध्ययन में संस्कृति से अभिप्राय पुरातन भारतीय संस्कृति है । दिनकर जी के शब्दों में संस्कृति का स्वरूप - "आर्य संस्कृति भारतीय भू खण्ड में आकर आर्य और द्रविण संस्कृतियों का जो समन्वितरूप उभर कर आया, वही भारतीय संस्कृति का प्राचीन रूप है । उसका प्रतिनिधित्व हमारी प्राचीन भाषा संस्कृत करती है (संस्कृति के चार अध्याय) - "इस प्रकार से है । अत: विविध संस्कृतियों का सम्मिश्रण ही भारतीय संस्कृति है ।

भारतीय संस्कृति को मोटे रूप से दो पक्षों में विकसित देखा जाता है - प्रथम पक्ष उस के सज्जा और श्रृंगार का है, तो दूसरा पक्ष आचार, व्यवहार का । इसलिये संस्कृति के अन्तर्गत सभी प्रकार का ज्ञान-विज्ञान, शास्त्रीयपरम्परागत संस्कार, लोकाचार, विविध कला-कौशल आदि-आदि

सभी पक्षों को माना गया है और इन्हीं का अध्ययन किया जाता है । उपर्युक्त पक्षों को शब्दान्तर में बाह्यपक्ष और आन्तरिक पक्ष भी कहा जा सकता है । इन दोनों पक्षों से समन्वित भारतीय संस्कृति समूचे मानव जीवन के विकास-क्रम को तथा उसकी विशेषताओं को विवरण सहित प्रस्तुत करती हुई, उस के सभी पहलुओं का संस्पर्श करती हुई सर्वाङ्गीण विकास की द्योतिका है । इसलिये तत्त्वत: कहा जा सकता है कि भारतीय संस्कृति स्वभावत: सदा से गतिशील रही है और आगे भी रहेगी । इस में चिरंतनता, आध्यात्मिकता, शाश्वतजीवनक्रम, लोकमंगल भावना आदि अनेकों दिव्य गुण समष्टिरूप में विद्यमान देखे जाते हैं । इसलिये यह मानवीय ज्ञान, सद्गुण और उत्कर्ष की द्योतिका है । संस्कृति का समाज और साहित्य से अभिन्न सम्बन्ध माना जाता है । जिस प्रकार साहित्यकारों ने "सत्यं शिवं सुन्दरम्" को साहित्य का सर्वोन्नत उद्देश्य माना है, उसी प्रकार संस्कृति भी आदर्श समाज की और सत्साहित्य की परिकल्पना को अन्तर्हित किये हुई होती है । अत: सभ्यता, समाज और संस्कार के जो तत्त्व शाश्वत हों, उन्हीं को संस्कृति कहेंगे । साहित्य समाज का प्रत्यंकन है, तो संस्कृति समाज के शाश्वत तत्त्वों का प्रतिबिम्बन है । संस्कृति वह धारा है जो न तो परिवर्तन से प्रभावित होती है, और न विकृत ही होती है । संस्कृति के उक्त स्थायी तत्त्व ही साहित्य को प्रभावित करते हैं । साहित्य में जो कुछ आदर्श है, स्थायी है, उदात्त है, महान् है, वह सब संस्कृति से ही प्रेरित हुआ करता है ।

भारतीय संस्कृति बहुगुणगण वैशिष्ट्य से समन्वित हो कर समस्त विश्व के ज्ञानमार्ग को प्रकाशित करती रही है । इसीलिये भगवान् मनु ने भारत के अग्रजन्मा को विश्वगुरु के रूप में स्मरण किया है -

एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मन: ।
स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवा: ।।मनु॰2•20

भारतीय संस्कृति में कितनी विशालता का अथवा उदारता का भाव विद्यमान देखा जाता है । यहाँ अपना पराया कोई भेद नहीं । सब की मंगल कामना, समस्त विश्व को एक कुटुम्ब के रूप में देखना, सब की निरामयता के लिये प्रार्थना करना आदि कई आदर्श अन्तर्हित मिलते हैं । जैसे -

"ग्रामेऽस्मिन्नातुरम्" उदारचरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम्" ।

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः ।

सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःखभाग् भवेत् ।।

भारतीय संस्कृति में परद्रव्य को लोष्ठवत्, परस्त्री को मातृवत् तथा सभी प्राणियों को आत्मवत् देखने की परम्परा रही है । भगवतीश्रुति इसी ओर संकेत करती है -

ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किञ्चज्जगत्यां जगत् ।

तेन त्यक्तेन भुंजीथाः मा गृधः कस्यस्विद् धनम् ।। - ई॰वा॰ ।

इसी प्रकार अधोनिर्दिष्ट आदर्श वाक्य भी भारतीय संस्कृति का परिचायक है -

मातृवत् पारदारेषु परद्रव्येषु लोष्ठवत् ।

आत्मवत् सर्वभूतेषु यः पश्यति स पण्डितः ।। (पंचतन्त्र)

इस के अतिरिक्त रामायण, महाभारत, लौकिक संस्कृत साहित्य में भारतीय संस्कृति का लेखा-जोखा सर्वत्र विद्यमान है, जिस के लिये समस्त विश्व के जिज्ञासु भारतीय मनीषियों के आश्रय में ज्ञान प्राप्त करने के लिये इस भारतभूमि पर आये । तक्षशिला, नालन्दादि विद्यापीठ इस पवित्र ज्ञान गंगा के मूल स्रोत रहे हैं । मनुष्य ही नहीं देवता भी इस आदर्श संस्कृति से समन्वित भारत वसुन्धरा पर जन्म लेने के लिये तरसते रहे हैं, या यहाँ जन्म लेना अपना सौभाग्य मानते रहे हैं -

गायन्तिदेवाः किल गीतकानि

धन्यास्तु ते भारत भूमिभागे।

स्वर्गापवर्गास्पद हेतु भूते

भवन्ति भूयः पुरुषाः सुरत्वात् ।।

उक्त संस्कृति को तथा उस के तत्त्वों को आधार मानकर ही मैंने महाकवि देवराजशर्मा द्वारा विरचित नानकचन्द्रोदय महाकाव्य का अध्ययन किया है । कवि ने इस महाकाव्य में दस गुरुओं में सर्वप्रथम श्री गुरुनानकदेव के जन्म से अन्तिम-यात्रा (मृत्यु) तक का विवेचन यद्यपि काव्यमयी शैली में

प्रस्तुत किया है, तथापि कवि के कवित्व के साथ-साथ सांस्कृतिक पक्ष भी इस महाकाव्य में परिपुष्ट हुआ मिलता है । कवि स्वयं उदासी सम्प्रदाय में दीक्षित लगता है, किन्तु इस काव्य में इस प्रकार की कोई भी बात नहीं दिखाई देती कि जिससे कवि एकदेशीय अथवा एक ही धर्म का अनुयायी सिद्ध हो । प्रमुख पात्र श्री गुरुनानक देव जी के सभी आदर्शों का इसमें विवेचन किया गया है । धर्मशास्त्रों के अनुरूप धार्मिक संस्कारों का पालन, तीर्थों का सेवन तथा शुभफल, धर्माचरण से पुण्य और पापकर्म से पाप, गोहत्या आदि का निषेध, चातुर्वर्ण्य-व्यवस्था का सम्यक्पालन, परोपकार, जप, तप आदि सभी आदर्शों को श्रीगुरुनानक जी के आदर्शों के माध्यम से चित्रित किया गया है । सभी धर्मों का पूर्ण सम्मान, भारतीय संस्कृति के अनुरूप सब के साथ भ्रातृ-भाव का आचरण करना, अपने से बड़ों का सम्मान करना, सभी प्राणियों में दयाभाव का व्यवहार अथवा आत्मतत्त्व का दर्शन करना, एकेश्वरवाद के माध्यम से सर्वत्र ब्रह्म की सत्ता का अवलोकन करना, विष्णु, शिव आदि सभी देवताओं का ससम्मान स्मरण करना, सद्गति अथवा मोक्ष को प्राप्त करने के साधनों का विवेचन, जन्म-जन्मान्तर की कथाओं के माध्यम से पुनर्जन्मवाद की स्थापना, खगोल, भूगोल के चित्रण से भारतीय संस्कृति की गरिमा का प्रतिपादन करना आदि सभी पक्ष श्रीगुरुनानक जी के आचरणों के अनुरूप पुष्ट हुये हैं । उक्त सभी पक्ष इस महाकाव्य के सांस्कृतिकपक्ष को अत्यधिक रूप से पुष्ट करते हैं । अतः यह कहना न होगा कि नानकचन्द्रोदय महाकाव्य में कवित्व पक्ष की अपेक्षया सांस्कृतिक पक्ष अत्यधिक पुष्ट हुआ मिलता है ।

वस्तुतः पंजाब की भूमि प्राचीनकाल से ही इतिहास में वीरप्रसविनी मानी गई है । इसको समय-समय पर अनेक महात्माओं एवं सिद्धपुरुषों ने अपने जन्म से अलङ्कृत किया है तथा अपने सदुपदेशों से लोगों का उपकार किया है, जिस कारण वे आज भी आबालवृद्ध जनता के चिरस्मरणीय एवं पूजनीय बने हुये हैं । उनमें से श्रीगुरुनानकदेव जी भी एक हैं, जिनका कवि ने "नानक चन्द्रोदय" नामक महाकाव्य में बड़ी श्रद्धा के साथ वर्णन किया है ।

आधुनिक परिस्थितियों के संदर्भ में भी श्री गुरु नानक देव जी के आदर्शों का महत्त्व स्वतः सिद्ध हो सकता है । गुरुनानक देव जी की शिक्षायें,

समाजसेवा, धार्मिकविचारधारा आदि सभी के अध्ययन से यह सिद्ध हो जाता है कि वे उस समय की विषम परिस्थितियों में भी जनता को किस प्रकार से सन्मार्ग की ओर अग्रसर कराते रहे और धर्मरक्षा के लिये अपना सर्वस्व भी त्याग बैठे । इस प्रकार नानकचन्द्रोदय महाकाव्य के सांस्कृतिक अनुशीलन से समाज में भ्रातृ-भाव की स्थापना, देश की अखण्डता के प्रति आस्था, प्राणिमात्र के प्रति दयाभावना, सभी धर्मों के प्रति समानरूप से आस्था, शोषण का बहिष्कार, दीनोद्धार, दलितोद्धार, छुआछूत का समाज से बहिष्कार आदि सामाजिक आदर्शों की पुन: स्थापना हो सकती है तथा समाज में विविध प्रकार से प्रचलित कुरीतियों की परिसमाप्ति हो सकती है, यही इस महाकाव्य के सांस्कृतिक पक्ष का महत्त्व सिद्ध होता है तथा शोध का उद्देश्य भी है ।

प्रस्तुत सांस्कृतिक अनुशीलन में मैंने अपने शोधपरक विचारों को दश अध्यायों में विभक्त कर प्रस्तुत किया है, जिन का विवरण अधोनिर्दिष्ट प्रकार से प्रस्तुत है -

प्रथम अध्याय - में साहित्य और संस्कृति का परस्पर सम्बन्ध स्थापित करते हुये सांस्कृतिकतत्त्वों का विस्तृत विवेचन किया गया है । इस के साथ ही नानक चन्द्रोदय महाकाव्य के सांस्कृतिक पक्ष को भी समासत: प्रस्तुत किया है । अध्याय के अन्त में प्रसंगवश ग्रन्थकार का संक्षिप्त परिचय भी दिया है ।

द्वितीय अध्याय में श्री गुरुनानकदेव जी के आदर्श जीवन पर प्रकाश डाला गया है, जिस में प्रमुख रूप से उनकी समाज सेवा, भारतीय संस्कृति का प्रचार, त्याग, तपस्या, तीर्थाटन एवं अन्य आदर्शों का अध्ययन प्रस्तुत किया गया है ।

तृतीय अध्याय में सांस्कृतिकतत्त्वों में से पारिवारिक जीवन को लेकर परिवार के स्वरूप, माता-पिता का पुत्र-पुत्री के प्रति स्नेह, दाम्पत्यजीवन, स्वामी-सेवक सम्बन्ध, भ्रातृभाव तथा आदर्श परिवार के कर्तव्यों का विशद्रूप से विवेचन किया गया है ।

चतुर्थ अध्याय में सामाजिक जीवन को आधार बना कर उस में मुख्यत:

चातुर्वर्ण्य व्यवस्था को, सभी वर्णों के विवाह आदि सम्बन्धों को तथा पुनीत आदर्शों को अध्ययन का विषय बनाया है ।

पंचम अध्याय में धार्मिक जीवन को लेकर धर्मसाधना के विविध पक्षों पर विवेचन प्रस्तुत किया गया है । इसके साथ ही भक्ति के विविध स्वरूप तथा धार्मिक अनुष्ठानों के विविध प्रकार, विधिनिषेधात्मककृत्य आदि का अध्ययन प्रस्तुत किया गया है ।

षष्ठ अध्याय - में नैतिक जीवन को ले कर उस के लौकिक पक्ष को एवं विविध दार्शनिकवादों के आधार पर कर्मवाद, पुनर्जन्मवाद, दैववाद, एकेश्वरवाद आदि का विश्लेषण भी किया गया है ।

सप्तम अध्याय - में जीवन में अर्थ के महत्त्व को लेकर विवेचन प्रस्तुत किया गया है । धनार्जन के साधन, व्यवसाय और उन व्यवसायों को अपनाने वाले लोगों के जीवनस्तर पर विचार किया गया है ।

अष्टम अध्याय में राजनीति सम्बन्धी विवेचन किया गया है । उस में राजा की आज्ञा, दण्डव्यवस्था, युद्ध और सन्धि के विभिन्न प्रकारों पर विचार किया गया है ।

नवम अध्याय में भूगोल, खगोल, ज्ञान, विज्ञान सम्बन्धी विवेचन प्रस्तुत किया गया है । इसी के अन्तर्गत वास्तुकला, चित्रकला आदि विभिन्न कलाओं का, विभिन्न धातुओं का और विभिन्न लोकों का विश्लेषण किया गया है ।

दशम अध्याय में उक्त सभी अध्यायों का उपसंहार प्रस्तुत कर के नानकचन्द्रोदय महाकाव्य के सांस्कृतिक अध्ययन के महत्त्व को भी प्रतिपादित किया गया है ।

इस शोध-प्रबन्ध में मैंने अपने अध्ययन में जो कुछ भी प्रस्तुत किया है, वह सब मान्य विद्वानों का अनुकरणमात्र ही है । जो कुछ भी इस में लिपिबद्ध किया गया है, वह सब तत्तद् विद्वानों के सारगर्भित विचारों तथा ग्रन्थों को आधार मान कर ही किया है । मुझे विश्वास है कि मान्य विद्वानों तथा सुधी पाठकों को मेरा प्रस्तुत प्रयास मान्य होगा । मेरे इस प्रयास को बालचापल्य

समझ कर मान्य विद्वान् त्रुटियों की ओर ध्यान न देकर मेरा मार्ग प्रशस्त करेंगे, यही मेरी अभ्यर्थना एवं आकांक्षा है ।

अन्त में मैं उन श्रद्धेय विद्वानों का धन्यवाद करना अपना परम कर्तव्य समझता हूँ, जिन के मार्गदर्शन एवं दिशा निर्देश से दुष्कर शोधकार्य को सुगमता से सम्पन्न करने में समर्थ हुआ हूँ ।

सर्वप्रथम मैं संस्कृतसाहित्य के मर्मज्ञ आचार्य श्रद्धेय गुरुवर डा॰ घनश्याम शर्मा जी नौटियाल, प्राध्यापक विश्वेश्वरानन्द विश्वबन्धु भारतभारती एवं संस्कृत संस्थान, पंजाब विश्वविद्यालय, होशियारपुर का आजीवन आभारी रहूँगा, जिन्होंने हिमाचल प्रदेश के दुर्गम स्थान पर अध्ययन के क्षेत्र से दूर सिमट कर बैठे हुये मुझ को, ज्ञानवर्द्धन करने हेतु प्रेरणा दी । शोधकार्य के लिये निर्देशन हेतु मेरे द्वारा प्रार्थना किये जाने पर गुरुजी ने सहर्ष इसे स्वीकार किया तथा उन का स्नेह सिक्त वरदहस्त मेरे लिये प्रेरणादायक बना । मेरी भावना को जानकर मनोभिलषित शोध विषय का सुझाव मुझे दिया । डा॰ घनश्याम शर्मा जी के सान्निध्य में पहले भी मैंने विश्वविद्यालय की परीक्षाओं में अध्ययन किया है इसीलिये उन के विद्वतापूर्ण स्नेहसंसक्त निर्देशन में शोधकार्य का निश्चय मैंने किया । आज यह उन्हीं की प्रेरणा और शुभाशीर्वाद का पल्लवित रूप है कि मैं नानकचन्द्रोदय जैसे महाकाव्य को आधार मानकर इस का अध्ययन करने में समर्थ हो सका हूँ । इनका गृहद्वार अहर्निशं बिना किसी अवरोध के मेरे लिये विवृत रहा तथा जब कभी कोई समस्या मेरे समक्ष आई, उसका समाधान समय-समय पर विद्वतापूर्ण, विनम्र मृदुस्वभाव द्वारा निर्देशन दे कर इन्होंने किया । निराशा और घरेलू समस्याओं द्वारा आवृत होने पर भी जो यह शोध कार्य सम्पन्न हो सका है, उसके लिये विद्वत्-शिरोमणि प्रातःस्मरणीय गुरू जी का शब्दों द्वारा धन्यवाद नहीं कर सकता हूँ, परन्तु फिर भी शिष्य रूप में मुझे अनुगृहीत कर जो निर्देशन दिया है उस के लिये आजीवन श्रद्धा एवं ससम्मान से उनके प्रति अवनत रहूँगा । इसके अतिरिक्त डा॰ डी॰डी॰ शर्मा, प्रोफेसर एवं नेहरू फैलो, संस्कृत विभाग, पंजाब विश्वविद्यालय, चण्डीगढ़ का भी हार्दिक आभारी हूँ, जिन के सौजन्य से मेरा शोधकार्य स्वीकृत हुआ है ।

विश्वेश्वरानन्द विश्वबन्धु संस्थान, पंजाब विश्वविद्यालय, होशियारपुर के आदरी संचालक प्रिंसिपल आर॰एस॰ बावा जी, विश्वेश्वरानन्द शोध संस्थान के संचालक प्रोफेसर एस॰ भास्करन नायर जी, डा॰ वीरेन्द्र शर्मा, डा॰ त्रिलोचन सिंह बिन्द्रा, डा॰ वेद प्रकाश, डा॰ श्यामलाल डोगरा (पुस्तकालयाध्यक्ष), आचार्य इन्द्रदत्त उनियाल, डा॰ राधाकृष्ण, डा॰ जगदीश प्रसाद सेमवाल, डा॰ धर्मानन्द, डा॰ मुनीश्वर देव, डा॰ गिरीश ओझा, डा॰ प्रेमलाल नौटियाल, आ॰ दुनीचन्द, श्री पृथुराम शास्त्री आदि विद्वानों का मैं हार्दिक आभारी हूँ, जिन्होंने समयानुकूल यथोचित परामर्श दे कर मेरा मार्ग प्रशस्त किया है। मैं आचार्य जगदीश चन्द जी का भी धन्यवाद करना अपना परम कर्त्तव्य समझता हूँ, जिन के सत्परामर्श, सहयोग तथा अनुकरण से क्लिष्ट-आयास करने का संकल्प मन में धारण कर इसे पूर्ण कर पाया हूँ। अपने उन सहकर्मियों और सहयोगियों का भी धन्यवादी हूँ जो कार्य को शीघ्र करने की प्रेरणा देकर मुझे उत्साहित करते रहे हैं। साथ ही पुस्तकालय के सभी कर्मचारियों का भी आभार प्रकट करता हूँ जिन्होंने मुझे उपयुक्त सहायता प्रदान की है। इस शोध प्रबन्ध का टंकन करने के लिये श्रीकान्त जी का भी धन्यवाद करता हूँ, जिन्होंने कर्फ्यू आदेश जैसी परिस्थितियों में भी समय निकाल कर इसे सुन्दरता और त्वरित गति से टंकित किया है। अन्ततः शोधप्रबन्ध की त्रुटियों के लिये क्षमा याचना करता हुआ माता सरस्वती के चरणों में अपने श्रमसंचित प्रबन्ध को समर्पित करता हूँ।

श्रीशारदार्पणमस्तु

विदुषां वशंवदः,

रामनवमी, विक्रमाब्द, 2043

खेम राज

(खेम राज)

- - - - - -

संकेत-सूची

ना॰चं॰ -	नानकचन्द्रोदय महाकाव्य
मनु॰स्मृ॰ -	मनु स्मृति
अग्नि पुरा॰ -	अग्नि पुराण
कौ॰अ॰शा॰ -	कौटिल्य अर्थशास्त्र
सर्व दर्श॰सं॰ -	सर्व दर्शन संग्रह:
आ॰पुरा॰ -	आदि पुराण
पा॰महा॰भा॰ -	पातंजल महाभाष्य
एवं॰द्र॰ -	एवम् द्रष्टव्यम्
पारा॰स्मृ॰ -	पाराशर स्मृति
याज्ञ॰स्मृ॰ -	याज्ञवल्क्य स्मृति
रा॰ध॰प्र॰ -	राज धर्म प्रकरण
वा॰रा॰ -	वाल्मीकि रामायण
महा॰भा॰ -	महाभारत
ऋ॰ -	ऋग्वेद
ऐत्तरेय ब्रा॰ -	ऐत्तरेय ब्राह्मण
आप॰धर्म॰सू॰ -	आपस्तम्ब धर्मसूत्र
पृ॰ -	पृष्ठ
गौ॰धर्म॰सू॰ -	गौतम धर्म सूत्राणि
भाग॰पुरा॰ -	भागवत पुराण
वायु पुरा॰ -	वायु पुराण
मत्स्य पुरा॰ -	मत्स्य पुराण
बृह॰उप॰ -	बृहदारण्यक उपनिषद्
वेदान्त दर्श॰ -	वेदान्त दर्शन
वि॰चूडा॰ -	विवेक चूड़ामणि
पा॰यो॰द॰ -	पातंजल योग दर्शन
सां॰द॰ -	सांख्य दर्शन
मार्क॰पुर॰ -	मार्कण्डेय पुराण
अष्टा॰ -	अष्टाध्यायी
ब्रह्म॰पुरा॰ -	ब्रह्मपुराण
भा॰सूत्र -	भावती सूत्र
तुल॰रामा॰ -	गोस्वामी तुलसीकृत श्री रामचरितमानस
ह॰यो॰प्र॰ -	हठयोग प्रदीपिका

सां•पा•	सांख्य पाद
मी•द•	मीमांसा दर्शन
पा•गृ•सू•	पारस्कर गृह्यसूत्र
श्वेता•उप•	श्वेताश्वतर उपनिषद्
भा•किरात•	भारवि-किरातार्जुनीयम्
तैत्ति•उप•	तैत्तिरीय उपनिषद्
तैत्ति•सं•	तैत्तिरीय संहिता
वा•धर्म•सू•	वासिष्ठ धर्मसूत्र
वैशे• दर्शन	वैशेषिक दर्शन
गो•गृ•सू•	गोभिल गृह्यसूत्र
खा•गृ•सू•	खादिर गृह्यसूत्र
व•स्मृ•	वसिष्ठ स्मृति
आ•गृ•सू•	आश्वलायन गृह्यसूत्र
का•गृ•सू•	काठक गृह्यसूत्र
मा•गृ•सू•	मानव गृह्यसूत्र
शां•गृ•सू•	शांडिल्य गृह्यसूत्र
बो•गृ•सू•	बौधायन गृह्यसूत्र
आप•गृ•सू•	आपस्तम्ब गृह्यसूत्र
हारीत गृ•सू•	हारीत गृह्यसूत्र
श•ब्रा•	शतपथ ब्राह्मण
वि•सं•	विक्रमाब्दः
सं•	सम्पादक
ब्रह्म वैव•पुरा•	ब्रह्मवैवर्त पुराण

- - - - - -

विषय-सूची

		पृष्ठसंख्या
प्रस्तावना		क-ज
संकेत-सूची		i-ii
प्रथम अध्याय -	साहित्य और संस्कृति	1-23
	साहित्य 1-3, संस्कृति 3-5, संस्कृति और समाज 5-6, साहित्य संस्कृति का वाहक 6-10, साहित्य में विद्यमान संस्कृति का मूल्य 10-13, (सनातनता 13-14), संस्कृति के तत्त्व (सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक, धार्मिक, वैज्ञानिक और दार्शनिक) 14-16, नानकचन्द्रोदय संस्कृति प्रधान महाकाव्य 16-21, ग्रन्थकार का परिचय 21-23.	
द्वितीय अध्याय -	आदर्शव्यक्तित्व की परिकल्पना	24-51
	गुरुनानक देव के आदर्श 24-32, गुरुनानक देव की समाज सेवा 33-39, गुरुनानक देव की त्याग एवं साधना 39-44, गुरुनानक देव द्वारा भारतीय संस्कृति का प्रसार 44-51	
तृतीय अध्याय -	पारिवारिक जीवन	52-83
	परिवार का उद्भव 52-53, परिवार का स्वरूप 53-58, आदर्श परिवार के कर्त्तव्य 59-62, पिता का पुत्र-पुत्री के प्रति सम्बन्ध तथा पिता का सम्मान 62-67, माता का पुत्र-पुत्री के प्रति सम्बन्ध 67-69 (पुत्र कामना तथा उसके कर्त्तव्य 70-72), दाम्पत्य सम्बन्ध 72-77, सहोदर सम्बन्ध 77-81, स्वामिसेवक सम्बन्ध 81-83.	

		पृष्ठ
चतुर्थ अध्याय -	सामाजिक जीवन	84-135

वर्ण व्यवस्था 84-90 (ब्राह्मण 90-93, क्षत्रिय 93-95, वैश्य 95-97, शूद्र 97-100), चारों वर्णों का परस्पर सम्बन्ध 100-105, संस्कार 105-106, जातकर्म 106-108, नामकरणसंस्कार 108-111, विवाहसंस्कार (विवाह के प्रकार, विवाह के अन्य विधान, वरयात्रा, मधुपर्क, समंजन, राष्ट्रभृत् तथा अन्य होम, सप्तपदी, ध्रुवदर्शन) 111-126, अन्त्येष्टि 126-128, सामाजिक आदर्श 128-135.

पंचम अध्याय -	धार्मिक जीवन	136-212

सामान्य धर्म साधना 136-137 (वैराग्य 137-141, आश्रम व्यवस्था 141-142, योग 142-145, हठयोग 145-147, आसन 147-150, नाड़ीशोधन प्राणायाम 150-153, षट्कर्म 153-154, प्राणायाम तथा भेद 154-156, समाधि 156-158, आत्म-तत्त्व ज्ञान 159-162, जीव 162-165, परमतत्त्व बोध 165-168, मुक्त लक्षण 169, गुरुमहिमा, 169-172, (, भक्ति का स्वरूप (भक्ति 172-174), भक्ति का स्वरूप 174-176, प्रणयमूलक-भक्ति 176-180, सेव्य-सेवक भावमूलक भक्ति 180-182, गुरुभक्ति 182-184), धार्मिक अनुष्ठान (तीर्थयात्रा 184-187, व्रत 187-189, तप 189-192, जप 192-196, दान 196-200, सत्यपालन 200-202, देवपूजा 202-205, सत्संगति महिमा 205-208, निषेधात्मककृत्य वर्जन 208-212)

षष्ठ अध्याय -	दार्शनिक एवं नैतिक मान्यतायें	213-255

दार्शनिक मान्यतायें 213-214 (कर्मवाद 214-219, भाग्यवाद 219-222, पुनर्जन्मवाद 222-225 (फेरु-नानक पुनर्जन्म वृतान्त 225, मीन-नानक 226, शुद्धसेन-नानक 226, कमलनयन-नानक 227, कल्याण-शीलसेन-नानक 227-228, सुखवपत-नानक 228, विमलज्योति-नानक 228-229), देववाद 229-234 (एकेश्वरवाद 234-238), सम्मान प्रदर्शन 238-242, विनम्रव्यवहार 242-245, अतिथि-सत्कार 245-250, सामाजिक नैतिकता 250-255.

		पृष्ठ
सप्तम अध्याय -	आर्थिक जीवन	256-279
	मानव जीवन में अर्थ का महत्त्व 256-261, विविध व्यवसाय, व्यवसायी 261-262§कृषि 262-263, वन सम्पदा 263-265, बाजार 265-266, सिक्के 266-268, व्यापार 268-269, उपाध्याय कर्म 269-270§ धनार्जन के अन्य साधन 270 §शिल्प 271, कुम्भकार 271-272, चित्रकार 272-273, सुवर्णकार 273-274§ तन्तुवाय 274, वैद्यविद्या 274-275, पशु-पक्षी 275-277, पक्षी 278, कर 278-279	
अष्टम अध्याय -	राजनैतिक जीवन	280-317
	शासन व्यवस्था 280 §राजा तथा गुण 280-282, मंत्री और राजसभा 282-285, राजसभा 285-287, राज्य के आदर्श 287-289, पुरोहित 289-291, लोककल्याणकारी राज्य 291-292, न्याय व्यवस्था 292-294, दण्ड-व्यवस्था 294-297§ सैन्य व्यवस्था §सेना के अंग - पदाति, अश्व, रथ और हस्ति-सेना§ 298-306, अस्त्र-शस्त्र-§खड्ग, चक्र, शर, करवाल, आग्नेययन्त्र§ 307-309, दुर्ग 309-312§, सन्धि 312-315, कूटनीति के कारण सन्धि 315-317·	
नवम अध्याय -	ज्ञान-विज्ञान	318-367
	भू-लोक 318, द्वीप-§जम्बू, प्लक्ष, शाल्मली, कुश, क्रौंच, शाक पुष्कर§ 318-325, वन 325-327, पर्वत §मेरु, मणि पर्वत, व्यारगिरि, अनलाचित, एकशृङ्ग, लोकालोक पर्वत§ 327-333, जलस्त्रोत§गंगा आदि नदियां तथा अन्य§ 333-337, खगोल विज्ञान 337-342, ज्योतिष्यज्ञान 343-345, षड्-ऋतु §शरद्, वसन्त, ग्रीष्म§ 345-348, बारहमास 348-350, वायुयान 350-351, पाताल§अतल, वितल, सुतल, तलातल, महातल, रसातल, पाताल सातलोक 351-356, संकर्षण देव 356§, जलयान 356-358, खनिज पदार्थ तथा धातुज्ञान 359, कला §चित्रकला, वास्तुकला, संगीतकला§ 359-366, अन्य कलायें 366-367·	
दशम अध्याय-	उपसंहार	368-372
	सन्दर्भ-ग्रन्थ-सूची = = = = = =	373-383

प्रथम अध्याय

साहित्य और संस्कृति

(क) साहित्य

(ख) संस्कृति

(ग) संस्कृति और समाज

(घ) साहित्य संस्कृति का वाहक

(ङ) साहित्य में विद्यमान संस्कृति का मूल्य

(च) संस्कृति के तत्त्व

(छ) नानकचन्द्रोदय संस्कृति प्रधान महाकाव्य

(ज) ग्रन्थकार का परिचय

= = = = = =

प्रथम अध्याय

साहित्य और संस्कृति

साहित्य -

साहित्य की उत्पत्ति "सहित" शब्द से हुई है । इसलिये साहित्य में मिलन भाव दिखाई देता है । साहित्य भाषा का भाषा के साथ, ग्रन्थ का ग्रन्थ के साथ तथा विचार का विचार के साथ जो मिलन है उसे बतलाता है । इस के अतिरिक्त वर्तमान का अतीत के साथ, निकट का दूर के साथ तथा मनुष्य का मनुष्य के साथ कैसा मिलन होता है इसे भी प्रकट करता है ।

"स + अ + हि + त्य" विग्रह से यह बात स्पष्ट होती है कि साहित्य आदि और अन्त से सत्य रूप है, लेकिन बीच में "अहि" (सर्प) नीलकण्ठ के गले में स्थित बिष की भाँति है । साहित्य शिव की तरह कल्याणकारी है परन्तु वादों और सम्प्रदायों के वितण्डावाद इस कल्याण के साथ ज़हर के समान छिपे हुये हैं । साहित्य के विषय में "डा॰ गुलाब राय" के यह शब्द हैं कि काव्य संसार के प्रति कवि की भाव प्रधान मानसिक प्रति-क्रियाओं की कल्पना के ढाँचे में ढली हुई, श्रेय की प्रेम रूपा प्रभावोत्पादक अभिव्यक्ति है । प्रभावोत्पादक शब्द द्वारा भाषा की शक्तियों और अलंकारादि के साथ पाठक का भी संकेत हो जाता है[1] । साहित्य कवि की लेखनी द्वारा मानव को तत्कालीन तथा भूतपूर्व संस्कृति के बारे में बतलाता है । साहित्य का प्रभाव देश की एकता अखण्डता एवम् भाषा पर भी पड़ता है। समयनुसार

---

1. सिद्धान्त और अध्ययन, डा॰ गुलाबराय, पृ॰ 50

उस में परिवर्तन का भी संकेत करता है । "रामधारी सिंह दिनकर" के शब्दों में "भिन्न-भिन्न भाषाओं के भीतर बहने वाली हमारी भावधारा एक है, तथा हम प्राय: एक तरह के विचारों और कथावस्तुओं को ले कर अपनी-अपनी बोली में साहित्य रचना करते हैं । रामायण और महाभारत को लेकर भारत की प्राय: सभी भाषाओं के बीच अद्भुत एकता मिलेगी, क्योंकि ये दोनों काव्य सब के उपजीव्य रहे हैं । इस के सिवा, संस्कृत और प्राकृत में भारत का जो साहित्य लिखा गया था, उस का प्रभाव भी सभी भाषाओं की जड़ में काम कर रहा है"[2] ।

कुन्तक ने "सौन्दर्य द्वारा प्रशंसा को प्राप्त करने के लिये, इन दोनों (शब्द और अर्थ) की अपकर्ष और उत्कर्ष से रहित रमणीय यह कोई (अलौकिक) अवस्थिति साहित्य कही है[3] ।

"साहित्य" की व्युत्पत्ति सहित शब्द से भाववाचक "य" (ष्य) प्रत्यय के योग से निष्पन्न होती हैं । "सहितयो: शब्दार्थयो: भाव: साहित्यम्"। एक साथ सम्मिलित शब्द तथा अर्थ का भाव साहित्य कहलाता है । यह पद द्योतित करता है कि कवि की रचना शब्द तथा अर्थ के परस्पर समन्वय या सामंजस्य का परिणत फल होती है । अभीष्ट अर्थ को प्रकट करने की शक्ति किसी विशिष्ट शब्द में ही होती हैं । शब्दार्थ के साहित्य का तात्पर्य यह है कि शब्द और अर्थ परस्पर स्पर्धा कर रमणीय होते हैं अर्थात् न शब्द अर्थ से घटकर है, और न अर्थ शब्द से न्यून । न कोई न्यून है और न कोई अतिरिक्त है अर्थात न कोई घटकर है न बढ़कर है; बल्कि दोनों सन्तुलित हैं । कुन्तक के शब्दों में शब्द और अर्थ का यह सन्तुलन "परस्पर-स्पर्धी" कहलावेगा[4] । जिस

---

2. संस्कृति के चार अध्याय, रामधारी सिंह दिनकर, पृ. 658

3. साहित्यमनयो: शोभाशालितां प्रति काप्यसौ ।
अन्यूनानतिरिक्तत्वमनोहारिण्यवस्थिति: ।। - वक्रोक्ति जीवितम्, 1.17

4. ननु च वाचकस्य वाच्यान्तरेण वाच्यस्य वाचकान्तरेण.....तस्मादेतयो: शब्दार्थयोर्थथास्वं यस्यां स्व सम्पत्सामग्री समुदाय: सहृदयाह्लादकारी परस्परस्पर्धया परिस्फुरति, सा काचिदेव विन्यास सम्पत् साहित्य-व्यपदेशभाग् भवति" । - वक्रोक्ति जीवितम्, पृ.58

प्रकार दो मित्र आपस में स्पर्धा कर के या होड़ लगा कर उन्नति के शिखर पर पहुँच जाते हैं और आपस के सहयोग से एक आदर्श व्यक्तित्व की रचना करते हैं, उसी प्रकार शब्द और अर्थ भी स्पर्धा कर सौन्दर्यशाली बनते हैं और आपस में मिलकर एक आदर्श वस्तु की रचना करते हैं जो "काव्य" कहलाता है। उस का आशय यही है कि "साहित्य" (काव्य) में शब्द तथा अर्थ का पूर्ण सौहार्द होना चाहिये, दोनों ही सुन्दर तथा भव्य होने चाहिये, यही साहित्य की मनोरम कल्पना है।

संस्कृति -

सभ्यता और साहित्य के उद्गम के बीच में दीर्घ समय का व्यवधान है। मक्खन की तरह समय परीक्षा में पुन: पुन: उत्तीर्ण हो कर सभ्यता से संस्कृति पैदा हुई और फिर इसी प्रकार संस्कृति से काव्य उत्पन्न होता है। साधारण मानव से सभ्य, सभ्य से संस्कृतियुक्त तथा संस्कृतियुक्त से कवि होने के लिये कठोर तपस्या करनी पड़ती है फिर कवि की कृति में संस्कृति का पूर्णांग परिचय प्राप्त होता है। इस प्रकार साहित्य संस्कृति को अपने साथ ले कर चलता है।

"संस्कृति" शब्द "कृ" धातु जिस का अर्थ करना, "कृत" किया हुआ, तथा कृति जिस की भाववाचक क्रिया है, "सम्" उपसर्ग से, जिस कृति में सम्यक् अर्थ प्रतिभासित होता है, से निष्पन्न हुआ है, जिस का अर्थ "सम्यग् रूप से किये गये कार्यों का भाव है"। पी॰के॰ आचार्य ने भी इस की व्युत्पत्ति "सम्" उपसर्ग पूर्वक "कृ" धातु से निष्पन्न मानी है। यह परिष्कृत एवं परिमार्जित करने के भाव का सूचक है"[5]। आंग्ल भाषा में संस्कृति के लिये "कल्चर" शब्द प्रयुक्त होता है। सर्वप्रथम जो आर्यजन पुरातन शब्द रचना वेदमन्त्रों को अपना पथप्रदर्शक स्वीकार करते थे, उन्हीं से हमें तत्कालीन संस्कृति का पता चलता है। "आर्य संस्कृति" का भारतीय भूखंड में आ कर, आर्य और द्रविड़ संस्कृतियों का

5॰ भारतीय संस्कृति एवं सभ्यता, पृ॰।

जो समन्वित रूप उभर कर आया, वही भारतीय संस्कृति का प्राचीन रूप है जिस का प्रतिनिधित्व हमारी प्राचीन भाषा संस्कृत करती है"[6]।

"संस्कृति" के विषय में मनुष्य समाज से बहुत कुछ सीखता है यह समाज का एक अंग है, जिस से इसकी सामाजिक एकता का प्रादुर्भाव होता है; संस्कृति वास्तव में एक हमेशा अप्राप्य आदर्श है; संस्कृति में एकात्मकता की विशेषता भी है। इस के बारे में हम अधिक मात्रा में लक्षण दे सकते हैं तथा मतभेद द्वारा उन का खण्डन भी कर सकते हैं, लेकिन उस संस्कृति की वास्तविक परिभाषा करना असम्भव है। "रामधारी सिंह दिनकर" के शब्दों में "कुछ अंशों में वह सभ्यता से भिन्न गुण है। अंग्रेज़ी में कहावत है कि सभ्यता वह चीज़ है जो हमारे पास है, संस्कृति वह गुण है जो हम में व्याप्त है। मोटर, महल, सड़क और भोजन आदि ये सारी वस्तुयें संस्कृति नहीं, सभ्यता के समान हैं, लेकिन पोशाक पहनने और भोजन करने में जो कला है वह संस्कृति है"[7]।

जिस धर्म, सभ्यता तथा संस्कृति को हम स्वीकार करते हैं, एवं जातीय और राष्ट्रीय कह कर जो विचारधारा हमारे मनों में है उन का कोई अर्थ नहीं, क्योंकि हिन्दु समाज न ही शुद्ध आर्य वंश का है, न ही द्रविड़ का। जो जातियां यहाँ पर आईं और यहीं बसने लगीं, उन्हीं का मिश्रित जन-समूह है। "रामधारी सिंह दिनकर लिखते हैं कि - "भारतीय संस्कृति अनेक संस्कृतियों के योग से बना हुआ मधु है। यद्यपि उस के अमर आर्यों का महत्त्व उतना ही है जितना मधुनिर्माण में मधुमक्खियों का होता है"[8]।

मनुष्य जीवन के आचरण, उच्चारण तथा अनुसरण का संशोधित अथवा परिष्कृत रूप संस्कृति है। "डा॰ मदन गोपाल गुप्त" लिखते हैं कि - "किसी देश या समाज के विभिन्न जीवन-व्यापारों या सामाजिक सम्बन्धों में मानवता की दृष्टि से प्रेरणा प्रदान करने वाले आदर्शों को संस्कृति कहते हैं"[9]। इस प्रकार

---

6. संस्कृति के चार अध्याय, पृ॰7, प्रस्तावना - लेखक पं॰ जवाहर लाल नेहरू
7. संस्कृति के चार अध्याय; पृ॰65।
8. संस्कृति के चार अध्याय; पृ॰ 5
9. मध्यकालीन हिन्दी काव्य में भारतीय संस्कृति, डा॰ मदन गोपाल गुप्त, पृ॰6॰

सम्पूर्ण सामाजिक जीवन संस्कृति में ही समाप्त होता है । संगति के रूप में भी लोगों को इसी द्वारा रखा जा सकता है । क्योंकि प्राय: संसार के सभी देशों की संस्कृतियों में आदान प्रदान होता है, परन्तु भारतीय संस्कृति एक ऐसा अगाध समुद्र है, जिस में अनेक देशों की संस्कृतियाँ आ कर के मिश्रित हैं, तथा भिन्न-भिन्न जातियों की मानसिक एवम् आध्यात्मिक एकता करती हैं । अत: भारतीय "संस्कृति" "विश्व बन्धुता" का प्रचार करती है ।

संस्कृति और समाज -

वास्तव में समाज संस्कृति का धारक है क्योंकि यदि समाज न हो तो इस का अपना कोई स्वरूप ही नहीं होगा । परस्पर अभिन्न सम्बन्ध के कारण यह भी कह सकते हैं कि समाज का वास्तविक आधार संस्कृति है । संस्कृति, व्यक्ति तथा समाज तीनों मनुष्य-व्यवहार के मुख्य स्तम्भ हैं और एक दूसरे पर आश्रित हैं । सूर्य से उत्पन्न धूप की तरह संस्कृति और समाज मानव आचरण के दो मुख्य पहलू हैं । "मैन एण्ड हिज़ वर्क्स" में कहा गया है कि - "समाज व्यक्तियों से मिलकर बनता है जबकि संस्कृति उन की व्यवहार-प्रणाली में निहित रहती है"[10] । समाज के विषय में "गौरी शंकर भट्ट" लिखते हैं कि - "जब सामूहिक तथा सहचारी रूप में मनुष्य एक दूसरे के साथ, एक दूसरे के प्रति तथा एक दूसरे के लिये व्यवहार करता है तो उस से सम्बन्धों तथा क्रियाओं का जो विन्यास उत्पन्न होता है, वही समाज है"[11] । समाज एक तरफ सहाचरण का प्रतीक है तो दूसरी तरफ संस्कृति औद्योगिक क्षेत्र तथा सभ्यता के रूप में मानव ने जो प्राप्त किया है, उस का तराजू है । संस्थाओं की उत्पत्ति सामाजिक आदर्शों से ही सम्भव होती है, तथा संस्थायें आगे चल कर समाज की आने वाली पीढ़ी को आदर्श-नियम में प्रतिबद्ध कर देती हैं । जिस द्वारा हमारी संस्कृति का समाज द्वारा निर्मित एवम् उत्पन्न युवा वर्ग द्वारा अनुपालन, अनुशीलन तथा

---

10. हर्सकोविट्स, एम.जे., मैन एण्ड हिज वर्क्स; पृष्ठ 29
11. भारत में समाज शास्त्र, प्रजाति और संस्कृति, पृ. 163

कार्यान्वयन किया जाता है ।

अत: कह सकते हैं कि समाज के अभाव में संस्कृति मृत-प्राय है । यदि समाज इसे धारण कर इस का परिवर्द्धन एवं परिपालन नहीं करेगा तो यह विकसित नहीं हो सकेगी ।

साहित्य संस्कृति का वाहक -

संस्कृति सद्गुण, उत्कर्ष और मनुष्य के विवेक का समष्टि-गत समूह है, इस के अन्दर मानव के सदाचार, उसकी नैतिकता, संस्कार, उस के जीवन का मूल्य, आदर्श, धर्म तथा साहित्य का संमिश्रण होता है । संस्कृति ऐसा तत्त्व है जो व्यापक है । मानव साधना की सर्वोत्तम परिणति है, इस का बोध इतिहास से होता है । इतिहास एवं संस्कृति के अभिन्न सम्बन्ध के विषय में "डा॰ राज किशोर सिंह" लिखते हैं कि --"संस्कृति आन्तरिक वस्तु है । इस के अन्तर्गत मनुष्य के आचार-विचार, उस के जीवन मूल्य, उस की नैतिकता, संस्कार, आदर्श, शिक्षा, धर्म, साहित्य और कला का समावेश होता है, अत: संस्कृति एक व्यापक तत्व है । निश्चय ही संस्कृति मानव साधना की सर्वोत्तम परिणति है। इस सर्वोत्तम परिणति का ज्ञान इतिहास से होता है, जिस का संस्कृति के साथ अभेद सम्बन्ध है"[12] । इस प्रकार संस्कृति एवं इतिहास इन दोनों का ज्ञान कला तथा साहित्य से प्राप्य है, संस्कृति साहित्य के बिना अपूर्ण है ।

भारत की संस्कृति में वैदिक साहित्य, महाभारत तथा पुराणों आदि का महत्त्व कभी नष्ट न होने वाला है । साहित्य मानव की भावनाओं और ज्ञान का सर्वोत्तम संग्रह है । सम्पूर्ण विश्व के जनसमुदाय में अपनी आन्तरिक भावनाओं को प्रकट करने की तमन्ना रहती है, यही "इच्छा" और भावना संस्कृति तथा साहित्य द्वारा पुष्पित होती है । प्राचीन युगों की मानव चेतना काव्य द्वारा मूर्त की जाती है, काव्य हमारे समक्ष मानवता की मनोगति को प्रस्तुत करता है । इसी कारण किसी काल में रचा गया साहित्य उसी पर

12॰ प्राचीन भारतीय कला एवं संस्कृति (प्रारम्भ से गुप्त युग पर्यन्त) पृ॰1॰

नियन्त्रित नहीं रहता है, अनादि-काल से आने वाली भावनाओं को संस्कृति की श्रेष्ठधारा के कवि अपनी लेखनी द्वारा अंकित कर, अनन्त-काल के लिये सौंप देते हैं। इसीलिये इतिहास तथा संस्कृति के बिना, भावनाओं की शून्यता में साहित्य पल्लवित नहीं हो सकता है। काव्यजगत् के मनुष्यों की भावनायें व्यक्तिगत तथा वास्तविक होती हैं परन्तु वे सर्वजन अनुभव की वस्तु बन जाती है। वे व्यक्ति नहीं रहे, उन के सुख-दुःख भी यहाँ नहीं हैं, परन्तु उन की पीड़ा, उल्लास तथा सफलता काव्य में चिरकाल से चली आ रही है। इस प्रकार काव्य में मौलिकता की सुन्दरता के प्रतिबिम्ब को प्रदर्शित करते हुये "माघ" लिखते हैं कि - "

दृष्टोऽपि शैलः स मुहुर्मुरारेरपूर्ववद्विस्मयमाततान।
क्षणे क्षणे यन्नवतामुपैति तदेवरूपं रमणीयतायाः।।[13]

रमणीयता का रूप वही है जो क्षण-क्षण में नूतनता को धारण करे। यह सुन्दरता व्यंजना आदि के द्वारा भी अभिव्यक्त होती है, किन्तु नवीनता के लिये आकर्षण शक्ति की आवश्यकता होती है। कवियों ने अपने साहित्य में शौर्य, वीर्य, तप तथा प्रयास आदि के उन रूपों को चित्रित किया है, जो तात्कालिक हो कर भी चिरकालिक हैं। कवि परिवर्तनशील जंगल के बीच रह कर उस के रूप को देखता है, जो भावना के क्षेत्र में स्थायी बन जाता है। तात्कालिक वास्तविक जीवन के तथ्य को लेकर वह उसे भाव जीवन में परिणत करता है, कालान्तर में मानव उसे ग्रहण कर लेता है। जैसे श्रीरामचन्द्र जी का जीवन वास्तविक रहा है, परन्तु कवि ने उसे भाव-जीवन में परिणत कर दिया है तथा अब भी मनुष्य मात्र के हृदय में आदर्श-रूप में वह विद्यमान हैं।

डा॰ रमाशंकर त्रिपाठी लिखते हैं कि - "इस में सन्देह नहीं कि इन प्रबन्ध काव्यों में भारत की तात्कालिक धार्मिक और सामाजिक स्थितियों का रुचिकर संग्रह हुआ है"[14]। सभ्यता, समाज और संस्कार के जो तत्व नैसर्गिक हैं

---

13. शिशुपालवध, 4·17

14. प्राचीन भारत का इतिहास; डा॰ रमाशंकर त्रिपाठी, पृ॰3

उन को हम संस्कृति कहते हैं , साहित्य समाज को अंकित करता है तथा संस्कृति प्रतिबिम्बित । साहित्य में जो तत्त्व हैं, वे सभी संस्कृति से प्रभावित हैं । संस्कृति न परिवर्तनशील है, न विकृत होती है । युग बीत चुके हैं परन्तु संस्कृति नहीं बदली है । रामायण, महाभारत तथा वैदिक काल का साहित्य प्राचीन हो गया है, परन्तु सांस्कृतिक तत्त्व न पुराने हुये हैं न होंगे । बाल्मीकि, कालिदास आदि कवि सांस्कृतिक स्वर के प्रेरणा स्रोत हैं । साहित्य और संस्कृति एक दूसरे के सहारे जीवित रहते हैं, यदि संस्कृति साहित्य को आक्रान्त करती है तो साहित्य भी संस्कृति का रक्षण करता है । पुरातन संस्कृति का ज्ञान हमें प्राचीन साहित्य से ही होता है । साहित्य अपने राष्ट्र का जीवन होता है । साहित्यकार समाज तथा अपने काल का पथ-प्रदर्शक होता है । साहित्यकार का कर्तव्य है कि वह अपने समाज और देश की नाड़ी का अवलोकन करे तथा समझे, फिर उसे सृजित करे । उस के दुःख का अनुभव करे, झेले परन्तु समाज को मुस्कराहट ही अर्पित करे । साहित्यकार की इच्छा के अभाव में भी उस के काव्य पर उस युग का प्रभाव अवश्य पड़ता है । इस प्रकार साहित्य और समाज का भी घनिष्ठ सम्बन्ध है । समाज से संस्कृति के सम्बन्ध दूरस्थ होते हैं । साहित्य का सर्वोत्तम दायित्व और गुण युगों की अभिव्यक्ति है । पौराणिक साहित्य तथा ऐतिहासिक दोनों साहित्यों में समाज और युग की अभिव्यक्ति होती है । समाज के दोषों का यथार्थ चित्रण साहित्य अंकित करता है । इसलिये साहित्य समाज का दर्पण होने के साथ-साथ पथप्रदर्शक भी है ।

हमारा प्राचीन साहित्य यदि समाप्त हो गया होता, तो क्या हम विश्व-भर में अपनी संस्कृति की आध्यात्मिक महत्ता पर गौरव कर सकते थे । साहित्य रचयिता जिस समाज, जाति तथा संस्कृति में पल कर बड़ा होता है उस का प्रभाव उस के साहित्य पर अवश्यम्भावी है । इस के बारे में "डा॰ भगीरथ मिश्र" ने लिखा है कि--"युग युगान्तर में ग्रहण किये काव्यगत सत्य, विभिन्न मणियाँ हैं, जिन के सूत्र बदलते रहते हैं । किसी युग में यदि उन्हें पिरोने वाला सूत्र भक्ति का है, तो दूसरे युग में श्रृंगार एवं विलास का । एक युग में वह करुणा का है, तो दूसरे युग में देश प्रेम का । एक युग में वही सूत्र समाज-सुधार का है,

तो दूसरे में साम्यवाद और सह अस्तित्व का"[15]।

साहित्यकार समय की धारा में अपने आप को लीन कर देता है, वह साहित्य अपने लिये नहीं दूसरों के लिये करता है सामाजिक भाव उस की लेखनी द्वारा उस के काव्य में अंकित होते हैं। जब हमें यह विदित होता है कि यह किसकी कृति है तो साथ-साथ इस का भी ज्ञान हो जाता है कि यह साहित्य किस जनता, समाज के लिये रचा गया था। इस लिये डा॰ मिश्र लिखते हैं कि - "कवि का सत्य, समाज का बल है। वह हमारी प्रवृत्तियों का परिष्कार करता है, उन को अपने सहज अमृत से सींच कर विकसित करता है और आनन्दपूर्वक जीवन यापन की कला बताता है"[16]। किसी देश की संस्कृति का प्रतिबिम्ब उस राष्ट्र के साहित्य के काव्यों में दिखाई देता है, इन दोनों का पृथक् नहीं किया जा सकता साहित्य संस्कृति का मूल्यांकन करने वाला, इस का देवालय एवं हिस्सा होता है। साहित्य के अभाव में संस्कृति का ज्ञान आने वाली पीढ़ियों को नहीं हो सकता है।

पाठक को संस्कृति की श्रेष्ठता का ज्ञान तथा उस के मन को संस्कृति का अनुसरण करने के लिये परिपक्व करना साहित्य की सर्वप्रथम भूमिका होती है। साहित्य तथा संस्कृति एक दूसरे में परिपूरक हैं, संस्कृति के विकसित होते ही साहित्य सांस्कृतिक तत्वों को ग्रहण कर उन की विशेषता को प्रकट करते हुये सभी लोगों के लिये आसान बना देता है। संस्कृति के सिद्धान्त पक्ष को व्यावहारिक रूप साहित्य ही प्रदान करता है। इस प्रकार साहित्य संस्कृति की प्रयोगशाला है साहित्य संस्कृति के जिन तत्त्वों को उचित समझता है, उन का निरीक्षण कर उन्हें विकसित, संवर्द्धित करता है, शेष को त्याग देता है। भावी पीढ़ी के लिये सुसंस्कृत सुसभ्य समाज का पक्ष पेश करता है।

साहित्य संस्कृति की आत्मा है, साहित्य उस का बीज है, बीज अविनश्वर होता है। जैसे वृक्ष के सूखने पर उस का बीज नष्ट नहीं होता है,

---

15॰ अध्ययन, डा॰ भगीरथ मिश्र - शीर्षक - "कवि का सत्य" पृ॰3

16॰ अध्ययन, डा॰ भगीरथ मिश्र - शीर्षक "कवि का सत्य" पृ॰4

तथा समय आने पर पुनः अंकुरित होता है, तथा बढ़ता है वैसे ही साहित्य है । यदि संस्कृति किसी युग में लुप्त हो जाती है तो साहित्य रूपी उस का बीज विद्यमान रहता है, जो कि समाज को पुनः सुशिक्षित कर अपने में विद्यमान संस्कृति के गुणों को अंकुरित कर देता है, इस प्रकार पुनः संस्कृति जीवित हो जाती है । जैसे डा॰ गोपीनाथ कविराज ने कहा भी है कि - "जाति में वैशिष्ट्य संरक्षित रहे, तब तो जाति जीवित रहती है, उस समय भी बीज तो रहता ही है परन्तु जाति का लोप हो जाने पर भी उस के बीज का नाश नहीं होता"[17] । राष्ट्र की संस्कृति को अनुभव कर, अपनी वाणी में लेकर, अवलोकन कर सुप्तसमाज में जाग्रति उत्पन्न करना साहित्यकार का राष्ट्रीय-धर्म है ।

साहित्य में विद्यमान संस्कृति का मूल्य -

संस्कृति के आदिकाल से देवता, ऋषि, महापुरुषों तथा असुरों आदि से सम्बन्धित घटनाओं के बारे में साहित्य ने, वेदों पुराणों के माध्यम से उन के सरस-जीवन को हमारे समक्ष प्रस्तुत किया है । भारतीय साहित्य का वर्ण्य विषय देश काल की दृष्टि से तथा प्रबन्धों के चरित्रवान नायकों की गरिमा से दिव्य ही रहा है । भारत के विशाल साहित्य में किसी महापुरुष का कार्यक्षेत्र हिमालय से समुद्र तक ही सीमित न रह कर अपने देश से बाहर जा कर दिग्विजय तथा धर्म-विजय का क्षेत्र था । भारतीय साहित्यकारों की कल्पना शक्ति से तो स्वर्ग-नरक और पाताल भी चरित नायकों की परिधि के अन्दर थे । रामायण का ही दृष्टान्त लें इस में राम-चरित की भौगोलिक सीमा अतिविस्तृत है, उत्तर तथा दक्षिण का अधिकतम भाग इस के अन्तर्गत आ जाता है । रामचन्द्र जी के साथ सभी जातियों को मिलने का अवसर मिलता है । बाल्यावस्था की रमणीयता, यौवन की वीरता तथा प्रौढ़ावस्था का कर्मयोग, एवं आदर्श पुत्र, आदर्श पिता, आदर्श पति पत्नी और आदर्श सहोदर सम्बन्ध परिलक्षित होता है । जिस से तत्कालीन ज्ञान के द्वारा सम्पूर्ति समाज पर सुसंस्कृति का प्रभाव साहित्य

---

17. भारतीय संस्कृति और साधना, डा॰ गोपीनाथ कविराज; पृ॰212

का अवलोकन करने से पड़ता है । चारों आश्रमों एवं चारों वर्णों का एक मात्र सुप्रतिष्ठित स्वरूप वाल्मीकि की रामायण का अध्ययन करने से प्राप्त होता है । महाभारत के विषय में तो कहा गया है कि -

धर्मे चार्थे च कामे च मोक्षे च भरतर्षभ ।
यदिहास्ति तदन्यत्र यन्नेहास्ति न तत्क्वचित् ।।

महाभारत में वर्णित युधिष्ठर, कृष्ण, अर्जुन, भीम और दुर्योधन आदि के साथ असंख्य ऋषि मुनियों का चरित्र आधुनिक समाज के अभ्युदय के लिये है ।

अश्वघोष के दो महाकाव्यों में गौतमबुद्ध का उदात्तचरित वर्णित है, जो भारत पर ही नहीं परन्तु विश्व-भर की गरिमा पर प्रभाव डालता है । राम और कृष्ण के अवतारों का आश्रय-ग्रहण कर असंख्य नाटकों तथा महाकाव्यों की रचना की गई है । नाटकों में कालिदास का "अभिज्ञान शाकुन्तलम्" एक उदाहरण के रूप में है, जिस के बारे में कहा गया है - "काव्येषु नाटकं रम्यं तत्र रम्या शकुन्तला, तत्रापि चतुर्थोऽङ्कःयत्र श्लोक-चतुष्टयम्" इन चार श्लोकों में आदर्श जीवन, कर्त्तव्य परिपालन के साथ-साथ भारतीय संस्कृति का अंकन दृष्टिगोचर होता है । महाभारत में भारतीय संस्कृति के बारे में कहा है कि - "भारतीय काव्य की एक रीति ही थी कि सज्जनों के चरित को काव्य का विषय बनाया गया, जिस से उन के द्वारा लोक-संग्रह हो"[18], प्राचीन साहित्यकारों का यह विश्वास था कि महापुरुषों के चरित्र का अध्ययन करने से अपना ज्ञान बढ़ता है तथा अपनी संस्कृति का अनुशीलन होता है । जैसे श्री मद्भागवत पुराण में कहा है कि -

"यद्वाग्विसर्गो जनताघविप्लवो,
यस्मिन्प्रतिश्लोकमबद्धवत्यपि ।
नामान्यनन्तस्य यशोऽङ्कितानि यत्,
श्रृण्वन्ति गायन्ति गृणन्ति साधवः" ।।

संसार की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलयरूप भगवान की लोक-पवित्र लीला का वर्णन काव्य का विषय बना । इस प्रकार जो कर्तव्य महापुरुषों, देवताओं के लिये

---

18. लोकसंग्रह संयुक्तं विधात्रा विहितं पुरा ।
- महा॰भा॰ शान्तिपर्व, 251·25

निश्चित हुआ वही मनुष्यों के लिये उपयुक्त हुआ । महापुरुषों के कर्त्तव्यों को अपना लेने से मनुष्य का व्यक्तित्व आदर्श बन जाता है, वह सम्पूर्ण समाज का आभूषण बन जाता है ।

वैदिककाल में सत्य की महिमा का गान किया है, सत्य को भारतीय संस्कृति का प्राण स्वीकार किया है । ऋग्वेद में कहा है कि -

"विश्वं तद् भद्रं यदवन्ति देवा:"[19]

विनम्रता को सर्वोत्कृष्ट स्वीकार करते हुये उल्लेख किया है कि - "नमस्कार बलशाली है, नमस्कार की कामना करता हूँ, नमस्कार ने ही पृथ्वी और स्वर्ग को धारण किया हुआ है"[20] । संस्कृति के जितने भी मूल-तत्त्व हैं वे सभी साहित्य में निहित हैं । जितने भी इस के अंग तथा साधन हैं वे साहित्य में मिलते हैं । जिस साहित्य में संस्कृति की अभिव्यक्ति नहीं होती है उस का समाज में कोई मूल्य नहीं होता है । शिष्टाचार भारतीय संस्कृति का मुख्य गुण है, जिस के विषय में अथर्ववेद में उल्लेख मिलता है कि - "वह पुरुष घर की कीर्ति और यश को खा जाता है, जो अभ्यागत से पूर्व भोजन करता है"[21] । आलस्य करने वालों को सचेत करते हुये शतपथ-ब्राह्मण में कहा गया है कि - "कल के सहारे मत्त बैठो । कल को कोई नहीं जानता आज सुनिश्चित है कल को कौन जाने"[22] । महाकवि कालिदास भी अपना सन्देश देते हुये उल्लेख करते हैं -

परस्पर-विरोधिन्योरेकसंश्रय-दुर्लभम् ।
सङ्गतं श्री सरस्वत्यो र्भूत्येऽस्तु सदा सताम्"[23] ।।

अर्थात् लक्ष्मी (श्री) और सरस्वती का संसर्ग कल्याण प्रदान करने वाला होता है ।

---

19. ऋ. 2.24.16

20. नम इदुग्रं नम अविवासे ।
नमो दाधार पृथिवीमुतद्याम् ।। - ऋ. 6.51.8

21. कीर्तिं च वा एष यशश्च गृहाणामश्नाति य: पूर्वोऽतिथेरश्नाति ।
- अथर्ववेद, 9.6.35

22. न श्व: श्वमुपासीत् । को हि मनुष्यस्य श्वो वेद । - श.ब्रा.2.1.3.9

23. विक्रमोर्वशीयम्, 5.24

इस प्रकार सम्पूर्ण संस्कृति साहित्य द्वारा जीवित है । आधुनिक युग में साहित्य द्वारा अपनी संस्कृति का ज्ञान प्राप्त कर, प्राचीन सभ्यता और रिवाज़ों से परिचित हो हमारा समाज आगे बढ़ रहा है ।

सनातनता -

प्राचीन काव्य को भारतीय संस्कृति की सनातनता ने प्रभावित किया है । इतिहास एवं पुराणों को मार्गदर्शक मान कर श्रेष्ठ और आदर्श काव्यों का चयन किया है । आध्यात्मिक दर्शन से साहित्य ने अतीव प्रेरणायें ली हैं । काव्य और साहित्य ब्रह्म-विद्या के प्रतीक हैं । जैसे गोपीनाथ ने कहा है कि "शिव शक्ति का सामरस्य ही साहित्य है । इस की आत्मा अथवा प्राण रस है । वस्तुत: रस स्वयं प्रकाश ब्रह्मतत्व का ही नामान्तर है"[24] । इस प्रकार दार्शनिक संस्कृति के साथ साहित्य का अभिन्न सम्बन्ध है ।

भारतीय साहित्य सर्वोत्कृष्ट काव्य रचनाओं द्वारा विश्व-भर में प्रतिष्ठा प्राप्त कर चुका है । वैदिक मन्त्रों, महाकवि कालिदास की रचनाओं का सौन्दर्य, उपनिषदों का चिन्तन तथा मनन, अठारह पुराणों का ज्ञानरस, महाभारत का व्यवहारिक ज्ञान, गीता का कर्मवाद एवं नैतिक शिक्षायें, रामायण के आदर्श, पंचतन्त्र तथा हितोपदेश की शिक्षात्मक कहानियाँ, तुलसीदास, बाल्मीकि जैसे सज्जनों के भक्तिरस से भरे उपदेश भारत वर्ष की ही नहीं अपितु विश्व-भर की पूंजी हैं । सम्पूर्ण-संसार में इन का सम्मान होता है ।

"डा॰ भगीरथ मिश्र" के शब्दों द्वारा सार रूप में कह सकते हैं कि- -"अपनी संस्कृति और आदर्शों की महानता हम साहित्य द्वारा ही प्रकट कर सकते हैं । हम प्राचीन काल में महान् थे । इसे साहित्य द्वारा ही सिद्ध कर सकेंगे । साहित्य का सम्पर्क अधिक दूर तक जाता है । कार्यों और व्यक्तित्व का सम्पर्क उतना स्वच्छन्द और व्यापक नहीं है । उत्तरी और दक्षिणीध्रुव के समीपवर्ती देश भी हमारे साहित्य को पढ़ सकते हैं और उस के द्वारा हमारी

24॰ भारतीय संस्कृति और साधना, गोपी नाथ कविराज,
पृ॰ 214

जाति, संस्कृति और देश के आदर्शों को जान सकते हैं और यदि वे यथार्थ में ऊँचे और सार्वभौम हैं तो हमारे पंथ के पंथी भी हो सकते हैं"[25] । इस लिये साहित्यकार की सहायता करना सम्पूर्ण समाज-वर्ग का दायित्व है, ताकि वह साहित्य द्वारा संस्कृति को सुरक्षित रख सके । साहित्याभाव में संस्कृति लुप्त-प्राय: सी हो जायेगी । अत: साहित्य संस्कृति का वाहक है यह सर्वमान्य है ।

पूर्ववर्ती-युग एवं समय की संस्कृति का ज्ञान प्राप्त करने के लिये साहित्य ही सर्वोत्तम उपकरण है, इस की सहायता से तात्कालिक संस्कृति का अध्ययन किया जाता है । अत: प्रस्तुत शोध प्रबन्ध में भी श्री देवराज शर्मा द्वारा विरचित "नानक चन्द्रोदय महाकाव्य" के अध्ययन द्वारा नानक के आदर्शों; समाज सेवा, कर्त्तव्यपालन इत्यादि द्वारा तत्कालीन सांस्कृतिक तत्त्वों का अनुशीलन किया है, जोकि साहित्य के अभाव में सम्भव नहीं था । इस प्रकार सम्पूर्ण विवेचन द्वारा यह सिद्ध होता है कि साहित्य संस्कृति का वाहक है । जिस के बिना संस्कृति गतिहीन होती है ।

संस्कृति के तत्त्व -

विश्वव्यापी भारतीय संस्कृति के अनेक तत्त्व हैं, जिन केआधार पर हमारा राष्ट्र आत्म विकसित देशों को भी आश्चर्य चकित कर देता है । अन्य देशों के लोग हमारी संस्कृति का अवलोकन कर प्रशंसा करते हैं तथा इसके तत्त्वों का अनुसरण करते हैं । वे सांस्कृतिक तत्त्व सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक, धार्मिक, वैज्ञानिक तथा दार्शनिक दृष्टि से भिन्न-भिन्न हैं, जिन के अन्तर्गत निम्नलिखित आधार-भूत व्यवस्थायें आती हैं ।

सामाजिक -

सामाजिक जीवन का आधार वर्णव्यवस्था है इसलिये ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र वर्णों के लोगों का परस्पर सम्बन्ध विशेष महत्त्व रखता है ।

---

25. अध्ययन; डा. भागीरथ मिश्र, शीर्षक साहित्यिक अभिरुचि; पृ.12

ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, संन्यास और वानप्रस्थ भी सामाजिक जीवन के अन्तर्गत आते हैं। विवाह व्यवस्था, परिवार का स्वरूप, दाम्पत्य सम्बन्ध, स्वामिसेवक सम्बन्ध, पिता-माता का पुत्र-पुत्री के प्रति सम्बन्ध, सहोदर सम्बन्ध एवं आदर्श समाज के कर्त्तव्यों का विश्लेषण विशद् रूप से जहाँ होता है, वह सामाजिक जीवन के अन्तर्गत आता है। साथ ही खाद्य पेय तथा मनोविनोद नृत्यगानादि का भी प्रतिपादन होता है।

आर्थिक -

आर्थिक जीवन में अर्थ के साधनों, कृषि, कृषि के उपकरणों, कृषि की रक्षा, पशु पालन, विविध व्यवसायों तथा उद्योग धन्धों का उल्लेख मिलता है। जिस से समाज की आर्थिक-स्थिति ज्ञात होती है। इस प्रकार आर्थिक-जीवन के वर्णन द्वारा रहन-सहन, क्रय-विक्रय, यातायात के साधनों तथा लेनदेन आदि तत्त्वों का अवलोकन समाज को होता है।

राजनैतिक -

राज्य के घटक, स्वामी, मन्त्री, कोष, दुर्ग, राष्ट्र, बल शासन व्यवस्था, रण सज्जा, राजस्व, शुल्क, युद्धकला तथा सेना संगठन इत्यादि तत्त्वों का चित्रण राजनैतिक सांस्कृतिक जीवन को प्रदर्शित करता है। संधि करना भी इस का प्रमुख तत्त्व है, जिस से युद्ध के उपरान्त राजनैतिक संधि किन नियमों पर आधारित होती है - का ज्ञान होता है।

धार्मिक -

धार्मिक जीवन सांस्कृतिक तत्त्वों में प्रमुख है क्योंकि भारतीय लोगों का जीवन प्राचीनकाल से ही धर्म पर आधारित रहा है। इस प्रकार इस द्वारा सामान्य धर्म साधना, योग, प्राणायाम, आत्मज्ञान, मोक्ष, भक्ति, धार्मिक अनुष्ठानों, तीर्थयात्रा, व्रत, जप, तप, होम तथा दान इत्यादि का ज्ञान समाज को उपलब्ध होता है, जो कि समाज के लिये अपेक्षित है।

वैज्ञानिक -

विज्ञान की उपादेयता भी भारतीय संस्कृति का ध्येय है। वैज्ञानिक

जीवन द्वारा संस्कृति ज्योर्तिविज्ञान, जिस के अन्तर्गत नक्षत्र, नक्षत्रों की संख्या नाम, नवग्रह, ध्रुवतारा, वायुयान, बाराहमास एवं षट्ऋतु का ज्ञान प्राप्त होता है । भैषज्य विज्ञान, साहित्य, भूगोल, पाताल, खनिजद्रव्य, धातु ज्ञान, तथा कला विज्ञान भी संस्कृति तत्त्व हैं, जिन के द्वारा रोग उत्पत्ति के कारण, विभिन्न रोग, उन के उपचार, पुराण, गाथा, वेद, नृत्य कला, वास्तुकला एवं प्रकृत्ति में सुन्दरता की कल्पना का ज्ञान प्राप्त होता है, जो कि संस्कृति को चिरस्थायी रखने के लिये परम आवश्यक है ।

दार्शनिक -

जन्म और मरण सम्बन्धी विचार, कर्म , पुनर्जन्म, माया, भाग्यवाद, दैववाद, एकेश्वरवाद तथा सत्-असत् सृष्टि का ज्ञान दार्शनिक तत्त्व का तद्रूप है । जिन के द्वारा दर्शन सम्बन्धी ज्ञान मनुष्य प्राप्त करता है तथा परम दुर्लभ मोक्ष को प्राप्त करने लिये साध्य साधनों को अपनाता है ।

अत: उपर्युक्त सांस्कृतिक तत्त्वों का अवलोकन कर हमारा जीवन सार्थक होता है । इन का ज्ञान प्राप्त कर ही मानव जीवन सफल होता है ।

नानकचन्द्रोदय संस्कृति प्रधान महाकाव्य -

नानक चन्द्रोदय महाकाव्य के अनुशीलन से सांस्कृतिक तत्त्वों की विद्यमानता का अवलोकन होने से प्रस्तुत महाकाव्य की संस्कृति प्रधानता स्फुटित होती है । प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध में ही तद्-तद् प्रकरणों में पूर्ववर्णित सांस्कृतिक तत्त्वों का विवेचन विस्तृत रूप से किया गया है, जहां पर नानकचन्द्रोदय महाकाव्य की संस्कृति प्रधानता को सिद्ध करने हेतु, इन तत्त्वों को संकेत-मात्र प्रस्तुत किया जा रहा है, जो कि निम्नलिखित प्रकार से चित्रित हैं ।

सामाजिक - तत्कालीन समाज का सर्वाङ्गीण चित्रण प्रस्तुत कर सामाजिक आदर्शों को समुन्नत रूप में चित्रित किया गया है । सामाजिक आधार वर्णव्यवस्था को सर्वोपरि उल्लिखित कर ब्राह्मण, क्षात्रिय, वैश्य और शूद्र चार वर्णों को स्वीकार कर उन के कर्मों का सुन्दर चित्रण प्रस्तुत महाकाव्य में किया गया है -

जुह्वानज्वलनं श्रुतिस्मृतिविद: सन्तोषशीला द्विजा
राजन्या बहुजन्यजन्ययशसा ख्याता: प्रजारक्षिण: ।
वार्तायां कुशलविश: प्रमुदिता देवद्विजाराधने
शूद्रा यत्र भजन्ति भव्यचरिता वर्णत्रयं निर्मदा: [26] ।।

इसी प्रकार समाज में प्रचलित संस्कारों का उल्लेख करते हुये जातकर्म, नामकरण को उद्धृत कर विशेषरूप से विवाह संस्कार का प्रतिपादन विस्तृत रूप से किया गया है । परिवार के स्वरूप, पारिवारिक सम्बन्धों तथा आदर्श परिवार के कर्त्तव्यों[27] के चित्रण से सामाजिक दृष्टिकोण से प्रस्तुत महाकाव्य की संस्कृति प्रधानता दिखाई देती है, जिनका विस्तृत विवेचन तृतीय तथा चतुर्थ अध्याय में विस्तृत उल्लिखित किया गया है ।

आर्थिक - आर्थिक तत्त्व का प्रतिपादन करते हुये अर्थ की महत्ता पर प्रस्तुत महाकाव्य में बल दिया गया है, धनहीन मनुष्य को तेजहीन उल्लिखित किया गया है -

अर्थेन हि वियुक्तस्य पुंसस्याल्पतेजस: ।
विच्छिद्यन्ते क्रिया: सर्वा: ग्रीष्मे कुसरितो यथा [28] ।।

इस प्रकार आर्थिक जीवन-स्तर का समुन्नत होना स्वीकार किया गया है । अन्य आर्थिक तत्त्वों-कृषि, पशुपालन, विविध व्यवसाय, उद्योग-धन्धे, तथा अतिरिक्त धनार्जन के साधनों का उल्लेख भी मिलता है,[29] जिनका भी विशद् विवेचन प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध के आर्थिक तत्त्वों के प्रस्तुतीकरण में किया गया है ।

---

26. ना·चं· 2·15

27. वही, 2·46, 48 एवं द्र· 2·52, 5·113-164, 2·88, 1·64, 100, 4·32, 38; 6·4; 14·325-326, 7·21-22 इत्यादय: ।

28. ना·चं· 3·22 एवं द्र· 24

29. वही, 2·3, 3·7 एवं द्र· 2·107, 20·125, 129, 5·20, 3·9-10, 19·89, 8·83, 3·60, 5, 4·19, 77, 139, 2·54, 58, 80, 21·46; 12·22; 17·21; 2·6 इत्यादय: ।

राजनैतिक - पूर्ववर्णित राजनैतिक-तत्त्वों की प्राप्ति से प्रस्तुत महाकाव्य की संस्कृति प्रधानता राजनैतिक दृष्टि से भी प्रमाणित होती है । राज्य को सुव्यवस्थित ढंग से चलाने वाले, तथा न्याय प्रिय स्वामी के प्रति शिष्य रूप प्रजा को सेवा भावना से निखिल परिजनों सहित स्वामी की सेवा करने का निर्देश दिया गया है -

स्वामी सर्वास्ववस्थासु पत्न्या परिजनेन च ।
सम्माननीय: सततमेष धर्म: सनातन: [30] ।।

प्रस्तुत महाकाव्य में ही राज्य के घटकों - स्वामी, मन्त्री, कोष, दुर्ग, बल, शासन व्यवस्था, सैन्य व्यवस्था, न्यायव्यवस्था, अस्त्र-शस्त्र विद्या, युद्धकला और सन्धि [31] आदि के उल्लेख से राजनैतिक जीवन का पता चलता है । लोकतन्त्रीय प्रणाली में शासकवर्ग को सत्-कार्यों में ही धन का व्यय करने का संकेत करते हुये, आय से व्यय की अधिकता को राजा के लिये दारुण दु:ख का कारण माना गया है -

आयाद् व्ययो यस्य महाननीते:
स सत्वरं सीदति लोकतन्त्रे [32] ।।

इस प्रकार राज्य का संचालन करने के लिये नीतियों का भी उल्लेख किया गया है, जिस से प्रस्तुत महाकाव्य की राजनैतिक दृष्टि से संस्कृति प्रधानता सिद्ध होती है ।

धार्मिक - योग, प्राणायाम, धार्मिक अनुष्ठान, तीर्थाटन, जप, तप आदि का उल्लेख उद्धृत कर देवराजशर्मा ने तत्कालीन धार्मिक जीवन को प्राचीन भारतीय संस्कृति के अनुरूप चित्रित किया गया है । नानक कृत विष्णु स्तुति से प्रस्तुत

---

30. ना.चं. 7.14

31. वही, 9.66-67 एवं द्र. 2.114-115, 21.78, 115, 20.2-6, 3.15, 19, 24, 4.55; 20.99, 18.43, 3.73, 4.67, 2.55, 58, 65, 67, 20.51, 53, 63, 9.33, 3.58, 20.67,75, 21.125, 146, 186, 20.90, 92, 93, 97, 21.26,28 इत्यादय:

32. वही, 3.6

महाकाव्य की धार्मिकता का चित्रण दृष्टिगोचर होता है -

अव्यक्तादीन्हेतुमाहुर्भवस्य, ब्रह्माणं वा ये मनुं वेतरे वा ।
ते त्वन्मायामोहिता विस्मरन्तः, सर्वादिं त्वां वद्धविस्तीर्णवादाः [33] ।।

नानक द्वारा कृत शिवस्तुति के उल्लेख से देवताओं के प्रति पूर्णआस्था का अवलोकन होता है -

स्मेराननो गरलनीलमलो भुजङ्गैः
स्फूर्जत्फणामणिगणैः परिभूषिताङ्गः ।
बिभ्रत्करेश्च परशुं हरिदम्बरं च
भक्ताभयं ललितवामतनुर्भवान्या [34] ।।

इसी प्रकार क्रमशः भक्ति के भेदों, प्राणायाम, योग, हठयोग, आत्म-तत्त्वज्ञान, जप, तप तथा तीर्थयात्राओं का उल्लेख उपलब्ध होता है [35] । जिन का विस्तृत विवेचन प्रस्तुत शोध प्रबन्ध के पंचम अध्याय में किया गया है जिस से भारतीय संस्कृति के धार्मिक तत्त्व की परिपुष्टि होती है ।

दार्शनिक - दार्शनिकता से सम्बन्धित प्रमुख सांस्कृतिक तत्त्वों का विवेचन भी नानकचन्द्रोदय महाकाव्य में उद्धृत मिलता है । नानक देव के सात पुनर्जन्मों के उल्लेख से पुनर्जन्मवाद का अवलोकन होता है, जिन का पृथक्-पृथक् उल्लेख प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध के षष्ठ अध्याय में किया गया है । एकेश्वर को सर्वत्र प्रसृत स्वीकार करते हुये गुरू नानक देव मक्का में म्लेच्छों को उपदेश देते हैं, जिस से एकेश्वरवाद का ज्ञान दृष्टिगोचर होता है -

विभुं प्रभुं स्वं यदि मन्यसेऽङ्ग , स दिक्षु सर्वासु तदा प्रसृप्तः ।।
मक्कामदोनैकनिवासिनं चे-, त्तदा परिच्छिन्नतया विनाशी [36] ।।

---

33. ना॰चं॰ 13॰135 एवं द्र॰ 134, 136
34. वही, 15॰5 एवं द्र॰ 15॰6 तः 9 पर्यन्तं
35. वही, 13॰25-26 एवं द्र॰ 10॰113-116, 118, 16॰136, 7॰93, 13॰4, 1॰72, 81-82, 8॰45, 14॰25, 18॰64, 13॰7,11-12;15; 1॰28-29, 3॰12, 13॰5, 1॰101-102, 6॰45, 139 इत्यादयः
36. ना॰चं॰ 1॰31

इसी प्रकार प्रस्तुत महाकाव्य में क्रमश: कर्मवाद, भाग्यवाद, दैववाद, पुनर्जन्मवाद, एकेश्वरवाद और सामाजिक नैतिकताओं का[37] विस्तृत उल्लेख उपलब्ध होता है, जिस से नानकचन्द्रोदय महाकाव्य की दार्शनिकरूप से संस्कृति प्रधानता सिद्ध होती है ।

वैज्ञानिक - ज्ञान-विज्ञान का उल्लेख भी प्रस्तुत महाकाव्य में विस्तृत रूप से किया गया है, जिस से नानक चन्द्रोदय महाकाव्य की वैज्ञानिक महत्ता सिद्ध होती है । गुरू नानक देव की जन्मकुंडली को उद्धृत कर तथा हरिदयालु ज्योतिष पारंगत विद्वान् द्वारा ग्रहों के अनुसार फलादेश के उल्लेख से ज्योतिर्विज्ञान की प्रमाणिकता दृष्टिगोचर होती है -

मूर्तौ भूमिसुत: सित: शनियुतो दृश्यश्चक्यगो मित्रगो
मित्र: शीतमयूखसूनुसहित: प्रत्यर्थिभावे शिखी ।।
देवैज्योदपिताऽनिकेत निलयो मेषूरणे चन्द्रमा
राहूरि: फगतो ग्रहस्थितिरियं श्रीनानकस्योदिता[38] ।।

इसी प्रकार क्रमश: नक्षत्रों, पाताल, खगोल, वायुयान, षड्ऋतु, जलयान, कलाओं और खनिज-द्रव्य आदि का उल्लेख भी उपलब्ध होता है[39] । जिन का विस्तारपूर्वक विवेचन प्रस्तुत शोध प्रबन्ध के नवम अध्याय में किया गया है ।

इस प्रकार उपर्युक्त सांस्कृतिक तत्त्वों का उल्लेख प्रस्तुत महाकाव्य में उद्धृत होने से सिद्ध होता जाता है कि नानकचन्द्रोदय महाकाव्य संस्कृति प्रधान महाकाव्य है । प्रस्तुत महाकाव्य की संस्कृति प्रधानता सिद्ध हो जाने से, यहाँ

---

37. ना·चं· 19·9,58,114,115; 3·15 एवं द्र· 2·59-64, 3·16;18·67-68; 8·57-61, 10·10-14; 12·98; 13·154,157; 19·184; 7·53,66-67;72-78; 9·3-13;28-31;144-147; 15·20-26, 43-49; 16·114-117;120,123-124; 2·124; 6·64; 3·35; 10·25-31; 11·51, 86-87; 12·40, 16·27,18·60, 19·89,91 इत्यादय:

38. वही, 2·67 एवं द्र·79 त: 78 पर्यन्तं, 14·232

39. ना·चं· 14·108-115, एवं द्र· 254-269, 216, 253, 20·140, 15·52, 10·65-66, 5·2-6; 19·31, 2·13, 5·53, 80, 7·86, 2·14, 5·104, 87, 8·138, 141 इत्यादय:

ग्रन्थकार का परिचय प्रस्तुत करना अप्रासंगिक नहीं होगा, क्योंकि जिस कवि ने अपनी परिपक्व बुद्धि से प्रस्तुत महाकाव्य की रचना की है उस के विषय में ज्ञान प्राप्त करना अनिवार्य है, इसलिये ग्रन्थकार के बारे में संक्षिप्त विवेचन प्रस्तुत है ।

ग्रन्थकार का परिचय -

संस्कृत साहित्य के इतिहास में यह परम्परा रही है कि बड़े-बड़े ग्रन्थों की रचना करने वाले संस्कृत विद्वानों ने अपने बारे में कहीं कोई उल्लेख नहीं किया है । जिस से उन के जन्म स्थान और जन्म समय को ज्ञात करने के लिये अन्य ग्रन्थों का तथा तत्कालीक साहित्य का आश्रय लेना पड़ता है । उन्हीं संस्कृत विद्वानों की श्रेणी में नानकचन्द्रोदय महाकाव्य के रचयिता देवराजशर्मा भी आते हैं । उन्होंने भी महाकाव्य में अपने बारे में कोई संकेत नहीं दिया है । निम्नलिखित तथ्यों द्वारा हम उन का जन्म समय निर्धारण करते हैं ।

डा॰ वर्णेकर महोदय ने अपने संस्कृत साहित्य के इतिहास में नानक चन्द्रोदय महाकाव्य के ग्रन्थकार देवराज, गङ्गाराम दो लेखक उल्लिखित[40] किये हैं । डा॰ वर्णेकर के अतिरिक्त संस्कृत साहित्य में कहीं भी इस महाकाव्य के विषय में उल्लेख उपलब्ध नहीं होता है । इस महाकाव्य में इक्कीस प्रस्ताव हैं, जिन में उन्नीसवें प्रस्ताव तक गुरूनानकदेव के जीवन का ही वर्णन है । अन्य दो प्रस्तावों में नानक के पश्चात होने वाले अन्य नौ गुरूओं अङ्गदादि का उल्लेख किया गया है । वाराणसी से प्रकाशित ग्रन्थ की भूमिका से ज्ञात होता है कि सन् 1666 ई॰ से लेकर 1708 ईस्वी तक गुरू गोविन्द सिंह सिक्खों के दसवें गुरु रहे । औरंगजेब का पुत्र बहादुरशाह गुरु गोबिन्दसिंह का परम भक्त था । उस का पिता इस का विरोध करता था, परन्तु बहादुरशाह गुरु गोबिन्द सिंह का आदर करता रहा । उसी समय नानक के अन्यतम शिष्य द्वारकादास जो उदासी सम्प्रदाय के अनुयायी हुए, जो नागपुर में निवास करते रहे व

40॰ अर्वाचीन संस्कृत साहित्य - श्रीधर भास्कर वर्णेकर, पृ॰47,

लम्बी आयु 250 वर्ष तक जीवित रहे । वह ही गुरु गोबिन्दसिंह को केश आदि प्रदान करते हैं । द्वारकादास ही परम्परा से प्राप्त गुरूनानक की कथा को अपने शिष्यों में, अन्यतम गंगा राम और देवराज शर्मा को सुनाते हैं ।

कुछ समय पश्चात् एक बार राजा "भागमल्ल" गुरु नानक की कथा सुनाने के लिये गंगाराम को कहते हैं । वह गुरु द्वारा श्रवण की हुई नानक के जन्म से लेकर मृत्यु तक की कथा उन्नीस प्रस्ताव में राजा को सुनाता है । राजा यह सुन कर अन्य गुरु पद को प्राप्त होने वाले अङ्गदादि के बारे में जिज्ञासा रखते हैं । जिस इच्छा को गंगा राम के गुरु भ्राता "देवराज शर्मा" दो प्रस्तावों (बीस और इक्कीस) में सुनाते हैं । इस के पश्चात् पूर्ण हुई इस कथा को देवराज शर्मा संस्कृत वाणी में महाकाव्य का रूप देते हैं ।

1939 विक्रमाब्द में "हरिप्रसाद" लेखक द्वारा लिखे हुये प्रकृत महाकाव्य जो कि पंजाब विश्वविद्यालय वैदिक शोध संस्थान के पुस्तकालय में सुरक्षित है, में नानक की कथा उन्नीस प्रस्ताव तक वर्णित है[41] । इस महाकाव्य के मङ्गलाचरण श्लोक की टीका में "गंगाराम" ग्रन्थ की निर्विघ्न समाप्ति के लिये प्रार्थना करते हैं । यहाँ यह स्पष्ट होता है कि गुरु नानक की परम्परा से प्राप्त जिस कथा को "गंगाराम" पहले राजा भागमल्ल को सुनाते हैं, उसी कथा को पूर्ण कर "देवराजशर्मा" संस्कृत वाणी द्वारा महाकाव्य के रूप में प्रस्तुत करते हैं । नानक के देहत्याग के पश्चात् "देवराजशर्मा" कथा कहते हैं, इस का उल्लेख बीसवें प्रस्ताव में निम्नलिखित प्रकार से मिलता है -

गङ्गारामस्तमूवे गुरुशरणमतेर्द्वारकादासनाम्नो
वैशालामीश्वरस्य प्रथममकथयं तां कथां प्रश्नतोऽहम् ।।
तत्रासीद् देवराजः परमकवयिता धारणाशक्तिशाली
सत्वां वक्ष्यत्यशेषं यतिपतिचरितं चारु संस्कृतवक्ता[42] ।।

इसी श्लोक में ग्रन्थकार के नामोल्लेख का स्थूलपरिचय प्राप्त होता है ।

---

41. ना.चं. - लाल संग्रह - 1956

42. वही, 20.4

सम्पूर्ण महाकाव्य में अन्यत्र कहीं भी कवि ने अपना परिचय नहीं दिया है । इस प्रकार सिद्ध होता है कि संस्कृत के महाकाव्य के रूप में "देवराज शर्मा" ही लेखक हैं, गंगाराम नहीं ।

देव राज शर्मा बनारस के रहने वाले थे । इक्कीसवें प्रस्ताव के अन्तिम उल्लेख से ज्ञात होता है कि यह शाण्डिल्य गोत्री, त्रिपाठी रघुपति शर्मा के पुत्र थे -

"इति श्री शाण्डिल्यवंशावतंस त्रिपाठीरघुपतिशर्मतनूजदेवराजशर्मनिर्मिते"[43]

इस प्रकार अध्ययन करने से निश्चित होता है कि देवराज शर्मा का समय गुरु गोबिन्द सिंह के समकालिक है । अत: सतारहवीं शताब्दी में उन्होंने इस महाकाव्य की रचना की तब वह उदासी सम्प्रदाय के आचार्य रूप में प्रतिष्ठित थे ।

= = = = = =

---

43. ना·चं· - [illegible], पृ· 580

द्वितीय अध्याय

आदर्शव्यक्तित्व की परिकल्पना

(क) गुरुनानक देव के आदर्श

(ख) गुरुनानक देव की समाजसेवा

(ग) गुरुनानक देव की त्याग एवं साधना

(घ) गुरुनानक देव द्वारा भारतीय संस्कृति का प्रसार

= = = = = =

द्वितीय अध्याय

आदर्श व्यक्तित्व की परिकल्पना

नानक चन्द्रोदय महाकाव्य में देवराज शर्मा ने गुरूनानक देव के जन्म से ले कर अन्त तक के जीवन का वर्णन किया है तथा उन के पश्चात् होने वाले दस गुरुओं का उल्लेख किया है । गुरूनानक को आधार मान कर आदर्श-व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति नानक चन्द्रोदय महाकाव्य में की गई है । धर्म-कर्म, पूजा, उपासना तथा विविध विधानों के आचरण का उल्लेख मिलता है । आदर्श-व्यक्तित्व के रूप में नानक के सन्तोष, दीनता, दान, तप तथा क्षमा आदि गुणों का प्रतिपादन भी उपलब्ध है । देवराजशर्मा जीवन का आदर्श क्या होना चाहिये तथा किस प्रकार का जीवन समाज को अपेक्षित है इस का साक्षात् दिग्दर्शन नानक के जीवन को प्रस्तुत कर बताते हैं । किसी भी समाज के मनुष्यों के आदर्शों के बारे में, उन लोगों में प्रतिष्ठित, मनुष्य विशेष के जीवन को अध्ययन करने से पता चलता है । अत: गुरूनानक देव के सम्पूर्ण आदर्शों का अवलोकन करने से ज्ञात होता है कि तत्कालीन समाज में आदर्श-जीवन-यापन करने वाले व्यक्तियों की मान प्रतिष्ठा थी । इसलिये नानक चन्द्रोदय महाकाव्य के अनुसार प्रतिपादित गुरूनानक देव के आदर्शों का अवलोकन करते हैं ।

गुरू नानक देव के आदर्श -

बाल्यावस्था से ही गुरूनानक में धार्मिक-प्रवृत्ति की प्रधानता थी । आध्यात्मिकता की ओर उन का मन शुरू से ही अधिक था । सांसारिक विषयोपभोगों में उनका वैमनस्य था । वैवाहिक बन्धनमें बन्ध जाने पर भी वह

अपना स्वतन्त्र जीवन व्यतीत करते थे। अन्य प्राणियों के प्रति दयाभावना, दानशीलता तथा सभी धर्मों का सम्मान इत्यादि उन के जीवन के प्रमुख थे। माता-पिता तथा अपने से बड़ों की आज्ञा का पालन करना उनके जीवन का प्रमुख आदर्श था। इस का संकेत तब मिलता है जब पिता गौयें चराने के लिये उन्हें आज्ञा देते हैं तो उनकी आज्ञा को स्वीकार कर नानक वन को चले जाते हैं -

गोचारणाय निर्दिदेश पिता सुतं स्व-
माज्ञां स तामुरसिकृत्य ययौ वनाय[1] ।।

पिता की ही आज्ञा का पालन कर नानक बालसिन्धु के साथ पिता के निर्देशानुसार व्यापार सम्बन्धी कार्य करने के लिये चल देते हैं[2]। जिस प्रकार पिता की आज्ञा का पालन करना हमारे धर्मशास्त्रों ने बताया है कि "पितृ देवोभव, मातृ देवो भव[3]।" इस का पालन आदर्श पुत्र के रूप में नानक करते हैं।

अपने से बड़ों का सम्मान करने का उपदेश सभी धर्म-ग्रन्थ तथा विद्वान् लोग देते हैं, जो सम्मान सर्वप्रथम भक्ति से विनय-युक्त हो प्रणाम करने से दिया जाता है अन्य औपचारिकतायें पश्चात् की जाती हैं। इसी आदर्श-गुण से युक्त नानक का जीवन दिखाई देता है। जब नानक जंगल में गौयें चराते समय सो जाते हैं तो राजा बोलारराय वहाँ पहुँचते हैं। उस समय वह उठकर सामने स्थित राजा को देखकर नमस्कार करते हैं। इस से प्रभावित हो राजा अश्व से नीचे उतर कर प्रसन्नता से उसे छाती से लगा लेते हैं[4]। इस प्रकार बचपन से ही अन्य लोगों को सुन्दर लगने वाला जीवन नानक जी में दिखाई देता है। विनम्रता से युक्त व्यवहार की सभी प्रशंसा करते हैं तथा दूसरे लोगों के साथ वार्तालाप विनय से युक्त ही होना चाहिये। नानक विनय से झुक कर

---

1. ना॰चं॰ 2॰107
2. एवमादिशदमुं पिता ततो नौकिः प्रचलितो मया सह ।। -ना॰चं॰ 3॰6
3. तैत्ति॰उप॰, 1॰11॰2
4. सम्भ्रान्त उत्थाय नृपं निरीक्ष्य ननाम तं नानकचन्द्रवर्मा ।
   नृपोवरूढ़ सहसा·····हृदा सादरमालिलिङ्ग ।। - ना॰चं॰2॰117
   एवं द्र॰ 5॰158

राजा "बोलार राय" को कहते हैं कि मैं आपके पास ही रह रहा हूँ, इस लिये आप द्वारा ही मेरा पालन हो रहा है[5]। अपने पिता कालवर्मा उनकी दानशीलता तथा अपव्यय के व्यवहार से दु:खी हो कर जब घर से निकाल भी देते हैं तो भी नानक उनकी निन्दा नहीं करते हैं[6]। इस प्रकार विनयशीलता तथा माता-पिता के प्रति सद्भावना नानक जी के आदर्श-जीवन को प्रकट करती है।

गुरू नानक को बहिन नानकी शुरू से ही ईश्वर का स्वरूप मानती थीं। जब नानक बहिन के घर जाता है तो वह बड़ी होने के कारण उस के पाँव छूना चाहता है परन्तु वहाँ विपरीत नानकी भाई के चरण छूती है। उस समय नानक आदर्श-जीवन से परिचित तथा सामाजिक मर्यादा को ध्यान में रखते हुये कहते हैं कि आप मेरे से ज्येष्ठ हो तो मेरे पैरों पर प्रणाम कर विपरीत आचरण क्यों करती हो। यह ठीक नहीं है[7]। उस समय बहिन भले उसे भगवान् का अंश कहती है तथा अपना नमस्कार करना उचित बताती है परन्तु नानक अपने समाज में प्रचलित आदर्श जीवन का अनुसरण ही करना चाहते हैं। इसी प्रकार बहनोई के चरण-ग्रहण करने जब नानक लगते हैं तो जयराम वर्मा भी नानक को देवता कह कर ऐसा करने से निवारित करते हैं[8]। परन्तु नानक हर स्थान पर शास्त्रों द्वारा निर्दिष्ट सम्बन्धों का परिपालन उसी प्रकार करते हुये दिखाई देते हैं उन के अन्दर अपनी सिद्धि अथवा ईश्वर-अंशता की झलक ज़रा सी भी प्रतीत नहीं होती है। एक सामान्य-मनुष्य की तरह ~~xxx~~ समाज में आदर्श-जीवन यापन करते हैं।

जीवन में दान करना अत्यन्त आवश्यक होता है। यथाशक्ति प्रत्येक मनुष्य को दान करना चाहिये। नानक जी भी अपने अधिकार में आने वाली

---

5. नानको····विनयावनतं नृपम् ।
   तवैवास्मि गृहे····त्वद्वाहु परिपालित: ।। - ना·चं· 3·55
6. शस्ति दुर्नयमालोक्य पिता नास्ति क्रमो मम् । - वही, 3·56
7. ज्येष्ठासि किं मे पदम स्पृशस्त्वं न योग्यमेतत्कथितेति तेन ।
   साश्रूणि मुंचत्यवदत्कथं चित्त्वयीश्वरांशे मम् किं गुरुत्वम् ।।
   - ना·चं· 3·96 एवं द्र· 3·95
8. भगिनीपते: स चरणग्रहणाय·····नरो न सुरोऽसि ।। - ना·चं·3·100

वस्तुओं का दान दिल खोल कर करते थे। वह ब्राह्मणों को गौयें तथा धन देते हैं। नानक जी की दानशीलता में सुरत्राणपुर में रहने वाले सभी लोग प्रसन्न थे -

पुन: प्रतिश्रुत्य निजाधिकारं, ददौ द्विजेभ्य: स धनानि धेनू: ।
प्रसेदिवानस्य पवित्रकीर्ते:, सर्व: सुरत्राणपुरस्य लोक:[9] ।

इस प्रकार दान करना गुरू नानक-देव के जीवन का आदर्श था। दान तो वह अन्य लोगों को करते हैं परन्तु अपने जीवन में यदि उन्हें कोई प्रलोभन देता है तो उसे वह यह कहते हैं कि मुझे इसकी इच्छा नहीं है। मेरे मस्तक पर विधाता ने जो लिख दिया है उस से अधिक की इच्छा मुझे नहीं है। यह बात नानक तब कहते हैं जब बाबर कहता है कि मैं आप को सुन्दर ग्राम देता हूँ और राज्य दे देता हूँ आप वहाँ आश्रम में चिन्ता रहित होकर रहें, भोजनादि आप को वहीं पहुँच जायेगा[10]। तब नानक भाग्य पर विश्वास रखते हुये उन सुखों का त्याग करते हुये इस प्रकार कहते हैं -

अये गुरूस्तं मम भालपट्टे विलिख्य दत्ता विधिना पुरैव ।
वा भोज्य सम्पन्न ततोऽधिकस्य लिप्साऽस्ति मे भूप भवादृशेभ्य:[11] ।

यहाँ यह भी ज्ञात होता है कि अधिक से अधिक धन प्राप्त करने वालों को नानक श्रेष्ठ नहीं समझते हैं तभी वह "भवादृशेभ्य:" शब्द का प्रयोग करते हैं जिस से उन के स्पष्ट-वक्ता होने का भी ज्ञान होता है।

नानक को अपने शरीर पर दिव्यवस्त्र आदि धारण करने की इच्छा नहीं होती है, वह तो दूसरे लोगों के दु:खों को देखकर दया भावना से युक्त होकर उन के दु:ख को यथा-शक्ति दूर करना चाहते हैं[12]। दूसरों के प्रति दया-भाव रखना आदर्श-जीवन को ही प्रकट करता है। इस प्रकार प्रत्येक क्षेत्र में नानक

---

9. ना॰चं॰ 4॰25
10. त्वं नानक। ग्राममतीवरम्यं·····।
कृताश्रम:·····ददस्व भोज्यं वस वीतचिन्त: ।। - ना॰चं॰ 18॰67
11. ना॰चं॰ 18॰68 एवं द्र॰ 18॰143
12. अनाग्रहस्तस्य निजे शरीरे, न दिव्यवस्त्राभरणादिवांछा ।
परस्य दु:खं विनिवर्तयिष्यन्नसौ यथाशक्ति समुद्यतोऽभूत् ।। - ना॰चं॰4॰26

आदर्श रूप में रहते हैं। "सहजाद"[13] को भी नानक संकट में पड़े हुये देख कर दुष्ट से मुक्त कराते हैं, क्योंकि अन्य दुष्ट-प्रकृति के लोगों के दोषों को जानते-जानते सज्जन लोग स्वभाव से ही आर्द्र स्वभाव के बन गये होते हैं -

तं दुर्जनं सज्जननामधेयं, सभाजयामास यतिः स पूर्वम् ।
दोषान्विदन्तोऽप्यखिलान् खलानां, सन्तः प्रकृत्येव किलाद्रियन्ते[14] ।।

इस प्रका नानक जी के आदर्शों तथा उन के नम्र स्वभाव को देखते हुये सज्जन-लोगों के समान उन की उपमा की गई है।जैसे श्रेष्ठ-लोग समाज का उपकार करने के लिये होते हैं, वैसे ही नानक भी अपने गुणों द्वारा समाज को लाभान्वित करते हैं ।

साधु लोगों के प्रति वह अत्यधिक प्रीति रखते हैं । अत्यधिक धन अपने पास होने तथा हर समय सेवकों द्वारा सेवित होने पर भी, वह कभी अपने आप को बड़ा नहीं मानते हैं अपितु सज्जन लोगों का आदर-सत्कार करने में अपने समय को बिताना कर्तव्य मानते हैं[15] । इस प्रकार प्रत्येक समाज तथा राष्ट्र को उन्नत करने वाले तथा दिशा प्रदान करने वाले पूजनीय सज्जनों के प्रति नानक की पूर्ण सत्कार की भावना अवलोकित होती है । अपने साथ रहने वाले साथियों और पड़ोसियों का कुशल-क्षेम जानना प्रत्येक नागरिक का परम-कर्तव्य होता है । क्योंकि एक-दूसरे के सुख-दुःख में शामिल होना ही वास्तविक-जीवन होता है । अन्यथा पशु-पक्षी भी संसार में आ कर देह-त्याग करते हैं । जब "काल वर्मा" नानक के पास जाते हैं, तब वह बहिन नानकी के पास रहते हैं तो नानक प्रणाम कर, बार बार माता की कुशल क्षेम पूछ कर, अपने साथियों तथा पड़ोसियों के बारे में कुशलक्षेम पूछते हैं -

---

13. ना॰चं॰ 16·81

14. वही, 16·83

15. महात्मभिर्भूरि धनैरजस्रं, स चाटुकारैरुपचर्यमाणः ।
कदापि न स्वं बहु मन्यते स्म, प्रीतिं परां साधुजने बभार ।।
– ना॰चं॰ 4·27

कालं समागतमसौ प्रणनाम मूर्ध्ना
मूर्ध्न्यजिघ्रदयमेतमथालिलिङ्ग ।।
मातुर्मुहुर्मुहरपृच्छदनामयं च
श्री नानकः सवयसां प्रतिवेशिनां च[16] ।।

यहाँ पर साथ रहने वाले लोगों के प्रति प्यार तथा अपनत्व-भाव दिखाई देता है कि दूर रहने पर भी अपने सम्बन्धियों के बारे में जानकारी प्राप्त करना अपना कर्त्तव्य समझा जाता है, ताकि किसी आपत्ति में यदि वे हों, तो उनकी आवश्यक सहायता की जा सके ।

सत्य-वक्ता होना सब से बड़ा गुण माना गया है । जो व्यक्ति सत्य-पालन करता है तथा सत्य बोलता है, समाज में उस का सत्कार होता है । असत्यभाषण करने वाले की सभी ओर निन्दा होती है । नानक का सत्य में ही विश्वास था इसीलिये जब पिता आय के बारे में उन्हें पूछते हैं तो बिना किसी संकोच के वह कहते हैं कि जो एकत्रित किया था वह व्यय हो गया है[17] । इसी कारण वह अपने पिता जी के क्रोध का पात्र भी बनते हैं परन्तु सत्य बोलना वह अपना धर्म समझते हैं ।

मनुष्य के स्वभाव में सहनशीलता का होना अनिवार्य होता है । जिस में सहनशीलता नहीं होती है, वह समाज में आदृत नहीं होता है । गुरू नानक देव जी के अन्दर सहनशीलता परिपक्व थी । जब नानक को चन्दोराणी मोह से विविध प्रकार के कटु वचन कहती है तो नानक शान्तचित्त हो उन का उत्तर देते हैं, क्योंकि ज्ञानी पुरुष पुष्पवृष्टि अथवा पत्थरों के प्रहार दोनों अवस्थाओं में समान रहते हैं -

तां नानकः शान्तमना बभाषे, मोहेन क्षीणां समालपन्तीम् ।
लोष्टैर्हतो वा कुसुमैर्वृतो वा, ज्ञानी विकारं न मनागुपैति[18] ।।

अतः विकार रहित हो जीवन यापन करने वाले ज्ञानवान् महापुरुषों की सहनशीलता

---

16. ना॰चं॰ 4॰33
17. पुत्रोऽब्रूत यदर्जितं समागमत्तत्सर्वमेव व्ययं । - ना॰चं॰ 4॰35
18. ना॰चं॰ 6॰130

स्वत: सिद्ध हो जाती है । नानक देव जी तो ज्ञान के निधि थे इसी लिये उन की उपमा ज्ञानी-पुरुष से होती है । "मलिक" के क्रोध होने पर भी नानक उस की क्रोधयुक्त बातों को शान्त हो सहन करते हैं[19] । परन्तु "मलिक" को इस बात का आभास करा देते हैं कि तेरा अर्जित धन-दौलत पाप कर्मों से उत्पन्न है, परन्तु गरीब की जो शुष्क रोटी है वह खून-पसीने द्वारा संचित धन से बनाई गई होती है । इस के प्रत्यक्षीकरण हेतु नानक एक हाथ में सूखी तथा दूसरे में "मलिक" के यहां की रोटी लेते हैं तथा शुष्क रोटी में से दूध और दूसरी से रक्त प्रवाहित करते हैं[20] । इस प्रकार समाज में रहने वाले उच्च वर्ग के प्रति, जो गरीबों का खून चूस कर ऐश्वर्य का उपभोग करते हैं, उन के कलंकित कार्यों का ज्ञान उन्हें कराते हैं ।

अपने जीवन को नानक जी ने कनिष्ट तपस्या के द्वारा व्यतीत किया । जंगल में वन्य-फलों का भक्षण कर के वे निर्वाह करते हैं[21] । जिस से उन के सादा एवं कठोर जीवन का पता चलता है । अभ्यागत का कुशलक्षेम पूछ कर सत्कार वह जंगल में रहते हुये भी करते हैं[22] । अतिथि कैसा भी हो यथा-शक्ति उस का सम्मान समाज के आदर्श को द्योतित करता है ।

गुरू नानक देव सम्पूर्ण समृद्धि का त्याग कर असाध्य तपस्या को साधित करना ही धर्म मानते हैं । वे जो नीति में दक्ष राज्य इत्यादि के लिये यत्न करते हैं, उन के प्रयास को अर्थहीन स्वीकार करते हैं । ऐसा कार्य करना उन की कुबुद्धि का ही योग कहते हैं[23] । इस प्रकार सकल-विश्व से आसक्तिहीन हो दृढ़ संकल्प धारण कर भिक्षा आदि की वृत्ति द्वारा ही अपने जीवन का उपभोग

---

19. ना·चं· 7·145, 146

20. ना·चं· 7·148-149

21. निर्गत्य नानको गेहात् वनेषु व्यचद्वशी, वृत्तिं वन्यफलै: कुर्वन्निनिश्चित निकेतन: । - ना·चं· 7·2 एवं द्र· 7·132

22. कुशल्यसि कुत: सौम्य स्मृतमात्र: समागत: । - ना·चं· 7·12

23. त्यक्त्वा स्वतोऽहं सकलां समृद्धिं, भिक्षां चरिष्यामि कुबुद्धियोगात् ।
ये नीतिमन्तो निपुणा यतन्ते, राज्याय ते भैक्ष-भुज: किमर्थम् ।।
- ना·चं· 6·137

ईश्वर प्राप्ति के निमित्त करते हैं। "मोहवश किसी से भी कोई सम्बन्ध स्वीकार नहीं करने का उपदेश देते हैं"[24]। मर्दन द्वारा नानकी से धन लेना भी उन्हें मान्य नहीं होता है। उसे लौटाने के लिये कहते हैं[25]। अत: धनलोलुपता का अभाव ही दिखाई देता है। जिस में फँस कर मनुष्य भावत्प्राप्ति से वंचित रह जाता है। सांसारिक बन्धन में बन्ध कर मनुष्य मोक्षरूपी सुख को प्राप्त नहीं हो सकता है, "जिस प्रकार जाल में फँसे पक्षी निकट होने पर भी परस्पर मिलन के सौख्य को प्राप्त नहीं करते हैं। मन में अटल-निश्चय कर जीवन को साधन मानते हुये ही उपर्युक्त विषय निम्न प्रकार से उपदिष्ट किया है -

अथावदन्नानक एतदेवं, वद्धा खगा ये खलु वागुरायाम्।
ते सन्निधिस्था अपि नाप्नुवन्ति, परस्पराभ्यागम-भावि-सौख्यम्[26] ।।

गुरू-शिष्य के सम्बन्ध का आदर्श रूप में अवलोकन करना नानक जी के जीवन से उपलब्ध होता है। जब मर्दन अपने घर की कुशल-क्षेम जानने के लिये गुरू से भ्रमण करते समय तलवण्डी की दूरी पूछता है, तो उस के मन के भाव को जानकर नानकदेव कहते हैं कि तुझे घर ले चलता हूँ[27]। इस प्रकार शिष्य की मन:-कामना पूर्ण कर आदर्श गुरू की भावना प्रकट होती है। वे अपने हाथों द्वारा मर्दन के परलोक गमन करने पर, विधि-विधान द्वारा अन्तिम संस्कार करने की प्रतिज्ञा करते हैं। उसे कहते हैं कि तुम मोक्ष को अवश्य प्राप्त करोगे तथा मेरा अनुसरण करने वाले अर्थात् गुरू रूप में मुझे मानने वाले आप की तपस्या निष्फल नहीं होगी[28]। अत: गुरू-शिष्य के आदर्श-स्वरूप का दिग्दर्शन समाज को कराया है, जिस से ऐसा ही भाव सभी में जाग्रत हो सके, तथा यह परम्परा पवित्र आदर्श रूप में चलती रहे।

गुरू नानक देव के मन में सभी धर्मों के प्रति समान की भावना देखी जाती है। मन्दिर, हो, गुरूद्वारा हो या मस्जिद वह सभी एक-दृष्टि से देखते

---

24. एको जातो मृत्यचैक: सम्बन्धा: केन कस्य क:। - ना.चं. 6.117
25. ना.चं. 7.110
26. वही, 4.14
27. वही, 16.2
28. वही, 16.8

हुये उनके प्रति श्रद्धा-भाव रखते हैं। सभी धर्मों तथा जातियों के लोगों को भी एकता की नज़र से देखते हैं। किसी से भी भेद-भाव करना अथवा अस्पृश्यता का दोष उन में दिखाई नहीं देता है। जिस से आदर्श-व्यक्तित्व का गौरव प्रतीत होता है। यवन राजा के मन्त्री अपने धर्म के प्रति नानक की आस्था देख कर कहते हैं आप आर्यों और म्लेच्छों के देवता में भेद नहीं मानते हैं इसलिये हमारे साथ यवन देवता की वन्दना करो, तब नानक उन के साथ जाते हैं और उन के देवता को नमस्कार करते हैं। इस प्रकार म्लेच्छ उन के शिष्य बन जाते हैं। धनखानादि के साथ निवास करने के फल-स्वरूप समाज में प्रचारित होता है कि नानक -म्लेच्छ" बन गये हैं[29], परन्तु नानक इस की चिन्ता नहीं करते हैं, वह तो जाति-भेद को स्वीकार ही नहीं करते हैं -

तेनोक्तमेष आर्याया मत्सेवामकरोत्पराम्।
मयोक्तं म्लेच्छजातीय: किमभूदीदृशो यदि ?।[30]

जिस मनुष्य का जीवन सत्यता से युक्त तथा धर्म के अनुसार क्रियाशील होता है उस में दैवशक्ति का आविर्भाव होता है। इसी प्रकार के आदर्श से परिपूर्ण नानक का चरित्र दिखाई देता है। यवनों द्वारा बन्दी बना लिये जाने पर जब नानक को चक्की चलाने का कठोर कार्य दिया जाता है तो नानक की "चक्की" स्वयं चलती है, जो कि अलौकिक घटना होती है[31]। परन्तु यह सत्य है कि आज भी समाज के लोग गुरू-नानक देव के आदर्शों को मान कर चलेंतो वे शक्तिवान् होंगे। देश में जो भेद-भाव के कारण हिंसा की प्रवृत्ति फैली है, उस का भी विनाश हो जायेगा। क्योंकि नानक के जीवन से हमें संगठित रह कर आपस में भ्रातृत्व-सम्बन्ध स्थापित करने का सन्देश मिलता है।

---

29. ना॰चं॰ 6॰87, 89-91 पर्यन्त

30. वही, 17॰3 एवं द्र॰ 17॰4

31. नानकस्य घरट्टस्तु स्वयं ब्रभ्राम शक्तित:।
गोधूमस्य तत: सूक्ष्मा समिता गमिता क्षितिम्॥
- ना॰चं॰ 17॰145

गुरू नानक देव की समाज सेवा -

हिन्दु धर्म से उत्पन्न होने वाला अन्तिम धर्म सिक्ख धर्म है । जिस के प्रवर्त्तक गुरू नानक देव हुये हैं । सिक्ख धर्म के माध्यम से भारतवर्ष में ही नहीं, अपितु सम्पूर्ण विश्व में नानक ने समाज सेवा की है । इन का जन्म तलवंडी नगर में पिता "काल वर्मा" के घर हुआ । जिस नगरी को आज कल "ननकाना साहब" के नाम से जाना जाता है । जो पाकिस्तान में है । देवराजशर्मा ने अपनी काव्य प्रतिभा द्वारा नानक चन्द्रोदय महाकाव्य में नानकदेव के जीवन का चित्रण प्रस्तुत किया है । उन के आदर्शों और समाज सेवा का निरूपण किया है । अत: उन के द्वारा वर्णित गुरूनानक देव की समाज सेवा का जो स्वरूप प्राप्त होता है, उस का उल्लेख अधो निर्दिष्ट है ।

गुरू नानक देव ने लोगों की सहायता कर दया, दान और सदुपदेशों द्वारा तत्कालीन समाज की सेवा की है । संसाररूपी भवसागर से पार होने के लिये उन्होंने गुरू और शास्त्रों पर निष्ठा रखने का उपदेश दिया है[32] । जिस से सांसारिक मोह-माया के जाल में मनुष्य नहीं फंसते हैं । मन को संयमित करने का उपदेश देते हुये कहते हैं कि जिस प्रकार राजा मन्त्रियों के अधीन होता है और पुरूष स्त्री के वश में होता है, इन से स्वतन्त्र नहीं हो सकता है, उसी प्रकार प्राणी अन्त:करण के तादात्म्य के कारण विडम्बना को प्राप्त होता है -

अमात्यवश्यो राजेव स्त्रीवश्यश्च पुमानिव ।
अन्त:करणतादात्म्याज्जीवो याति विडम्बनाम्[33] ।।

पिता के क्रोधित होने पर भी जब नानक पांच वर्ष के थे, तभी से भिक्षुक लोगों को दान कर सेवा करते थे[34] । दीन दु:खी समाज के प्रति उन की दया-भावना बाल्यावस्था से ही दिखाई देती है । दान देने तथा

---

32. विरज्य मानो विषयेषु सम्यग्.....।
शमादि सेवी गुरूशास्त्रनिष्ठ:, तरेद् भवाब्धिं भावत्सहाय: ।।
- ना.चं.1.66

33. ना.चं. 1.87

34. वही, 2.102

परोपकार की रूचि को देख कर समाज में निवास करने वाले याचक लोग उन के पास आते थे तथा कभी भी खाली-हाथ लौट कर नहीं जाते थे[35] । नानक की परोपकार तथा दूसरों के मर्मों से दु:खी होने की भावना देख कर उल्लेख किया गया है कि दुर्जन लोग तो दूसरों को आघात करने के लिये ही जीते हैं परन्तु सज्जन लोग तो सभी का कल्याण करने की कामना करते-करते देह त्याग कर देते हैं-

जीवन्ति हन्त पिशुना: परमर्मघाता:
सन्त: परोपकृतिसक्तधियो म्रियन्ते[36] ।।

नानक साध्वी पत्नी, पुत्रों तथा वृद्ध माता-पिता का त्याग कर दूर जंगल में चले जाते हैं । उन के प्रति प्रणय बुद्धि रखने वाले लोग उस स्थिति को देख कर शोक करते हैं[37] । परिवार में रहते हुये वे सभी का कल्याण करते हैं, परिवार से बाहर जाने पर भी अखिल-समाज के प्रति सेवा भावना से कार्य करते हैं । केवल मात्र अपने उदर-पूर्ति के लिये कार्य करना तथा अपने परिवार का भरण-पोषण करना ही अपना धर्म नहीं मानते हैं[38] । बल्कि सम्पूर्ण समाज के लिये सर्वस्व त्याग करना अपना कर्तव्य समझते हैं । सम्पूर्ण पृथ्वी को अपना समझ कर स्वतन्त्र रूप से भ्रमण करते हुये समाज सेवा करते हैं[39] ।

सकल-जगत् को ईश्वर सम्बन्धी उपदेश वह देते हैं । लोग भी उन के बिना प्रभु सत्ता जानने में अपने आप को असमर्थ समझते हैं -

सोऽब्रवीत् किन्न जानीम: पामरा: परमेश्वरम् ।
विना त्वदुपदेशेन देशिकेंद्र । दयानिधे[40] ।।

---

35. न याचकोऽजायत कोऽपि मोघ: । - ना॰चं॰ 3॰4 एवं द्र॰ 4॰4

36. ना॰चं॰ 6॰40

37. साध्वीं विहाय वनितां तनयं शिशुं च, वृद्धौ प्रसह्य पितरौ वत दूर संस्थौ ।
अस्मान्भवत्प्रणयबद्धधिय: किमेवं, हा नानक त्वमगम: परिहीणहार्द: ।।
- ना॰चं॰ 6॰43 एवं द्र॰ 44, 56

38. कुटुम्बपोषे विधृतप्रतिज्ञा, ग्लायन्ति पोषाय निजोदरस्य ।।
- वही, 6॰135

39. उक्ते नानक्यो गिनेति ....पृथ्वीतावदियं तवैव सकला यत्रेच्छ तत्र व्रज ।।
- वही, 7॰112

40. ना॰चं॰ 7॰115 एवं द्र॰ 7॰140

समाज में विद्यमान अत्याचारी लोगों की यातनाओं से मुक्ति दिलाना भी उन की सेवा-भावना ही थी । वह यवन शासक द्वारा बान्धे गये सिद्ध-संघों को मुक्त कराते हैं । उसे कहते हैं कि यदि तू ऐसा नहीं करता है तो अपनी दुष्टता का परिणाम अभी देख प्राप्त करेगा । म्लेच्छ राजा भयभीत हो सिद्धों को मुक्त कर देता है । इस प्रकार रोग-ग्रस्त यवनाधिपति मलिक के पुत्र भी निरोग हो जाते हैं ।जो कि सिद्धों को बंदी बनाने के कारण ही रोगग्रस्त थे तथा नानक के वचन का पालन करने पर वे स्वस्थ हो जाते हैं । मलिक भी नानक का अनुयायी बन जाता है और नानक की कीर्ति सम्पूर्ण-समाज में फैल जाती है -

मुक्ता: सिद्धा म्लेच्छ राजेन सर्वे, नत्वा भूयो नानक: प्रीणितश्च ।
सूनोस्तस्यारोग्यमासीदकस्मा-ज्जाता-कीर्तिर्योगिनोऽस्यावदाता[41] ।।

दयालु नानक के दर्शन मात्र करने से "बोलाररराय" जैसे राजा मोक्ष प्राप्त करना चाहते हैं, उनको भगवान् का स्वरूप मानते हैं । जिस प्रकार विष्णु भगवान् सभी के ऊपर दयावान् रहते हैं, तथा मुक्ति प्रदान करते हैं, उसी प्रकार नानक के दर्शन मात्र से वृद्धावस्था को प्राप्त राजा मोक्ष की अभिलाषा करते हैं[42] । नानक वहाँ पहुँच कर उन को उपदेशामृत देते हैं कि मनुष्य जन्म प्राप्त कर, भवसागररूपी रोग से मुक्त होने के लिये आयास करना चाहिये -

तमभाषत नानकस्तपस्वी·····।
मनुजस्य जनु: प्रपद्य विद्वान्, भव रोगस्य चिकित्सिते यतेत[43] ।।

जो मनुष्य हितकारी बात का पालन नहीं करता है उसे नानक कहते हैं कि वह स्वकर्म के द्वारा उत्पन्न फल का उपभोग अवश्य करता है[44] । अर्थात् यहाँ समाज में रहने वाले मनुष्यों के लिये सज्जन लोगों की श्रेयस्कर बातों का अनुसरण करने का उपदेश दिया गया है ।

41· ना·चं· 7·154 एवं द्र· 153

42· ग्राहेण हस्तीव दुरत्ययेन, ग्रस्तोऽस्मि कालेन जरापरीत: ।
इच्छामि मोक्षं तवदर्शनेन, विष्णोरिव स्वेषु दृढं दयालो: ।।
- वही, 8·12 एवं द्र·11,42,107

43· वही, 8·108

44· न मन्यते यो हितमुक्तमाप्तै:, स्वकर्मण: पाकमसौ हि भुंक्ताम् ।।
-वही, 8·122

"क्रोड़" नामक राक्षस से मर्दन की रक्षा करते हैं। निशाचर को उपदेश देते हैं कि जगत् का स्वामी जो ईश्वर है उस से डर कर, अनिन्दनीय कर्म नहीं करना चाहिये। वह राक्षस भी नानक को हाथ जोड़ कर प्रणाम करता है तथा अपने अपराध को क्षमा करने की याचना करता है[45]। इस प्रकार गुरू नानक देव समाज पर जुल्म करने वाले दुष्टों से अपने अनुचरों की रक्षा तो करते ही हैं, साथ ही सदा के लिये उन दैत्यों को भी कुकर्मों को करने से निवारित कर देते हैं। जिस से समाज में रहने वाले लोगों का उपकार होता है। क्रोड़ राक्षस जब सत्पथ पर आता है तो उसे सात्विक भोजन करने और कराने की प्रेरणा देते हुये नानक कहते हैं कि, अतिथि रूप में प्राप्त हम सब को आनन्ददायक मधुर-फल भक्षण करने के लिये दो। राक्षस उसी प्रकार करता है[46]। जिस से सदुपदेश द्वारा उचित मार्ग का प्रदर्शन कर दैत्य का कल्याण कर देते हैं।

कलियुग में होने वाले विविध वाद-विवादों के बारे में समाज को सचेत करते हुये कहते हैं किकलियुग में तत्त्व के अज्ञाता होने के कारण न्याय के मार्ग से भ्रष्ट हो कर संसार के कार्य होते हैं[47]। अत: उपदेश द्वारा न्याय का रास्ता अपनाने और अतत्त्वविद् का अनुसरण न करने के लिये कहते हैं।

समाज में रहने वाले लोगों के प्रश्नों के उत्तर देकर उनकी शंकाओं का उन्मूलन कर के भी समाज की सेवा करते हैं। "संङ्गर" जब आस्तिक और नास्तिक रीति से प्रश्न करता है तो उत्तर प्राप्त करता है। वह प्रश्न करता है कि काम को कैसे समाप्त किया जा सकता है। क्रोध-लोभ-अहंकार आदि से कैसे मुक्ति प्राप्त की जा सकती है। काल को कौन धोखा देता है। इन प्रश्नों

---

45. किं रे क्रोड ! कुबुद्धे ! मनुष्यमांसासनव्यसनम् ।
अधुनैधितं तवेदं, विभेषि न स्वामिनो जगत् ।। - ना॰चं॰8॰128 एवं द्र॰132

46. मधुराणि फलान्याशु कन्दल्यानन्ददायकम् ।
प्रत्येकमर्पयामास स समानीय कौणप: ।। - ना॰चं॰ 8॰133

47. आचष्ट योगी·····कलौ प्रवादा विविधा भवन्ति ।
अतत्त्वविद्····न्यायादृतं गच्छति सर्वलोक: ।। - वही, 10॰42

का उत्तर क्रमशः शम, दम द्वारा काम की समाप्ति, क्षमा सन्तोष, विवेक द्वारा क्रोधादि से मुक्ति और ईश्वर को नहीं मानने वाली आत्मा द्वारा काल को धोखा देना नानक, देते हैं[48]। इन उत्तरों द्वारा सम्पूर्ण-समाज का उद्धार होता है। जिस के कारण आज भी समाज में उन को स्मरण किया जाता है।

"सज्जन" नामक चोर को भी उपदेश द्वारा नानक कल्याण करते हैं। उपदेशामृत के प्रभाव से लज्जित हो वह उन के चरणों पर गिरता है तथा अपने नीच कर्मों के लिये क्षमा याचना करता है[49]। दीन लोगों के ऊपर दया करने वाले नानक उस को कहते हैं कि "सहजाद" आज से तेरा गुरू है इस लिये धन, वस्त्रों आदि के द्वारा पूजा करो[50]। सम्पूर्ण समाज को यहाँ शिक्षा देते हैं कि दीन दुखियों से प्रेम और गुरूजनों का सत्कार करना चाहिये। इस प्रकार सत्पथ का प्रदर्शन कर समाज की सेवा करते हैं।

एक बार "लाल" नानक से पूछता है कि चार विश्व-विख्यात आश्रम सुने जाते हैं। परन्तु उदासी आश्रम कौन है[51]? गुरू नानक देव उदासी सम्प्रदाय को मानते थे, इसीलिये वह जिज्ञासु की भावना से प्रश्न करता है। तब वे कहते हैं कि मनुष्य को फल खाने से सम्बन्ध रखना चाहिये, वृक्षों की गणना करने के साथ नहीं -

गुरुणा नानकेनोक्तं शृणु लाल महामते ?
फलानां भक्षणार्थो वृक्षाणां गणनेन किम्[52] ।।

यहाँ इस बात का ज्ञान होता है कि सम्प्रदाय कोई भी हो बिना भेद-भाव और शङ्का के सद्विचारों एवं आचरणों को ग्रहण करना चाहिये। नानक कहते हैं कि

---

48. ना॰चं॰ 12·5-8

49. पादयोः पतितस्तस्य गिरं श्रुत्वेति सज्जनः।
उवाच नीचकर्माहं शरणं त्वां समाश्रितः ।। - ना॰चं॰ 16·97

50. स वत्सलो दीनजनेषु नानकः·····।
गुरूस्तवायं सहजादसंज्ञको, धनैरमुं वस्त्रवरैश्चपूजय ।। - वही, 16·99

51. चत्वारः आश्रमाः ख्याताः उदासी तु क आश्रमः। - वही, 17·70

52. ना॰चं॰ 17·71

सभी अवस्थाओं तथा प्रयासों द्वारा ज्ञान अर्जित करना मुख्य ध्येय बनाना चाहिये । "ज्ञानस्य सम्पादनमेव मुख्यं सर्वास्ववस्थास्वखिलैः प्रयत्नैः[53] ।। वेद और पुराणों का अपमान करने वालों को पाखण्डी कहते हैं । उन मूर्खों के मत का आश्रय नहीं लेने का उपदेश देते हैं[54] । इस प्रकार तथ्य का निरूपण कर समाज को बाह्याडम्बरों में संलिप्त न होने का उपदेश करते हैं ।

समाज को उपदेश देते हैं कि जो मनुष्य, प्राणियों पर दया करते हैं, इसी उपकार को चिरस्थायी स्वीकार करते हैं, और ईश्वर को सर्वव्यापक मानते हैं, वे गोविन्द की शरण में जाते हैं[55] । तात्पर्य यह है कि नानक समाज में रहने वाले प्रत्येक प्राणी के साथ दया-भावना से रहते हैं । अन्य लोगों से भी परस्पर इसी व्यवहार की अपेक्षा रखते हैं ।

गुरूनानक देव भगवान् की स्तुति करते हुये कहते हैं कि जो ईश्वर से प्रेम नहीं करते हैं वे नरक में दुःखों को प्राप्त करते हैं । धर्मसंचय, तप और भक्ति से अधिक ईश्वर के नाम को ही यमदूतों से छुटकारा पाने का मार्ग कहते हैं[56] । विभिन्न प्रकार की भावत्स्तुति को श्रवण कर वराहिम और बालासिन्धु गद्गद् हो उठते हैं[57] । इस प्रकार धार्मिक उपदेश दे कर समाज की सेवा आजीवन करते हैं ताकि लोगों में आध्यात्मिकता का ह्रास न हो । ग्रन्थकार इस प्रकार की समाज-सेवा एवं सर्वस्व-त्याग की भावना को देख कर अन्त में उल्लेख करते हैं कि भूमि पर प्रसिद्ध, सत्य मार्ग पर चलने वाले श्री नानक मनुष्य के रूप में देवता ही हुये हैं, जो कि स्मरण-मात्र से विपत्ति-जाल में फँसे हुओं का उद्धार कर देते हैं -

---

53. ना॰चं॰ 17॰72

54. पाषाण्डिनो वेदपुराणबाह्या न तन्मतं धीर उपाश्रयेत् ।। -वही, 17॰80

55. दयां जीवेषु कुर्वन्ति मात्सर्यं च तान् सदा ।
ईशं पश्यन्ति सर्वत्र गोविन्दशरणा जनाः ।। - ना॰चं॰ 18॰123

56. न तपांसि न धर्म संचयो·····।
तव नाम तथापि····यमदूतानपसार्य तारयेत् ।। - वही, 19॰143 एवं द्र॰ 155

57. ना॰चं॰ 19॰157 तः 188 पर्यन्तं

सत्योपयाचनतया प्रथित: पृथिव्यां
श्रीनानको नरवपु: सुर एव साक्षात् ।।
स्मर्तारमुद्धरति स स्म विपत्तिजालाद्
व्यालप्लुपेत्य पतगेश इव प्रपन्नम् ।।[58]

देवराज शर्मा ने नानक के सम्पूर्ण जीवन का निरूपण करते हुये, समाज के प्रति उन के प्रेम और सेवा का सजीव उल्लेख किया है । विविध प्रकार के अलौकिक चरितों द्वारा समाज को जो उपदेश प्रदान किया गया है, उस के विषय में ग्रन्थकार ने कहा है कि जो उन को सुनते अथवा कहते हैं, वे इह लोक तथा परलोक में कल्याण ही प्राप्त करते हैं[59] । अर्थात् मरणोपरान्त भी उन का चरित्र जीवित है, जो समाज की सेवा करता रहेगा ।

गुरू नानक देव की त्याग एवं साधना -

मनुष्य मानता है कि उस के पास जितनी अधिक मात्रा में धन सम्पत्ति होगी उतनी अधिक मात्रा में उसे आनन्दानुभूति प्राप्त होगी, परन्तु नानक का विचार इस से विपरीत प्रतीत होता है । विश्व का वैभव तथा ऐश्वर्य उन के मत में, वह शान्ति प्रदान नहीं कर सकता जो वास्तव में व्यक्ति को अपेक्षित होती है । क्योंकि वैभव सम्पन्न, आचार भ्रष्ट और विकारों से समाहित होता है । नानक को निरासक्त होकर साधना का मार्ग अपनाना श्रेष्ठ प्रतीत होता है । उन की साधना जीवन की सब से बड़ी मन:कामना वैभव का त्याग करने से प्राप्त होती है । बचपन से ही ईश्वर प्राप्ति के लिये प्रयत्नशील नानक का मन सांसारिक सुखों में आसक्त नहीं होता है । मन, इन्द्रिय, शरीर आदि के संयम द्वारा विषयों का परित्याग कर शरीर को कष्ट देकर साधना प्राप्ति का मार्ग आचरण करते हैं । नानक परिवार में निवास करने से ईश्वर प्राप्ति को असम्भव मानते हैं । उस को प्राप्त करने के लिये विचक्षणता की आवश्यकता

---

58. ना॰चं॰ 19॰213

59. एवंविधानि चरितानि महाद्भुतानि नाना चकार किल नानकयोगिवर्य:।
श्रृण्वन्ति तानि कथयन्ति च येऽनुरक्ता, विन्दन्त्यमी इह परत्र च मङ्गलानि।।
– ना॰चं॰ 19॰239

समझते हैं[60]। जिस प्रकार प्रस्तरों के ढेर में मणि का ज्ञान, तथा खान में बालु से आवृत सुवर्ण का आभास नहीं होता है, उसी प्रकार सांसारिक विषयों के बीच फँस कर परम दुर्लभ साधना को प्राप्त नहीं किया जा सकता है। बचपन से ही चिन्ताओं का त्याग कर नानक ध्यान मग्न रहते हैं। गौयें चराने जब वह जाते हैं तो समाधिस्थ हो जाते हैं, उस समय साँप उन की रक्षा करता है[61]। नानक की विरक्ति की भावना देख कर पिता हरिदयालु ज्योतिषी को उपालम्भ देते हैं कि यह आप के ज्योतिष से विपरीत दिशा में जा रहा है[62]। हरिदयालु नानक की त्याग भावना को जानते हुये कहते हैं कि "महाजन" अपना ध्यान न रख कर दूसरों को वाँच्छित फल देते हैं[63]। अपने घर से धनखान के यहाँ लेखक पद पर नियुक्त होने पर भी स्वतन्त्रता से दान करते हैं,[64] क्योंकि वैभव से उन का प्रेम नहीं होता है। त्याग आदि की भावना के फलस्वरूप उन के अन्दर बचपन से ही दिव्य शक्ति रहती है। धनखान द्वारा धन का हिसाब करने पर नानक का धन ही उस के पास शेष निकलता है[65]। जो भगवत्प्राप्ति के लिये प्रयास करता है और उसी में तल्लीन हो जाता है, वह तद्रूप हो जाता है, उसे कोई भी अपमानित नहीं कर सकता है।

विवाहोपरान्त साधना प्राप्ति के लिये संलग्न नानक को रूपवती पत्नी सुलक्षणी भी मोहित नहीं कर सकती है[66]। वह अपनी पतिव्रता पत्नी तथा पुत्रों का परित्याग कर घर से चले जाते हैं[67]। सभी प्रकार के सुखों का उपभोग निरस्त कर जंगल में अकेले निवास करते हुये आनन्दित होते हैं[68]। नानक

---

60. यथा मणिर्विगणे न बुध्यते, खनौ यथा हेम न बालुकाकुलम्।
अयं कुटुम्बेषु तथा न लक्ष्यते, विलक्षणो वेत्स्यति कश्चिदेव तम्॥
– ना॰चं॰ 2·76

61. वही, 2·114-115 एवं द्र॰ 8·44

62. वही, 3·81

63. वही, 3·83

64. वही, 4·3-4

65. वही, 4·107

66. वही, 6·2

67. वही, 6·43 एवं द्र॰ 6·56

68. वने स एकाकितया ननन्द। – ना॰चं॰6·57

का विचार है कि क्रोध लोभ आदि छः शत्रु वन में नहीं होते हैं, घर में रहने से साधना में रुकावट पैदा करते हैं तथा बिना आराधना के ईश्वर को प्राप्त नहीं किया जा सकता है। जिस का मन पुत्र, कलत्र और वैभव की ओर लोलुपता से आसक्त होता हुआ दौड़ता है वह भी "मुरारि" को पा नहीं सकता है[69]। नानक के मतानुसार लोभरूपी अग्नि से निवृतों को "त्रिलोकी" भी तृप्त नहीं कर सकती है -

सोऽब्रूत लोभोऽग्निरनिर्वृतानां
भुक्त्वा त्रिलोकीमपि वो न तृप्तः[70] ।।

नानकी जब नानक को मनाती है तो वह कहते हैं कि मोह से विलाप मत करो। इस संसार में किस का, किस के साथ सम्बन्ध है[71]? इस प्रकार परिवार के सदस्यों के प्रति भी उन की त्याग की भावना दिखाई देती है। वह तो अपना सम्बन्ध साधना से ही मानते हैं जो बाह्यविषयों का परित्याग करने से प्राप्त होती है। वनों में रह कर वन्य-फलों का उपभोग कर वह जीवन व्यतीत करते हैं -

निर्गत्य नानको गेहात् वनेषु व्यचरद्वशी।
वृत्तिं वन्यफलैः कुर्वन्नानिश्चितनिकेतनः[72] ।।

गृहत्याग कर कभी वृक्षों के नीचे, कभी लताओं के समूहों में तथा कभी उचें-उचे पर्वत श्रृङ्गों पर भ्रमण करते हुये नानक तप द्वारा शरीर को तपाते हैं। सभी प्रकार की आसक्तियों तथा भय को भूल कर वन में समाधिस्थ हो जाते हैं :-

क्वचिद्वृक्षस्याधः क्वचिदपि लता-कुंजनिलये
क्वचिद्वर्यां सिंहैर्दुत-परिहृतायां सविनयैः।
क्वचित्तुङ्गे श्रृङ्गे तपति तपने द्वन्द्वरहितः
स तस्थौ स्वस्थात्मा विगतभयरागव्यतिकरः[73] ।।

---

69. ना॰चं॰ 6·64, 65
70. वही, 6·68 एवं द्र॰ 6·83
71. वही, 6·117
72. वही, 7·2 एवं द्र॰ 8·31
73. वही, 7·3 एवं द्र॰ 7·25

नानक निराकार ईश्वर की साधना करते हैं इसीलिये अपने आप को भी निराकार पद से सम्बोधित करते हैं -

द्वापरे निर्द्वपिरोहं निराकारमचिन्त्यम् ।
कलौ जात: कारणेन तामेव प्रथितिं गत:[74] ।।

जब नानक की आज्ञा से "फेरू" वीणा वादक वीणा बजाता है तो उस समय भी "नानकोऽयं निराकार"[75] यह ध्वनि निसृत होती है । इस प्रकार साधना द्वारा वह निराकारता को प्राप्त होते हैं । निरन्तर कई दिनों तक वे समाधिनिष्ठ रहते हैं[76] । चारों तरफ पदार्थों की विद्यमानता से अनभिज्ञ होकर शरीर को साधते हैं, जिसके द्वारा वे परमपद को ग्रहण कर लेते हैं । जो शोक, हर्ष, विपत्ति और संपत्ति में संलिप्त नहीं होता है, उसे वे योगी मानते हैं । इसीलिये सर्वस्व त्याग कर भ्रमण करते हैं -

यो न शोके न विपदि न हर्षेण न संपदि ।
युक्त: स योगी जगति लीलाकलित विग्रह:[77] ।।

सिद्ध योगी अपने देहत्याग की चिन्ता नहीं करते हैं, जिस प्रकार साँप "निर्मोक" को छोड़ने से दु:खी नहीं होता है[78] । जिस प्रकार अधर्म द्वारा अर्जित वैभव शोभा नहीं देता है उसी प्रकार नानक साधना द्वारा ईश्वर प्राप्त न कर लेने पर अपने आप को अधूरा कहते हैं, इसीलिये वह "तालाब" के बीच बैठ कर कठोरतम साधना करते हैं[79] । शरीर पर तपस्वियों की तरह ही वस्त्र पहनते हैं तथा जटाओं में लेप आदि द्वारा शरीर को तपाते हैं[80] । जिस से असाधारण साधना को वह प्राप्त करते हैं । वे परिवार को सार्थ स्वीकार करते हैं,

---

74. ना॰चं॰ 3॰37 एवं द्र॰ 35
75. वही, 7॰85
76. वही, 7॰107 एवं द्र॰ 9॰108
77. वही, 7॰125
78. वही, 7॰120 एवं द्र॰ 112
79. वही, 3॰40
80. न युज्यते नानक ते शरीरे, प्राचीनवीरस्य विधारणोऽयम् ।
निकामरूक्षैर्मसितैश्च लेप:, खेदावह: श्मश्रुजटाग्रहश्च।। - ना॰चं॰8॰21।
एवं द्र॰35

स्थिर नहीं । इसीलिये वे स्थिर वस्तु (दिव्यशक्ति) के अन्वेषण में दत्तचित्त रहते हैं -

पान्था यथा रात्रिषु धर्मशाला-माश्रित्य तिष्ठन्ति पुनः प्रभाते ।
स्वां स्वां दिशं यान्ति तथा कुटुम्बं, सार्थः स्वकर्मानुमृतः स्थिरो न[81] ।।

नानक अपनी साधना की शक्ति से प्रमदाओं को "मेष" (भेड़) बनाते हैं और मर्दन को मनुष्य के रूप में कर लेते हैं[82] । सिद्धि प्राप्त कर समाज में से दुर्जनों का क्षय करना ही उन की साधना का परम-लक्ष्य रहता है, जिसे वह प्राप्त करते हैं । उन के सम्मुख विघ्न उत्पन्न करने के लिये कोई आता है तो उन को शक्ति द्वारा अवरोधित करते हैं । जैसे काम-कला में दक्ष स्त्रियों को खम्बे की तरह जड़ कर देते हैं[83] । निःस्पृह हरिभक्ति में निमग्न साधकों पर कलियुग का प्रभाव नहीं पड़ता है[84] । योगी लोगों के लिये संसार का कोई भी कार्य अद्भुत नहीं होता है, इसीलिये नानक भी पन्द्रह दिन तक समुद्र में स्थल की तरह निवास करते हैं -

"दिवसानथ पंचदशाम्बुनिधेः स्थलवज्जल एव जगाम यतिः"[85] ।

नानक सम्पूर्ण इच्छाओं पर विजय प्राप्त कर लेते हैं । तभी मर्दन उन को कहते हैं कि आप योगी हैं, आप ने तो उपभोगों का दमन किया है परन्तु हम तो जाठरानल से दुःखी होते हैं[86] । नानक को अपनी साधना शक्ति से आकाश, भूमि और सागर कुछ भी असम्भव प्रतीत नहीं होता है । वे सहचरों में भी अपने प्रभाव से वैसी शक्ति प्रदान कर देते हैं । आकाश-मार्ग द्वारा उड़ कर जाने पर मर्दन आदि में भी साथ उड़ते हैं[87] ।

इस प्रकार गुरू नानक देव की साधना त्याग द्वारा प्राप्त थी, जिस के

---

81. ना·चं· 8·36
82. वही, 8·94
83. वही, 8·104
84. निःस्पृहेषु हरिभक्तिरतेषु, तापसेषु न कलेर्बलमस्ति ।। - ना·चं·9·18
85. ना·चं· 9·20-21
86. वही, 9·46,47
87. वही, 10·65-72

लिये वे माता-पिता, पत्नी और पुत्रों का भी परित्याग करते हैं। उन्होंने सिद्धि प्राप्त कर सम्पूर्ण समाज के उद्धार हेतु परिभ्रमण कर उपदेश दिया है तथा साधना के मार्ग को प्रशस्त किया है।

गुरू नानक देव द्वारा भारतीय संस्कृति का प्रसार -

भारतीय संस्कृति में हमारी पूर्ण आस्था है। इस का प्रसार पूर्णता को प्राप्त मनुष्यों द्वारा हुआ है, जो समय-समय पर हिन्दु समाज में अवतरित हुये हैं। भारतीय संस्कृति काँट-छाँट कर तैयार नहीं की गई है अपितु वह तो स्वयं एक अगाध समुद्र है, जिस में सभी नदियाँ आकर मिल जाती हैं परन्तु उस में हलचल उत्पन्न नहीं होती है। इसी प्रकार भारतीय संस्कृति में अन्य देशों की शक्तियों द्वारा प्रभाव डालने का प्रयास किया गया। परन्तु यह अपने समाज में उत्पन्न धार्मिक उपदेशकों द्वारा सुरक्षित अविरत और अविच्छिन्न प्रवाह द्वारा प्रवाहित होती रही है। धार्मिक ग्रन्थों तथा सद्गुरूओं द्वारा इस का सर्वत्र विकास हुआ है, जिन में भारतीय संस्कृति का प्रसार करने के रूप में गुरूनानक देव का नाम भी स्मरणीय है। जिस समय भारत में सर्वत्र अस्थिरता का वातावरण छाया हुआ था, मुगलशासकों का अधिकार था, वे इस्लाम धर्म का प्रसार सम्पूर्ण हिन्दु समाज में कर देना चाहते थे तथा हिन्दु समाज बिखरा पड़ा था, उस समय गुरू नानक देव ने अपने उपदेशों के माध्यम द्वारा समाज को नवीन दिशा दी। जिस से सुसंगठित होकर हमारा समाज अपनी संस्कृति को स्थिर रख सका। उन्होंने अपनी शिक्षाओं द्वारा ही सर्वत्र धर्म का प्रचार किया।

नानक चन्द्रोदय महाकाव्य में नानक के उपदेशों का उल्लेख है। कवि देवराज शर्मा ग्रन्थ के प्रारम्भ में ही नानक को कलियुग में लोगों के हृदयों को शुद्ध करने वाला, ब्रह्मस्वरूप और ज्ञान वैराग्य की धारा, प्रतिवाहित करते हुये उन से जय की कामना करते हैं, जिस का उल्लेख निम्नलिखित है -

कालिमलिनमतीनां शोधयन् मानसानि
स्वयमुदयमुपेत: शास्त्रयोनि: स्वयंभू: ।।
अकिरद विषमां यो ज्ञानवैराग्यधारां
स जयति कलुषाघ्नो नानको योगिवर्य: [88] ।।

तात्पर्य यह है कि समाज में प्रादुर्भूत मलिनताओं का ह्रास कर उसे ज्ञान द्वारा अपने उचित मार्ग की ओर आकर्षित करने वाले नानक कहे गये हैं, मार्ग भारतीय संस्कृति ही है, जिसे कलुषितमन हो जाने पर आघात पहुँचता है ।

बचपन में ही जब नानक देव गौयें चराते हैं तो गौयें लोगों की फसल खा जाती हैं । परन्तु जब खेती के स्वामी द्वारा देखा जाता है तो कृषि को यथा स्थित देख कर लज्जित होता है [89] । यहाँ पर जो भारतीय संस्कृति में गाय को माता का स्थान दिया गया है, उस की सेवा निरूपित है और नानक की चमत्कारिता जिस के द्वारा संस्कृति की विचित्रता का ज्ञान होता है, कि ऐसे दिव्य पुरुषों से सुसज्जित यह मातृभूमि भारत माता थी । धनखान के अधिकारी पद पर नियुक्त होने पर भी आय-व्यय का हिसाब करने पर जो कलंक नानक पर थोपा गया था, उस के विपरीत नानक का शेष धन राजा के पास निकलता है [90] ।

हिन्दु परिवार में परस्पर जो ममता रही है, वह भारतीय संस्कृति क में प्रमुख है । नानक भी बहिन की विदाई के समय इस प्रेम के विरह से बच नहीं सकते हैं [91] । आर्य भाषा का प्रसार करते हुये कहते हैं कि मैं यवनों की भाषा नहीं पढ़ा हूँ, आर्य लिपि को ही जानता हूँ [92] । अपनी भाषा के प्रति स्वाभिमान दूसरे लोगों में प्रकट करते हैं । माता का स्थान समाज में भूमि से भी महान् है क्योंकि कहा भी है "माता गुरुतरा भूमे:" अर्थात् माता पृथ्वी से बड़ी है ।

---

88. ना·चं· 1·13

89. ना·चं· 2·109

90. वही, ~~3·78~~ 4·108-109

91. वही, 3·78

92. तेनैवमुक्तो जयराम ऊचे .....।
स उक्तवानार्यलिपिं तु जाने, नापाठिषं भो यवनाक्षराणि ।।
– ना·चं· 3·106

विवाह के पश्चात् सभी आभूषण माता के चरणों में अर्पित कर उसकी गरिमा को सुरक्षित रखते हैं[93]।

हिन्दु समाज में संस्कारों का महत्त्वपूर्ण स्थान रहा है। उन्हीं को संस्कृति के अनुसार कर परम्परा का विकास करते हैं। पुत्रजन्म पर उस का जात कर्म संस्कार कर, वस्त्राभूषणों का दान नानक करते हैं -

जातेसुतेऽतिमुदितो जयराम वर्मा
श्री नानकश्च विदधेऽखिल जात कर्म[94] ।।

सांसारिक सुखों से मन को अवरुद्ध कर ईश्वर प्राप्ति करने का उपदेश लोगों को देते हैं[95]। तुर्कताान्त्रिक को भी नानक सन्मार्ग द्वारा भगवत्प्राप्ति करने की शिक्षा देते हैं,[96] जिस के द्वारा ईश्वर भक्ति मार्ग का प्रचार होता है। भारतीय संस्कृति में किसी के भी उपास्य देवता की निन्दा व अपमाननहीं किया जाता है। अपने धर्म पर चलते हुए दूसरे धर्मों का सम्मान करना प्रमुखता है। इसी लिये नानक यवनों के साथ उन के घर जाकर देवता को प्रणाम करते हैं। छूआ-छूत और ऊंच-नीच का भेदभाव न मान कर, म्लेच्छ मन्त्र का उच्चारण करते हैं[97]। जिस से हमारी संस्कृति की उदारता दिखाई देती है।

संगीत और वाद्य विद्या में हमारी निपुणता रही है। वाद्य-यन्त्रों की ध्वनि को सुनते ही मनुष्य मन्त्र-मुग्ध हो जाते हैं। वाद्यों की तानें सार्थक हुआ करती हैं, इसी को नानक द्योतित करते हैं, जब मर्दन को वीणा बजाने के लिये आदेश देते हैं तो उसी की मधुर-लय का श्रवण कर वन्य-प्राणी और खग-वृन्द चंचलता से युक्त विगत-भय होकर आनन्दचित्त होते हैं[98]।

---

93. ना॰चं॰ 5॰164
94. वही, 6॰25
95. वही, 6॰64-67
96. वही, 6॰83 तः 87 पर्यन्तं
97. ना॰चं॰ 6॰89-91, एवं द्र॰ 10॰40
98. वही, 7॰27, 30

भारतीय संस्कृति को अपनी शिक्षा द्वारा भारत तथा सम्पूर्ण विश्व में फैलाते हुये उत्कल, कलिङ्ग, आन्ध्र, कर्नाटक, केरल, और द्रविड़ से होते हुये सिंहलद्वीप में पहुँचते हैं[99]। इसी प्रकार विषहर देश, शैलोमिल द्वीप, जम्बूद्वीप, मक्का, सुमेरु और व्यारोगिरि आदि की यात्रा नानक करते हैं[100]। यहाँ पर वह विविध प्रकार के आचरणों के बारे में लोगों को सुशिक्षित करते हैं, जोकि भारतीय संस्कृति के तत्त्व थे।

भारत में रहने वाले देव-स्वरूप आत्माओं से मनुष्य तो प्रभावित होते ही हैं, परन्तु जानवर भी मनुष्य वाणी उच्चारित करने लग जाते हैं, यही हमारी संस्कृति की शक्ति है, जिसे देख कर सम्पूर्ण विश्व नत-मस्तक होता है। नानक को देख कर मच्छली "गुरुर्निराकारक" नानको ऽसि" वाणी उच्चारण करती है[101]। यह उन का पूर्व-जन्म का सम्बन्ध था, जिस के कारण उस वृतान्त को स्मरण करती है तथा नानक के संसर्ग द्वारा "मोक्ष" प्राप्त करती है[102]। इस प्रकार आध्यात्मिकता द्वारा संस्कृति का प्रसार होता है। इन्द्र सेन को देख कर भी पूर्वजन्म के वृत्तान्त का प्रतिपादन नानक करते हैं[103]।

मक्का नामक पतन में जा कर जब वे सोते हैं तो संन्यासी के वेश में म्लेच्छाचार्य उन की निन्दा करता हुआ कहता है कि मूर्ख हमारे देवता की ओर पाँव करके शयन क्यों कर रहे हो। तब उन के कहने पर कि जिस तरह आप चाहते हैं कर दो, तो जिस तरफ वह म्लेच्छ पैर खींचता है मस्जिद का द्वार उसी तरफ हो जाता है। तब नानक उन म्लेच्छों को उपदेश देते हैं कि ईश्वर सर्वव्यापक है तथा कोई भी हो मन को जीत कर अनश्वर आत्मा को प्राप्त किया जा सकता है[104]। इस प्रकार वे म्लेच्छ उन के उपदेशों से प्रभावित होते हैं।

---

99. ना॰चं॰ 8॰95
100. वही, 8॰168, 9॰22, 44,82 एवं द्र॰ 10॰5, 13॰4
101. वही, 9॰9 एवं द्र॰ 13॰56
102. वही, 9॰13
103. वही, 9॰30
104. वही, 10॰24 तः 37 पर्यन्तं

कनीफा के साथ भी सम्वाद होता है तथा उसे "ओंकार" की महिमा बताते हैं। उसे आत्मा स्वरूप मानते हुये कहते हैं कि वही मेरा नाथ है और प्रियतम है[105]। इसी प्रकार भर्तृहरि आते हैं उस को भी नानक उत्तर देते हैं। वह उपदेश द्वारा सन्तुष्ट हो कर चला जाता है। आनन्दामृत पान करने, विषयरस का त्याग, रामादि का संग, सत्य स्वरूप सुख का विलोडन, गुरू-रूपी तालाब में स्नान, वासना का त्याग, तदरूप होने, उपदेश द्वारा परम पद प्राप्ति, सेवा स्वरूप विभूति का आचरण, सत्सङ्ग रूप तीर्थ, पूजा योग्य मन, ज्ञानामृत पान करने वाला शिरोमणि, नि:स्पृह व्यक्ति सार्वभौम तथा "नाम" रूप सेतु का अवलम्बन लेने से भवसिन्धु से पार होना इत्यादि उपदेश देते हैं[106]। गोपीचन्द्र भी आ कर विविध प्रकार के प्रश्न करता है। वह भी उत्तर प्राप्त कर चला जाता है[107]। भूतवा के प्रश्नों का उत्तर भी नानक देते हैं, वह सुख-दु:ख के विषय में अनेक प्रश्न करता है[108]। भूतवा चार्वाक मत के प्रश्न पूछता है, नानक उन का खण्डन करते हैं। इस के पश्चात् "लहुरीया" बौद्धमत को प्रस्तुत करता है गुरू उत्तर देते हैं तथा वह सन्तुष्ट हो कर चला जाता है[109]। कङ्गर से गुरू भक्ति की महिमा का वर्णन करते हैं। उसे आत्म बोधरूपी तेल के बिना ज्योति नहीं जलती और "ओंकार" ही नाम है, यह उपदेश देते हैं,[110] जिस से वह भी गुरू भक्त बनता है। इस प्रकार उपदेश दे कर भारतीय संस्कृति का प्रसार करते हैं।

भारतीय संस्कृति में जिन कर्मों को अनिन्दनीय कहा है उन सभी से रोकते हुये नरक की घोर यातनाओं का संकेत करते हैं[111]। गंगा स्नान

---

105. ना॰चं॰ 11॰49-57 पर्यन्तम्
106. वही, 11॰2 त: 23 पर्यन्तं
107. वही, 11॰28 त: 45 पर्यन्तं
108. वही, 11॰90 त: 106 पर्यन्तं
109. वही, 11॰107 त: 120 पर्यन्तं
110. वही, 11॰124 त: 129 "
111. ना॰चं॰ 14॰271 त: 305 पर्यन्तं

गुरु सेवा, तीर्थ, व्रत, तप, दान, शालिग्राम पूजन और तुलसी आरोपण आदि कर्मों की महत्ता से स्वर्ग लोक प्राप्ति का उपदेश देते हैं[112]। मुकुन्द का स्मरण करने से मोक्ष प्राप्त होता है। धर्म से स्वर्ग और अधर्म से नरक मिलता है इस का उपदेश निम्न प्रकार से करते हैं -

धर्मेण वास स्त्रिदशालये स्यादधर्मतो हा नरके निवास: ।
दानाद्धनं तेन विना च दैन्यं मोक्षो मुकुन्दस्मरणेन शश्वत् ।।[113]

हनुमान् की तरह बालसिन्धु और मर्दन के साथ नानक शत योजन विस्तृत समुद्र को उड़ कर पार कर लङ्का नगरी में भी पहुँचते हैं। वहाँ राक्षसों को देख कर मर्दन भयभीत होता है[114]। विभीषण को देख कर नानक कहते हैं कि मैं रामचन्द्र का अनन्य भक्त हूँ, तब विभीषण उन के चरणों में गिर कर प्रणाम करता है[115]। यहाँ पर नानक मर्दन को सम्पूर्ण "रामचरित" का वर्णन सुनाते हैं,[116] जिस से हमारे प्राचीन धार्मिक-ग्रन्थों का तथा ईश्वरस्वरूप शक्तियों का प्रसार होता है।

नानक मर्दन के देहत्याग कर देने पर विधि-विधान से उस का दाह-संस्कार करते हैं[117]। क्योंकि मर्दन ने दाह-संस्कार द्वारा गति प्राप्त करने की इच्छा प्रकट की थी, उस ने कहा था कि सुहृज्जनों द्वारा अदग्ध-देह मनुष्य विभिन्न योनियों में क्लेशों को प्राप्त करता है -

दाहेन देहस्यगतिं लभेयं विशेषत: सौम्य ! भवत्कृतेन ।।
अदग्धदेहा हि सुहृज्जनेन क्लिश्यन्ति योनिर्विविधा व्रजन्तम् ।।[118]

इसलिये नानक भारतीय संस्कृति के अनुरूप मर्दन का दाह संस्कार अपने हाथों से करते हैं।

---

112. तुलसीं रोपयेद्यस्तु विष्णुपूजन तत्पर: ।
अयुतानि युगानां तु स्वर्ग लोके स पूज्यते ।। - ना.चं.14.327 एवं द्र. 328 त: 338

113. ना.चं. 14.339

114. वही, 15.51-53

115. भक्तोऽस्मि रामचन्द्रस्य यतिरित्यवदत्स तु ।
पपात पद्योर्मूर्द्धना स्फुरन्मणिप्राणाश्रया।। - ना.चं.15.56

116. ना.चं. 15.63 त: 168 पर्यन्तं

117. वही, 16.17

{118} वही, 16.6

नानक नल द्वारा निर्मित महासर्प के समान सेतु को देखते हुये "श्री रामेश्वर" भी जाते हैं। वहाँ पर गोरक्ष, मत्स्येन्द्र, भर्तृहरि, लहुरीया, चर्पटनाथ और गोपीचन्द्र आदि सिद्धों को देखते हैं[118]। यहाँ पर भर्तृहरि पुनः प्रश्न करते हैं जिन का उत्तर नानक देते हैं। यहाँ नानक मनुष्य देहधारी के लिये ईश्वर के प्रति प्रेम की आवश्यकता को कहते हैं -

संसार सिन्धोरूपयाति पारं, विवेकतः केवलविष्णुभक्तेः।
जीवन्मृतो मानुषदेहधारी, य ईश्वरे प्रेम न संतनोति[120] ।।

इस प्रकार सर्वशाज्योति निरंजनज्योति, आत्मा अद्वितीय, गुरू के योग तथा ज्ञान द्वारा निर्वाण, द्वैतदुर्मति का ह्रास मनन से, तत्त्व का अन्वेषण, शास्त्रों में, दीक्षा देने वाला गुरू, और भवसागर से शिष्य को पार करने वाला महान् गुरू होता है। ये उत्तर भर्तृहरि को देते हैं[121]। नास्तिक क्षपणक को नानक वेदों के प्रमाणों का उपदेश देते हैं[122]। उसे शुभ कर्म करने के लिये कहते हुये, राम-कृष्ण और विवेकशील वशिष्ठ आदि का उदाहरण देते हैं कि क्या उन्होंने शुभ कर्म नहीं किये हैं, जिन्हें सुन कर क्षपणक पर्वत पर तपस्या करने के लिए चला जाता है -

ईश्वरा रामकृष्णाद्या वशिष्ठाद्या विवेकिनः।
लोकसङ्ग्रमुद्दिश्य न कर्म विजहुः शुभम्[123] ।।

बाबर को नानक जीव की अशुद्धता के बारे में कहते हैं कि जो प्राणी विषयों में सुख जान कर उन्हीं उपभोगों में संलिप्त रहता है, वह रक्त रहित अस्थि में जैसे कुत्ता आसक्त रहता है, उसी प्रकार होता है, जो स्त्रियों के कटाक्ष-बाणों द्वारा विद्ध जाता है वह शुद्ध नहीं है।जीव की शुद्धता तो ईश्वर स्वरूप को जानने में ही होती है[124]। बाबर को नानक कुरान और श्रुतियों

---

119. ना.चं. 16.20-21
120. वही, 16.27
121. वही, 16.25, 26,28
122. वही, 17.36 तः 43 पर्यन्तं
123. वही, 17.44
124. वही, 18.49-51

की महिमा को बताते हैं, जो कोई कुरान या वेद का अनुसरण करता है वह चाहे यवन हो या आर्य, वह ईश्वर का वल्लभ होता है । आर्य लोग हरि "शिव" और गणेश की अर्चना करते हैं तथा तुर्कों द्वारा पृथक् नाम से, उसे ही भजा जाता है[125] ।

इस प्रकार भारतीय संस्कृति की विशालता का श्रवण कर बाबर नानक को आर्यों में अनन्य मानता है । वह कहता है कि जो आप कहे से दीक्षित होगा, वह समस्त तत्त्व का ज्ञान प्राप्त कर कृतार्थ हो जायेगा[126] । इस प्रकार अपने उपदेशों द्वारा अन्य धर्मावलम्बियों को भी नानक प्रभावित कर देते हैं, तथा हिन्दु संस्कृति की गरिमा स्वीकार करने पर विवश कर देते हैं ।

अन्तिम समय पर भी, जब यवनों तथा आर्यों का नानक के शरीर का अन्तिम संस्कार करने में मतभेद उत्पन्न हो जाता है तो उस समय भी भारतीय संस्कृति का प्रसार करने हेतु वह कहते हैं कि मेरे शरीर के आधे भाग का दाह संस्कार किया जाये और अर्ध को भूमि में दफना दिया जाये[127] । इस प्रकार अपनी संस्कार पद्धति की रक्षा भी होती है तथा दूसरे अनुचरों की बात को भी मान लिया जाता है ।

अन्ततोगत्वा हम कह सकते हैं कि गुरू नानक देव ने भारतीय संस्कृति का प्रचार भारत में आध्यात्मिकता की भावना से तो किया, परन्तु इस के साथ मक्का, मदीना, लङ्का और अन्य सुदूरवर्ती द्वीपों की भी यात्रा की और अपने उपदेशों द्वारा वहाँ के लोगों को भी उपकृत किया । उन्होंने ईश्वर की सर्वव्यापकता, निराकारता, गुरू महत्त्व, नामस्मरण और बाह्याड़म्बरों से दूर रहने के उपदेश दिये । जिस से धर्म का प्रसार एवं विकास हुआ और आज भी उन के नाम का विश्व में स्मरण किया जाता है ।

= = = = = =

---

125. ना॰चं॰ 18·60-63

126. ततस्तमूचे यवनाधिराज, आर्येषु न त्वत्सदृशोऽस्ति कश्चित् ।
दीक्षिष्यते यो भवतो भवेत्स, समस्ततत्त्वाधिगमात्कृतार्थः ।। -वही, 18·66

127. अर्धं विपाद्य यवना निखनन्तु भूमा-
वर्धं दहन्तु च ततः परिशेषमार्याः ।। - ना॰चं॰ 19·237

तृतीय अध्याय

पारिवारिक जीवन

(क) परिवार का उद्भव

(ख) परिवार का स्वरूप

(ग) आदर्श परिवार के कर्त्तव्य

(घ) पिता का पुत्र-पुत्री के प्रति सम्बन्ध तथा पिता का सम्मान

(ङ) माता का पुत्र-पुत्री के प्रति सम्बन्ध

(च) दाम्पत्य सम्बन्ध

(छ) सहोदर-सम्बन्ध

(ज) स्वामिसेवक-सम्बन्ध

= = = = = =

तृतीय अध्याय

पारिवारिक जीवन

परिवार का उद्भव -

सम्पूर्ण विश्व की महत्त्वपूर्ण सामाजिक संस्था तथा हिन्दू समाज का अंगभूत भारतीय परिवार है । प्राचीनकाल से ही सम्पूर्ण विश्व में परिवार की प्रणाली चली आ रही है । सामाजिक जीवन में मनुष्य सुख-पूर्वक समय यापन कर सकें तथा परस्पर सहयोग करने से लाभ प्राप्त होता रहे तथा मरणोपरान्त भी स्मृति बनी रहे, इसीलिये परिवार का उद्गम हुआ है। क्योंकि इस के द्वारा ऐसे सम्बन्ध स्थापित रह जाते हैं जिन के द्वारा आयुपर्यन्त उसे स्मरण किया जाता है । श्री वेदालंकार जी कहते हैं कि "मनुष्य मरण धर्मा है; किन्तु मानव जाति अमर है । व्यक्ति उत्पन्न होते हैं, बचपन, यौवन और बुढ़ापे की अवस्था भोग कर, समाप्त हो जाते हैं, पर वंशपरम्परा के कारण उन का सन्तान क्रम अविच्छिन्न रूप से चलता रहता है । मृत्यु और अमृतत्व दो विरोधी वस्तुयें हैं, किन्तु परिवार द्वारा इन दोनों का समन्वय हुआ है । व्यक्ति भले ही मर जायें, पर परिवार और विवाह द्वारा मानव जाति अमर हो गयी है"[1] ।

मनुष्यों की तरह पशु-पक्षियों में भी पारिवारिक भावना देखी जाती है । कुछ पशुओं एवं पक्षियों में तो देखा गया है कि वे सम्भोग के बाद अलग रहते हैं परन्तु अधिकतर पशुओं में एक पत्नी रखना तथा बच्चों के पालन की नैसर्गिक भावना दिखाई देती है जैसे सिंह एक सिंही रखता है। इसी प्रकार

---

1. हिन्दू परिवार मीमांसा - श्री हरिदत्त वेदालंकार, पृ.।

चिड़िया आदि संयुक्त रूप से पति-पत्नी रूप में दोनों बच्चों का पालन करते हैं। इस प्रकार मनुष्य, पशु तथा पक्षियों में परिवार का प्रणय अथवा उद्भव स्वाभाविक रूप से ही पाया जाता है। "बच्चा जन्म लेने के पश्चात् महीनों असहाय अवस्था में रहता है और माता अथवा अन्य व्यक्ति के बिना उस का जीना असम्भव हो जाता है। शिशु और माता अथवा वयस्क संरक्षक के बीच सम्बन्ध से कुटुम्ब की नींव पड़ती है"[2]। माता-पिता से उत्पन्न समस्त सन्तानों का विशेष सम्बन्ध होता है जो कि बन्धन रूप में होता है, यह बन्धन रूपी सम्बन्ध ही परिवार होता है।

विद्यालंकार के शब्दों में प्रत्येक समाज में परिवार की महत्वपूर्ण आवश्यकता होती है। कोई ऐसा समाज नहीं है जिस में परिवार की सत्ता न हो। मनुष्य अपने जीवन का प्रारम्भ परिवार द्वारा ही करता है, और उसी में अपने उन गुणों व विशेषताओं को विकसित करता है, जो प्रत्येक व्यक्ति में अन्तर्हित रूप से विद्यमान रहती हैं[3]। इस प्रकार परिवार की आवश्यकता पर समाजशास्त्र के ग्रन्थों ने बल दिया है।

परिवार का स्वरूप -

भारतीय प्राचीन ग्रन्थों के अवलोकन से ज्ञात होता है कि हिन्दु-समाज में विभिन्न प्रकार के परिवारों का प्रचलन था और इस समय भी चल रहा है। कहीं पर मातृ-प्रधान परिवार है। यहाँ पर माता को घर का मुखिया समझा जाता है उस का स्थान परिवार में महत्त्वपूर्ण समझा जाता है। कहीं पितृप्रधान है यहाँ पर पिता का स्थान उन्नत स्वीकार किया जाता है। ऋग्वेद में पितरों का महत्वपूर्ण स्थान स्वीकार ~~किया गया है~~। ~~ऋग्वेद में पितरों~~ करते हुए भक्त प्रार्थना करता है कि पितर मेरी रक्षा करें।-

---

2. पारिवारिक समाज शास्त्र - डा. कैलाश नाथ शर्मा, पृ.14
3. समाज शास्त्र - सत्यकेतु विद्यालंकार, पृ.343

अवन्तु मामुष्मो जायमाना अवन्तु मा ।

सिन्धव: पिन्वमाना: ।.....अवन्तु मा पितरो देवहूतौ[4] ।।

संयुक्त परिवार प्रणाली का उल्लेख भी धर्मशास्त्रों में प्राप्त होता है। आपस्तम्ब धर्मसूत्र में कहा है कि पिता के जीवित रहते हुये भाईयों को एक साथ रहना चाहिये -

भ्रातृणां जीवतो: पित्रो: सहवासो विधीयते[5] ।

यह निवास, भोजन, धर्म-कर्म और आर्थिक दृष्टि से संयुक्त होता था । हिन्दु परिवार मीमांसा में भी संयुक्त परिवार की निम्नलिखित चार विशेषतायें कही हैं । "§1§ पिता के साथ पुत्र, पौत्रादि का अपने परिवारों सहित इकट्ठा रहना §2§ एक निवास, पाक तथा संयुक्त रूप से धर्म-कर्म का पालन §3§ सम्पत्ति का संयुक्त स्वामित्व और उपभोग §4§ परिवार के सदस्यों का मुखिया के अनुशासन में रहना"[6]। हिन्दु परिवार मीमांसा में ही संयुक्त परिवार प्रणाली के प्रचलन की प्राचीनता को बताते हुये लिखा है कि "वैदिक युग के आरम्भ में संयुक्त परिवार की पद्धति थी । इस समय से गुप्त युग तक परिवार में विभाग की प्रवृत्तियां प्रबल हुईं । गुप्त युगके बाद पुन: संयुक्त परिवार प्रथा पुष्ट होने लगी । 19वीं सदी के बाद फिर संयुक्त परिवार विरोधी परिस्थितियां प्रबल होने लगीं किन्तु विरोधी प्रवृत्तियों के प्रबल होने पर भी, कोई ऐसा समय नहीं आया जब कि संयुक्त परिवार प्रथा नाम शेष रह गई हो"[7]। अथर्ववेद में संयुक्त परिवार की प्रथा का उल्लेख करते हुये लिखा है कि -

"प्रोष्ठोशायास्तल्पशेया नारीर्या बह्यशीवरी: । स्त्रियो या: पुण्यगन्धयस्ता: सर्वा: स्वापयामसि ।। एजदेजदजग्रभं चक्षु: प्राणमजग्रभम् अगान्यजग्रभम् सर्वा रात्रीणामतिशर्वरे । य आस्ते यश्चरति यश्च तिष्ठन् विपश्यति तेषां स दध्मो अक्षीणि.....।। स्वप्तु माता स्वप्तु पिता, स्वप्तुश्वा, स्वप्तु विश्पति:।

---

4. ऋ. 6.52.4 एवं द्र.1.106.3, 6.33.1; 6.52.4
5. आप.धर्मसूत्र 2.6.14.19
6. हिन्दु परिवार मीमांसा, श्री हरिदत्त वेदालंकार, पृ.19
7. वही, पृ.20

स्वपन्तस्वये ज्ञातय: स्वप्त्वमभितो जन:"[8]। इस प्रकार वैदिक युग में संयुक्त परिवार की प्रथा को ही स्वीकार किया गया है। परिवार के स्वरूप का उल्लेख करते हुये मातृस्नेह, पितृस्नेह, दाम्पत्य आसक्ति, अपत्यप्रीति और सहवर्तिता परिवार के पाँच मुख्य आधार स्वीकार किये हैं[9]। बर्गेस और लॉक द्वारा प्रतिपादित -

" A family is a group of persons united by the ties of marriage, blood or adoption, constituting a single household, interacting and intercommunicating with each other in their respective social role of husband and wife, mother and father, son and daughter, brother and sister; and creating and maintaining a common culture."

लक्षण के अनुसार सत्यकेतु विद्यालंकार पति-पत्नी, माता-पिता, भाई-बहिन और सन्तान के समूह को परिवार कहते हैं जिस में सब विभिन्न व्यक्ति विशेष प्रकार के सम्बन्धों द्वारा परस्पर सम्बद्ध रहते हैं"[10]। इस प्रकार पारिवारिक स्वरूप का विश्लेषण करने वाले ग्रन्थों के अनुसार विभिन्न-विभिन्न समय पर संयुक्त परिवार प्रथा तथा उस के लोप का वर्णन किया गया है। परन्तु भारतीय परिवार का यह आदर्श रहा है कि अनेक आघातों को सहन करने पर सम्पूर्ण विश्व के परिवारों में सर्वमान्य रूप में रहा है। संयुक्त परिवार में पिता परिवार का मुखिया होता है, सम्पत्ति पर उस का ही पूर्ण अधिकार होता है। अकर्मण्य व्यक्तियों में वृद्धि, व्यक्तित्व विकास में बाधक, औरतों की दुर्दशा, अधिक कलह क्लेश, सन्तान में वृद्धि तथा भय के कारण मानसिक उत्थान का अभाव इत्यादि संयुक्त परिवार की हानियाँ भी हैं। परन्तु इन के साथ साथ बच्चों के लिये शिक्षा केन्द्र, उदारता, सहनशीलता, सेवाभाव, नम्रता,

---

8. अथर्ववेद, 4·5·3-6
9. हिन्दु परिवार मीमांसा, पृ·26
10. समाजशास्त्र : सत्यकेतु विद्यालंकार, पृ·344

दूसरों के साथ मिल कर रहना तथा संयुक्त रूप से सभी के लिये कार्य करना इत्यादि अच्छी बातों का अध्ययन करना संयुक्त परिवार के ही लाभ हैं। इस प्रकार संयुक्त परिवार में लाभ तथा हानियाँ दोनों प्राप्त होती हैं, परन्तु सम्पूर्ण समाज में संयुक्त परिवार की उपादेयता को उस के उत्कृष्ट गुणों के कारण स्वीकार किया गया है।

नानक चन्द्रोदय महाकाव्य के अध्ययन से ज्ञात होता है कि उस समय के पारिवारिक जीवन में गृहस्थी का जीवन अत्यन्त संघर्ष= संघर्षमय था, जिस के लिये देवताओं, तीर्थों तथा सज्जनों के दर्शन करना भी दुर्लभ होता था[11]। गृहस्थ जीवन में प्रवेश करने पर परिवार की रक्षा करना तथा पत्नी के लिये धन-धान्य की व्यवस्था करना मनुष्य का कर्त्तव्य कहा है[12]। इस प्रकार परिवार के बन्धनों में बन्ध जाने के उपरान्त उस के नियमों का पालन करने का उपदेश मुखिया द्वारा दिया जाता है ताकि उस के बाद घर का कार्य-भार सम्भालने वाला हो जाये। यहाँ परिवार के प्रति पूर्ण स्नेह द्योतित होता है। पारिवारिक जीवन में काम, क्रोध, लोभ, मोह, अंहकार और क्रूरता छः शत्रुओं को वश में करने से घर में भी मनुष्य की प्रसन्नता कही है, अन्यथा जंगल में भी भयभीत रहता है[13]। इस प्रकार परिवार में रहते हुये छः शत्रुओं का परित्याग करने को कहा है। गृहस्थ आश्रम में प्रवेश कर पुत्रादि की प्राप्ति कर धन आदि एकत्रित करना तथा ऐश्वर्य का उपभोग सांसारिक लोग मानते हैं -

---

11. गार्हस्थ्यमजरे वद्धा गृह्यका····मानवाः।
तेषां सुदुर्लभं देवतीर्थसज्जन दर्शनम् ।। - ना॰चं॰ 2॰90

12. त्वं देशकाल कलनाकुशलः सुमेध-
स्तं बोधय प्रकृतिमेतु गृहस्थयोग्याम् ।।
पाणिग्रहाय हितबन्धु बधू सुतानां
योषाय रक्षतु धनं किमिदं करोति ।। - ना॰चं॰ 4॰51

13. निर्वेदात्सहसोत्थितो परिणतात्षड्भिः सपत्नैर्युतो
भीतिं याति वनेऽपि वश्यकरणे गेहेऽपि भो नन्दति ।। - ना॰चं॰6॰59

धनं सुता: सद्विषयोपभोग: संसारिणस्तत्त्वमिदं विदन्ति[14] ।।

परिवार में से निकल कर विरक्ति के मार्ग को अपनाने की निन्दा की है क्योंकि बचपन अथवा बुढ़ापे में ही इस को अपनाये जाने के लिये कहा है युवावस्था में नहीं[15] । पारिवारिक जीवन में प्रवेश कर संपूर्ण परिवार का पालन करते हुये उसी में मनुष्यों को रहने के लिये बाध्य किया है । यहीं पर चन्दोराज्ञी का पुत्री के प्रति वात्सल्य, तत्कालीन परिवारों में माताओं के अपनी सन्तान के प्रति प्रेम को द्योतित करता है । नानक को निष्ठुर मानते हुये सुलक्षणा की माता कहती हैं कि क्या आप के मन में दया नहीं आ रही है -

हातु: सुतां बालसुतां मदीयां, दया न ते चुम्बति चित्तमीषत्[16] ।

सन्तान के प्रति दया-भावना से परिपूर्णता तथा उन के लिये न्याय की मांग आदि करने में माता की ही प्रधानता मिलती है ।

इस प्रकार नानक चन्द्रोदय महाकाव्य में परिवार के स्वरूप के बारे में अधिक उल्लेख उपलब्ध नहीं होता है, परन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि उस समय समाज में संयुक्त-परिवार का अधिक प्रचलन था । नानक स्वयं कहते हैं कि मोह-वश कुटुम्ब द्वारा घिरे हुये मनुष्य संसार रूपी सागर में डूबे रहते हैं -

संसाराम्बुनिधौ निमज्जति महामोहात्कुटुम्बैर्वृत:[17] ।।

इस प्रकार सम्पूर्ण परिवार का भरण-पोषण करने में ही समस्त जीवन व्यतीत हो जाता है । संयुक्त-परिवार में एक के अभाव में अन्य घर के सदस्य परिवार की देख-भाल कर लेते थे, तभी नानक सम्पूर्ण परिवार का त्याग कर घर से चले जाते हैं[18] । यहाँ परिवार से अभिप्राय संयुक्त-परिवार प्रणाली ही अवलोकित होती है, अन्यथा घर पर उन के बच्चों की सुरक्षा एवं भरण असम्भव होता तो,

---

14. ना·चं· 6·18, 6·17

15. परात्म जायावनवर्त्मपातं
कर्तुं विरक्तोऽयमभूतपूर्व: ।।
न शैशवे नापि च वार्धके हा
तारुण्यमाविष्कृतवान् विडम्बम् ।। - ना·चं· 6·12।

16. ना·चं· 6·120

17. वही, 6·143

18. एवमुक्त्वा रुदत्येव परिवारे महत्यपि ।
नानक्या प्रार्थित: किंचिदुक्त्वा प्रव्राजनानक:।। - वही, 6·145, 8·8 ।

वह विरक्त भी नहीं हो सकते थे। संयुक्त-परिवार के लाभों को ध्यान में रखते हुये उन्हें इस मार्ग को अपनाने में अधिक मुश्किल नहीं हुई होगी क्योंकि परिवार में से निकल कर जाते समय घर की देखभाल करने वाले वहाँ विद्यमान होते थे। इस प्रकार पुनः पुनः "कुटुम्ब"[19] शब्द का उल्लेख मिलता है, जिस से संयुक्त-परिवार के प्रचलन का आभास होता है। जब कभी प्रसन्नता का अवसर आता है तो उस समय भी सभी सम्बन्धियों एवं बन्धुओं को आमन्त्रित कर, उस खुशी में सभी को शामिल किये जाने का उल्लेख मिलता है[20]। इस प्रकार परिवार के सभी सदस्यों को जो घर से बाहर रहते थे एवं जो सगोत्र भी होते थे, उन को भी विवाह आदि शुभ अवसरों पर सन्देश दिया जाता था, जिस से समाज में परस्पर पारिवारिक मित्रता की भावना प्रकट होती है।

परिवारों में पितृ प्रधानता अथवा मातृ प्रधानता का उल्लेख कहीं उपलब्ध नहीं होता है। परन्तु कालवर्मा जैसे नानक को घर की वस्तुओं को याचकों को देते हुये देखते हैं तो उसे जंगल में गौयें चराने भेज देते हैं और वे भी वन में चले जाते हैं[21]। इस से ज्ञात होता है कि परिवार पितृ-प्रधान ही रहे होंगे और उन्हीं की आज्ञानुसार कार्य होते होंगे, अन्यथा माता या अन्य घर के सदस्य इस बात का प्रतिरोध अवश्य करते, जिस का उल्लेख यहाँ नहीं मिलता है।

इस प्रकार प्रस्तुत महाकाव्य में परिवार के स्वरूप के बारे में विस्तृत वर्णन नहीं मिलता है, परन्तु सम्पूर्ण अध्ययन करने से कह सकते हैं कि उस समय के परिवार के स्वरूप में तथा आजकल के परिवार में कुछ ही अन्तर आया है। जैसा आजकल समाज में दिखाई देता है वैसा ही वर्णन उपलब्ध होता है। आजकल एक दूसरे में जो घृणा की भावना दिखाईदे रही है, वह वहाँ वर्णित नहीं है।

---

19. ना॰चं॰ 6·135, 6·144, 7·136

20. सम्बन्धिबान्धवसगोत्र निमन्त्रणाय
दूतान्निदेश्य मुदितो निजगाद कालः ।। - ना॰चं॰ 5·18

21. ना॰चं॰ 2·106, 107

आदर्श परिवार के कर्तव्य -

भारतीय समाज में यह श्रेष्ठता रही है कि उस के परिवारों में आदर्श-कर्त्तव्यों का पालन होता रहा है तथा हो रहा है, जिस के कारण सम्पूर्ण विश्व भारतीय सभ्यता के प्रति नतमस्तक होता है। अभ्यागत के प्रति सेवाभावना, सहनशीलता, नम्रता, परस्पर भ्रातृत्व सम्बन्ध तथा मिलजुल कर काम करना इत्यादि भारतीय परिवार के कर्तव्य हैं। जिनका अन्य राष्ट्रों में अभाव पाया जाता है। घर पर अतिथि के आगमन पर उस की सेवा करना प्रत्येक घर का सदस्य अपना धर्म समझता है। इस प्रकार प्राचीनकाल से ही भारतीय परिवार एक आदर्श रूप में रहा है। श्री हरिदत्तवेदालंकार इस विषय में लिखते हैं कि "भारत वर्ष में अनेक साम्राज्यों का उत्थान और पतन हुआ, विदेशी जातियाँ आईं, नये धर्म प्रचलित हुये, परन्तु परिवार के सम्बन्ध में मौलिक परिवर्तन कम ही हुये"[22]। भारतीय धर्मशास्त्रों तथा पुराणों में स्त्री का प्रधान कर्तव्य परिवार में पतिसेवा और पातिव्रत्य का पालन बताया गया है। भागवत पुराण में स्त्रियों का परमधर्म पति की शुश्रूषा को ही कहा है -

"भर्तुः शुश्रूषणं स्त्रीणां परो धर्मो ...."[23],

वाल्मीकि रामायण में भी सीता के अनुसार पत्नी के लिये पति सेवा के अतिरिक्त कोई तपस्या नहीं है[24]। इस प्रकार के आदर्श परिवार के कर्तव्यों का वर्णन भारतीय शास्त्रों में तथा कार्यरूप में प्रचलन भारतीय परिवारों में ही उपलब्ध होता है। स्त्रियों की सुरक्षा के लिये उन्हें सदैव किसी पुरुष के संरक्षण में देना वांछनीय समझा गया है। क्योंकि संसार में दुष्टों की कमी कमी नहीं रही है। अबला की सुरक्षा करना भी आदर्श परिवार का कर्तव्य माना गया है।

नानकचन्द्रोदय महाकाव्य में आदर्श परिवार के कर्तव्यों का अवलोकन

---

22. हिन्दु परिवार मीमांसा : पृ.20

23. भाग.पुरा. 10.29.24

24. पतिशुश्रूषणान्नार्यास्तपो नान्यद्विधीयते।
सावित्री पतिशुश्रूषां कृत्वा स्वर्गे महीयते।
तथावृत्तिश्च याता त्वं पतिशुश्रूषया दिवम्॥ - वा.रा.2.118.9-10

होता है । प्रत्येक घर में अतिथि सत्कार की भावना का उल्लेख उपलब्ध होता है-

ससेविता: प्रतिगृहं परमातिथेयै:
यस्मिन् प्रवास विपदं न विदन्ति पान्था: [25] ।।

कलियुग में समस्त धर्मों के ध्वस्त हो जाने पर भी लोग वेदों के मार्ग से विचलित नहीं होते[26] हुये उल्लिखित किये गये हैं, जिस से स्वकर्म में प्रवीण तथा मुसीबत में भी अपने पथ से भ्रष्ट न होने वाले लोगों की विद्यमानता का आभास होता है ।

दान के बारे में उल्लेख करते हुये लिखा है कि जिस दान से अपने आप को तथा परिवार को दु:ख न हो, वही उचित कहलाता है -

ते देव दानं शंसन्ति धर्मज्ञा अपि सर्वश: ।
न स्वस्य न कुटुम्बस्य येन पीडा प्रजायते [27] ।।

आदर्श परिवार का कर्तव्य दान करना है, परन्तु ऐसा दान भी निष्फल होता है जिस के करने से किसी प्रकार का कष्ट हो, इस प्रकार नियमानुसार यथाशक्ति दान करने का सकेत दिया गया है ।

आदर्श परिवार में श्रेष्ठ गुणों से युक्त सज्जन लोग अवतार रूप में होते हैं, जिन के सम्पूर्ण क्रियाकलाप अन्य लोगों के कल्याण हेतु होते हैं[28] । जो कि आदर्श परिवार के लिये सर्वोत्तम गुण दिखाई देता है ।

पाणिग्रहण आदि के अवसर पर दोनों पक्षों द्वारा विचार किया हुआ समय उत्सव रूप के लिये स्वीकार किया जाता है, जिस से किसी को भी असुविधा न हो[29] । विशेष कर कन्या पक्ष वाले इस से प्रभावित होते हैं, इसीलिये समुचित रूप में उभय पक्ष निर्णय करते हैं तथा कार्यक्रम का आयोजन करते हैं, इस

---

25. ना॰चं॰ 2॰4 एवं द्र॰ 5॰13। एवं द्र॰ 3॰59

26. कलावपि ध्वस्त समस्त धर्मे, न वेदमार्गात्प्रचलंति कि?चित् ।
·····स्व कर्मणादेवदिन इत्युदारम् ।। - ना॰चं॰ 2॰19

27. ना॰चं॰ 3॰26

28. जगति सुकृतन: कृतावतारा:····· ।
मितरजनै: सकला: क्रिया कलापा: ।। - वही, 4॰57

29. कर पीडनाय समय सुखद:
कुलयोर्द्वयो: सुचिरमुत्सवकृत् ।। - वही, 5॰16

का उल्लेख प्राप्त होता है । आदर्श परिवार में शुभावसरों पर गुरूजनों का विशेष सम्मान किया जाता है । श्रीगुरूनानक देव के विवाह अवसर पर कुल पुरोहित हरिदयालु जी का विशेष सत्कार करते हुये गुरू वशिष्ठ जी की तरह उन को साथ ले जाया जाता है -

अधिगत: शिबिकां स हिरण्यमयीं
हरिदयालुरशोभत पण्डित: ।
परिणये दशकन्धर विद्विषो
गुरूवशिष्ठ इवातिप्रतिष्ठित:[30] ।।

भारतीय संस्कृति के मूलभूत धार्मिक कार्यों का सम्पादन भी विधिवत् करना एवं कराना भारतीय आदर्श परिवार का कर्तव्य है, इस को अनुष्ठित क तथा जीवित रखते हुए नानक जी के पाणिग्रहण अवसर पर वैदिक-मन्त्रोच्चारण सहित तथा शास्त्रोक्त, परम्परागत विधान से संस्कार निष्पन्न होता है[31] ।

आदर्श परिवार में रहकर जीवन यापन करने वाले मनुष्य का उल्लेख करते हुये कहा है कि उसे अपने परिवार का भरण-पोषण करना चाहिये जो कि उस का परम धर्म है अन्यथा जो इस कर्तव्य का पालन नहीं करता है वह कायर कहलाता है तथा कायर ही विरक्ति के मार्ग को अपनाता है[32] । इसलिये परिवार में रहने वाले प्रत्येक व्यक्ति का कर्तव्य होता है कि उस में निवास करने वाले प्रत्येक प्राणी की अन्न-भोजन, वस्त्र, आवास इत्यादि की समुचित व्यवस्था करे, यह व्यवस्था सामूहिक रूप से कार्यान्वित हो सकती है, प्रत्येक मनुष्य अपना-अपना धर्म समझ कर इस का पालन करता है तो वह परिवार वास्तविक आदर्श परिवार कहलाता है ।

आदर्श परिवार में घर में आये हुये विद्वान् से ज्ञान प्राप्त करने का वर्णन करते हुये उल्लेख है कि "नानक जी लाल के घर पन्द्रह दिन निवास करते हैं और वहाँ आध्यात्मिक कथाओं को सुनाते हैं तथा परिवार में रहने वाले

---

30. ना॰चं॰ 5॰46

31. ना॰चं॰ 5॰113-119 पर्यन्तं

32. कुटुम्बपोषे किल कातराणां
विरक्तिमार्ग: सुगमो नराणाम् ।। - ना॰च॰ 6॰122, एवं द्र॰6॰125

सदस्यों की बातों का उत्तर देते हैं[33]। आदर्श परिवार में रहने वाले लोगों का यह कर्तव्य होता है कि घर पर आये विद्वान् के विचारों का लाभ प्राप्त करे और अपनी शङ्काओं का समाधान प्रश्नोत्तर माध्यम से प्राप्त करे, जिस का अवलोकन यहाँ होता है।

इस प्रकार महाकाव्य में आदर्श परिवार के कर्तव्यों का विस्तृत वर्णन तो नहीं, परन्तु संकेतों द्वारा सम्पूर्ण प्रतिपादित कर दिया गया है। परिवार में रहते हुये जिन कार्यों को करना तथा जिन का त्याग करना चाहिये, उन सभी का उल्लेख करते हुये समाज में आदर्श परिवार के कर्तव्यों का पालन कर लोगों को अपने राष्ट्र को उन्नत बनाने में सहयोग देने की प्रेरणा दी गई है। यह तभी सम्भव हो सकता है जब हमारा परिवार द्वेष भावना से रहित होकर, सशक्त, सुसमृद्ध तथा सुसंस्कृत होगा।

पिता का पुत्र-पुत्री के प्रति सम्बन्ध तथा पिता का सम्मान -

पिता शब्द की व्युत्पत्ति "पा" रक्षणार्थक धातु से हुई है, जिस का अर्थ है सन्तान की रक्षा करने वाला। इस प्रकार पिता सम्पूर्ण परिवार का पालन-पोषण करता है। अपने परिवार के लिये भोजन लाता, उस की रक्षा करना तथा सन्तान को शिक्षा देना तीन मुख्य कार्य पिता के होते हैं, जिन का उल्लेख कालिदास ने विनय, रक्षण तथा भरण के नामों से किया है -

प्रजानां विनयाधानाद्रक्षणाद् भरणादपि।
स पिता पितरस्तासां केवलं जन्म हेतवः[34]॥

ऋग्वेद में पिता को अन्न देने वाला कहा गया है -

"मां हवन्ते पितरं न जन्तवो हं दाशुषे विभजामि भोजनम्"[35]।

---

33. अध्यात्मवाद बहुलाः कथान्तरकथास्ता
रात्री स पञ्चदशालागृहे निनाय॥ - ना.चं. 7.143

34. रघुवंश. 1.24

35. ऋ. 10.48.1

45610

सामाजिक दृष्टि से सन्तान को उत्पन्न करना पिता के लिये उतना महत्त्वपूर्ण नहीं है, जितना कि उस का पालन-पोषण तथा शिक्षित करना आवश्यक है ।

पिता अपनी सन्तान का भरण करता है । इसलिये असहायावस्था में पुत्रों द्वारा पिता का सम्मान करना तथा आदर भाव उत्पन्न होना स्वाभाविक है । इसीलिये प्राचीन काल में प्रत्येक शिष्य को गुरू उपदेश देता था कि "मातृदेवो भव, पितृदेवोभव"[36] । माता-पिता की देवता के समान पूजा करनेको कहा है । मनुस्मृति में पिता को प्रजापति की मूर्ति कहा गया है-

आचार्यो ब्रह्मणो मूर्ति: पिता मूर्ति: प्रजायते:[37] ।

मनु ने ही आगे कहा है कि "माता पिता सन्तान उत्पन्न करने में जो कष्ट सहन करते हैं, पुत्र-पुत्री उस का बदला सौ वर्ष तक भी नहीं चुका सकते हैं"[38] । इसीलिये माता-पिता और आचार्य का प्रिय कार्य अवश्य करना चाहिये, क्योंकि इनकी सेवा सर्वोत्तम तपस्या कही गई है -

तयोर्नित्यं प्रियं कुर्यादाचार्यस्य च सर्वदा ।
तेष्वेव त्रिषु तुष्टेषु तप: सर्वं समाप्यते[39] ।।

भारतीय धर्मशास्त्रों के उल्लेख तथा समाज में व्यावहारिक रूप में अवलोकन से ज्ञात हो जाता है कि पिता के सन्तान के प्रति तथा सन्तान के पिता के प्रति घनिष्ठ सम्बन्ध होते हैं, जिन का पालन करना परमावश्यक होता है । सन्तान को उन की आज्ञानुसार कार्य करने को भी सब से उत्तम तप कहा है -

तेषां त्रयाणां शुश्रूषा परमं तप उच्यते[40] ।

---

36. तैत्ति॰उप॰ १॰११॰2
37. मनु॰स्मृ॰ 2॰226
38. यं मातापितरौ क्लेशं सहेते सम्भवे नृणाम् ।
न तस्य निष्कृति: शक्या कर्तुं वर्ष शतैरपि ।। - मनु॰स्मृ॰2॰227
39. मनु॰स्मृ॰ 2॰228
40. वही, 2॰229

नानक चन्द्रोदय महाकाव्य में पुत्र के जन्म पर पिता द्वारा खुशी से देवताओं का पूजन कर विद्वानों को आमन्त्रित कर पुत्र का नामकरण करने का जो उल्लेख है[41], उस से पिता का पुत्र के प्रति प्रेम एवं पिता-पुत्र के अटूट सम्बन्ध का अवलोकन होता है। ज्योतिषविद् विद्वान् को बुलाकर पुत्र के गुणों को जानने की जिज्ञासा, तथा विविध प्रकार के आभूषणों, वस्त्रों तथा गौओं का मुक्त हस्त से पुत्र जन्म के शुभावसर पर दान देना जो वर्णित है,[42] उस से ज्ञात होता है कि पिता पुत्र को श्रेष्ठ गुणों से युक्त अपने वंश का नाम-उन्नत करने वाला बनाना चाहता है।

पुत्र जब पिता के विचार में अनुचित कार्य करने लग जाता है तो वह कुपित होता है, जब घर की वस्तुओं को नानक याचकों को वितरित करते हैं, तो पिता "कालवर्मा" क्रुधित होते हैं[43]। पिता का भरण-पोषण के साथ-साथ शिक्षण भी कर्तव्य होता है, उसी को पूर्ण करने हेतु नानक को वेदों का अध्ययन करने के लिये गुरू के पास भेज दिया जाता है -

उपनीय गुरूनुपनीय सुतं
निगमाध्ययने नियुयोज पिता[45] ।।

पुत्र को गृहकार्य चलाने के लिये व्यापार आदि से धन अर्जित करने के कार्यों में भी पिता ही नियुक्त करता है[46], क्योंकि पिता का पुत्र के साथ सम्बन्ध ही ऐसा है कि पुत्र जैसा भी हो परन्तु पिता पुत्र को सुखी देखना चाहता है, इसीलिये वह अपने समक्ष उसे किसी न किसी कार्य में कुशल कर देना चाहता है, ताकि वह बाद में अपने परिवार का भरण-पोषण कर सके।

---

41. आहूय बन्धून गणकान बुधांश्च····नाम प्रसिद्धं जगतीतले यत् ।
- ना·चं· 2·51 एवं द्र·6·25

42. ना·चं· 2·54, 56 एवं द्र· 2·80

43. विससर्ज स भिक्षुकेभ्य: ईष-
त्पितरि क्रोधभरे परं सरोध ।। - वही, 2·102, एवं द्र·3·44

~~44. ना·चं· 2·106~~

45. वही, 3·3

46. विक्रयं कुरु वृथा स्थितोऽसि किम् । - ना·चं· 3·5

पिता के पुत्र के साथ वास्तविक सम्बन्ध को द्योतित करते हुये उल्लेख किया गया कि यदि जुआ खेलने आदि दुर्व्यसनों में पुत्र पड़ जाता है तब भी पिता उस के ऊपर दयालु रहता है[47]। क्योंकि खून का सम्बन्ध ही इतना गहरा होता है कि उसे कुछ कहना असम्भव हो जाता है। प्रेम से उसे समझाया जाना पड़ता है। पिता को पूर्ण अधिकार होता है कि वह पुत्र से उसके आय-व्यय के बारे में पूर्ण जानकारी प्राप्त करे। इसीलिये कालवर्मा जब नानक के पास जाते हैं तो भोजनादि करने के उपरान्त प्रश्न करते हैं कि तुम ने कितना धन अर्जित किया है तथा कितना खर्च किया है[48]। इस प्रकार प्रस्तुत महाकाव्य में पिता द्वारा पुत्र को समय-समय पर सचेत किया जाता है कि उसके क्या कर्तव्य हैं, उसे कौन से मार्ग पर चलना चाहिये तथा किन नियमों के अन्दर रह कर पारिवारिक जीवन का पालन करना चाहिये। इन बातों का ज्ञान प्रदान करने के लिये ही पिता-पुत्र का पवित्र-सम्बन्ध होता है।

पिता के पुत्र की तरह पुत्री के साथ भी सम्बन्ध होते हैं। माता-पिता पुत्री का पालन-पोषण करते हैं और जब वह युवावस्था को प्राप्त होती है तो उस का विवाह कर दिया जाता है, ताकि वह पति के साथ पारिवारिक जीवन का अनुभव कर सके। विवाहोपरान्त भी पितृ-गृह के साथ कन्या के सम्बन्ध बने रहते हैं तथा समय-समय पर कन्या के यहाँ पिता स्वयं अथवा उस के भाईयों को कुशल-क्षेम ज्ञात करने हेतु भेजता है।

आजकल के परिवारों में प्राय: पुत्री द्वारा पिता पैरों का स्पर्श नहीं कराते हैं, परन्तु प्रस्तुत महाकाव्य के उल्लेख से ज्ञात होता है कि उस समय लड़की से चरण स्पर्श करवा लिया जाता था, जब काल वर्मा पुत्री के यहाँ जाते हैं तो पितृ-स्नेह से विह्वल नानकी अश्रु-धारा बहाती हुई पिता को प्रणाम करती है[49]। पिता पुत्री को यथाशक्ति द्रव्य, मिठाई आदि लेकर उसके यहाँ

---

47. द्यूतादिकं दुर्व्यसनं यदि स्यात्तथापि वाले पितरौ दयालू।
- ना.चं. 3.47

48. काल: पुत्रम पृच्छदर्जितमर्थजातं किं व्ययं प्रापितम्। - वही, 4.35

49. पत्यो: प्रणता च नानकी, पितृवात्सल्यसमुद्गताश्रुभि: ।। -वही, 4.37

जाता है, क्योंकि भारतीय संस्कृति में कन्या के घर का पानी-ग्रहण करना भी निषिद्ध किया गया है, इसीलिये जब वहाँ जाया जाता है तो कुछ ले कर जाया जाता है -

कालो ददौ स्व कन्यायै द्रविणं मोदकानि च ।
आश्वासयामास चिरं वचनैःस्नेहकोमलैः[50] ।।

इस का एक कारण यह भी होता है कि पुत्र को पिता की सम्पत्ति का पूर्ण अधिकार होता था इसीलिये कन्या जिसे कि पिता के घर की भूमि आदि का भाग प्राप्त नहीं होता था, उस के लिये पितृ-पक्ष द्वारा पूर्णशक्ति से विवाह के समय अथवा बाद में कुछ न कुछ दिया जाता था, जो कि आजकल दहेज के नाम से जाना जाता है । आजकल पुत्री को भी पिता की सम्पत्ति में समानता का अधिकार प्रदान कर दिया गया है । माँग कर दहेज ग्रहण करने की कुरीति का प्रचलन जो समाज में अधिक दिखाई दे रहा है उस का उल्लेख प्रस्तुत महाकाव्य में उपलब्ध नहीं होता है, केवल मात्र पिता-पुत्री के प्रणय-सम्बन्ध तथा संस्कृति पर आधारित मूल्यों के अनुसार ही कन्या को यथा-शक्ति दान रूप में धनादि दिया जाता है ।

कन्या के घर में पिता का अधिक दिन रहना समाज में प्रचलित नहीं था, इसीलिये कालवर्मा नानकी को कहते हैं कि चिरकाल से आप का कुशल क्षेम ज्ञात करने की जिज्ञासा थी, वह जान ली अब आप के जहाँ अधिक देर रहना ठीक नहीं लगता है[51] । भारतीय समाज की जो गरिमा-पूर्ण प्रतिष्ठा सम्पूर्ण विश्व के परिवारों में बनी हुई है, उसी को ध्यान में रखते हुये पिता-पुत्री के सम्बन्ध को प्रतिपादित किया गया है । कन्या के पिता को विनय से युक्त वर पक्ष वालों का सत्कार करते हुये वर्णित किया गया है[52], जो कि प्राचीन काल से चली आ रही प्रथा है, जिस का आज भी समाज में अनुसरण किया जाता है । पिता

---

50. ना॰चं॰ 4॰38

51. अब्रूत कालो भवतो व्यलोकयं- ·····
न शोभते मे स्थितिरत्र सत्तम ।। - ना॰चं॰ 4॰40

52. अथ मूल चन्द्र उपगम्य बन्धुभि····
विनयादयाचत विवाहसज्जताम् ।। - वही, 5॰108

का कन्या के साथ कितना अटूट सम्बन्ध वर्णित है कि कन्या-दान करने के साथ-साथ वह विनम्र व्यवहार से अभ्यागत रूप में आये हुये वर-पक्ष वालों की सेवा करता है, ताकि उस घर में जा कर पितृ-पक्ष की कमी के कारण कन्या को कुछ कहा न जाये तथा शक्ति के अनुसार दानरूप में धन दिया जाता है ।

माता का पुत्र-पुत्री के प्रति सम्बन्ध -

सन्तान के साथ पिता के सम्बन्धों के साथ-साथ माता के सम्बन्ध भी महत्त्वपूर्ण होते हैं । सन्तान को नौ मास तक गर्भ में धारण करने तथा शुरू के समय में उसका भरण-पोषण करने से सन्तान के साथ पिता की अपेक्षा माता का घनिष्ठ सम्बन्ध दिखाई देता है । हिन्दु परिवार-मीमांसा में कहा गया है कि - "माता देहदात्री होने के साथ ज्ञानदात्री भी है । सन्तान पर बचपन में माता के अच्छे या बुरे प्रभाव अमिट रूप से अंकित हो जाते हैं । वह बच्चों का पहला और सबसे बड़ा गुरू है"[53] । ऋग्वेद में अनेक स्थलों पर माता का उल्लेख मिलता है । परमात्मा के पालन रूप में पिता के स्वरूप को पर्याप्त न मान कर भगवान् को माता भी स्वीकार किया गया है -

"त्वं हि न: पिता वसो त्वं माता शतक्रतो बभूविथ"[54] ।

मनुस्मृति में सहस्र पिताओं की अपेक्षा माता का गौरव अधिक कहा गया है -

उपाध्यायान्दशाचार्य आचार्याणां शतं पिता ।
सहस्रं तु पितृन्माता गौरवेणातिरिच्यते[55] ।।

अभिज्ञान शाकुन्तल में नारी जीवन में मातृत्व को स्वीकार करते हुये कण्व शकुन्तला को विदा करते हुये कहते हैं कि - "तू पवित्र पुत्र को जन्म दे कर मेरे वियोग को भूल जायेगी"[56] यहाँ माता का सम्बन्ध सन्तान के प्रति इतना प्रगाढ़ लक्षित किया है, जिस के कारण पूर्व-दु:खों को माता विस्मृत कर देती है। महाभारत में माता के पुत्र के प्रति अगाध प्रेम को वर्णित करते हुये कहा है -

---

53. हिन्दु परिवार मीमांसा, पृ. 165
54. ऋ. 8.68.11
55. मनु.स्मृ. 2.145
56. अभिज्ञान शाकुन्तलम्, 4.18

"परिष्वज्य च बाहुभ्यां प्रस्रवैरभ्यसिंचत ।
मुमोच वाष्पं दाशेयी पुत्रं दृष्ट्वा चिरस्य तु"[57] ।।

सत्यवती ने अपने पुत्र कृष्ण द्वैपायन को देख कर दूर से उसका आलिंगन किया, तथा स्वयमेव दुग्ध-धारा निकल गई एवं खुशी के आँसू बहाने लगी । इस प्रकार वैदिक ग्रन्थों तथा धर्मशास्त्रों ने सन्तान के साथ माता का सम्बन्ध घनिष्ठ रूप में वर्णित किया है । माता की सर्वश्रेष्ठता को स्वीकार करते हुये अथर्ववेद में कहा गया है कि "पुत्र को चाहिये कि वह माता के अनुकूल बन कर रहे"[58] । अर्थात् माता का सम्बन्ध ऐसा है कि जिस प्रकार का भी आदेश वह दे उस का पालन करना सन्तान का परम-धर्म होता है ।

नानक चन्द्रोदय महाकाव्य में माता के स्वाभाविक प्रेम को बताया गया है । माता के मन में पुत्र के प्रति जो दया-भावना होती है, उस का उल्लेख भी किया गया है, पिता के कठोर वचन कहने पर भी माता सन्तान को कठोर शब्द नहीं कहती है[59] । यहाँ पुत्र के प्रति अगाध-प्रेम को लक्षित करते हुये, माता के सम्बन्ध को द्योतित किया गया है कि किसी दशा में भी माता उसे कठोर शब्द नहीं कहती है, क्योंकि सन्तान को उत्पन्न करने के समय युवावस्था को प्राप्त होने तक माता के साथ पुत्र-पुत्री का अटूट सम्बन्ध होता है ।

पुत्री के साथ माता के प्रेम भरे सम्बन्ध का उल्लेख चन्दोराज्ञी के द्वारा वर्णित किया गया है । जब सुलक्षणी का विवाह संस्कार होता है तो अश्रुपूर्ण आँखों द्वारा कन्या को देखती हुई माता चन्दोराज्ञी पुत्री को रोती हुई देख कर कहती है कि -"बेटी रो मत - तू मेरे हृदय में स्थित है, मैं तुझे देखने शीघ्र आऊँगी"[60] । यहाँ माता के मन के साथ पुत्री का सम्बन्ध

---

57. महा॰भा॰ 1॰105॰26

58. मात्रा भवतु सम्मना: । - अथर्ववेद, 3॰30॰2

59. तद्वलोक्य चुकोप पिता परं
न परुषं जननी तमभाषत ।। - ना॰चं॰ 2॰106

60. चन्दोराज्ञी वाष्पपूर्णायताक्षी·····
मारोदीस्त्वं मे हृदिस्थासि वत्से, द्रक्ष्यन्ती त्वामागमिष्यामि शीघ्रम् ।।
-ना॰चं॰ 5॰153 एवं द्र॰154

दिखाया गया है । बेटी को दु:खी देख कर माता चन्दोराज्ञी का मन अतीव खिन्न हो उठता है तथा उस समय पुत्री के दु:खों को वह उस के ससुराल वालों अर्थात् नानक के माता पिता को कहती है[61] यहाँ इस बात का ज्ञान होता है कि वर पक्ष वालों को पहले कुछ नहीं कहा जाता है परन्तु जब लड़की को किसी कारण से वहाँ दु:खी देखा जाता है तो फिर माता के हृदय में विद्यमान धैर्य टूट जाता है और वह फिर अनेक प्रकार से लड़की के दु:ख को दूर करने की कोशिश करती है[62] । चन्दोराज्ञी कहती है कि लड़कियों को अपने घर में नहीं रखा जाता है, वे पराये घर में ही जाती हैं तथा सभी के पुत्रियाँ भी होती हैं । इस उल्लेख द्वारा समाज को शिक्षा दी है कि जो दूसरे घर से लाई गई पुत्र-वधुओं पर अत्याचार करते हैं उन्हें इस बात का ध्यान रखना चाहिये कि उन के भी ऐसा अवसर आ सकता है । इस प्रकार समाज को सतर्क किया है कि वह बहुओं के साथ सद् व्यवहार ही करे ।

तपस्वी के रूप में नानक को देख कर माता को दीन रूप में वर्णित किया है -

रोरुद्यते ते जरया परीता मातैकपुत्रा कुररीव दीना[63] ।

माता पुत्र को आँसुओं से अवरुद्ध कण्ठ द्वारा कहती है कि -मेरे सामने कुटिया बना कर रहो ताकि मैं तुम्हें हर रोज़ देख सकूँ[64] । यहाँ माता का पुत्र के साथ कितना मार्मिक-सम्बन्ध कवि ने वर्णित किया है कि पुत्र को न देखने पर वह जीवित नहीं रह सकती है । इस प्रकार प्रस्तुत महाकाव्य में माता का पुत्र-पुत्री के साथ सम्बन्ध आदर्श रूप में वर्णित है, जिस का अनुसरण करने से आज-कल का पारिवारिक जीवन आदर्श-जीवन बन सकता है ।

---

61. ना॰चं॰ 6॰3
62. कन्या न तिष्ठन्ति गृहे स्वकीये ।
सर्वा व्रजन्त्येव परस्य वेश्म ।। - ना॰चं॰ 6॰4 एवं द्र॰ 6॰5-6
63. ना॰चं॰ 8॰25
64. माताऽब्रवीदश्रुनिरुद्धकण्ठा जीवामि यावद् वसतावदेव ।
पुरो वहिर्वत्स । कुटिं विधाय द्रक्ष्याम्यहं त्वामपरे यथैव ।। - ना॰चं॰8॰27

पुत्र कामना तथा उस के कर्त्तव्य -

विवाह का मुख्य प्रयोजन सन्तानोत्पादन है । विवाह-संस्कार परिवार का प्रमुख साधन है । सन्तानोत्पत्ति के बिना मनुष्य अधूरा होता है, तथा जो सन्तान-उत्पन्न कर अपने परिवार में वृद्धि नहीं कर सकता वह मनुष्य वास्तव में समाज से पृथक् रहता है । सन्तान उत्पादन होते समय प्रत्येक माता-पिता की इच्छा होती है कि उन्हें पुत्र-प्राप्ति हो, क्योंकि हमारे धर्मशास्त्रों तथा वैदिक ग्रन्थों में माता-पिता का उद्धार करने वाला पुत्र ही माना है । इसीलिये वैदिक मन्त्रों तथा साहित्य में पुत्र प्राप्ति की तीव्रतम कामना की गई है । विवाह के उपरान्त पत्नी से यही शुभ कामना वैदिक-मन्त्रों में की जाती है कि वह "उत्तम पुत्रों वाली तथा वीरों को जन्म देने वाली हो" -

"वीरसूर्देवृकामा स्योना शंनो भव द्विपदे शं चतुष्पदे"[65]

अथर्ववेद में सोम देवता से प्रार्थना की गई है कि पत्नी उत्तम सन्तान उत्पन्न करे -

"सोमो राजा सुप्रजसं कृणोतु"[66] ।

पुत्र-प्राप्ति की इच्छा अधिकतर इसलिये की जाती थी क्योंकि बुढ़ापे में पिता का सहारा, पिता के पश्चात परिवार का भरण-पोषण करने वाला, धार्मिक कार्य करने वाला और पिता का उत्तराधिकारी वही होता था । कन्यायें इस की अधिकारिणी नहीं मानी जाती थीं, क्योंकि विवाहोपरान्त वे अन्य कुल में चली जाती थीं । ऋषि, देव एवं पितृ ऋणों से मुक्त करने वाला पुत्र ही माना जाता है । तैत्तिरीय संहिता में कहा गया है कि - "ब्रह्मचर्य, यज्ञ तथा प्रजा द्वारा पुरुष क्रमशः ऋषि, देव एवं पितृऋणों से मुक्त होता है, जो पुत्रवान् यज्ञ अनुष्ठान करने वाला तथा ब्रह्मचर्य का पालक होता है, वही

---

65. ऋ. 10.85.44

66. अथर्ववेद, 14.1.49

इन तीन ऋणों से निर्मुक्त हो सकता है"[67]। वासिष्ठ धर्मसूत्र में पुत्रवान् मनुष्यों को स्वर्ग के सुख सुकर कहे हैं -

"अनन्ता: पुत्रिण: लोका:, नापुत्रस्य लोकोऽस्तीति श्रूयते"[68]।

पुत्र प्राप्ति की इस इच्छा के पीछे जो जिज्ञासायें माता-पिता ले कर चलते हैं तथा उस को प्राप्त करने के लिये अनेक यज्ञ-अनुष्ठान करते हैं, पुत्र का यह धर्म बन जाता है कि वह माता-पिता का सम्मान, आज्ञा का पालन, शुश्रूषा, तथा वंशवृद्धि आदि कर उन की इच्छाओं को पूर्ण करे। नानक चन्द्रोदय महाकाव्य में माता-पिता की आज्ञानुसार कार्य करने वाले आदर्श पुत्र का उल्लेख ही मिलता है, जिस से तत्कालिक समाज के परिवारों की वरिष्ठता का आभास होता है। सर्वप्रथम तो पिता के आदेशानुसार गुरू नानक देव जंगल में गौयें चराने चले जाते हैं तथा अन्य कार्य जो भी वे कहते हैं, करते हैं परन्तु पिता के क्रुधित होने पर भी बुरा नहीं मानते हैं"[69] जिस से वास्तव में जो पुत्र का कर्त्तव्य होता है, उस का पालन होता है। पिता का पुत्र द्वारा विशेष सम्मान भी वर्णित है जो कि नतमस्तक हो प्रणाम कर के किया जाता है[70]। पुत्र द्वारा जब कोई निन्दनीय कर्म हो जाता है तो माता-पिता द्वारा उसका प्रायश्चित करने के लिये कहने पर पुत्र को उन की आज्ञानुसार वैसा कार्य कर भूल का पश्चाताप कर लेना चाहिये, तभी वह आदर्श पुत्र कहलाता है। प्रस्तुत महाकाव्य में गुरूदत्तसेगाय की हत्या हो जाने पर पिता हरिराय द्वारा निन्दा किये जाने पर, प्रायश्चित रूप में वह पिता के आगे हाथ जोड़ कर क्षमा याचना करता हुआ देह त्याग कर देता है[71]।

माता का भी विशेष आदर-सत्कार पुत्र द्वारा किया जाता है क्योंकि

---

67. जायमानो वै ब्राह्मणस्त्रिभि ऋणवा जायते ब्रह्मचर्येण ऋषिभ्यो यज्ञेन देवेभ्य: प्रजया पितृभ्य: । एष वा अनृणो य: पुत्री यज्वा ब्रह्मचारिवासो।
- तैत्ति॰सं॰ 6॰3॰10॰5

68. वासिष्ठ धर्म सूत्र, 17॰12

69. ना॰चं॰ 2॰107 एवं द्र॰ 2॰106, 3॰6

70. कालं समागतमसौ प्रणनाम मूर्ध्ना, मूर्धन्यजिघ्रदयमेतमथालिलिङ्ग।।
-ना॰चं॰ 4॰33

71. ना॰चं॰ 20॰125 एवं 20॰129

माता का स्थान तो पिता से भी बढ़ कर है । जब नानक का विवाह संस्कार हो जाता है तो वह घर आ कर सभी आभूषण, वस्त्रादि माता को अर्पण करता है तथा माँ का आशीर्वाद प्राप्त करने के लिये दोनों चरणों पर मस्तक रख कर प्रणाम करता है[72] । यहाँ माता का जो गरिमा से परिपूर्ण स्थान परिवार में बना है, उस की रक्षा हुई है क्योंकि माता के मन में यही इच्छा होती है कि उस की सन्तान समय-समय पर उस के पास आ कर उसे सम्मान प्रदान करे । इस प्रकार नानकचन्द्रोदय महाकाव्य में परिवार की महिमा एवं आदर्शों को भारतीय संस्कृति के अनुरूप चित्रित किया गया है ।

दाम्पत्य सम्बन्ध -

प्राचीन काल से भारतीय परिवारों में पति-पत्नी का सम्बन्ध रहा है, किसी काल में पति की प्रधानता अधिक हुई है तो कभी पत्नी की । परन्तु गृहस्थ जीवन में ये दोनों रथ के पहिये के समान हैं - जैसे एक चक्र द्वारा रथ चल नहीं सकता है उसी प्रकार पति-पत्नी में से एक के भी अभाव में परिवाररूपी रथ आगे नहीं बढ़ सकता है । प्राचीनकाल में पत्नी से पति की सर्वश्रेष्ठता स्वीकार की जाती थी तथा पत्नी-पति के कथनानुसार ही कार्य-कर सकती थी । महाकवि कालिदास पत्नी पर पति की सभी ओर से प्रभुता स्वीकार करते हैं - "उपपन्ना हि दारेषु प्रभुता सर्वतोमुखी"[73] इस प्रकार स्त्रियों से बढ़ कर पति की श्रेष्ठता पहले रही होगी । परन्तु समय बीतने के साथ-साथ समाज में जहाँ-कहीं स्त्रियों पर अत्याचार होते थे अथवा उन को समान अधिकार प्रदान नहीं किया जाता था, वह अधिकार उन्हें मिलने लगा तथा पत्नी का स्थान पति के लिये महत्त्वपूर्ण बन गया उस के बिना वह अपूर्ण समझा जाने लगा । पत्नी पति की अर्धाङ्गनी के रूप में मानी जाने लगी । तैत्तिरीय ब्राह्मण में उल्लेख मिलता है कि "

---

72. ~~न॰च॰~~ सर्वाङ्गरत्नाभरणानि मात्रे, निवेद्य चित्राणि वराम्बराणि ।
श्री नानकः पादयुगं.....लोकैरभिनन्द्यमानः ।। -ना॰चं॰5॰164

73. अभिज्ञानशाकुन्तलम्; 5॰26

"अर्धो वा एष आत्मनो यत्पत्नी"[74]

ऋग्वेद में भी पत्नी को पति का आधा भाग स्वीकार किया गया है[75]। पति जब कोई भी धार्मिक कार्य करता था तो पत्नी के बिना वह कार्य अपूर्ण माना जाता था। रामायण में वर्णित राम द्वारा अश्वमेध यज्ञ करने की बात लोक प्रसिद्ध ही है कि यज्ञ में राम सीता के रूप में सोने की सीता बनाते हैं, तब यज्ञ करते हैं। इस प्रकार "दम" का जो अर्थ घर का प्रभु है, उस के अनुसार "दम्पत्ति" का घर पर पूर्ण अधिकार होता है। आपस में भी पति-पत्नी का गहरा सम्बन्ध होता है। ऐत्तरेय ब्राह्मण में पत्नी को सखा कहा है - "सखा ह जाया"[76]। ऋग्वेद में भी दोनों के मित्रता के सम्बन्ध का उल्लेख मिलता है। "वे दोनों (पति-पत्नी) एक चित्त हो कर पुत्र उत्पन्न करते हैं, और नित्य उपभोग करने योग्य दुग्ध आदि उत्तम द्रव्यों से शुद्ध करते हैं और उस का पालन करते हैं[77]।

पत्नी के लिये पति की सेवा करना सर्वोत्तम धर्म कह कर मनु ने इन दोनों में ऐसा सेवा-भाव से पूर्ण सम्बन्ध जोड़ दिया है कि उस का पालन करते हुये वे दोनों परिवार की नौका को सुगमता से आगे चलाते हैं -

यस्यै दद्यात्पिता त्वेनां भ्राता वाऽनुमते: पितु: ।
तं शुश्रूषेत जीवन्तं संस्थितं च न लङ्घयेत्[78] ।।

पति के कुपित होने पर भी घर में स्त्री को सर्वदा प्रसन्न हो गृह-कार्यों में कुशल, घर को शुद्ध एवं स्वच्छ रखने वाली और अधिक व्यय नहीं करने वाली होने के लिये भी मनु कहते हैं[79]। इसी बारे कालिदास भी उल्लेख करते हैं कि

---

74. तैत्तिरीय ब्राह्मण, 3·3·3·5
75. उत वा नमो अस्तुत: पुमाँ इति ब्रुवे पणि ।
स वैरेदेय इत्समः ।। - ऋ· 5·61·8
76. ऐत्तरेय ब्राह्मण: 33·1
77. "या दम्पती समनसा सुनुत आ च धावत: ।
देवासो नित्ययाशिरा"।। - ऋ· 8·31·5
78. मनु स्मृ· 5·151
79. सदा प्रहृष्टया भाव्यं गृह कार्येषु दक्षया ।
सुसंस्कृतोपस्करया व्यये चामुक्तहस्तया ।। - मनु·स्मृ· 5·150

"पति के कुपित होने पर भी पत्नी को क्रुधित हो कटु वचन नहीं बोलने चाहिये"[80] । पद्मपुराण में स्त्री को पतिव्रता कहते हुये लिखा है कि वही पतिव्रता है जो कार्य में दासी, कामसुख में वेश्या, खिलाने में माता और विपत्ति के समय उत्तम परामर्श देने वाली हो -

कार्ये दासी रतौ वेश्य भोजने जननी समा ।
विपत्सु मंत्रिणी भर्तुः सा च भार्या पतिव्रता[81] ।।

ब्रह्मवैवर्त्तपुराण में सर्वोत्तम व्रत, तप, धर्म और देवपूजन पत्नी के लिये पति सेवा कहा है -

पति सेवाव्रतस्त्रीणां पति सेवा परं तपः ।
पति सेवा परो धर्मः पति सेवा सुरार्चनम्[82] ।।

याज्ञवल्क्य ने पति का प्रिय कार्य करना, सास-ससुर की चरण वन्दना, उत्तम आचरण और संयम ये पत्नी के प्रधान गुण कहे हैं[83] ।

नानक चन्द्रोदय महाकाव्य में दाम्पत्य-सम्बन्ध का जो उल्लेख मिलता है उस में पत्नी के प्रति न कहीं त्याग अथवा ताडनादि यातनाओं का वर्णन है तथा न ही आजकल के समाज में दिखाई देने वाली स्वतन्त्रता का अवलोकन होता है । भारतीय धर्मशास्त्रों के अनुरूप ही पति-पत्नी के सम्बन्धों का ज्ञान प्राप्त होता है । जो पत्नी के कार्य तथा पति के कार्य वहाँ बताये गये हैं उन्हीं के अनुसार आचरण दिखाई देता है । पति-पत्नी विषयों में आसक्त रहना ही अपने दाम्पत्य सम्बन्ध का प्रमुख कार्य नहीं समझते हैं अपितु गृहस्थ के जो धर्म होते हैं, उन का पालन करना अपना परम धर्म मानते हैं[84] । पति-पत्नी के रूप में सम्बन्ध हो जाने पर सन्तान उत्पन्न कर कुल की वृद्धि करना

---

80. भर्तुर्विप्रकृतापि रोषणतया मा स्म प्रतीपं गमः । - अभिज्ञान शाकुन्तलम्, 4·17
81. पद्म पुराण, सृष्टि खण्ड, 47·56
82. ब्रह्मवैवर्तपुराण; कृष्ण खण्ड; 57·18
83. संयतोपस्करा दक्षा हृष्टा व्ययपराङ्मुखी ।
कुर्याच्छ्वशुरयोः पादवन्दनं भर्तृतत्परा ।। - याज्ञवल्क्य स्मृ·1·83
एवं द्र· 1·84-87
84. तौ दम्पती न विषयेष्वतिसक्तचित्ता-
वाचेरतुश्चिरतरं गृहमेधिधर्मान् ।। - ना·चं· 2·27

भी आवश्यक माना गया है । जिस प्रकार ज्ञान से बुद्धि का अन्धकार नष्ट हो जाता है, उसी प्रकार पुत्र को उत्पन्न कर "कालवर्मा" की पत्नी आत्म चिन्ता से मुक्त होती है -

आकस्मिके सर्वजगत्प्रसादे, शंखादिशब्देषु सुमङ्गलेषु ।
असूत साध्वीसुतमुत्तमं सा, तमोहरं ज्ञानमिवात्मचिन्ता[85] ।।

सन्तान के गुण-हीन निकलने पर पत्नी इस का दोषारोपण पति पर करती है । अर्थात् जब पति कालवर्मा कहते हैं कि पुत्र बुरे कर्म कर रहा है, उसे रोको, तो पत्नी कहती है कि आप ने ही ऐसा पुत्र उत्पन्न किया है, अब मुझे क्यों कोस रहे हो[86] । इस प्रकार दाम्पत्य-सम्बन्ध में एक-दूसरे पर सन्तान के अच्छे-बुरे कार्य की जिम्मेदारी समझी जाती है ।

जब विवाह संस्कार कर पति-पत्नी को अनेक मङ्गलाचरणों तथा शुभ वाद्यों द्वारा, घर की अन्य स्त्रियाँ, आरती उतार कर, घर के अन्दर प्रवेश कराती हैं तो नये-नये दाम्पत्य-सम्बन्ध में बँधे वे दोनों आनन्दित होते हैं-

कामिन्य: कुलरीतिचारुमतयो नीराज्य तौ दम्पती ।
स्फूर्जन्मञ्जुमृदङ्गनादमतयन्नभ्यन्तरं नन्दिता:[87] ।।

इस प्रकार उन दोनों के मधुर दाम्पत्य-सम्बन्ध तथा सुखी जीवन की ही कामना की जाती है ।

गृहस्थ से जो मनुष्य विरक्त हो जाता है, उस को रूपवान् तथा सुन्दर गुणयुक्त पत्नी भी अच्छी नहीं लगती है, जैसे नानक देव को सुलक्षणी रूपवती होने पर भी मोहित नहीं करती है[88] । वास्तव में वर्ण यहाँ यह प्रतीत होता है कि पत्नी के साथ वास कर परिवार का भरण-पोषण करते रहने पर मनुष्य किसी सिद्धि को प्राप्त अथवा योगी नहीं बन सकता था, इसीलिये नानक

---

85. ना·चं· 2·42 एवं द्र· 5·166

86. स्वभार्यामिवदत्कालो गृहवस्तु न रक्षसि ।
तयोक्तं जनिश्चोरो मामुपालभसे कथम् ।। - ना·चं· 2·103

87. ना·चं· 5·163

88. सुलक्षणी सरूपापि पत्युर्नारमयन्मन:, यथा हंसस्य रुचिरा बध्ननी स्वर्ण-शृङ्खला ।।
-ना·चं· 6·2

ऐसा अनुभव करते हैं । पत्नी का सौभाग्य पति ही होता है, यदि वह पत्नी से विरक्त हो जाता है तो वह उस की निन्दा भी करती है, जब तक तो पति अपने धर्म का पालन करता रहता है पत्नी भी पति को अपना भगवान् मान कर सेवा करती है, परन्तु उस के विरक्त हो जाने पर जब उस का धैर्य टूट जाता है तो वह उपालम्भ का पात्र पति को मानती है । इसी कारण सुलक्षणी कहती है कि "नारियाँ जिस पति के होने पर सौभाग्यवती कहलाती हैं वही मेरे से विरक्त हो गया है, तो वह अनार्य उपालम्भ का पात्र है"[89] । दाम्पत्य-सम्बन्ध स्थापित हो जाने पर पत्नी को छोड़ना निन्दनीय माना जाता है[90] । इस के लिये कहा गया है कि यह सर्वविदित है पत्नी, बिना पति के आश्रय के रह नहीं सकती है -

जानन्ति सन्तो वनिता लतेव, विनाबलम्बं कथमेव तिष्ठेत्[91] ।

पति के सुख के लिये पत्नी समय आने पर सब से बड़ी मन:कामना पुत्र प्राप्ति को भी पूर्ण करती है, जो कि परमावश्यक मानी गई है -

मृदङ्गनादोऽकृत रूचिं श्रमकर्शिताङ्गी, पत्यु: सुखाय सुषुवे समये सुतं च[92] ।

परिवार में बच्चों का भरण-पोषण करना पति-पत्नी दोनों का कार्य बताया गया है यदि कोई इस से विपरीत करता है तो वह पवित्र दाम्पत्य-सम्बन्ध को कलंकित करता है, इसी का उल्लेख करते हुए पत्नी, बच्चों वृद्ध माता-पिता को त्याग कर घर से जाने की निन्दा की गई है[93] । बिना

---

89. सुलक्षणी तामऽवदन्नार्योपालम्भमर्हति ।
नार्यो यत्कृतसौभाग्या: स एव विरसो मयि ।। - ना.चं. 6.9

90. चन्द्रोराज्ञी व्याजहाराथ खिन्ना कस्मादोषान्नानकस्तेऽप्रसन्न: ।
निर्विण्णश्चेज्जीवलोकस्य सौख्ये किं ते पूर्वं हन्त जग्राह पाणिम् ।।
-ना.चं. 6.10

91. ना.चं. 6.16

92. वही, 6.24

93. साध्वीं विहाय वनितां तनयं शिशुं च..... ।
.....हा नानक त्वमगम: परिहीणहार्द: ।।
- ना.चं. 6.43

सन्तान के होने पर भी पत्नी को पति की सम्पत्ति को प्राप्त करने का अधिकार होता है[94] । इस उल्लेख से ज्ञात होता है कि भलेही उस समय नि:सन्तान पत्नी को सम्पत्ति दी जाती थी परन्तु समाज में उस का पूर्ण सम्मान नहीं होता होगा क्योंकि वहीं पर कहा है कि - "अच्छे पुत्रों को उत्पन्न करने वाली पत्नी ~~का कैसे में अधिक~~ पति के धन को क्यों प्राप्त नहीं करेगी । अर्थात् वह अवश्य प्राप्त करती है । इस का तात्पर्य यही निकलता है कि अच्छी सन्तान उत्पन्न करने वाली पत्नी का परिवार में अधिक सम्मान होता था तथा दूसरी को सत्कार की भावना से नहीं देखा जाता था ।

नानक चन्द्रोदय महाकाव्य में ही कवि ने रामायण की कथा का उल्लेख किया है जिस में श्री रामचन्द्र के हिरण के पीछे जाने के पश्चात् जब सीता का हरण हो जाता है और श्रीरामचन्द्र आ कर पर्णशाला को खाली देखते हैं तो विलाप करने लगते हैं[95] । भगवान् राम ही दाम्पत्य सम्बन्ध में बंधने के बाद पत्नी का वियोग सहन करने में असमर्थ हो जाते हैं तो साधारण मनुष्य कैसे इस विरहावस्था से अप्रभावित रह सकता है । इस प्रकार नानक चन्द्रोदय महाकाव्य में वर्णित दाम्पत्य सम्बन्ध भारतीय संस्कृति के अनुसार दिखाई देता है ।

सहोदर-सम्बन्ध -

सहोदर शब्द का अर्थ है, एक ही पेट से उत्पन्न । अर्थात् भाई-भाई अथवा भाई-बहिन सहोदर होते हैं । एक ही माँ के उदर से जन्म ग्रहण करने के कारण इन का परस्पर प्रगाढ़ प्रेम होना स्वाभाविक ही है । हिन्दु-परिवार में भ्रातृ शब्द का स्थान महत्त्वपूर्ण है । भ्रातृ शब्द "भृ" भरण-पोषण धातु से निष्पन्न हुआ है । इसलिये पिता के बाद अपने छोटे भाई-बहिनों तथा परिवार

---

94. पत्नी विपुत्रापि लभते भर्तु-र्धनं सुपुत्रा न कथं नु राजन् ।। - ना·चं·6·78

95. राम: परावृत्य न पर्णशाला, स्थितामपश्यज्जनकस्य कन्याम् ।
रात्रिंचरैर्हन्त ।.....व्यलापीत् ।। - ना·चं·15·126

की देख-भाल बड़ा भाई ही करता है । मनु स्मृति में कहा है कि - "ज्येष्ठ भ्राता छोटे भाईयों का पालन पोषण पिता के समान करे तथा छोटे भाई उसे पिता के समान मानें[96] । गुणवान् ज्येष्ठ भाई सज्जनों द्वारा अभिनन्दनीय होता है[97] । इस प्रकार जो सहोदर-सम्बन्ध का पालन करता है, वह संसार में पूज्य होता है । सहोदर-सम्बन्ध का सुन्दर उदाहरण रामायण में श्रीरामचन्द्र, लक्ष्मण तथा भरत हैं, जब लक्ष्मण मूर्च्छित हो कर गिर पड़ते हैं तो राम सभी वस्तुओं को आसानी से प्राप्त होने वाली मानते हैं, परन्तु कहते हैं कि ऐसा स्थान कोई नहीं है जहाँ अपना भाई प्राप्त हो सके -

देशे देशे कलत्राणि देशे देशे च बान्धवा: ।
तं तु देशं न पश्यामि यत्र भ्राता सहोदर:[98] ।

इस प्रकार वहाँ विलाप करते हुये राम कहते हैं कि - "हे लक्ष्मण जिस प्रकार तुम बन में हमारे साथ आ गये थे आज मैं भी आप को अकेले मरने नहीं दूँगा आप के साथ मैं भी यमलोक को चलूँगा[99] । इसी प्रकार भरत का प्रेम भी दिखाई देता है भले ही एक माँ के पेट से इन्होंने जन्म नहीं लिया था परन्तु आज के समाज के लिये एक उदाहरण छोड़ गये हैं कि सहोदर-सम्बन्ध कितना अगाध होता है । जब भरत को पता चलता है कि राम वन को चले गये हैं तो वह विलाप करते हैं तथा राज्याभिषेक न करवा कर, जंगल में राम को वापिस लाने जाते हैं । जब वे नहीं लौटते तो वह उनके चरण-पादुका ग्रहण कर आते हैं । उन्हें सिंहासन पर रखते हैं तथा स्वयं भूमि पर शयन करते हुये कठोर चौदह वर्ष का समय व्यतीत कर देते हैं ।

---

96. पितेव पालयेत्पुत्रान्ज्येष्ठो भ्रातृन्यवीयस: ।
पुत्रवच्चापि वर्तेरन्ज्येष्ठे भ्रातरि धर्मत: ।। - मनु॰स्मृ॰9॰108

97. ज्येष्ठ: कुलं वर्धयति विनाशयति वा पुन: ।
ज्येष्ठ: पूज्यतमो लोके ज्येष्ठ: सद्भिरगर्हित: ।। - मनु॰स्मृ॰9॰109

98. वा॰रा॰ 6॰101॰15

99. यथैव मां वनं यान्तमनुयाति महाद्युति: ।
अहमत्यनुयास्यामि तथैवैनं यमक्षयम् ।। - वा॰रा॰ 6॰101॰13

जिस प्रकार भ्रातृ सम्बन्ध होता है उसी प्रकार बहिन का सम्बन्ध भी सहोदर का ही होता है । भैयादूज एवं रक्षा-बन्धन के पवित्र उत्सवों से प्रमाणित होता है कि बहिनों का स्थान महत्त्वपूर्ण है तथा वे भाईयों का पूर्ण सत्कार करती हैं । इसी प्रकार भाई भी बहिनों की हर कष्ट में रक्षा करने का प्रण लेते हैं । भाई बहिन के लिये हर वस्तु जिसे वह माँगती है, उसे ला कर देता है तथा बहिन के विवाह के समय पर भी बढ़ कर देता है । बहिन के जीवन में आने वाली मुसीबतों के बारे में भी भाई सुनता है तथा यथाशक्ति उसे सुखी रखने का प्रयत्न करता है ।

नानक चन्द्रोदय महाकाव्य में गुरूनानक देव के जीवन का ही वर्णन देवराज शर्मा ने किया है इसलिये गुरू नानक देव का अन्य भाई न होने के कारण भाई का भाई के साथ सम्बन्ध दिखाई नहीं देता है । नानकी उन की बहिन थी, इस लिये सहोदर रूप में बहिन के सम्बन्ध का उल्लेख मिलता है ।

भाई-बहिन के सम्बन्ध का उल्लेख करते हुये कहा है कि "भाई कितना भी ज्ञानी क्यों न हो, तथा सुख दु:ख को वश में करने वाला क्यों न हो, परन्तु फिर भी बहिन को विदा करने का समय आता है तो नानक जैसे यति पुरुष की आंखों में से भी विरह के आँसू निकल आते हैं -

नानको यदपि ज्ञानी न वशो हर्षशोकयो: ।
तदप्यशोचद्विरहे स्वस्वल्प विद: स्वसु: [100] ।।

बहिन के अगाध प्रेम का कितना सुन्दर प्रतिपादन मिलता है कि जब भाई कहता है कि बहिन तुम बड़ी हो मेरे पैर क्यों छू रही हो, तो वह सजल नेत्रों द्वारा कहती है कि तुम ईश्वर के अंश हो, इसीलिये पैर स्पर्श कर रही हूँ [101] । भाई के आगे बहिन अपनी ज्येष्ठता को भी पीछे कर देती है । यहाँ एक बात और प्रतीत होती है कि नानक तो ईश्वर-रूप थे, परन्तु समाज

---

100. ना•चं• 3•78

101. ज्येष्ठासि किं मे पदमस्पृशस्त्वं·····।
साश्रूणि मुंचत्य·····त्वयीश्वरांशे मम किं गुरूत्वम् ।।
- ना•चं• 3•96 एवं द्र• 10•53

में उस समय बहिन द्वारा भाई के पैर छू कर प्रणाम करने का प्रचलन था तभी तो वह कहता है तुम बड़ी हो, यदि छोटी होती तो यह उचित ही था, यह इस उल्लेख से प्रतीत होता है ।

अपने घर भाई के आने पर बहिन नानकी अपना सौभाग्य मानती है । सम्पूर्ण कुशल-क्षेम पूछ कर उस का यथाशक्ति सत्कार करती है[102] । इस प्रकार बहिन की वास्तविक खुशी द्वारा उस का प्रेम प्रस्फुटित होता है । भाई जब बहिन के पास जाता है तो खाली हाथ नहीं जाता है । कुछ ले कर जाता है नानक फल ले कर बहिन के पास जाते हैं तथा समीप बैठ कर कुशल क्षेम पूछ कर कहते हैं कि मुझे किस लिये बुलाया है[103] । यहाँ यह भी ज्ञात होता है कि बहिन के आमन्त्रित करने पर या सन्देश देने पर भाई तुरन्त वहाँ पहुँचता है । बहिन भाई के स्वभाव को जानती है क्योंकि उस के साथ अधिक सम्बन्ध होने के कारण उसे जानना स्वाभाविक ही है । इसी लिये नानकी कहती है नानक को प्रार्थना द्वारा ही समझाया जा सकेगा अन्य किसी उपाय से वह नहीं मानेगा[104] । भाई को समझाने के लिये बहिन उस के प्रति प्रेम के कारण उसे कर्तव्यों के प्रति सजग भी करती है[105] ।

भ्रातृ-वत्सला बहिन नानकी अन्य लोगों से भी भाई का कुशल-क्षेम जानती रहती है -

नानक्या पार्श्वमागमन्मर्दनो भ्रातृ-वत्सला ।
भ्रातुः प्रपृच्छ कुशलं सा भूयः साश्रुलोचना[106] ।।

भाई को तपस्वी के वेश में देख कर नानकी आँखों से आँसू गिराती है[107] । जिस से भ्रातृ-प्रेम द्योतित होता है । बहिन के स्मरण करने पर भाई सारे क्रिया-कलाप छोड़ कर बहिन के पास पहुँचता है । नानक कहते हैं कि बहिन मुझे याद करती है

---

102. ना॰चं॰ 3॰97 एवं द्र॰ 98 एवं द्र॰10॰60

103. वही, 4॰12-13

104. प्रार्थनैव समये करिष्यते या महाजनमनोनुकूलिनी । - वही, 6॰11, 94

105. वही, 6॰13, 14, 18

106. वही, 7॰38, 98

107. नानकी परमहर्षनिर्भरा·····।
चीर धारिमुदीक्ष्य···नीरनिर्झरमुवाह नेत्रयोः ।। - वही, 7॰44

इस लिये शीघ्र और साथियों सहित बहिन जानकी के पास पहुँचते हैं[108] । नानक बहिन से अपना सम्बन्ध युगों से चले आने वाला मानते हैं । इसी लिये विलाप करती हुई बहिन को नानक उपदेश करते हैं कि तू किस लिये विलाप करती है तू तो मेरी बहिन हर युगमें थी, है और रहेगी । यह सम्बन्ध अमिट है -

सोऽब्रवीत् भगिनि किं विलप्यते । त्वं ममासि सहजा युगे युगे[109] ।।

भरत के भ्रातृ-प्रेम को भी नानक-चन्द्रोदय में उल्लिखित किया गया है । जो भरत वसिष्ठ आदि ऋषियों द्वारा कहे जाने पर भी बड़े भाई राम के अधिकार राज्य को ग्रहण करने से इन्कार कर देते हैं तथा अपनी माता पर क्रुधित हो कर कटु वचन कहते हैं -

वशिष्ठादिभिराहूतो मातामहगृहादथ ।
न राज्यमैच्छद् भरतो मातरं बह्वीधक्षिपन्[110] ।।

भरत के भ्रातृ-प्रेम का उल्लेख करने का अभिप्राय यह है कि उस समय के पारिवारिक जीवन में कवि इसी प्रकार आदर्श सहोदर सम्बन्ध देखना चाहते थे । इस प्रकार नानक चन्द्रोदय महाकाव्य में सहोदर-सम्बन्ध के रूप में भाई-बहिन के परस्पर-सम्बन्ध का वर्णन विस्तृत रूप से किया गया है जो कि उस समय के समाज के वास्तविक सहोदर सम्बन्ध के आदर्श को चित्रित करता है ।

स्वामी-सेवक सम्बन्ध -

पारिवारिक जीवन में स्वामी-सेवक सम्बन्ध का भी महत्त्वपूर्ण स्थान होता है । अपने बड़ों की सेवक-भाव से सेवा करना सेवक का कर्त्तव्य होता है तथा स्वामी का कर्तव्य अपने सेवक का पालन-पोषण करना होता है । इन दोनों के सम्बन्ध घर के अन्दर तथा बाहर मधुर होने चाहिये । एक दूसरे के प्रति स्वच्छ-भावना से युक्त हो व्यवहार करना दोनों के निष्कपट सम्बन्ध को बताता है । नानक चन्द्रोदय महाकाव्य में उल्लेख मिलता

---

108. ना·चं· 10·49
109. वही, 7·45
110. वही, 15·114

है कि सेवक को सभी अवस्थाओं में स्वामी का सम्मान करना चाहिये[111] ।। स्वामी की सेवा करना सेवक का धर्म कहा गया है । जिस प्रकार स्वामी की आज्ञा प्राप्त कर हनुमान् जंगल में सीता की खोज में निकल पड़े थे, उसी प्रकार वीणा में प्रवीण वादक की खोज में मर्दन जाता है[112] । किसी कार्य को करने की अनिच्छा होने पर भी सेवक को स्वामी के भय से वह कार्य करना ही पड़ता है । जिस प्रकार मर्दन नानकी के पास मुद्रा लौटाने के लिये इच्छा न होने पर भी गुरू नानक देव की आज्ञा से जाते हैं -

जगाम नानकत्रासादनिच्छन्नपि मर्दनः ।
मुद्राः प्रत्यर्पयामास नानक्यै पुनरागमत्[113] ।।

जिस प्रकार चकोर चन्द्रमा की किरणों को ग्रहण करते हैं अर्थात् उन्हें देख कर आनन्दित होते हैं, उसी प्रकार नानक के ऊपर फेंके जाने वाले धन को दास तथा अन्य परिजन प्राप्त करते हैं[114] । निष्काम-भाव से स्वामी की सेवा करने वालों के साथ वैतनिक सेवकों का होना भी ज्ञात होता है । स्वामी-सेवक का सम्बन्ध एक-दूसरे के प्रति पवित्रता से युक्त होता है । जो भृत्य रूप में सेवक रखे जाते हैं, उन्हें दाता (स्वामी) कार्य के अनुसार धन देता है । कार्य-करने वाले भृत्यों के व्यवहार को समक्ष रख कर तत्कालीन समाज में दाता धन देते थे :-

जीवादृष्टानुरोधाय..... निर्घृणः ।
भृत्यसेवानुसारेण दातेव परवान्न च[115] ।।

सेवक के किसी दारुण कष्ट से आवृत हो जाने पर स्वामी उस को सुरक्षित रखने की कोशिश करता है, जो कि स्वामी-सेवक सम्बन्ध का परम कर्तव्य

---

111. ना.चं. 7.14

112. सीतामिवान्वेष्टुमगाद् वनाद्वनं वीणा प्रवीणः कृत भूरि साहसः ।
- ना.चं. 7.56 एवं द्र. 7.63

113. ना.चं. 7.111

114. माता महादयः.....नानकशिरस्यकिरन्वसूनि ।
दासाः परे परिजना अपि तान्यगृह्नन्...शीत किरणस्य यथा चकोराः।।
- ना.चं. 4.73 एवं द्र. 5.34

115. ना.चं. 1.76

होता है । निशाचर द्वारा मर्दन को कड़ाहे में डाल कर तेल में उसके शरीर को पकाने पर नानक द्वारा उस राक्षस को उपदेश दिया जाता है, जिस के कारण वह राक्षस नानक जी के चरणों में गिरता है तथा अपने किये पर पश्चाताप करता है[116] । इस प्रकार नानक अपने सेवक मर्दन को अपनी शक्ति द्वारा बचाते हैं । स्वामी की दृष्टि में जब सेवक का सेवा-भाव तथा आज्ञा का पालन करना प्रशंसनीय होता है तो वह उस शिष्यरूप सेवक को अपने पुत्र से भी अधिक समझता है । इस का उदाहरण अङ्गद के सेवकत्व रूप में मिलता है । जब गुरू उसे लस्सी पीने की आज्ञा देते हैं तो बिना कोई विचार किये वर्तन के ऊपर से वस्त्र हटा कर स्वामी द्वारा प्रदत्त उसे अमृत समझ कर पी जाता है । तब नानक उस शिष्य की श्लाघा करते हुये पत्नी सुलक्षणी से कहते हैं कि यह अपने दोनों पुत्रों से बढ़ कर प्रसन्नता का पात्र है[117] तथा उसे गुरू पद पर आसीन करते हैं । इस प्रकार नानक चन्द्रोदय महाकाव्य में स्वामी-सेवक के पवित्र सम्बन्ध का उल्लेख अधिकतर गुरू-शिष्य के रूप में उपलब्ध होता है । विनम्रता से युक्त, सेवा भावना से पूरित और परस्पर सुख-दु:खानुभूति करने वाला स्वामी-सेवक सम्बन्ध भारतीय संस्कृति की गरिमा को ही प्रकट करता है ।

= = = = = =

---

116. पक्त्वा महाकटाहे.....मर्दनस्य वपु: ।
.....निशाचरो नानकेनोक्त: ।। - ना.चं.8.127,128-130,132

117. वाढं गुरो इति वदन्नपसार्य वस्त्रं.....।
पत्नीं निजां गुरुरवोचदिमौ.....भवेत् प्रसाद: ।।
- ना.चं. 19.108

चतुर्थ अध्याय

सामाजिक जीवन

(क) वर्ण व्यवस्था

(ख) चारों वर्णों का परस्पर सम्बन्ध

(ग) संस्कार

(घ) सामाजिक आदर्श

= = = = = =

चतुर्थ अध्याय

सामाजिक जीवन

जब भारत में म्लेच्छ मत का प्रचार अत्यधिक मात्रा में होने लगा था तो इस का प्रभाव लोगों के सामाजिक जीवन पर भी पड़ गया । उसे रोकने के लिये जिस प्रकार कबीर, रैदास आदि कवियों ने धर्म का प्रचार किया उसी प्रकार नानक ने भी उदासी सम्प्रदाय में दीक्षा ग्रहण कर धर्म का प्रचार किया । उन के समक्ष दो बातें थीं म्लेच्छमत का प्रचार तथा भारतीय सामाजिक जीवन में प्रसृत वर्णाश्रम-व्यवस्था । इन दोनों का घोर विरोध उन्होंने किया तथा जातिगत पार्थक्य का उन्मूलन करने हेतु प्रचार किया । इन परिस्थितियों में जब समाज उत्साह विहीन था और लोगों का जीवन निरुद्देश्य भ्रमण कर रहा था, नानक देव ने उस समय सम्यग् दिशा समाज को प्रदान की । सामाजिक जीवन के अन्तर्गत वर्ण व्यवस्था, चारों वर्णों का परस्पर सम्बन्ध एवं उस जीवन को यापन कर रहे लोगों के आदर्श आते हैं, जिनके आधार पर वह समाज स्थिर होता है । यदि हमारा सामाजिक जीवन का स्तर निम्न कोटि का होगा अर्थात् उस में छूआ-छूत, जाति भेद, अमीर-गरीब, अपना-पराया तथा ऊँच-नीच के भेद भाव की विद्यमानता होती है तो उस में रहने वाला मनुष्य अपनी जीवन समृद्धि को प्राप्त नहीं कर सकता है तथा न हि राष्ट्र उन्नत हो सकता है । राष्ट्र एवं विश्व की समृद्धि के लिये सामाजिक-जीवन में विद्यमान सभी कटुताओं को भस्मी-भूत कर विशाल हृदय, उन्नत समाज का गठन परमावश्यक होता है ।

वर्णव्यवस्था -

प्राचीन परम्परा - पुरातन भारतीय समाज का वर्णाश्रम मेरुदण्ड रहा है ।

भारतीय समाज विभिन्न प्रकार की जातियों एवं वर्णों में विभक्त था । विभाजन का कारण सामाजिक (वंश परम्परा तथा रीति रिवाज़), आर्थिक (आज़ीविका के दृष्टि कोण से), राजनैतिक, भौगोलिक एवं धार्मिक परिस्थितियों की देन था । सामाजिक प्राणी होने के कारण मनुष्य को उस की स्वाभाविक प्रवृत्तियाँ मित्रों तथा साथियों के साथ रहने के लिये उत्साहित करती हैं । धर्मग्रन्थों ने जाति व्यवस्था का विशिष्ट प्रतिपादन किया है, जिस के फलस्वरूप एक जाति दूसरी जाति से भिन्न आचरण करती हुई दृष्टिगोचर होती है । वंश परम्परा, जाति के अन्दर विवाह करना, सगोत्री से पाणि ग्रहण संस्कार करने का निषेध, भोजन सम्बन्धी निषेध, व्यवसाय के आधार पर जाति व्यवस्था में जाति विभाजन यथा उच्चतम और कुछ निम्नतम श्रेणियाँ आदि ये गुण पाये जाते हैं[1] । कुछ आधुनिक समाजशास्त्र के विद्वानों के विचार भी धर्मशास्त्रीय विवेचन से मिलते हुलते हैं । "उन के अनुसार "जाति कुटुम्बों का वह समूह है, जिन का अपना निजी नाम है, जिस की सदस्यता पैतृकता के आधार पर है, जिसके अन्दर ही वे परिवार विवाह करते हैं और जिस का या तो निजी पेशा होता है अथवा जो अपना उद्भव किसी पौराणिक देवता या पुरुष से स्वीकार करते हैं[2]"। काणे वर्ण और जाति में अन्तर स्वीकार करते हैं उन्होंने उद्धृत किया है कि वर्ण की धारणा वंश, संस्कृति, चरित्र एवं व्यवसाय पर मूलत: आधारित है, जबकि जाति व्यवस्था जन्म एवं आनुवंशिकता पर बल देती है और बिना कर्त्तव्यों का विश्लेषण किये केवल विशेषाधिकारों पर ही आधारित है[3]" । इस प्रकार मौलिक रूप में वर्ण और जाति के अर्थ में अन्तर प्रतिपादित हकया गया है ।

शिवदत्त ज्ञानी सम्पूर्ण समाज के संगठन पर बल देते हुये पृथक्-पृथक् वर्णाश्रम को स्थापित करने से विरुद्ध प्रतीत होते हैं । वह उल्लेख करते हैं कि

---

1. धर्मशास्त्र का इतिहास, पी॰वी॰ काणे: भाग । पृ॰ 109
2. समाज शास्त्र, राजेश्वर प्रसाद अर्गल; पृ॰201
3. धर्मशास्त्र का इतिहास, भाग ।, पी॰वी॰ काणे, पृ॰119

"विकास, स्वरक्षा तथा संगठित रहने की कामना ही समाज निर्माण का मूल स्रोत है । मानव के उन गुणों का उत्थान एवं विकास भी समाज में ही सम्भव है, जिन के द्वारा संस्कृति तथा सभ्यता विकसित होती है । अत: यह कहना समुचित है कि समाज शब्द में ही संगठन शक्ति सांस्कृतिक विकास आदि के भाव समाविष्ट रहते हैं"[4] ।

प्राचीन काल से ही भारतीय समाज के विभिन्न क्षेत्रों में विविध प्रकार की जातियाँ निवास करती थीं और कर रही हैं । उन के आचार विचार तथा रहन-सहन का स्तर भिन्न था, यह विभिन्नता तत्कालीन सामाजिक जीवन में दिखाई देती थी । कालान्तर के पश्चात् से रहन-सहन आदि ही देश अथवा समाज के सामाजिक संगठन के मूल आधार बनते हैं । भारतीय समाज वर्ण व्यवस्था के आधार पर ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र चार वर्णों में विभक्त हुआ मिलता है । इन चारों वर्णों की उत्पत्ति का उल्लेख ऋग्वेद के पुरुष सूक्त में उपलब्ध होता है; जिस में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र चारों की उत्पत्ति क्रम से विराट् पुरुष (परम पुरुष) के मुख, भुजाओं, टांगों और पैरों से कही गई है -

ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद्बाहू राजन्य: कृत: ।
उरुतदस्यद्वैश्य: पद्भ्यां शूद्रो अजायत ।।[5]

शतपथ ब्राह्मण में भी चातुर्वर्ण्य का उल्लेख किया गया है । मनु स्मृति में भी चारों वर्णों का प्रतिपादन दिखाई देता है[6] । आदि पुराण में उद्धृत मिलता है कि व्रत और संस्कारों का आचरण करने से ब्राह्मण, शस्त्रों को धारण करने से क्षत्रिय, न्यायोचित ढंग से धनार्जन करने पर वैश्य तथा नीच वृत्ति के कर्मों का आचरण करने से शूद्र की उत्पत्ति होती है[7] । प्रारम्भ

---

4. भारतीय संस्कृति: श्री शिवदत्त ज्ञानी, पृ॰113
5. ऋ॰ 10·90·12
6. चत्वारो वैव्वर्णा:, ब्राह्मणो राजन्योव्वैश्य: शूद्रो ।
न हैते·····प्राचश्चिति ।। - श॰ब्रा॰5·4·6·9 एवं द्र॰मनु॰स्मृ॰1·3
7. आदि पुराण: 38·45, 46

में इस वर्गीकरण का मुख्य आधार श्रम विभाजन का आर्थिक सिद्धान्त लिया गया था, परन्तु कालान्तर में इस में रूढ़िवादिता आ गई तथा वर्ण व्यवस्था कर्मणा न हो कर जन्मना अर्थात् जन्ममूलक हो गई । इस प्रकार अनेक प्रकार की जातियों का उद्भव भेद-भाव और छूआ-छूत का रूप धारण कर गया, जो कि समाज के लिये अभिशाप रूप में सिद्ध हुआ । आगे से आगे वर्ण व्यवस्था जटिल एवं गहरी होने लगी, परिणाम स्वरूप विवाह और भोजन सम्बन्धी संकीर्णतायें समाज में उत्पन्न होने लगीं, रहन-सहन, आचार-विचार के नियमों में भी अन्तर आने लगा ।

धर्मशास्त्रों में चारों वर्णों के कर्मों का वर्णन किया गया है अर्थात् सामाजिक जीवन में कैसा-कैसा स्थान प्राप्त था इस का निष्पादन मिलता है । शूद्र का वर्णन सेवक रूप में किया गया है, निम्न वर्ग के लोगों को जैसे म्लेच्छ, चाण्डाल आदि को भी अछूत समझा जाता था । पाराशर स्मृति में ऐसा उल्लेख मिलता है कि ब्राह्मण दु:शील होने पर भी पूज्य हैं परन्तु शूद्र जितेन्द्रिय होने पर भी सम्मान जनक स्थान प्राप्त नहीं कर सकता है ।[8]

दु:शीलोऽपि द्विज: पूज्यो न तु शूद्रो जितेन्द्रिय: ।

ऋग्वेद में[9] उल्लेख मिलता है कि जो राजा ब्राह्मण को मान देता है वह सुखपूर्वक रहता है । तैत्तिरीय संहिता में वर्णन उपलब्ध होता है कि "देवता दो प्रकार के होते हैं । एक देवता तो वास्तविक देवता हैं, परन्तु जो ब्राह्मण पवित्र ज्ञान अर्जित कर के दूसरों को देते हैं, वे मनुष्य रूप में देवता हैं[10] । मनु ने तो लिखा है कि यदि ब्राह्मण अपनी परम्परा से चले आ रहे व्यवसाय का पालन करते हुए अपना भोजन नहीं कमा सकता है तो वह क्षत्रियों का सहारा ले सकता है-

आजीवंस्तु यथोक्तेन ब्राह्मण: स्वेन कर्मणा ।
जीवेत्क्षत्रियधर्मेण स ह्यस्य प्रत्यनन्तर: ।।[11]

---

8. पारा. स्मृ. 8.33
9. स इत्क्षेति सुधित ओकसि.....विश्वदानीम् ।
तस्मै विश: स्वयमेव नमन्ते यस्मिन्ब्रह्मा राजनि पूर्व एति ।।-ऋ.4.50.8
10. तैति.सं., 1.7.3.1
11. मनु.स्मृ. 10.81

अथर्ववेद में भी ब्राह्मणों की महिमा का गान अनेक स्थानों पर किया गया है, वहाँ उल्लेख है कि ब्रह्मजाया को पालने वाले चाहे कोई भी हों परन्तु उस के पाणिग्रहण का अधिकार ब्राह्मण को ही होता है, इसीलिये कहा गया है इस गौ का पति ब्राह्मण है, क्षत्रिय, वैश्य नहीं हैं -

ब्राह्मण एव पतिर्न राजन्यो न वैश्य: ।
तत् सूर्य: प्रब्रुवन्नेति पंचभ्यो मानवेभ्यो [12] ।।

इस प्रकार प्राचीन काल में परम्परा थी कि ब्राह्मण को सर्वश्रेष्ठ माना जाता था । जो राजपद प्राप्त कर लेता था वह क्षत्रिय सब की रक्षा करने वाला कहलाता था । जब राजा को मुकुट पहना दिया जाता था तो यही समझा जाता था कि वह क्षत्रिय सभी का स्वामी, ब्राह्मणों तथा धर्म की रक्षा करने वाला पैदा किया गया है । जिस प्रकार ऐतरेय ब्राह्मणमेंउल्लेख मिलता भी है -

क्षत्रियोऽजनि विश्वस्य भूतस्याधिपतिरजनि विशामत्ताजनि·····
ब्राह्मणो गोप्ताजनि धर्मस्य गोप्ताजनीति [13] । वैश्यों के विषय में तैत्तिरीय संहिता में कहा गया है कि मनुष्यों में वैश्य, और पशुओं में गाय दूसरे लोगों के उपभोग के लिये होती है -

वैश्यो मनुष्याणां गाव: पशूनां····· [14] ।।

ऐतरेय ब्राह्मण में उद्धृत किया गया है कि वैश्य अन्य लोगों को भोजन तथा "कर" प्रदान करता है । एक श्रुति वाक्य में यहाँ तक उल्लेख कर दिया गया है कि वैश्य को वेद पढ़ने की आज्ञा नहीं थी [15] । द्विज-शुश्रूषा आदि कार्य शूद्र को परम कर्त्तव्य कहा गया है । सेवातिरिक्त कर्म करना सम्पूर्णतया निष्फल कहे गये हैं-

शूद्रस्य द्विज-शुश्रूषा परमोधर्म उच्यते ।
अन्यथा कुरुते किंचित्तद् भवेत्तस्य निष्फलम् [16] ।।

12· अथर्ववेद, 5·17·8-9

13· ऐतरेय ब्राह्मण, 39·3

14· तैत्ति·सं· 7·1·1·5

15· गायत्र्या ब्राह्मणामसृजत त्रिष्टुभा राजन्यं जगत्या वैश्यं ।
न केनचिच्छन्दसा शूद्रामित्य संस्कार्यो विज्ञाय ते ।। - वा·धर्म·शा·4·3

16· पारा·स्मृ·1·72

इस प्रकार अपने अपने कर्मों के अनुसार चातुर्वर्ण्य को प्राचीन काल से स्वीकार किया जाता था । अपने कर्म को करना धर्म समझा जाता था । गीता में उल्लेख है कि जो मनुष्य स्वकर्म में तत्पर रहता है वह पाप प्राप्त नहीं करता है, पर धर्म की अपेक्षा स्वधर्म को श्रेष्ठ कहा गया है[17] । महाभारत में भी चातुर्वर्ण्य का निरूपण किया गया है -

चातुर्वर्ण्यस्य वर्णेन यदि वर्णो विभिद्यते।
सर्वेषां खलु वर्णानां दृश्यते वर्ण-संकर: ।।[18]

इस प्रकार प्राचीन ग्रन्थों का अध्ययन करने से तत्कालीन वर्णव्यवस्था का अवलोकन होता है।-

नानक चन्द्रोदय महाकाव्य में भी चारों वर्णों के लोगों का उल्लेख मिलता है । यद्यपि गुरू नानक देव ने समाज में फैल रही जाति-पाति का विरोध किया है तथा फैल रहे इस विष का अवरोध करने में पर्याप्त सफलता भी प्राप्त की है, परन्तु प्रस्तुत महाकाव्य में चारों वर्णों का उल्लेख करते हुये देवराज शर्मा ने उन के कर्मों का भी प्रतिपादन किया है, जो कि स्मृतियों में उक्त कर्मों के अनुसार दिखाई देता है । ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र चार वर्णों को प्रमुखतया स्वीकार किया गया है । ब्राह्मण धर्मशास्त्रों एवं स्मृतियों का ज्ञान रखने वाले, क्षत्रिय लोग प्रजा की रक्षा करने में दक्ष, वैश्य अपने व्यापारिक कार्य में निपुण दिखाई देते हैं तथा शूद्र तीनों वर्णों की सेवा आलस्य रहित हो कर करते हैं । इस प्रकार चातुर्वर्ण्य स्वीकार कर उन के कर्मों को जात्यानुसार उद्धृत किया गया है -

जुह्वानाज्वलनं श्रुतिस्मृतिविद: सन्तोषशीलाद्विजा ।
राजन्या बहुजन्यजन्ययशसा ख्याता: प्रजारक्षिण: ।।

---

17. श्रेयान् स्व धर्मो विगुण: पर धर्मात्स्वनुष्ठितात् ।
स्व भावनियतं कर्म कुर्वन्नाप्नोति किल्विषम् ।।
- गीता·18·47 एवं द्र· 18·45

18. महा·भा· शान्ति पर्व 12·188·6 एवं द्र· 7·16

वार्तायां कुशलाविशः प्रमुदिता देवद्विजाराधने ।
शूद्रा यत्र भजन्ति भव्यचरिता वर्णत्रयं निर्मदाः [19] ।।

प्राचीन काल से चली आ रही छूआ-छूत का प्रचलन प्रतीत होता है परन्तु अत्यधिक मात्रा में इसका उन्मूलन करने में गुरूनानक देव सफल हो जाते हैं । अङ्गद को बालसिन्धु कहता है कि वह चतुर्थ वर्ण में उत्पन्न हुआ है, तथा गुरूनानक देव ने अपना शिष्य बना कर उसे कृत्तार्थ कर दिया है -

वर्णं चतुर्थमपि मामकरोत्कृतार्थं
चित्रं बलेन गुरूनानक बालमैत्री ।।
स्पर्शोपलव्यतिकरेण विधेर्विलासा-
लौहानि हन्त कलयन्ति सुवर्णभावम् [20] ।।

इस प्रकार अन्तिम चतुर्थ वर्ण शूद्र को अस्पृश्यता की दृष्टि से सामाजिक-जीवन में देखा जाता था, किन्तु जैसा कि विदित हो रहा है नानक देव ने सभी को समान रूप से उपदेश प्रदान कर इस कुरीतिको समाप्त करने का प्रयत्न किया है । उससे तत्कालीन समाज में रह रहे धर्मउपदेशकों द्वारा इस छूआ-छूत को दूर करने का प्रयत्न किया गया है । वर्णव्यवस्था के प्रतिपादन में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र इन चारों वर्णों का उल्लेख प्रस्तुत महाकाव्य में मिलता है, जिन का क्रमशः निम्न प्रकार से वर्णन किया गया है ।

ब्राह्मण -

चारों वर्णों में ब्राह्मण को सर्वश्रेष्ठ प्राचीन काल से माना जाता रहा है । मनु स्मृति में इस की सर्वश्रेष्ठता को निम्नलिखित प्रकार से निरूपित किया गया है -

भूतानां प्राणिनः श्रेष्ठाः प्राणिनां बुद्धिजीविनः ।
बुद्धिमत्सु नराः श्रेष्ठाः नरेषु ब्राह्मणाः स्मृताः [21] ।।

---

19. ना॰चं॰ 2॰15
20. वही, 1॰108
21. मनु॰स्मृ॰ 1॰96 एवं द्र॰ 1॰93

नानक चन्द्रोदय महाकाव्य में ब्राह्मणों को द्विज, विप्र तथा पुरोहित आदि नामों से उल्लिखित किया गया है। तत्कालीन समाज में भी ब्राह्मण को कर्म-काण्ड अर्थात् धार्मिक अनुष्ठानों के अधिष्ठातृ रूप में माना जाता है, जिस से उसकी श्रेष्ठता का प्रदर्शन होता है -

पाकोद्विजैरभिहितो कृत जातकर्म [22] ।।

नानकदेव के जन्म पर कालवर्मा "मेधा जनन" कर्म कर शिशु दर्शन कर, ब्राह्मणों को सुवर्ण, वस्त्र और गौयं प्रदान कर आनन्दित करते हैं [23]। इस प्रकार ब्राह्मण के आशीर्वाद को प्राप्त करना परमावश्यक माना जाता है। मनुस्मृति में भी ब्राह्मण के प्रधानत: तीन कर्म पौरोहित्य, अध्यापन तथा मन्त्र रचना कहे गये हैं। उन समस्त कार्यों का सम्पादन कर वह समाज में प्रतिष्ठित स्थान प्राप्त करता है -

अध्यापनमध्ययनं यजनं याजनं तथा ।
दानं प्रतिग्रहं चैव ब्राह्मणानामकल्पयत् [24] ।।

प्रस्तुत महाकाव्य में भी अन्य सभी के अपने-अपने कर्मों में संलग्न होने पर ब्राह्मण वर्ग विधि-विधान से होम-कार्य का अनुष्ठान करते हुये दिखाई देते हैं -

संस्कारं विधिवद्द्विजैर्दहनवन्नीतो युतो हेतिभि: [25] ।।

ज्योतिष विद्या में पारंगत वेद तथा वेदाङ्ग ज्ञाता हरिदयालु सदृश विद्वान् श्रेष्ठ ब्राह्मण के उल्लेख से आभास होता है कि ब्राह्मण वर्ग स्वकर्म में निपुण था। हरिदयालु जन्मकाल पर ही गुरूनानक देव के सम्पूर्ण लक्षणों तथा ग्रहों को देख कर उन की अलौकिक शक्ति के विषय में विशद्-वर्णन करते हैं -

बालोऽयमद्भुतगतिर्ज्जनितो जहास····· जगाद ।
उत्पात एव उत वंशविवर्धन: स्याद्विप्र····शीघ्रमेव [26] ।।

22· ना·चं· 2·46
23· वही, 2·48
24· मनु·स्मृ· 1·88
25· ना·चं· 2·21
26· वही, 2·56 एवं द्र· 2·59 त: 64 पर्यन्तं

विवाह के शुभ अवसर पर भी विप्र-वृन्द को दान और पुरस्कार दे कर प्रसन्न किया जाता है[27] । जिस से सामाजिक जीवन में ब्राह्मण की शुद्धता एवं उत्कृष्टता अवलोकित होती है ।

मनुस्मृति में जहाँ ब्राह्मण की श्रेष्ठता का उल्लेख किया है वहाँ साथ ही उस के द्वारा क्षत्रिय आदि की निन्दा करने पर दण्ड देने का विधान राजा को कहा है[28] । अर्थात् समाज के पथप्रदर्शक को निन्दनीय कार्यों से उदासीनता धारण करने हेतु कहा गया है । नानकचन्द्रोदय महाकाव्य में भी ब्राह्मण के लिये दण्ड का विधान निरूपित है । जिस से यह स्वत: सिद्ध है कि अनैतिक कार्य करने पर उस की निन्दा की जाती होगी क्योंकि नानक देव प्रस्तुत महाकाव्य में प्रधान नायक ने सम्पूर्ण समाज से जाति-पाति को मूलत: उखाड़ने का ही प्रयत्न किया है । उन्होंने मद्यपानादि निषिद्ध कार्य करने पर ब्राह्मण तथा उस की पत्नी दोनों के लिये मरणोपरान्त घोर कष्ट का निरूपण किया है[29] । स्वयं गुरूनानक देव जी ने ही ब्राह्मण को सर्वश्रेष्ठ मानते हुए कहा है कि जो उस के साथ द्वेष करता है वह घोर नरक को प्राप्त करता है -

स कालसूत्रे परिदह्यते यो
देवं द्विजं द्वेष्टि निजं च तातम् ।।[30]

इस प्रकार स्पष्ट है कि घृणित कर्म करने पर ब्राह्मण को समाज में अच्छी दृष्टि से नहीं देखा जाता है था । उसी को उत्कृष्ट स्थान प्राप्त होता है जो स्वकर्म को पूर्ण श्रद्धा एवं पवित्रता से करता है । क्योंकि गीता में कहा भी है कि शम, दम, तप, शौच, क्षमा, सरलता, ज्ञान, अनुभव और आस्तिकता

---

27. ना॰चं॰ 5॰109

28. ब्राह्मणक्षत्रियाभ्यां तु दण्ड: कार्यो विजानता ।
ब्राह्मणे साहस: पूर्व: क्षत्रिये त्वेव मध्यम: ।। - मनु॰स्मृ॰8॰276

29. द्विजो द्विजस्य पत्नी वा सुरां पिबति मोहत: ।
अप: पाने द्रुतं लोहं पातयन्ति तु तौ बला: ।। - ना॰चं॰ 14॰296

30. ना॰चं॰ 14॰283

आदि कर्म ब्राह्मण के स्वभावजन्य हैं, जो इन का परिपालन नियमपूर्वक करता है, वही उन्नत स्थान का अधिकारी होता है -

शमो दमस्तप: शौचं क्षान्तिरार्जवमेव च ।
ज्ञानं विज्ञानमास्तिक्यं ब्रह्मकर्म स्वभावजम् [31] ।।

अत: नानक चन्द्रोदय महाकाव्य में भी मर्यादा के अन्दर रहते हुये स्वकर्म करते हुये ब्राह्मण को समाज का आधार स्तम्भ, पथप्रदर्शक, धार्मिक गुरू तथा अग्रणी ही माना है ।

क्षत्रिय -

भारतीय हिन्दु समाज में ब्राह्मण के पश्चात् क्षत्रिय का स्थान माना है । ऐसा समय भी आया है जब कि राजसत्ता के अधिकारी होने के कारण इन का स्थान सर्वोत्कृष्ट माना जाता था । ब्राह्मण क्षत्रियों की कृपामात्र के पात्र रहे हैं । राजवर्ग ने अतीव विलासिता एवं ऐश्वर्यशाली जीवन व्यतीत किया है । ऋग्वेद में कई स्थानों पर क्षत्रिय के लिये "राजन्" शब्द का उल्लेख मिलता है [32] । जो कि प्रजा पालन में संलग्न होता है । शतपथ ब्राह्मण में उल्लेख मिलता है कि क्षत्रियों को कोई भी कार्य करने से पूर्व ब्राह्मणों से परामर्श करना चाहिये [33] । इस प्रकार क्षत्रिय वर्ग के लिये कार्य निर्धारण में ब्राह्मण को सहयोगी माना गया है । गौतम धर्मसूत्र के अनुसार न्यायोचित दण्ड देना तथा सम्पूर्ण प्रजावर्ग का पालन करना क्षत्रियों का कार्य होता है -

राज्ञो धिकं रक्षणं सर्वभूतानाम् । न्यायदण्डत्वम् [34] ।।

---

31. गीता. 18.42

32. गोभिष्टरेमायतिं दुरेवां यवेन....विश्वाम् ।
वयं राजभि:प्रथमा .....वृजनेना जयेम ।। - ऋ. 10.42.10, एवं द्र.10.97.6

33. तत्तदवकॢप्तमेव । यद् ब्राह्मणो राजन्य: स्याद्बहुराजानं लभेत समृद्धं...
.....तस्मादुक्षत्रियेण कर्म कारिष्यमाणेनोपसर्तव्य एव ब्राह्मण: स...
..... कर्माऽध्यर्धति ।। - श.ब्रा., 4.1.4.6

34. गौतम धर्म सूत्र, 2.1.7-8

मनु स्मृति में क्षत्रिय का कर्म प्रजा की रक्षा करना, दान देना, यज्ञ करना तथा विषयों में अनासक्ति रखना कहा गया है -

प्रजानां रक्षणं दानमिज्याध्ययनमेव च ।
विषयेष्वप्रसक्तिश्च क्षत्रियस्य समासतः ।।[35]

नानक चन्द्रोदय महाकाव्य के उल्लेख से ज्ञात होता है कि तत्कालीन समाज में प्रत्येक वर्ण के लोग स्व-स्व कर्म करते थे। तलवण्डी नगरी में निवास करने वाले क्षत्रियों द्वारा कलियुग में समस्त धर्म के नष्ट हो जाने पर भी वेद में उपदिष्ट मार्ग को नहीं छोड़ा था -

कलावपि ध्वस्तसमस्त धर्मे, न वेदमार्गात्प्रचलति किंचित् ।
ते क्षत्रियास्तेन गता: प्रसिद्धिं, स्वकर्मणा वेदि इत्युदारम् ।।[36]

इस प्रकार वर्ण व्यवस्था के अनुसार वितरित कर्मों को करने से तत्कालीन समाज में प्रसिद्धि प्राप्त होती थी। राजा की तरह कालवर्मा को लोगों के धन का रक्षक तथा सम्पूर्ण राज्य की व्यवस्था को यथोचित विधि से देखने के लिये कहा गया है[37]। चन्दोराज्ञी के कुपित होने पर नानकदेव के प्रति उक्त वाक्यों से प्रतीत होता है कि जो क्षत्रिय गृहस्थ धर्म का पालन नहीं करता है, उस का समाज में सम्मान नहीं होता है। जिस प्रकार वह ही नानकदेव की परिवार से तथा पत्नी से विरक्ति देख कर कहती हैं कि क्या अन्य कोई क्षत्रिय नहीं था कि इस यति को मेरा जामाता बनाया गया है। युवावस्था में ही साधु संन्यासियों जैसे वेश को धारण करने से निषिद्ध किया गया है[38]। पुत्र-पुत्री का विवाह करते समय प्राचीन परम्परा के अनुसार ब्राह्मणों से परामर्श करके ही उसे निश्चित किया जाता है। मूलचन्द्र ब्राह्मणों द्वारा नानक तथा सुलक्षणी के गुणों को उचित कहने पर ही आगे बात करते हैं -

---

35. मनु॰स्मृ॰ 1॰89
36. ना॰च॰ 2॰19
37. क्षत्रस्य कर्म पररा्ज्य धनापहार····· विरज्यमानः ।
ग्रामेल्लेख कतिचिन्तु····राज्ञा····प्रणयेन बद्धः ।। - ना॰च॰ 2॰26
38. न क्षत्रिया: क्षोणितले किमासन्, भविष्यदुन्मत्तममु यति मे ।।
- ना॰चं॰ 6॰129 एवं द्र॰8॰22

वर्णवंश्यादिकं सर्वमेवोचितं, नानकस्यानया कन्येयति द्विजैः ।
बोधितः परमानन्दरानन्दितः, कालमामन्त्रयिष्यन् जनं प्रैषयत् [39] ।।

इस प्रकार वर्ण, वंश आदि को ध्यान में रखते हुये विवाह सम्बन्ध स्थापित किये जाते हैं, जाति से भिन्न के साथ विवाह निश्चित नहीं किये जाते थे । अमरदास अपनी कन्या का रामदास के साथ विवाह सम्बन्ध निश्चित करते समय पहले उस की जाति पूछता है तथा क्षत्रिय वर्ण का होने पर बात पक्की करता है -

पृच्छन्तु रामदासस्य जातिं जाति विचक्षणाः ।
अस्मै कन्यामहं दास्येऽमरदास इदं जगौ ।।
स पृष्टस्तैरहं सोऽपि क्षत्रियोऽस्मीत्य भाषत ।
विवाह विधिना भानीं कन्यां तस्मै ददौ च सः [40] ।।

इस प्रकार प्रस्तुत महाकाव्य में प्राचीन परम्परा के अनुकूल ही क्षत्रियों को प्रजारक्षक तथा ब्राह्मणों का सम्मान करने वालों के रूप में उल्लिखित किया गया है ।

वैश्य -

प्राचीनकाल से ही वैश्य वर्ण के पास हमारे समाज का व्यवसाय रहा है । सामान्यतः व्यापार वाणिज्य के साथ ही सम्बद्ध होने के कारण राजनैतिक प्रभाव इन पर बहुत कम मात्रा में पड़ा । आर्थिक रूप से इस वर्ण का महत्त्व समाज में प्रतिष्ठित रहा । पूर्वकाल में वैश्य लोग कृषि-कर्म और पशुपालन करते थे, लेकिन बाद में यह व्यापार में परिवर्तित हो गया । जिस प्रकार ब्राह्मण एवं क्षत्रिय क्रमशः धार्मिक तथा प्रजापालन के कर्मों द्वारा समाज और देश की सेवा करते थे, उसी प्रकार वैश्य वाणिज्य-व्यवसाय द्वारा लोगों की भलाई करते थे ।

पाराशर स्मृति में क्रय-विक्रय के साथ-साथ कृषि कर्म और वाणिज्य भी वैश्य कर्म कहा है -

लाभकर्म तथा रत्नं गवां च परिपालनम् ।
कृषिकर्म च वाणिज्यं वैश्य वृत्तिरुदाहृता [41] ।।

---

39. ना॰चं॰ 4॰67
40. वही, 20॰20, 21
41. पारा॰स्मृ॰ 1॰71

मनु स्मृति में भी वैश्यवर्ग का कर्म विशेषत: वाणिज्य, व्यवसाय, कृषि तथा पशुपालन करना ही उल्लिखित किया गया है -

पशूनां रक्षणं दानमिज्याध्ययनमेव च ।
वणिक्पथं कुसीदं च वैश्यस्य कृषिमेव च [42] ।।

डा॰ राजबली ने उल्लेख किया है कि वैश्यों का आर्थिक रूप से महत्त्व बना रहा, परन्तु इन के अन्तर्गत आने वाले कुछ लोगों में परिवर्तन भी माना जाने लगा । कृषि तथा पशुपालन करने वाले बहुत से वैश्यों को शूद्रों में गिना जाने लगा [43] । इस प्रकार वैश्य वर्ण के लोगों की आर्थिक समृद्धता का ही वर्णन ग्रन्थों में उपलब्ध होता है ।

नानक चन्द्रोदय महाकाव्य के अध्ययन से ज्ञात होता है कि वाणिज्य अर्थात् व्यापार आदि कर्म को वैश्यवर्ग के लोग ही करते थे । आर्थिक रूप से सम्पन्न भी दृष्टिगोचर होते हैं, क्योंकि जब विधि चन्द्र विप्र दम्पत्ती को दरिद्रता से दु:खी देखते हैं [44] तो वैश्य के घर से आवश्यक पदार्थ ला कर उन्हें प्रदान करते हैं [45] । इस विषय में स्वयं विधि चन्द्र गुरू हरिराय को बताता है, क्योंकि वह चोरी करता था अत: जब गुरू जी ने उस से पूछा तो उसने बताया कि एक घर में जब वह प्रविष्ट हुआ तो वहाँ उन की दरिद्रता देख कर उस का मन द्रवित हो उठा । वैश्य वर्ग के लिये "वणिक्" का उल्लेख किया गया है, जो कि अपनी चतुरता द्वारा तथा व्यापारिक नीति में कुशलता के अनुसार व्यापार करते हैं तथा लाभ अर्जित करते हैं -

नानादेशजनैर्युता बहुवणिङ्नीते: सुभाण्डैश्चिता [46] ।।

इस प्रकार प्रतीत होता है कि समाज में वर्तनों आदि का व्यापार प्राय: वैश्य वर्ग के लोग अधिकतर करते थे । व्यापार करने वाले वैश्य वर्ग के लिये "सार्थवाह"

42॰ मनु॰स्मृ॰ 1॰90

43॰ हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास; डा॰ राजबली पाण्डेय, पृ॰103

44॰ ना॰चं॰ 20॰122

45॰ विदारयन्ति हृदयं तयोस्तु·····।
वैश्यस्य गेहादपहृत्य तूर्णं ·····दयालु: ।। - ना॰चं॰20॰123 एवं द्र 120,121

46॰ ना॰चं॰ 2॰14

का प्रयोग भी होता है, जिस का शाब्दिक अर्थ व्यापारियों का समूह तथा उन का मुखिया माना जाता है । वह देश के अन्दर ही सुदूरस्थ भागों में जा कर व्यापार करते थे तथा बाद में उन का स्थान वैश्य वर्ग में महत्त्वपूर्ण माना जाने लगा । नानक चन्द्रोदय महाकाव्य में भी "सार्थवाह"[47] का उल्लेख उपलब्ध होता है, जिस से प्रतीत होता है कि वैश्य-वर्ण के लोग दूरस्थ स्थानों में जा कर व्यापारिक कार्य करते थे । उन्नत रूप में व्यापार करने वाले व्यापारिक वर्ग की सम्पन्नता भी अवलोकित होती है जब मर्दन दुकान पर तराजू तथा तोलने वाले मापकों को सुवर्णमय देख कर विस्मित हो जाता है[48] ।

यद्यपि नानकचन्द्रोदय महाकाव्य में वैश्य-वर्ण के बारे में विस्तृत विवेचन उपलब्ध नहीं होता है, परन्तु इस का अध्ययन करने से यह ज्ञात होता है कि इस वर्ग के लोग अधिकतर व्यापार का कर्म कर के धनार्जन करते होंगे, भले ही उस समय समाज में अन्य वर्णों के लोग भी व्यापारिक कार्य करते हुये दृष्टिगोचर होते हैं, परन्तु समृद्धता की दृष्टि से इसी वर्ग के लोग दिखाई देते हैं ।

शूद्र -

भारतीय समाज में चारों वर्णों में शूद्र को अन्तिम वर्ण स्वीकार किया गया है । ऋग्वेद में शूद्र की उत्पत्ति विराट पुरुष के पैरों से कही गई है । प्राचीन काल से ही शूद्रों को ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्यों का सेवक कहा गया है । मनु ने धार्मिक कार्यों में शूद्र के लिये केवलमात्र नमस्कार द्वारा ही पंचमहायज्ञों को करने का विधान अनिन्दनीय उल्लिखित किया है -

धर्मैप्सवस्तु धर्मज्ञा: सतां वृत्तमनुष्ठिता: ।
मन्त्रवर्ज्यं न दुष्यन्ति प्रशंसां प्राप्नुवन्ति च[49] ।।

---

47. य: सार्थवाहशिबिरे श्रमनोदनार्थं, छायां बिभर्ति नगरस्य महावनेऽपि ।।
- ना.चं. 2.5

48. ना.चं. 9.128

49. मनु.स्मृ. 10.127

ब्राह्मण की सेवा करना शूद्र के लिये श्रेष्ठ कहा गया है तथा उस की शुश्रूषा द्वारा जीवन निर्वाह न होने पर क्षत्रिय तथा वैश्य की सेवा करने के लिये भी कहा गया है[50]। ब्राह्मण की सेवा शूद्र का मुख्य कर्म कहा है, इस के अतिरिक्त आचरण करने वाले शूद्र के लिये कर्म की निष्फलता कही है -

विप्रसेवैव शूद्रस्य विशिष्टं कर्म कीर्त्यते ।
यदतोऽन्यद्धि कुरुते तद्भवत्यस्य निष्फलम्[51] ।।

इस प्रकार स्मृतियों में उक्त कर्मों पर आचरण करने से समाज में यह एक प्रथा बन गई तथा शूद्रों को अन्य वर्णों के लोग हेय दृष्टि से देखने लगे, जिस का प्रभाव आधुनिक समाज में भी यत्र तत्र दिखाई देता है ।

पाराशर स्मृति में भी द्विजों की सेवा से रहित शूद्र के लिये नरक प्राप्ति कही है[52]। स्व स्व कर्म का आचरण करना चारों वर्णों के लिये सनातन धर्म प्रतिपादित किया है -

चतुर्णामपि वर्णानामेष धर्मः सनातनः[53] ।।

श्रीमद्भावद्गीता में अन्य वर्णों की परिचर्या करना ही शूद्र का धर्म कहा गया है -

परिचर्यात्मकं कर्म शूद्रस्यापि स्वभावजम्[54] ।।

श्रीमद्भागवत पुराण में अमन्त्रों द्वारा यज्ञ अनुष्ठान करना, चोरी न करना, सत्य बोलना तथा गाय और ब्राह्मण की रक्षा करना शूद्र का धर्म बताया गया है -

शूद्रस्य सन्नतिः शौचं सेवा स्वामिन्यमायया ।
अमन्त्रयज्ञो ह्यस्तेयं सत्यं गो-विप्र-रक्षणम्[55] ।।

---

50. मनु॰स्मृ॰ 10॰121, 122 एवं द्र॰ 1॰91
51. वही, 10॰123 एवं द्र॰ 10॰124 तः 126 पर्यन्तं
52. विकर्म कुर्वते शूद्रा द्विजशुश्रूषयोज्झिताः ।
भवत्यल्पायुषस्ते वै निरयं यान्त्यसंशयम् ।। - पारा॰स्मृ॰2॰19 एवं द्र॰ 1॰72
53. पारा॰स्मृ॰ 2॰20
54. गीता॰ 18॰44
55. भाग॰पुरा॰ 7॰11॰24

याज्ञवल्क्य स्मृति में उल्लेख किया गया है कि शूद्र के लिये द्विजातियों की सेवा प्रधान धर्म है तथा उस से जीविका न चलने पर वणिग्वृत्ति का आश्रय वह ग्रहण कर सकता है -

शूद्रस्य द्विजशुश्रूषा तयाऽजीवन्वणिग्भवेत् ।
शिल्पैर्वा विविधैर्जीवेद् द्विजातिहितमाचरन् ।।[56]

इस प्रकार शूद्र के प्रधान कर्म का प्रतिपादन करते हुये मनुस्मृति में शास्त्रानुकूल ब्राह्मण की तरह आचरण करने वाले शूद्र की प्रशंसा करते हुये उस के लिए स्वर्ग प्राप्ति सुकर कही गई है । अर्थात् यदि ब्राह्मण की तरह पवित्रता से युक्त हो कर शूद्र आचरण करता है तो वह द्विज की तरह कर्मों का आचरण करने से स्वर्ग को प्राप्त कर लेता है । इस प्रकार सेवा के साथ शूद्र के लिये धार्मिक कार्यों का भी विधान किया गया है -

यथा यथा हि सद्वृत्तमातिष्ठंत्यनसूयकः ।
तथा तथेमं चामुं च लोकं प्राप्नोत्यनिन्दितः ।।[57]

नानक चन्द्रोदय महाकाव्य में शूद्रवर्ण के लोगों के बारे में विस्तृत विवेचन उपलब्ध नहीं होता है परन्तु प्राप्त उल्लेखों द्वारा प्रतीत होता है कि तत्कालीन समाज में शूद्रवर्ण के लोगों को अज्ञानी तो माना जाता था परन्तु साधना आदि कर्मों का अनुष्ठान करने से उन्हें ज्ञान प्राप्त करने का पूर्ण अधिकार था[58] । यहाँ प्रमुख रूप में वर्णित नायक गुरू नानक देव अस्पृश्यता तथा भेद-भाव के प्रबल विरोधी के रूप में चित्रित किये गये हैं । इसलिये समाज में जाति प्रथा के अनुसार जो शूद्रों को निम्न मानकर अन्याय आदि होता था, उस को दूर करने का उन्होंने पूर्ण प्रयास किया है । वे कहते हैं कि जो नीच कर्म करता है वह

---

56. याज्ञ॰स्मृ॰ 1॰120

57. मनु॰स्मृ॰ 10॰128

58. साधनात् ज्ञानिनो जाताः स्त्रीशूद्रादैत्यराक्षसाः ।
अनेके पक्षिपशवो मन्मेह नियमं हि तत् ।। - ना॰चं॰17॰74
एवं द्र॰ 10॰40

ही म्लेच्छता को प्राप्त करता है । अर्थात् दूसरे प्राणियों की हिंसा आदि द्वारा ही मनुष्य निकृष्ट होता है[59] । यहाँ यह प्रतीत होता है कि वर्ण-विशेष में जन्म ग्रहण करने से मनुष्य नीच नहीं बनता है परन्तु नीच कर्म करने वाला ही अछूत कहलाता है । इस प्रकार समाज में विद्यमान शूद्र वर्ण के लोगों के प्रति जो भेद-भाव रखने का प्रचलन था, उसे जन्म से न मानते हुये कर्म द्वारा ही स्वीकार किया गया है । जिस से समाज में सभी वर्णों के लोगों में भ्रातृत्व सम्बन्ध की चेतनता का सम्पादन किया गया है ताकि प्राचीनकाल से नीच माने जाने वाले शूद्र वर्ण के लोग भी शास्त्रानुकूल ज्ञान प्राप्त कर अपना स्तर ऊँचा कर सकें ।

चारों वर्णों का परस्पर सम्बन्ध -

पुरातन काल से भारतीय समाज में विद्यमान चारों वर्णों का परस्पर सम्बन्ध रहा है तथा समय-समय पर इस सम्बन्ध में परिवर्तन भी होते रहे हैं । एक दूसरे वर्ण का सम्मान हिन्दु समाज का विशेष अंग रहा है । इस प्रकार अपने कर्मों का आचरण करते हुये प्रत्येक वर्ण के लोग जीवन यापन करते थे । श्रीमद्भावद्गीता में चारों वर्णों का प्रतिपादन करते हुये कहा है कि इन का आचरण करता हुआ मनुष्य मोक्ष को प्राप्त करता है[60] -

स्वे स्वे कर्मण्यभिरत: संसिद्धिं लभते नर: ।।

अर्थात् स्वकर्म में ही एक दूसरे वर्ण का सत्कार करना भी निर्धारित किया गया है । मनु स्मृति में चारों वर्णों के लोगों के परस्पर मिलने पर एक-दूसरे की कुशल क्षेम किस प्रकार ज्ञात करनी चाहिये इस का उल्लेख करते हुये कहा है कि "ब्राह्मण से कुशल, क्षत्रिय से अनामय, वैश्य से क्षेम तथा शूद्र से आरोग्य के बारे में जानना चाहिये -

---

59. सारमेयो हतस्तेन तेन स म्लेच्छतां गत: ।
इत्युक्त्वा नानको.....मे सखा ।।
- ना.चं. 17.4 एवं द्र. 7.80

60. गीता, 18.45

ब्राह्मणं कुशलं पृच्छेत्क्षत्रबन्धुमनामयम् ।
वैश्यं क्षेमं समागम्य शूद्रमारोग्यमेव च [61] ।।

गुरू रूप में स्वीकार कर विद्या अध्ययन करने के लिये ब्राह्मण को सर्वप्रथम स्थान दे कर, कहा है कि यदि कभी ब्राह्मण उपलब्ध न हो तो ब्रह्मचारी को अब्राह्मण अर्थात् क्षत्रिय तथा वैश्य से भी वेदाध्ययन कर उन की शुश्रूषा करनी चाहिये [62] । इस प्रकार परस्पर गुरू-शिष्य का सम्बन्ध रखने का स्पष्ट अवलोकन होता है । पाराशर ने ब्राह्मणों का अतिक्रमण कर राजा को भी कार्य करने से पाप का भागी कहा है [63] । अर्थात् ब्राह्मण क्षत्रिय को एक-दूसरे के साथ परामर्श करने के पश्चात् किसी कार्य के बारे में निर्णय करने के लिये कहा है । परन्तु स्मृतियों में अन्य वर्ण के लोगों के सम्बन्ध शूद्र के साथ न्याय पूर्ण उल्लिखित नहीं किये गये हैं । मनु ने कहा है कि ब्राह्मण शूद्रों को धन दे कर अथवा न दे कर भी उस से सेवा कर्म कराये [64] । यहाँ प्रतीत होता है कि शूद्र वर्ण के लोगों के साथ प्राय: अत्याचार होते होंगे क्योंकि विना वेतन के कर्म करने के लिये किसी को भी बाध्य नहीं किया जा सकता, यदि ऐसा किया जाता होगा तो अवश्य उन्हें दुर्बल समझ कर शक्ति द्वारा विवश किया जाता होगा, जिस से शूद्र वर्ण के प्रति अन्य वर्णों के लोगों के स्नेह पूर्ण सम्बन्ध की अभिव्यक्ति नहीं होती है । परन्तु धीरे-धीरे समय बीतने के साथ-साथ इन सम्बन्धों में परिवर्तन आया तथा जो कुरीतियाँ समाज में प्रचलित आ रही थीं, उन का ह्रास हो गया तथा सम्बन्धों में सरसता आने लगी । नानक चन्द्रोदय महाकाव्य में सभी वर्णों में ब्राह्मण की सर्वश्रेष्ठता का वर्णन मिलता है जिस से द्विजों के सम्मान का आभास होता है । अर्थात् अन्य तीनों वर्णों

---

61. मनु॰स्मृ॰ 2॰127

62. अब्राह्मणादध्ययनमापत्काले विधीयते ।
अनुव्रज्या च शुश्रूषा यावदध्ययनं गुरो: ।। - मनु॰स्मृ॰ 2॰241

63. ब्राह्मणास्तानतिक्रम्य राजा कर्तुं यदीच्छति ।
तत्पापं शतधा भूत्वा राजानमनुगच्छति ।। - पारा॰स्मृ॰ 8॰37

64. शूद्रं तु कारयेदास्यं क्रीतमक्रीतमेव वा ।
दास्यायैव हि सृष्टोऽसौ ब्राह्मणस्य स्वयंभुवा ।। - मनु॰स्म॰8॰413

की उस के साथ सम्बद्धता दिखाई देती है । कालवर्मा अपनी पुत्री के पाणिग्रहण के समय सर्वप्रथम विप्र से परामर्श कर विवाह निश्चित करते हैं[65] । इससे प्रतीत होता है कि क्षत्रिय लोग विवाह सम्बन्ध अपने वर्ण में ही करते थे ।

गुरूनानक देव की ब्राह्मणों के प्रति अत्यधिक उदारता दिखाई देती है । वह मुक्त हाथ से उन्हें दान देते हैं । अन्य वर्ण के लोगों को भी वह यथेच्छत पदार्थ प्रदान कर प्रसन्न करते हैं[66] । जिस से उन की सभी वर्णों के लोगों के साथ आत्मीयता की भावना दिखाई देती है । क्षत्रिय तथा ब्राह्मण लोग स्वकर्म को करते हुये एक ही समाज में निवास करते हुये अपने-अपने गुणों द्वारा महिमा को अर्जित करते हैं । क्षत्रिय कुल में उत्पन्न नानक देव के प्रशंसनीय कार्यों द्वारा तत्कालीन समाज में उन की कीर्ति प्रसृत होती है और ब्राह्मण लोग जितेन्द्रिय तथा परमार्थनिष्ठ हो कर ख्याति का अर्जन करते हैं -

वंशो बभूव विततो महनीयकीर्ते, रेवं प्रभूतमहिमा भुवि नानकस्य ।।

अस्मिन् जितेन्द्रियाः परमार्थनिष्ठा, देवद्विजश्रुतिपराः पुरुषा बभूवुः[67] ।।

निकृष्ट कर्म करने वाला शूद्र हो अथवा वैश्य वह पतित कहलाता है तथा दोनों के लिये भक्ति भाव से पत्र-पुष्प भगवान् को अर्पित करने के लिये कहा गया है, जिस से वह पवित्र हो जाता है[68] । सभी वर्णों के लिये एक जैसी व्यवस्था से ज्ञात होता है कि प्रस्तुत महाकाव्य में सभी वर्णों के सम्बन्धों को एक दृष्टि से देखा गया है ।

सभी वर्णों के पृथक्-पृथक् होने पर भी उन्हें एक स्वरूप में स्वीकार किया गया है । अर्थात् ईश्वर की दृष्टि में ये चारों वर्णों के लोग भिन्न-भिन्न होने पर भी उसी द्वारा निर्मित होने पर एक जैसे हैं[69] । जब मनुष्य

---

65. ना॰चं॰ 3॰65

66. वही, 4॰25

67. वही, 19॰252

68. स्त्रीशूद्रवैश्यपतितानपि यः पुनीते,
भक्त्यर्पितैः सपदि तुष्यति पत्रपुष्पैः ।। - ना॰चं॰ 11॰118

69. प्रवृत्ते भैरवी चक्रे सर्वे वर्णाः द्विजातयः ।
निवृत्ते भैरवीचक्रे सर्वे वर्णाः पृथक् पृथक् ।। - ना॰चं॰ 12॰78

अज्ञानवश संसार को देखता है तो उसे ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र जातियों के लोग दिखाई देते हैं परन्तु जब उसे आत्मज्ञान प्राप्त हो जाता है तो सभी वर्ण एक स्वरूप प्रतीत होते हैं ।

शूद्र वर्ण के लोगों के प्रति छूआ-छूत की भावना को समाप्त किया गया है । गुरूनानकदेव स्वयं शूद्र के घर जाते हैं तथा स्व कर्म द्वारा गौरव प्राप्त करते हैं[70] । उन के साथ निवास करते हुये उन्हें श्रेष्ठ-मार्ग का प्रदर्शन करते हैं । निकृष्ट जाति में जन्म ग्रहण करने से भी उन्नत गुणों से भरपूर व्यक्तियों को दोषयुक्त नहीं माना गया है-

जातिर्निकृष्टापि भवादृशां न दोषाय विष्णोरिव सूकरत्वम्[71] ।।

इस प्रकार प्रस्तुत महाकाव्य में नीच कर्मों का आचरण करने से ही मनुष्य को निम्न जाति का माना है, परन्तु यदि कोई अच्छे कर्म का आचरण करता है तो निम्न जाति से सम्बन्धित होने पर भी वह दोषयुक्त नहीं माना जाता है । भोजनादि बनाने के लिये ब्राह्मणों को ही आमन्त्रित किया जाता था, जिस से प्रतीत होता है कि यद्यपि गुरूनानकदेव सभी जातियों के लोगों को समान समझते थे परन्तु फिर भी तत्कालीन समाज में उच्च तथा निम्न वर्ण के भेदभाव का प्रचलन था । शुद्धसेन के यहाँ जाने पर वह नानक के भोजन को पकाने हेतु "शुद्ध" नाम वाले ब्राह्मण को बुलाता है[72] । इस प्रकार चारों वर्णों के परस्पर सम्बन्धों को एक जैसा प्रदर्शित करने पर भी समाज में विद्यमान छूआ-छूत तथा अस्पृश्यता दिखाई देती है ।

गुरू नानक देव तो कर्मानुसार शूद्र, क्षत्रिय आदि वर्णों को मानते हैं अर्थात् जो नीच कर्म करता है, वही शूद्र कहलाता है । यवनाधिपति मलिक के आमन्त्रित करने पर जब वह वहाँ पहुँचते हैं तो भोजन को देख कर क्रुधित हो कर

---

70. तत परं शूद्रगृहेऽवतीर्य, स्वकर्मणा प्राप्य गुरूं गरिष्ठम् ।। - ना.चं.10.40

71. ना.चं. 7.80

72. शुद्धाभिधं ब्राह्मणमानयस्व, करोतु पाकं स च नानकाय ।।
- ना.चं. 8.69

कहते हैं कि यह शूद्र का भोजन है क्षत्रिय का नहीं[73] । इस प्रकार नानक समाज में निवास कर रहे नीच कर्म करने वाले लोगों को शूद्र मानते हैं भले ही वे किसी भी वर्ण के क्यों न हों । वे मलिक के अन्याय से उपार्जित भोजन को हाथ में ग्रहण कर उस में से खून की धारा प्रवाहित कर देते हैं[74] । जिस से ज्ञात होता है कि उन्हें दूसरे लोगों का खून चूस कर प्रतिष्ठित पद पर विराजमान होने वाले मान्य नहीं थे । अपने कर्मों में सुधार कर लेने पर पुन: समाज में रह रहे लोगों के साथ अच्छे सम्बन्ध बन जाते थे, जैसे मलिक बाद में समाज में प्रशंसनीय स्थान ग्रहण करता है[75] । क्योंकि मनु स्मृति में भी उल्लेख मिलता है कि शूद्र भी यदि श्राद्ध आदि करने योग्य पंचमहायज्ञों का अनुष्ठान नहीं करता है तो उस से भोजनादि ग्रहण नहीं करना चाहिये[76] । अर्थात् इन यज्ञों को करने से ही उस की शुद्धता बताई गई है । क्षत्रिय वर्ग के लोग ब्राह्मणों के साथ सम्मानजनक व्यवहार करते थे । गुरूदत्त द्वारा मृग भ्रम से ब्राह्मण की गाय की हत्या हो जाने पर पिता द्वारा उसे शास्त्रोक्त प्रायश्चित करने के लिये कहा जाता है[77] । इस प्रकार प्रतीत होता है कि तत्कालीन समाज में अन्य वर्ण के लोगों का ब्राह्मणों के साथ सम्बन्ध सत्कार से पूरित था ।

प्रस्तुत महाकाव्य में उदासी सम्प्रदाय का प्रचार अधिक किया गया हैं क्योंकि गुरू नानक देव उदासीमत को मानने वाले थे । अत: उन को किसी भी व्यक्ति से भेद-भाव तथा ऊंच-नीच का व्यवहार रखना पसन्द नहीं था । वह वर्ण तथा आश्रम के चक्कर में पड़ने वालों को ज्ञान शून्य उदासी स्वीकार करते थे[78] अर्थात् वर्ण विचार को त्याग कर सभी के साथ एकता का सम्बन्ध स्थापित करने का ज्ञान दिया गया है । इस प्रकार तत्कालीन समाज में विद्यमान

---

73. ना॰चं॰ 7॰146

74. वही, 7॰148

75. वही, 7॰149

76. नाद्धाच्छूद्रस्य पक्वान्नं विद्वानश्राद्धिनो द्विज: ।। - मनु स्मृ॰4॰223

77. ना॰चं॰ 20॰125, 126

78. वर्णाश्रमाभिमानेन शून्या: सन्त: उदासिन: ।। - ना॰चं॰17॰82

जो चारों वर्णों की रूढ़िवादिता तथा प्राचीन काल से चली आ रही भेद-भाव की प्रथा थी उसे समाप्त कर परस्पर सम्बन्धों को सौहार्द पूर्ण बनाने का प्रयत्न किया गया है ।

संस्कार

भारतीय समाज में संस्कारों का महत्त्वपूर्ण स्थान है । समय-समय पर भिन्न-भिन्न प्रकार के संस्कारों का आयोजन शास्त्रानुकूल किया जाता है । इन के बिना मानव जीवन अधूरा माना गया है । हमारे धर्मशास्त्रों का मुख्य उद्देश्य समाज का अभ्युदय और कल्याण करना रहा है -

यतोऽभ्युदयनिःश्रेयससिद्धिः स धर्मः[79] ।

संस्कारों के माध्यम से मानव की अन्तःस्थित वृत्तियों का प्रसार होता है । इन के द्वारा मनुष्य अपने जीवन को उपयुक्त बनाता है । संस्कार व्यक्ति तथा समाज दोनों का विकास करते हैं । मनुस्मृति में कहा गया है कि संस्कारों में किये गये हवन, यज्ञों द्वारा ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्य के गर्भ तथा बीज के दोषों की पवित्रता होती है -

बैजिकं गार्भिकं चैनो द्विजानामपमृज्यते[80] ।

संस्कारों की संख्या के बारे में धर्मग्रन्थों में मतभेद पाया जाता है । कुछ सोलह संस्कार मानते हैं, तो कई आठ स्वीकार करते हैं । इस प्रकार आठ से लेकर चालीस पर्यन्त संस्कारों की संख्या का उल्लेख दिखाई देता है । गर्भाधान पुंसवन, सीमन्तोन्नयन, जातकर्म, नामकरण, अन्नप्राशन, चौल और उपनयन ये आठ ऐसे हैं, जिन का निरूपण सर्वत्र प्राप्त होता है । गौतम धर्मसूत्र में चालीस संस्कारों का वर्णन मिलता है । यहाँ पर आठ मुख्य संस्कारों के अतिरिक्त चार वेदव्रत, समावर्तन, विवाह, पंचमहायज्ञ, सात पाक यज्ञ, सात हविर्यज्ञ तथा सात सोमयज्ञ उल्लिखित किये गये हैं -

---

79. वैशे. दर्शन, 1.1.2

80. मनु स्मृ. 2.27

इत्येते चत्वारिंशत्संस्कारा:[81] ।

मनुस्मृति तथा याज्ञवल्क्यस्मृति में संस्कारों की संख्या के बारे में निश्चित रूप से उल्लेख नहीं किया गया है । अधिकांश धर्मग्रन्थों ने प्रमुखतया षोडश संस्कार स्वीकार किये हैं । व्यास संहिता में व्यास मुनि ने सोलह संस्कारों का उल्लेख किया है[82] । इसी प्रकार अन्य ग्रन्थकारों ने भी सोलह संस्कार माने हैं, परन्तु उन में नाम भेद मिलता है । मित्रमिश्र ने गर्भाधान, पुंसवन, सीमन्तोन्नयन, जातकर्म, नामकरण, अन्नप्राशन, चौल, मौंजी (उपनयन), व्रत (चार) गोदान, समावर्तन, विवाह तथा अन्त्येष्टि ये सोलह संस्कार उल्लिखित किये हैं[83] ।

नानक चन्द्रोदय महाकाव्य में जातकर्म, नामकरण, विवाह तथा अन्त्येष्टि संस्कारों के बारे में ही विशेषत: वर्णन मिलता है । इन में भी विवाह संस्कार के विधान का विस्तृत वर्णन मिलता है, शेष का केवलमात्र संकेत ही दिखाया गया है ।

जातकर्म -

जातकर्म संस्कार के समय निर्धारण के बारे में मतभेद पाया जाता है । पारस्कर गृह्य सूत्र में नाल कटने से पहले इस संस्कार का विधान कहा है[84] । गोभिल गृह्यसूत्र तथा खादिर गृह्यसूत्र में नाल काटने से पूर्व तथा शिशु को माता का स्तनपान कराने से पहले जातकर्म का विधान है[85] । बृहदारण्यक में जातकर्म के समय छ: क्रियायें होम, दायें कान में तीन बार वाक् शब्द का उच्चारण, सुवर्ण भूषण से दधि, मधु तथा घृत पान कराना, गुप्त नामकरण, माता का स्तनपान तथा माँ को मन्त्रों द्वारा सम्बोधित करना अनिवार्य कहा है[86] । इस प्रकार जातकर्म संस्कार सन्तान के बुद्धि विकास के लिये तथा शिशु

---

81. गौ॰धर्म सू॰ 1॰8॰14 त: 25 पर्यन्तं

82. व्यास संहिता, 1॰13-15

83. वीरमित्रोदय संस्कार प्रकाश; मित्रमिश्र; पृ॰ 135

84. जातस्य कुमारस्याच्छिन्नायां नाड्यां मेधाजननायुष्ये करोति ।।
- पा॰गृ॰सू॰ 1॰16॰3

85. गो॰गृ॰सू॰ 2॰7॰17; खा॰गृ॰सू॰ 2॰2॰32

86. बृह॰उप॰ 6॰4॰24-28

जन्म के समय उत्पन्न विपत्तियों के निराकरण के लिये किया जाता था। वासिष्ठ स्मृति में उल्लेख मिलता है कि पिता पुत्र का मुख देखने के लिये पत्नी के निकट जाता था, क्योंकि नवजात शिशु का मुख देखते ही पिता समस्त ऋणों से मुक्त हो जाता है तथा वह अमृतत्व को प्राप्त करता है -

ऋणमस्मिन् सन्नयति अमृतत्वञ्च गच्छति।
पिता पुत्रस्य जातस्य पश्येच्चेज्जीवितो मुखम्[87] ।।

इस प्रकार पुत्र जन्म पर ब्राह्मणों को आमन्त्रित कर उन को प्रसन्न कर, तथा पितरों को प्रसन्न कर जातकर्म नाम का संस्कार किया जाता था।

नानकचन्द्रोदय महाकाव्य में भी जातकर्म संस्कार से पूर्व नान्दी मुखश्राद्ध का आयोजन किया गया है। जब कालवर्मा के घर पुत्र उत्पन्न होता है तो वह पहले पितरों की विधि विधान से तृप्त करते हैं -

मग्नोऽपि हर्षाम्बुनिधौ ममज्ज, सवैलमाश्वम्भसि कालवर्मा।
विधाय तृप्तिं विधिवत्पितृणां, नान्दीमुखानामनृणो बभूव[88] ।।

नान्दीमुख श्राद्ध करने के पश्चात् माङ्गलिक वाद्यों तथा गीतों के साथ शिशु का जातकर्म संस्कार किया जाता है[89] । जातकर्म संस्कार के समय दधि, मधु, तथा घृत चटा कर जो मेधा जनन का विधान बताया गया है, उसी प्रकार तत्कालीन समाज में भी मेधा जनन किया जाता होगा क्योंकि प्रस्तुत महाकाव्य में कालवर्मा पुत्र का मेधा जनन कर्म करने के पश्चात् ब्राह्मणों को सुवर्ण, आभूषणों का दान करते हैं[90] । इस प्रकार नाल कटने के उपरान्त पिता पुत्र को देखता है। यहाँ पर मधु, घृत आदि का उल्लेख उपलब्ध नहीं होता है परन्तु मेधा जनन से प्रतीत होता है कि यह समस्त विधान शास्त्रोक्त ढंग से ही किया गया होगा। शिशु की वृद्धि, दीर्घायु तथा बुद्धि विकास के लिये वस्त्र और आभूषणों का

---

87. व.स्मृ. 17.1

88. ना.चं. 2.45

89. उद्दाममङ्गल मृदङ्गनिनादरम्यं.....।
.....पाकोद्विजेरभिहितोऽकृत जातकर्मा।। - ना.चं. 2.46

90. विधाय मेधाजननादि कर्म बालं विनालं जनको विलोक्य ।।
- वही, 2.48

दान किया जाता है[91]। जब गुरू नानक के घर पुत्र उत्पन्न होता है तो उस समय भी जयराम वर्मा तथा नानक दोनों प्रसन्न हो कर जातकर्म संस्कार करते हैं तथा याचकों को उन की इच्छानुसार दान दे कर प्रसन्न करते हैं[92]। इस प्रकार पुत्र उत्पत्ति पर जातकर्म संस्कार तत्कालीन समाज में पूर्ण विधि-विधान से किया जाता था, तथा पुत्र की बुद्धि विकास के लिये कामना की जाती थी।

नामकरण संस्कार -

मनुष्य अपने जीवन में भाषा का विकास करने के साथ-साथ दैनिक व्यवहार की वस्तुओं का नामकरण करने के लिये प्रयत्नशील रहा है। इस के साथ ही मनुष्यों का नामकरण भी सामाजिक चेतना के विकास के साथ किया जाने लगा, क्योंकि नाम के बिना समाज में व्यवहार का संचालन कर पाना असम्भव था। इसलिये हिन्दुओं ने नामकरण की प्रथा को धार्मिक संस्कार में परिणत कर दिया। मनुस्मृति में चारों वर्णों के कर्मों के अनुसार नामकरण करने का उल्लेख उद्धृत किया गया है -

माङ्गल्यं ब्राह्मणस्य स्यात् क्षत्रियस्य बलान्वितम्।
वैश्यस्य धनसंयुक्तं शूद्रस्य तु जुगुप्सितम्[93] ।।

अर्थात् ब्राह्मण का नाम लक्ष्मीधर, क्षत्रिय का युधिष्ठर, वैश्य का महाधन तथा शूद्र का नरदास रखने का उल्लेख किया है। आश्वलायन गृह्य सूत्र में उल्लेख मिलता है कि जिस नक्षत्र में शिशु उत्पन्न हुआ हो उस के अधिष्ठातृ देवता के नाम के आधार पर नाम रखा जाता है[94]। बालक के जन्मोपरान्त भिन्न-भिन्न दिनों में नाम करण संस्कार करने का उल्लेख मिलता है। पारस्कर ने दसवें दिन नामकरण का विधान कहा है -

---

91. ना॰चं॰ 3॰47

92. जाते सूतेऽतिमुदितो जयरामवर्मा, श्रीनानकश्च विदधेऽखिलजातकर्म ।।
- ना॰चं॰ 6॰25

93. मनु॰स्मृ॰ 2॰31 एवं द्र॰ 32

94. आ॰गृ॰सू॰ 1॰15॰4

दशम्यामुत्थाप्य ब्राह्मणान्भोजयित्वा पिता नाम करोति[95] ।

काठक गृह्य सूत्र में बालक के जन्म वाले दिन ही नामकरण करने के लिये कहा गया है[96] । शतपथ ब्राह्मण में भी इसी प्रकार उल्लेख उपलब्ध होता है -

तस्मात्पुत्रस्य जातस्य नाम कुर्यात्पाप्मानमेवास्य तदपहन्त्यपि द्वितीयमपि तृतीयम्[97] ।।

याज्ञवल्क्यस्मृति में जन्म से ग्यारहवें दिन नामकरण संस्कार का उल्लेख किया गया है[98] । गोभिल गृह्य-सूत्र में उद्धृत है कि जन्म के बाद दस रात्री, सौ रात्री अथवा एक वर्ष बाद नामकरण संस्कार करना चाहिये[99] । खादिर गृह्यसूत्र के अनुसार भी इसी मत की पुष्टि होती है -

जननादूर्ध्वं दशरात्राच्छतरात्रात्संवत्सराद्वा नाम कुर्यात्[100] ।।

कवि बाण ने कादम्बरी में प्रतिपादन किया है कि तारापीड़ ने अपने पुत्र चन्द्रापीड़ का नाम दसवें दिन शुभ मुहूर्त में रखा था, और उन के मन्त्री शुकनास ने पुत्र वैशम्पायन का नामकरण उससे (ग्यारहवें) दूसरे दिन ही कर लिया था -

प्राप्त दशमेऽहनि पुण्ये मुहूर्ते·····चन्द्रापीड़ इति नाम चकार ।
अपरेद्युः शुकनासोऽपि·····वैशम्पायन इति नाम चकार तु[101] ।।

मनुस्मृति में जन्म से दशवें या बारहवें दिन बालक का नामकरण संस्कार करने का उल्लेख मिलता है । शुभ तिथि, मुहूर्त और गुणयुक्त नक्षत्र में नामकरण का विधान कहा गया है -

नामधेयं दशम्यां तु द्वादश्यां वाऽस्य कारयेत् ।
पुण्ये तिथौ मुहूर्ते वा नक्षत्रे वा गुणान्विते[102] ।।

---

95. पा॰गृ॰सू॰ 1·22
96. का॰गृ॰सू॰ 34·1
97. शा॰ब्रा॰, 6·1·3-9
98. अह्न्येकादशे नाम चतुर्थे मासि निष्क्रमः ।। - याज्ञ॰स्मृ॰ 1·12
99. गो॰गृ॰सू॰ 2·8·8
100. खा॰गृ॰सू॰ 2·3·6
101. कादम्बरी; पूर्व भाग; पृ॰148
102. मनु॰स्मृ॰ 2·30

इस प्रकार धर्मशास्त्रों में स्व-स्व मतानुसार नामकरण संस्कार का विधान बताया गया है ।

नानकचन्द्रोदय महाकाव्य में मनुस्मृति के अनुसार बारहवें दिन नामकरण संस्कार करने का उल्लेख प्राप्त होता है । नानकदेव के जन्म पर पिता कालवर्मा बन्धुओं तथा विद्वानों को आमन्त्रित कर, गौरी और गणेश की अर्चना कर बारहवें दिन नामकरण संस्कार करते हैं -

आहूय बन्धून् गणकान् बुधांश्च, संपूज्य गौरीं गणनायकं च ।
स द्वादशेऽहन्यकरोत्सुतस्य, नामप्रसिद्धं जगतीतले यत् ।।[103]

नामकरण संस्कार का उल्लेख करते समय धर्मशास्त्रों में शिशु का नाम द्वि अक्षर, चार अक्षर वाला घोषवत्, विसर्ग अन्त में, कृत्य-प्रत्ययान्त तथा शर्मा, वर्मा, गुप्त एवं दास का प्रयोग नाम के पश्चात् करने का निरूपण किया गया है[104] । नानक चन्द्रोदय महाकाव्य के अध्ययन से भी प्रतीत होता है कि तत्कालीन समाज में नाम के पीछे चन्द्र, वर्मा, मल्ल और सिंह आदि शब्दों का प्रयोग किया जाता था । जैसे कालवर्मा, शिवराम वर्मा आदि का उल्लेख दिखाई देता है -

कुन्देन्दु निर्मलयशा: शिवराम वर्मा[105] ।।

इसी प्रकार गुरू नानक देव के पुत्रों के नाम श्रीचन्द्र तथा लक्ष्मीचन्द्र रखे जाते हैं[106] । जिससे आभास होता है कि तत्कालीन समाज में प्राचीन काल से चली आ रही परम्परा के अनुसार ही नामकरण करने में लोग बन्धे नहीं थे, अपितु स्वतन्त्र रूप से नाम रखते थे । क्योंकि गुरूनानक देव अपने पूर्वजों के अनुरूप अपने पुत्रों का नामकरण संस्कार न करके वर्मा के स्थान पर चन्द्र का प्रयोग करते हैं । नामकरण संस्कार के शुभावसर पर ब्राह्मणों को आमन्त्रित कर उन की आज्ञानुसार पिता

---

103. ना॰चं॰ 2॰51

104. पा॰गृ॰सू॰ 1॰22; आ॰गृ॰सू॰ 1॰15॰4-5; मनु॰स्मृ॰ 31-33

105. ना॰चं॰ 2॰23 एवं द्र॰ 1॰8

106. वही, 6॰26; 6॰147

पुत्र का नाम रखता है । जब कालवर्मा के पुत्र नानकदेव को विद्वान् ब्राह्मण देखते हैं तो अकस्मात् उन के मुख से "नानक" शब्द का उच्चारण होता है, तथा कालवर्मा भी विद्वान् के मुखारविन्द से उच्चारित नाम का अनुमोदन कर देते हैं[107] । उसी समय विद्वानों से बालक के शुभ-अशुभ ग्रहों के बारे में भी जानकारी प्राप्त की जाती है[108] । जिस से प्रतीत होता है कि माता-पिता को तत्कालीन समय में भी अपनी सन्तान के भविष्य तथा श्रेष्ठ गुणों के बारे में जानने की जिज्ञासा होती थी ।

विवाह संस्कार -

हिन्दु संस्कारों में विवाह का महत्त्व सर्वाधिक है, अधिकांश गृह्यसूत्रों का आरम्भ इसी संस्कार से होता है । सभी गृह यज्ञों व संस्कारों का यह उद्गम अथवा केन्द्र है । वे शुरू से ही यह स्वीकार कर के चलते हैं कि सामान्य परिस्थितियों में समाज प्रत्येक मनुष्य से विवाह करने के उपरान्त गार्हस्थ्य जीवन यापन करने की अपेक्षा करता है । विवाह को एक यज्ञ माना जाता था और जो व्यक्ति विवाह न करके गार्हस्थ्य जीवन में प्रवेश नहीं करता था, उसे यज्ञ से हीन माना जाता था -

अयज्ञियो व एष योऽपत्नीक:[109] ।

तैत्तिरीय ब्राह्मण में ही उल्लेख किया गया है कि अकेला पुरुष अधूरा है पत्नी उस का अर्धभाग होती है -

अथो अर्धो वा एष आत्मन: यत् पत्नी[110] ।

तीन ऋणों में से एक पितृ ऋण से मुक्त होने के लिये विवाह को परमावश्यक माना गया है । सन्तान उत्पन्न कर पितृ ऋण से मुक्ति नहीं है -

---

107. बालं विलोक्यात्मदृशा द्विजेन, केनाप्यहो नानक इत्यकस्मात् ।
अवादि कालोऽपि विशेष वृद्धि-स्तदेव नामानुमन्वकार ।। -ना.चं.2.52

108. ना.चं. 2.54 एवं द्र. 56, 57

109. तैत्ति.ब्रा. 2.2.2.6

110. वही, 2.9.4.7

जायमानो ह वै ब्राह्मणस्त्रिभिर्ऋणवान् जायते ।
ब्रह्मचर्येण ऋषिभ्यो यज्ञेन देवेभ्य: प्रजया पितृभ्य: ।।[111]

धर्मसूत्रों तथा गृह्यसूत्रों से इस बात का पता चलता है कि नैष्ठिक ब्रह्मचारियों की संख्या बहुत ही न्यून थी, अधिकतर युवकवर्ग विवाह कर गार्हस्थ्य जीवन व्यतीत करते थे । स्मृतियाँ आश्रम व्यवस्था का पूर्ण रूप से समर्थन कर इस बात को दृढ़ता पूर्वक प्रतिपादित करती हैं कि प्रत्येक व्यक्ति को ब्रह्मचर्याश्रम के पश्चात् विवाह करना चाहिये । मनु ने कहा है कि मनुष्य को आयु का पूर्ण भाग गुरूकुल में, द्वितीय भाग पत्नी के साथ गृहस्थ आश्रम में, तृतीय भाग वन में तथा चतुर्थ भाग सम्पूर्ण सांसारिक सुखों का त्याग कर सन्यास आश्रम में व्यतीत करना चाहिये[112] । स्मृतियों में गृहस्थाश्रम की अत्यधिक श्लाघा की गई है । विवाह संस्कार को समस्त सामाजिक संघटन का मूल तथा केन्द्र भूत माना गया है । जैसे सम्पूर्ण प्राणी वायु पर आश्रित होते हैं, उसी प्रकार समस्त आश्रम गृहस्थाश्रम पर आधारित हैं, क्योंकि यह ज्ञान तथा अन्न द्वारा अन्य तीनों आश्रमों की सहायता करता है, इसलिये तीनों में श्रेष्ठ (ज्येष्ठ) है । मनु ने कहा है कि जो शिथिल इन्द्रिय मनुष्य है वह उस का पालन करने में असमर्थ होता है[113] । याज्ञवल्क्य स्मृति में अपरार्क ने अज्ञात लेखक के वचनों को उद्धृत कर बताया है कि बिना पत्नी वाला मनुष्य कर्म करने के योग्य नहीं होता है चाहे वह किसी भी वर्ण में उत्पन्न हो । इस लिये चारों वर्णों को विवाह संस्कार में बन्धने के लिये कहा गया है -

पत्नी धार्मिककामानां कारणं प्रवरं स्मृतम् ।
अपत्नीको नरो भूम कर्मयोग्यो न जायते ।
ब्राह्मण: क्षत्रियो वापि वैश्य: शूद्रोऽपि वा नर: ।।[114]

प्राचीन काल में दूसरे देशों में भी विवाह को अत्यन्त सम्मानित दृष्टि से लिया

---

111. तैत्ति.सं. 6.3.10.5
112. मनु.स्मृ. 4.1
113. वही, 3.77 त: 79 पर्यन्त
114. याज्ञ.स्मृ. 1.51 पर उद्धृत

जाता था । ईसराईल की जनता में विवाह का सम्मान उसी प्रकार था, जैसे हिन्दु करते हैं[115] । यूनान में भी विवाह को पवित्र संस्कार मान कर उस का आदर किया जाता है[116] । इस प्रकार विवाह संस्कार को सर्वोपरि माना गया है । अविवाहित रहना गृह देवताओं के विरुद्ध घोर पाप समझा जाता था, क्योंकि इस के बिना वंश परम्परा अक्षुण्ण हो जाती है । विवाह द्वारा उत्तराधिकारी की समस्या स्वयं हल हो जाती है तथा पितरों की पूजा द्वारा पितृ ऋण से भी मुक्ति मिल जाती है ।

विवाह के प्रकार - भिन्न-भिन्न धर्मग्रन्थों के आधार पर विवाह के महत्त्व का निरूपण करने के पश्चात् दाम्पत्यसम्बन्धों को स्थापित करते समय विचारणीय विषयों तथा विवाह के भेदों का वर्णन करते हैं । ब्राह्म, दैव, आर्ष, आजापत्य, आसुर, गान्धर्व, राक्षस और पिशाच आठ प्रकार के विवाह मनु ने कहे हैं[117] । अधिकांश गृह्यसूत्रों में आठ प्रकार के विवाहों का उल्लेख न कर स्व स्व मतानुसार भेद माने गये हैं । मानव गृह्य सूत्र में ब्राह्म और शुल्क (आसुर) दो प्रकार के विवाह उल्लिखित हैं[118] । आश्वलायन गृह्य सूत्र में आठ प्रकार के विवाहों का ही उल्लेख मिलता है[119] । मनुस्मृति में आठ प्रकार के विवाहों को दो भागों में रखा गया है - प्रशस्त तथा अप्रशस्त । पहले चार को प्रशंसनीय पंचम और षष्ठ को सह्य तथा सप्तम और अष्टम को निन्दनीय माना गया है[120] ।

नानक चन्द्रोदय महाकाव्य में विवाह के प्रकार का उल्लेख उपलब्ध

---

115. हिस्ट्री ऑव दि फैमिली एज़ ए सोशल एण्ड एजुकेशनल इंस्टिट्यूशन्; विलिस्टाईन गुड सेल, पृ. 58
116. वही, पृ. 86 पर उद्धृत
117. ब्राह्मो दैवस्तथैवार्षः प्राजापत्यस्तथाऽऽसुरः ।
गान्धर्वो राक्षसश्चैव पैशाचश्चाष्टमोऽधमः ।। - मनु.स्मृ.3.21 एवं द्र. या.स्मृ., 1.58-61
118. मा.गृ.सू. 1.7.12
119. आ.गृ.सू. 1.6
120. मनु स्मृ. 3.24,25

नहीं होता है, परन्तु पिता द्वारा विधि-विधान से कुलोचित वर को सुवर्ण आभूषणों के साथ कन्या दी जाती है[121] जिस से प्रतीत होता है कि बाह्म विवाह का प्रचलन अधिक था । क्योंकि मनुस्मृति में भी कहा है कि जब पिता वर को बुला कर, कन्या को अलंकारादि से भूषित कर वर को समर्पित करता है तो वह ब्राह्म विवाह कहलाता है -

आच्छाद्य चार्चयित्वा च श्रुतिशीलवते स्वयम् ।
आहूय दानं कन्याया ब्राह्मो धर्मः प्रकीर्तितः[122] ।।

इस प्रकार मनुस्मृति के अनुसार ही कालवर्मा अपनी पुत्री नानकी का विवाह जयराम वर्मा के साथ, तथा मूल चन्द्र सुलक्षणी का पाणि ग्रहण नानक के साथ करते हैं, जिस से ब्राह्म विवाह का अवलोकन होता है । अन्य विवाह के भेदों का निरूपण प्रकृत महाकाव्य में कहीं भी उपलब्ध नहीं होता है ।

विवाह के अन्य विधान -

विवाह संस्कार के समय प्राचीन काल से ही अनेक विधि-विधानों का उल्लेख मिलता है । वर के लिये कन्या का चयन करते समय किन-किन बातों का ध्यान रखना परमावश्यक है तथा कैसी कन्या से विवाह करना चाहिये इस का विधान याज्ञवल्क्य ने कहा है कि जो रोग से हीन, भ्राता युक्त, अन्य गोत्र, मातृ कुल में पाँच पीढ़ी से अर और पितृ कुल में सात पीढ़ी से अर हो, ऐसी कन्या से पाणिग्रहण करना चाहिये[123] । ब्राह्मण को क्षत्रिय तथा वैश्य की कन्या से, क्षत्रिय को, क्षत्रिय तथा वैश्य की कन्या से, वैश्य केवल मात्र स्वजाति में ही तथा शूद्र भी अपने वर्ण में ही विवाह कर सकता है । शूद्र कुल में उत्पन्न कन्या से विवाह करने का निषेध अन्य तीनों वर्णों के लिये किया गया है -

---

121. ना.च. 4.66 एवं द्र. 3.75
122. मनु स्मृ. 3.27
123. याज्ञ.स्मृ. 1.53-54

तिस्त्रो वर्णानुपूर्वेण द्वे तथैका यथाक्रमम् ।
ब्राह्मणक्षत्रियविशां भार्या स्वा शूद्रजन्मनः [124] ।।

मनुस्मृति में भी शूद्र वर्ण की कन्या के साथ विवाह को वर्जित बताया गया है [125] । श्रीमद्भागवद्गीता में भी अपने वर्ण में ही विवाह करने की व्यवस्था पर बल दिया है क्योंकि स्व जाति में पाणिग्रहण करने से वर्णसंकरता प्रसृत नहीं होती है तथा समाज में शान्ति बनी रहती है -

संकरो नरकायैव कुलघ्नानां कुलस्य च ।
पतन्ति पितरो ह्येषां लुप्तपिण्डोदकक्रियाः [126] ।।

नानक चन्द्रोदय महाकाव्य के अध्ययन से प्रतीत होता है कि तत्कालीन समाज में स्वजाति में ही विवाह-संस्कार प्रशस्त था । कन्या के अन्दर सुन्दरता, सुशीलता तथा उच्च गुणों की सम्पन्नता का ध्यान अवश्य रखा जाता था । यही गुण वर में भी देखे जाते थे । नानकी के विवाह के समय दिखाई देता है कि सुन्दर गुणों से युक्त नानकी को रूपवान् जयराम वर्मा के साथ जाति आदि का विचार कर विवाह बन्धन में बाँध दिया जाता है [127] । गुरूनानक देव के विवाह के अवसर पर जब ब्राह्मण मूलचन्द्र को नानक के वर्ण, वंश आदि के औचित्य को कहते हैं तभी सुलक्षणी के पिता कालवर्मा को विवाह सम्बन्धी बात निश्चित करने के लिये आमन्त्रित करते हैं [128] । इस प्रकार क्षत्रिय, ब्राह्मण, वैश्य तथा शूद्र अपने अपने वर्ण में ही विवाह करते थे, यह प्रतीत होता है । पाणिग्रहण की बात दोनों पक्षों में निर्धारित हो जाने पर वरपक्ष वाले तथा कन्या पक्ष वाले दोनों ही प्रसन्न होते हैं तथा अपनी-अपनी

---

124. याज्ञ॰स्मृ॰ 1॰57
125. मनु स्मृ॰ 3॰17 तः 19 पर्यन्त
126. गीता, 1॰42
127. ना॰चं॰ 3॰68 तः 70 पर्यन्त
128. वर्णवंश्यादिकं सर्वमेवोचितं, नानकस्यानया कन्ययेति द्विजैः ।
बोधितः पारमानन्दिरानन्दितः, कालमामन्त्रयिष्यन् जनं प्रेषयत्।।
- ना॰चं॰ 4॰67 एवं द्र॰ 66

शक्ति के अनुसार विवाह की तैयारियाँ शुरू कर देते हैं[129]। इस प्रकार प्रसन्नता के साथ निश्चित तिथि तक विवाह सम्बन्धी तैयारी कर वर यात्रा का प्रस्थान हर्षोल्लास के साथ किया जाता है।

वरयात्रा -

विवाह के दिन प्रातःकाल वर तथा वधू अपने अपने घर में सुगन्धित जल द्वारा पति-पत्नी सूचक मन्त्रों द्वारा स्नान करते हैं[130]। इस के बाद घर से सेहरा बाँध कर वर अपने बन्धुओं सहित सज-धज कर वर-यात्रा ले कर कन्या के पिता के घर के लिये प्रस्थान करता है। जैसा कि आज कल के समाज में दृष्टिगोचर होता है। बारात का उल्लेख ऋग्वेद तथा अथर्ववेद में भी उपलब्ध होता है[131]। समयानुसार तथा अपने-अपने रिवाज के अनुसार वर यात्रा अश्व, पालकी, रथ तथा यथायोग्य वाहन पर निकलती है।

नानक चन्द्रोदय महाकाव्य में विभिन्न प्रकार के वाद्यों से गुंजित तथा स्त्रियों के गीतों से मुखरित बारात का वर्णन दिखाई देता है -

मृदङ्गमञ्जुध्वनिभिर्गीतिभिः कुलयोषिताम्।
वाद्यानां शुभालापैः सा यात्रा शुशुभेतराम्[132] ॥

वर सुन्दर आभूषणों तथा वस्त्रों से विभूषित हो कर अपने वाहन अश्व पर बैठता है[133]। इस प्रकार तत्कालीन समाज में वाहनरूप में अश्वों का प्रयोग किया जाता होगा अथवा अश्वों से खींची जाने वाली गाड़ियों में वरयात्रा जाती होगी, उस का ही ज्ञान होता है। वधू के घर को जाते समय बारात के लोग मार्ग में विभिन्न प्रकार से नृत्य करते हुये तथा आतिशबाज़ी करते हुये जाते हैं[134]। रास्ते में जाती हुई ऐसी बारात के कौतुक को देख कर दर्शकगण

---

129. मूलमापृच्छ्य मुदिता वरपक्ष्या ययुर्गृहात्।
द्वयेपि चक्रुः संभारानुद्वाहाय महोत्सवान ॥ - ना.चं. 4.80

130. गो.गृ.सू. 2.1.10; शां.गृ.सू. 1.11; 1.3.6

131. ऋ. 10.85. एवं द्र. 10-15; अथर्ववेद 14.12

132. ना.चं. 5.26

133. वही, 5.41

134. वही, 5.39, 51, 52 एवं द्र. 5.85, 86

आनन्दित होते हैं, तथा वर-यात्रा की शोभा का वर्णन करते हैं[135]। वधू के घर पहुँचने पर तोरण के नीचे से हो कर सुसज्जित वेदी तथा मण्डप में प्रवेश कर वर तथा सम्बन्धी गण उच्च आसन पर बैठते हैं -

आबद्धतोरणमुदीतचतुष्कवेदि, सौवर्णकुम्भनवपल्लवरागरम्यम् ।
उद्वाहमण्डपमुपेत्य वरः परे च, सिंहासनेषु रुचिरेषु सुखंन्यषीदन्[136] ।।

इस प्रकार फिर वर तथा बन्धुओं का स्वागत कर विवाह संस्कार के धार्मिक कार्य को मन्त्रों द्वारा निष्पन्न किया जाता है ।

मधुपर्क -

भारतीय समाज में हिन्दुओं के विवाह संस्कार में वर पूजा तथा माधुर्य प्रदान करने का विशेष महत्त्व है । पारस्कर गृह्यसूत्र में उल्लेख किया गया है कि सर्वप्रथम श्वसुर को वर के लिये मधुपर्क प्रदान करना चाहिये-

मधुपर्कं दधिमधुघृतमपिहितं कांस्येनान्यस्त्रिस्त्रिः प्राह[137] ।

यह मधुपर्क दही, शहद तथा घृत को मिला कर बनाया जाता है और काँसे के वर्तन में डाल कर भक्षण करने का विधान कहा है । मधुपर्क विशेष रूप से अतिथि को सत्कार-पूर्वक मध्वादि प्रदान करने के रूप में ही प्राप्त होता है । निरुक्त में भी "जानते मधुपर्क प्राह"[138] कहा गया है । याज्ञवल्क्य स्मृति में कहा गया है कि इन छः प्रकार के लोगों को मधुपर्क प्रदान करना चाहिये-

प्रतिसंवत्सरं त्वध्र्याः स्नातकाचार्यपार्थिवाः ।
प्रियो विवाह्यश्च तथा यज्ञे प्रत्यृत्विजः पुनः[139] ।।

बोधायन गृह्यसूत्र में भी मधुपर्क का उल्लेख निम्नप्रकार से किया गया है -

"तथैते अध्र्या ऋत्विक्, श्वशुरः, पितृव्यो, मातुल, आचार्यो, राजा वा स्नातकः प्रियो वरोऽतिथिरिति"[140] ।।

---

135. ना॰चं॰ 5·76, 77
136. वही, 5·111
137. पा॰गृ॰सू॰ 1·3·1·32
138. निरुक्त, 1·16
139. याज्ञ॰स्मृ॰ 1·110 एवं द्र॰/09
140. बौ॰गृ॰सू॰ 1·2·65

इस प्रकार अतिथि को भी मधुपर्क प्रदान करने के योग्य कहा है। मनु ने राजा, ऋत्विज् (यज्ञ करने वाले वेदपाठी) स्नातक, गुरू, जामाता, श्वसुर और मामा उन को मधुपर्क दे कर पूजन करने का उल्लेख किया है -

राजर्त्विक्स्नातकगुरून्प्रियश्वशुरमातुलान् ।
अर्हयेन्मधुपर्केण परिसंवत्सरात् पुनः [141] ।।

मधुपर्क बनाने के बारे में अलग-अलग उल्लेख मिलते हैं। आश्वलायन तथा आपस्तम्ब गृह्य सूत्र में मधु, दधि तथा स्वच्छ मक्खन मिला कर मधुपर्क निर्माण करने का निर्देश मिलता है [142]। हारीत गृह्यसूत्र में दधि, मधु, धृत, जल तथा साथ भूमि का अनाज मिला कर बनाने का उल्लेख मिलता है [143]। कुछ गृह्यसूत्रों में मधुपर्क में मांस मिलाने का भी उल्लेख किया गया है। मानव गृह्यसूत्र में कहा है कि वैदिक काल में मधुपर्क का निर्माण करते समय उस में मांस का प्रयोग भी किया जाता था [144]। क्योंकि इसी लिये "माता रुद्राणां....."। आदि वैदिक मन्त्र अनेक गृह्यसूत्रों में उपलब्ध होते हैं। आजकल भी विवाह संस्कार में इस मन्त्र का उच्चारण किया जाता है तथा गाय का दान किया जाता है। अर्थात् गाय को सर्वोत्तम मान कर इस की हत्या से रोका गया है।

नानक चन्द्रोदय महाकाव्य में गुरू नानक देव के विवाह के अवसर पर वधू के पिता मूलचन्द्र सर्वप्रथम वर को विष्टर, पाद्य तथा अर्घ्य प्रदान कर पूजा करते हैं, तथा फिर ब्राह्मणों द्वारा मन्त्रोच्चारण के बीच मधुपर्क प्रदान करतेहैं -

ततो वरं विष्टरपाद्यपाद्यै, रर्घेण मूलो मधुपर्कदानात् ।
आनर्च विप्रेषु पठत्सु वेदान्, स्त्रीणां मृदङ्गध्वनिमन्वगीतौ [145] ।।

इसी प्रकार नानकी के पाणिग्रहण के अवसर पर कालवर्मा जामाता जयराम वर्मा

---

141. मनु॰स्मृ॰ 3॰119, एवं द्र॰ 120
142. आप॰गृ॰सू॰ 13॰10
143. हारीत॰गृ॰सू॰ 1॰12॰10-12
144. मा॰गृ॰सू॰ 1॰9॰23
145. ना॰चं॰ 5॰113

की आसन, अर्घ्य और पाद्य प्रदान कर पूजा करते हैं[146] । मधुपर्क निर्माण के विधान तथा उसे कितनी बार भक्षण करना चाहिये एवं पात्र का उल्लेख उपलब्ध नहीं होता है । सम्पूर्ण संस्कार का विधान हिन्दु-धर्मशास्त्रों के अनुसार उल्लिखित होने से प्रतीत होता है कि शास्त्रोक्त कांस्यपात्र में ही दिया जाता होगा ।

मधुपर्क दान के पश्चात् वर वधू एक दूसरे को दो-दो वस्त्र प्रदान करते हैं । आचार्य कुशा के अग्रभाग से जल द्वारा कन्या का सिंचन करते हैं तथा गोत्रोच्चारण के साथ-साथ कन्यादान होता है[147] । गोत्रोच्चारण का विधान पद्धतियों में कन्यादान से पूर्व प्रतिपादित किया गया है । वर और वधू के पूर्वजों का नामोच्चारण गोत्र प्रवर और शाखा सहित किया जाता है । वासुदेव तथा हरिहर के अनुसार गोत्रोच्चारण तीन बार किया जाता है, तथा गंगाधर के अनुसार एक बार ही ज़ोर से उच्चारण किया जाता है[148] । इस का महत्त्व यह होता है कि जिन के पूर्वजों की परम्परा अनेक पीढ़ियों से चली आ रही है वे वर और वधू दोनों ही उच्च वंश के हैं । गृह्यसूत्रों में यह वर्णन उपलब्ध नहीं होता है केवल मात्र पद्धतियों में इस का वर्णन मिलता है । नानक चन्द्रोदय महाकाव्य में भी गोत्रोच्चारण का उल्लेख दिखाई देता है परन्तु कितनी बार उच्चारण होना चाहिये, इस का वर्णन नहीं मिलता है ।

समंजन -

समंजन स्नेह या प्रेम के परिणामस्वरूप भावी पति-पत्नी के सम्बन्धों का प्रतीक होता है । सभी सम्प्रदायों में वर-वधू को परस्पर एक-दूसरे को देखने का विधान होता है, जिसे परस्पर समंजन कहते हैं । इस समय वर -

"विश्वेदेवा आप: समजन्तु मातरिश्वा संदधातु नौ"

मन्त्रोच्चारण करता है अर्थात् वह प्रार्थना करता है कि जल हमारे हृदयों को

---

146. ना॰चं॰ 3·75

147. वही, 5·114, 116

148. गार्ग पद्धति तथा विवाह पद्धति

एक सूत्र में आबद्ध करें, धाता हमें संयुक्त कर दें । इस प्रकार "समीक्षण" की विधि को एक-दूसरे की तरफ मुँह कर कराया जाता है, परन्तु इस में आचार्यों के अलग-अलग मत दिखाई देते हैं ।

नानकचन्द्रोदय महाकाव्य में "समीक्षण" के समय वर "काम स्तुति" का पाठ करता है तथा पूर्ण कलश धारण किये हुये पुरुष के स्थित होने पर वर-वधू परस्पर समीक्षण करते हैं[149] । इस प्रकार प्रतीत होता है कि पद्धतियों में प्रतिपादित समंजन का विधान तत्कालीन समाज के विवाह संस्कारों में भी किया जाता था जो कि दोनों की दीर्घायु तथा सम्बन्धों को प्रगाढ़ बनाने हेतु होता था । आज भी समाज में इस विधि का पूर्ण प्रचलन दिखाई देता है जिस के लिये कुछ लोगों द्वारा कहा जाता है कि कन्यादान ग्रहण करने से पूर्व वर अपनी वधू के मुख को देख कर उस के रूप से परिचित होता है । इसी प्रकार वधू वर को अवलोकित करती है ।

राष्ट्रभृत् तथा अन्य होम -

आसन, पाद्य, अर्घ्य तथा मधुपर्क आदि के विधान द्वारा वर का पूजन कर तथा समंजन के पश्चात् राष्ट्रभृत्, स्विष्टकृद्, जय, अभ्यातन, सर्वप्रायश्चित, प्राजापत्य तथा लाजाहोम किया जाता है । लाजाहोम इन में प्रमुख होता है, जिस के उपरान्त कन्या वर की पूर्ण रूप से वधू बन जाती है । लाजा होम समृद्धि तथा वंशवृद्धि का प्रतीक होता है -

इमाँल्लाजानावपाम्यग्नौ समृद्धिकरणं तव[150] ।

वधू का भाई अपनी अंजली द्वारा बहिन को शमीपत्रों सहित लाजायें (फूलियाँ) देता है, जिन को वह अग्नि में डालती है, तथा उस समय वर तथा वधू दोनों

---

149. काम स्तुतिं कामसम: पपाठ
वर: सुदायं श्वशुरो ददौ च ।।
स्थिते नरे पूर्णघटे व्यधत्तां
वधूवरौ निष्क्रममीक्षणं च ।। - ना.चं. 5.117 एवं द्र.116

150. पा.गृ.सू. 1.6.1-2

माङ्गलिक ऋचाओं का उच्चारण करते हैं -

अर्यम्णं देवं कन्या अग्निमयक्षत.... [151] ।।

नानक चन्द्रोदय महाकाव्य में भी "समीक्षण" आदि कार्य के पश्चात् आचार्य महाव्याहृति, सर्वप्रायश्चित, प्राजापत्य, स्विष्टकृद्, राष्ट्रभृत्, जय और अभ्यातन संज्ञक होम कराते हैं -

अथारावाज्यभागौ च महाव्याहृति संज्ञकम् ।
सर्वप्राश्चित्तसंज्ञं प्राजापत्यं तथैव च ।।
स्विष्टकृद्राष्टभृत्संज्ञं जयाभ्यातान संज्ञकम् ।
होमं हरि दयालुः स आचार्यो निरवर्तयत् [152] ।।

इन होमों के पश्चात् शमीपत्रों से युक्त लाजाओं को भाई बहन को आहुति देने के लिये देता है । तथा वर पत्थर पर वधू का पैर रखवा कर उस का हाथ पकड़ कर गाथा का गायन करता है [153] । इस प्रकार प्रतीत होता है कि प्रस्तुत महाकाव्य में वर्णित विवाह संस्कार प्राचीन हिन्दु धर्मशास्त्रों के अनुरूप उल्लिखित है । वर गाथा को गाता है, परन्तु उस का उल्लेख नहीं किया गया है । यह गाथा पूर्ववर्णित शास्त्रानुकूल ही होती होगी क्योंकि सम्पूर्ण विधान ही वैदिक रीति के अनुसार वर्णित है ।

सप्तपदी -

पारस्कर गृह्य सूत्र में लाजा होम के पश्चात् सप्तपदी करने का उल्लेख मिलता है [154] । सप्तपदी में पति पत्नी को उत्तर दिशा में सात पग चलाता है । जिन में ऐश्वर्य, उर्ज, भूति, सुख, पशु, ऋतु तथा अपने सख्य के लिये कहा जाता है अर्थात् इन सभी प्रकार के सुखों के लिये कामना की जाती है । मनु ने भी सप्तपदी के पश्चात् विवाह को वैध माना है -

---

151. विवाह पद्धति, पृ.120-121

152. ना.चं. 5.119, 120

153. लाजान् समीपत्रयुतान् जुहाव
भ्रात्रा वितीर्णान्दहने कुमारी ।
आरोहयत्तां दृषदं गृहीत-
करो वरो गायति च स्म गाथाम् ।। - ना.चं.5.121

154. अथैनामुदीचीं० सप्तपदा निष्क्रामयति....।। - पा.गृ.सू. 1.8.1

स्वगोत्राद् भ्रश्यते नारी विवाहात् सप्तमे पदे ।
पाणिग्रहणमन्त्रास्तु नियतं दारलक्षणम् ।
तेषां निष्ठा तु विज्ञेया विवाहात् सप्तमे पदे[155] ।।

पारस्कर गृह्यसूत्र में सप्तपदी के पश्चात् "आप: शिवा: शिवतमा: शान्ता: शान्ततमास्तास्ते कृण्वन्तु भेषजम्"[156] । इन मन्त्रों द्वारा वधू के सिर पर अभिषिंचन किया जाता है । इस विधि द्वारा वधू को शारीरिक दोषों से मुक्त करके स्वीकार किया जाता है तथा पवित्र माना जाता है । अभिषिंचन के पश्चात् वर वधू के दाहिनी ओर जा कर उस के हृदय को स्पर्श करता है[157] ।

हृदय-स्पर्श के उपरान्त सुमङ्गली का विधान होता है । वर उपस्थित अभ्यागतों तथा सम्बन्धियों को वधू को आशीर्वाद देने के लिये कहता है तथा सुमङ्गली उस कन्या को सौभाग्य प्रदान कर विदा करने के लिये कहता है[158] । गदाधर पद्धति में उल्लेख मिलता है कि "अत्राचारात् स्त्रिय: सिन्धुरदानादि कुर्वीरन्त" अर्थात् सिन्दूर लगाने के विधान को ही सुमङ्गली कहा जाता है, जिस के निष्पन्न होने से वधू सौभाग्यवती कहलाती है । प्राय: सभी धर्मों के लोगों में इस विधान को किया जाता है, जो कि सुहाग का प्रतीक माना जाता है ।

नानक चन्द्रोदय महाकाव्य में भी लाजा होम के पश्चात् सप्तपदी होती है तथा वर वधू के हृदय को स्पर्श करता है । इस विधान को सिन्दूर दान के पश्चात् किया जाता है । सिन्दूर सिर के मध्य चीर में लगाया जाता है । बाद में फिर होम किया जाता है -

अकारयत्सप्तपदीं सिषेव, दलैरधीमां हृदयेऽस्पृशच्च ।
सिन्दूरशोभामभिमन्त्र्य कान्त:, सीमन्तमध्ये विदधे विधिज्ञ:[159] ।।

---

155. मनु॰स्मृ॰ 9॰70 एवं द्र॰ याज्ञ॰स्मृ॰ 1॰76
156. पा॰गृ॰सू॰ 1॰8॰3
157. मम व्रते ते हृदयं दधामि मम चित्तमनु चित्तं तेऽअस्तु । -पा॰गृ॰सू॰1॰8॰5
158. "सुमङ्गलीरियं वधूरिमार्ठ॰ समेत पश्यत ।
सौभाग्यमस्यै दत्वा याथाऽस्तं विपरेत न:" इति ।। -वही, 1॰8॰6
159. ना॰चं॰ 5॰122 एवं द्र॰ 123

इस प्रकार प्रस्तुत महाकाव्य में सप्तपदी के उल्लेख में यह क्रम प्रतिपादित नहीं है कि ये सात पाद किस हेतु के लिये आयोजित किये जाते हैं, परन्तु सम्पूर्ण अध्ययन से ज्ञात हो जाता है कि यह विधान पूर्ववर्णित गृह्यसूत्रों के अनुसार ही होता है ।

ध्रुवदर्शन - स्थानीय प्रथाओं को अनुष्ठित कर तथा विवाह संस्कार सम्बन्धी अन्य आवश्यक क्रियाओं को कर के विवाह सम्पन्न हो जाता है । परन्तु कुछ अन्य कार्य शेष रह जाते हैं, जिन्हें करना अनिवार्य होता है । यदि पाणिग्रहण संस्कार दिन में सम्पन्न हुआ हो तो वधू को सूर्य दर्शन करने के लिये कहा जाता है तथा यदि रात्री में हुआ हो तो ध्रुव तारे के दर्शन करवाये जाते हैं । वर वधू निम्न मन्त्र द्वारा ध्रुव का दर्शन करते हैं । "ध्रुवमसि ध्रुवं त्वा पश्यामि ध्रुवैधि पोष्ये मयि । मह्यं त्वाऽदाद् बृहस्पतिर्मया पत्या प्रजावती संजीव शरदः शतम् [160] ।

नानक चन्द्रोदय महाकाव्य के अध्ययन से ज्ञात होता है कि तत्कालीन समाज में ध्रुवदर्शन कराया जाता था । गुरू नानक देव के विवाह संस्कार के समय अन्य सभी कार्य सम्पन्न हो जाने पर वर-वधू दोनों ध्रुव के दर्शन करते हैं [161] । अर्थात् दोनों ध्रुव की तरह गृहस्थाश्रम में प्रवेश कर स्थिर रहने की प्रतिज्ञा करते हैं । इस प्रकार सम्पूर्ण संस्कार निष्पन्न होता है तथा अलंकारों तथा वस्त्रों से विभूषित कन्या को पिता वर के लिये प्रदान करता है, तथा ब्राह्मणों को दक्षिणा दे कर सन्तुष्ट किया जाता है [162] । कन्यापक्ष वाले संस्कार का समस्त विधान सम्पन्न हो जाने पर बारात की यथाशक्ति सेवा करने में लग जाते हैं । हिन्दु धर्मशास्त्रों के अनुसार समस्त क्रिया कलापों का प्रतिपादन किया जाता है, जिस से देवराज शर्मा की धार्मिक प्रवृत्ति तथा संस्कारों के प्रति आस्था का अवलोकन होता है ।

---

160. पा॰गृ॰सू॰ 1॰8॰12

161. सन्दर्शयामास वरो वधूं स्वां
ध्रुवं ध्रुवं कामवधू विजेत्रीम् ।। - ना॰चं॰ 5॰123

162. ना॰चं॰ 5॰125, 126, 127

धर्मशास्त्रों के अध्ययन से प्रतीत होता है कि हिन्दु संस्कार के अन्तर्गत विवाह में कन्यादान, विवाह यज्ञ, पाणिग्रहण, अग्नि परिणयन, अश्मारोहण, लाजाहोम तथा सप्तपदी ये सात विशेष विधान आते हैं, जिन को सम्पूर्ण कर विवाह पूर्ण माना जाता है । इन को सम्पूर्ण कर वर वधू पर गृहस्थ का उत्तरदायित्व सौंपा जाता है । इस नानक चन्द्रोदय महाकाव्य में इन सभी विधानों का उल्लेख मिलता है । विवाह संस्कार के विधि-विधानों के सम्पन्न होने पर वर के साथ बारात में आये हुये मित्रों तथा सम्बन्धियों की सेवा की जाती है । कन्यापक्ष वालों के यहाँ बारात कुछ दिन ठहरती है,[163] निश्चित दिनों का उल्लेख उपलब्ध नहीं होता है । विवाह में अपनी वंश परम्परा के अनुसार उत्साह, राग, रंग, वाद्य, गीत और नृत्यादि का भी उल्लेख किया गया है[164] । बारात का भोजन विभिन्न प्रकार के पदार्थों का निर्माण कर तैयार किया जाता है । जिन में मांसाहारी तथा शाकाहारी दोनों प्रकार का भोजन बनाया जाता है । मच्छलियाँ भी खाने के लिये मिलती हैं तथा अन्य विभिन्न प्रकार के सूप तैयार किये जाते हैं । रात्रिकाल में नर्त्तकियों के नृत्य का कार्यक्रम होता है, जिस से वर पक्ष वालों का मनोविनोद होता है[165] । भोजन के उपरान्त लवङ्ग इलायची तथा सुगन्धित पदार्थों से संलिप्त ताम्बूल सुवर्ण थालियों में प्रस्तुत किये जाते हैं[166] ।

इस प्रकार कुछ दिन बारात के रहने के पश्चात् पिता कन्या को सजल आँखों से बहुधन देकर विदा करता है, जैसे मूलचन्द्र सुलक्षणी को करुणा पूर्ण नेत्रों से देखते हुये विदाई देते हैं । माता पिता दोनों के विलाप को उस समय देखा नहीं जाता है -

---

163. इत्थं दिनानि कतिचित्परमोत्सवेन.....च । - ना.चं. 5.146

164. ना.चं. 5.51, 52,62 एवं द्र. 145

165. वही, 5.133, 135 त: 140 पर्यन्तं

166. लवङ्ग जातीफलजातिपत्री
ताम्बूलबीटी त्रिपुटात्वचश्च ।।
- ना.चं. 5.141

पितरौ तनयाम सागरोत्थां, कमलां कोमल वादिनीं विदूनाम् ।
अवलोक्य न शेकतुर्जहीतुं, नयनाभ्यां पतितां महाश्रुधाराम्[167] ।।

वधू की विदाई का दृश्य ही मन को द्रवित कर देने वाला होता है । जब नानकी का विवाह होता है तो उस समय विरक्त नानक देव बहिन के विरह में रो देते हैं[168] । इस प्रकार कन्या की विदाई के समय जो वास्तविक अवस्था मन की होती है, उस का चित्रण प्रत्यक्षत: दिखाई देता है ।

तत्पश्चात् रथों, घोड़ों, हाथियों तथा ऊँटों पर सामान रख कर तथा स्वयं सवार हो कर बारात अपने घर को प्रस्थान कर देती है जिस के साथ शस्त्रों से युक्त सिपाही भी होते हैं, जो शायद मार्ग में आने वाली किसी विपत्ति के निवारण के लिये रखे जाते होंगे -

नागान् स जयतां हरींश्च हरतां वाहान् रथे युजतां
.....।।
शस्त्रं धारयतां प्रयाणमटहध्वानस्त्वरामातनोत्[169] ।।

तत्कालीन समाज में वधू के घर में प्रवेश के समय मङ्गल गीतों तथा वाद्यों का गान किया जाता था तथा पूजनीय गुरूओं तथा माता-पिता को नमस्कार कर वर सामाजिक आदर्श को प्रदर्शित करता है । नानकदेव विवाह के पश्चात् गुरूओं को प्रणाम करके तथा अपने समस्त आभूषण माता को समर्पित करते हुए उन का सम्मान द्योतित करते हैं[170] ।

इस प्रकार नानकचन्द्रोदय महाकाव्य के अध्ययन से प्रतीत होता है कि देवराज शर्मा ने हिन्दु संस्कार के अनुसार गुरू नानक देव के पाणिग्रहण का निरूपण कर यह स्पष्ट किया है कि हिन्दु तथा सिक्ख एक ही वंश की सन्तान हैं क्योंकि इनके सकल धार्मिक संस्कार एक जैसे अनुष्ठित होते हैं । आजकल सम्पूर्ण भारतवर्ष में तथा प्राचीन काल में जिस विधान का आयोजन विवाह संस्कार

---

167. ना॰चं॰ 5॰152 एवं द्र॰ 150, 151 एवं द्र॰ 5॰153
168. वही, 3॰78
169. वही, 5॰156
170. वही, 5॰158, 164

में किया जाता रहा है उसी वैदिक प्रक्रिया का उल्लेख यहाँ विस्तृत रूप से प्रतिपादित किया गया है । जिस से संस्कारों के प्रति कवि तथा गुरू नानक देव के परिवार की आस्था दृष्टिगोचर होती है, जो कि समाज के अभिन्न अंग माने जाते हैं ।

अन्त्येष्टि संस्कार -

भारतीय हिन्दू समाज में संस्कारों की गणना में अन्त्येष्टि संस्कार का अन्तिम स्थान आता है । यह संस्कार मरणोपरान्त किया जाता है, अन्य सभी संस्कारों का अनुष्ठान मनुष्य जीवित अवस्था में स्वयं कर लेता है परन्तु यह संस्कार दूसरे सम्बन्धियों तथा रिश्तेदारों द्वारा निष्पादित किया जाता है । इस संस्कार के साथ मनुष्य ऐहिक जीवन का अन्तिम चरण पूर्ण करता है । इस संसार से प्रस्थान के पश्चात् निकट सम्बन्धी मरणोपरान्त उस के भावी सुख के लिये इस संस्कार को करते हैं । मरणोत्तर होने पर भी यह कम महत्त्वपूर्ण नहीं है, क्योंकि हिन्दू के लिये इस लोक के सुखों के स्थान पर परलोक के सुखों की अधिक उपादेयता मानी जाती है । बोधायन सूत्र में उल्लेख मिलता है कि मनुष्य जन्मकाल में किये गये कर्मों द्वारा इस लोक पर विजय प्राप्त करता है, परन्तु मरणोपरान्त अन्त्येष्टि संस्कार द्वारा ही परलोक को जीतता है -

जात संस्कारेणेमं लोकमभिजयति मृतसंस्कारेणामुं लोकम्[171] ।।

अन्त्येष्टि क्रियाओं का उल्लेख ऋग्वेद में भी प्राप्त होता है तथा अथर्ववेद में भी इनका वर्णन दिखाई देता है जिस से इस की प्राचीनता सिद्ध होती है -

ये निखाता ये परीप्ता ये दग्धा ये चोद्धिता[172] ।

भारतीय हिन्दुसमाज में यह संस्कार जला कर ही अधिकतर किया जाता है । छोटे शिशुओं तथा महात्माओं को ही भूमि में दफनाया जाता है -

---

171. बोधायन पितृ मेध सूत्र; 3·1·4

172. अथर्ववेद, 18·2-34

अब्दिवर्षे प्रेते·····शरीरमदग्ध्वा निखनन्ति[173] ।

इस प्रकार दाहसंस्कार ही सर्वोत्तम अन्त्येष्टि संस्कार का विधान हिन्दुओं में है । इस के पश्चात् अन्य क्रिया कलाप भी किये जाते हैं । जैसे पिण्डदान, अस्थिप्रवाह, क्रिया-क्रम तथा धर्मशान्ति कर्म[174] जिन को करने से मृत्यु को प्राप्त मनुष्य की सद्गति होती है ।

नानक चन्द्रोदय महाकाव्य में अन्त्येष्टि संस्कार के बारे में विस्तृत उल्लेख उपलब्ध नहीं होता है । परन्तु मर्दन तथा स्वयं गुरू नानक देव की मृत्यु के समय इस संस्कार का संकेत अवश्य मिलता है । मरणोपरान्त शरीर को जलाने को आवश्यक माना जाता है तथा दाह संस्कार से शरीर को सद्गति प्राप्य मानी जाती है । मर्दन स्वयं कहता है कि दाह संस्कार से शरीर की गति होती है तथा अदग्धदेह वाले मनुष्य विभिन्न प्रकार की योनियों में जन्म ग्रहण कर यातनाओं को प्राप्त होते हैं -

दाहेन देहस्य गतिं लभेयं·····।

अदग्धदेहा हि सुहृज्जनेन, विलक्ष्यन्ति योनीर्विविधा व्रजन्तम्[175] ।।

इस प्रकार मर्दन का शरीर त्याग कर देने पर गुरू नानक देव विधि विधान से उस का दाह संस्कार करते हैं । नूतन वस्त्र से शरीर को आवृत कर विधान से शरीर को जलाते हैं[176] । जहाँ अन्य विधियों का उल्लेख उपलब्ध नहीं होता है । यावन लोग मरणोपरान्त देह को भूमि में निखात करते हैं । इस के बारे में प्रस्तुत महाकाव्य में ही वर्णन मिलता है । जब नानकदेव देह त्याग करते हैं तो वहाँ यवनों तथा आर्यों में अन्त्येष्टि संस्कार के बारे वाद-विवाद हो जाता है अर्थात् यवन कहते हैं कि हम भूमि में दफनायेंगे, तो आर्य लोग कहते हैं जलायेंगे[177] । उस समय नानक देव फिर जीवित हो कर कहते हैं कि कलियुग में दाह तथा निखनन दोनों श्रेयस्कर हैं -

---

173· पा·गृ·सू· 3·10·2-5

174· आ·गृ·सू· 4·5 एवं द्र· पा·गृ·सू· 3·10·27-28

175· ना·चं· 16·6 एवं द्र· 16·5

176· नववस्त्रवृतं वपुस्तदीयं विधिवद्दाहमवाप योगिवर्यात् ।।

- ना·चं· 16·17 एवं द्र· 16·8

177· ना·चं· 19·234, 235

आचरन्ति कलहं किमथोचु-र्दहनं निखननं कलि हेतु: ।।[178]

इस प्रकार नानक देव के शरीर को आधा जलाया जाता है तथा आधा भाग म्लेच्छ भूमि में गाढ़ देते हैं[179] । अपने-अपने धर्मानुसार अन्त्येष्टि कर्म करते हैं । नानक चन्द्रोदय महाकाव्य में केवल मात्र दाह संस्कार ही न करके भूमि में दफनाये जाने को भी उचित स्वीकार किया गया है । देह के दाह के उपरान्त किये जाने वाले कर्मों का उल्लेख प्राप्त नहीं होता है । इस प्रकार मुख्य रूप से विवाह संस्कार का विस्तृत वर्णन कर जातकर्म, नामकरण तथा अन्त्येष्टि का प्रतिपादन संकेत मात्र किया गया है जिस से संस्कारों के प्रति तत्कालीन समाज की निष्ठा दृष्टिगोचर होती है ।

सामाजिक आदर्श -

सामाजिक जीवन में निवास कर रहे लोगों के कुछ आदर्श होते हैं, जिन के अनुसार वे चलते हैं तथा उन का पालन करते हुये समाज को समृद्धि की ओर ले जाते हैं । समयानुसार इन सामाजिक आदर्शों में भिन्नता आती रही है परन्तु भारतीय समाज की यह गौरवपूर्ण गाथा रही है कि इस में मानवीय मूल्यों का ह्रास नहीं हुआ है । यदि किसी समय समाज में कलंकित वातावरण करने वाले आये हैं तो उसी समय श्रेष्ठ गुणों से युक्त सन्तों ने उन्हें उपदेशों द्वारा सन्मार्ग का प्रदर्शन कराया है । जिस किसी कर्म को करने से जब समस्त प्राणियों का हित होता है तथा परस्पर समानता एवं एकता का अवलोकन होता है तो सामाजिक आदर्शों की सर्वश्रेष्ठता कही जाती है । देश, राष्ट्र तथा सम्पूर्ण विश्व का उत्थान करने के लिये सर्वप्रथम आदर्श समाज का गठन होना परमावश्यक है । नानक चन्द्रोदय महाकाव्य के अध्ययन से प्रतीत होता है कि भले ही उस समय भी समाज में उच्छृंखल तथा दुष्ट लोग रहते थे परन्तु फिर भी सामाजिक आदर्शों से युक्त सज्जनों की न्यूनता नहीं थी । निम्नलिखित सामाजिक आदर्श तत्कालीन समाज में दृष्टिगोचर होते हैं ।

---

178. ना॰चं॰ 19॰236

179. वही, 19॰237

आध्यात्मिक जीवन समाज का महत्त्वपूर्ण अंग होता है । इस के द्वारा मनुष्य श्रद्धा तथा एकाग्रता को प्राप्त करता है । नानक चन्द्रोदय महाकाव्य में शिष्य वेदों तथा शास्त्रों के ज्ञाता आचार्यों से शिक्षा ग्रहण कर रात दिन शान्तचित्त रहते हैं तथा ईश्वर की भक्ति में आसक्त रहते हैं[180] । शान्त स्वभाव से युक्त लोग तभी होते हैं जब आध्यात्मिकता का जीवन यापित कर वे अच्छे-बुरे की पहचान करना जान लेते हैं । शिष्य गुरू को सर्वस्व स्वीकार कर शुश्रूषा करते हैं तथा गुरू के स्वेच्छा से अन्यत्र चले जाने पर भी अपनी सेवा में त्रुटि मानते हैं[181] । क्योंकि जो ज्ञानवान् शिष्य होता है वह दूसरों के अवगुणों तथा दोषों का विचार किये बिना अपने मन में प्रत्येक प्रश्न का उत्तर खोजता है । जो विशालहृदयता समाज के आदर्श का अवलोकन ही कराती है जो कि सदुपदेशों द्वारा प्राप्त होती है ।

नानक चन्द्रोदय महाकाव्य में राजा तथा प्रजा दोनों ही अतिथि-सेवा में संलग्न दिखाई देते हैं । अतिथि सेवा को अपना परम कर्तव्य लोग समझते हैं, जिस से तत्कालीन समाज के उन्नत आदर्श का प्रतिबिम्ब दिखाई देता है । अतिथि बालसिन्धु का विधि-विधान के साथ आतिथ्य सत्कार करता है तथा उस से अद्भुत कथायें श्रवण करता है[182] । तलवंडी नगरी में रहने वाले लोग प्रत्येक अभ्यागत की सेवा करते हैं । जिस के द्वारा वह मेहमान प्रवास की विपत्तियों को भी ~~बिल्कुल~~ भूल जाता है[183] । अतिथि सत्कार का विस्तृत विवेचन प्रस्तुत शोध प्रबन्ध के ही षष्ठ अध्याय में वर्णित दार्शनिक मान्यताओं में किया गया, जिस से समाज में रहने वाले लोगों में आदर्श अतिथि-सत्कार की भावना दृष्टिगोचर होती है ।

प्राचीन काल में पिता की सम्पत्ति पर कन्या का अधिकार नहीं होता था, इस लिये माता-पिता विवाह के समय यथाशक्ति वस्त्राभूषण देकर

---

180. ना॰चं॰ 1॰64

181. वही, 1॰100

182. आतिथ्यं विधिवदुपेत्य बालसिन्धुः । - ना॰चं॰ 1॰116

183. ना॰चं॰ 2॰4 एवं द्र॰ 3॰59, 5॰131

पुत्री को विदा करते थे। लड़की के पास जब माता-पिता जाते हैं तो उसे अवश्य कुछ मिठाई तथा पैसे देते हैं जो कि उस के सम्मान को प्रदर्शित करता है। नानक चन्द्रोदय महाकाव्य में भी उल्लिखित है कि जब कालवर्मा अपनी पुत्री नानकी के यहाँ जाते हैं तो उसे पहले मिठाई तथा पैसे प्रदान करते हैं और पश्चात् मधुर वार्तालाप करते हैं[184]। इस प्रकार तत्कालीन समाज में कन्या के पास माता-पिता रिक्त हाथ नहीं जाते थे। ऐसा करने से कन्या की सम्मान होता है तथा समाज में एक विधान बन जाता है परन्तु इस का सीमा के अभ्यन्तर रह कर ही पालन करना चाहिये।

लड़की के पाणि ग्रहण के समय कन्या पक्ष के सम्बन्धी द्रवित हो जाते हैं, यह उसके प्रति उनकी वात्सल्य भावना होती है, जिस को अवरुद्ध नहीं किया जा सकता है। अभिज्ञान शाकुन्तल में कण्व ऋषि भी शकुन्तला की विदाई के समय द्रवित हो उठते हैं[185]। नानकी के विवाह के समय नानकदेव भी वियोग से खिन्न हो जाते हैं तथा सुलक्षणी के पाणि ग्रहण अवसर पर मूलचन्द्र की आँखें आंसुओं से भर जाती हैं[186]। इस प्रकार कन्या के प्रति माता-पिता का जो अगाध प्रेम होता है, वह उस समय प्रकट होता है जो कि समाज के प्रत्येक प्राणी में स्वाभाविक होता है, जिस के बिना मनुष्य तथा समाज अधूरा होता है।

सामाजिक जीवन में रहने वाली नारियों की लज्जा सर्वोत्तम आभूषण होती है। इस के द्वारा आदर्श समाज का ज्ञान होता है। यदि स्त्रियाँ लज्जा छोड़ कर निःसंकोच भ्रमण करती हैं तो मानो उन्होंने अपने भूषण को खो कर जीवन की सर्वोत्तम वस्तु का त्याग कर दिया हो। इसी के आधार पर स्त्रियों के सुन्दर गुणों की गणना की जाती है। लज्जाशील युवति समाज तथा राष्ट्र को समृद्धि के मार्ग पर ही ले जाती है। नानक चन्द्रोदय महाकाव्य में स्त्री लज्जा को उल्लिखित किया गया है। कालवर्मा

---

184. कालो ददौ स्वकन्यायै द्रविणं मोदकानि च। - ना.चं. 4.38

185. अभि.शा. 4.5

186. ना.चं. 3.78, 5.152, एवं द्र. 153

की पत्नी गर्भ धारण करने पर, पुत्र की इच्छा करने वाले अपने पति को भी लज्जा के साथ तिर्यक् दृष्टि से देखती है -

सुतार्थिनं नाथमनन्दयत्प्रिया
ह्रिया तिरश्चीनमुखी विलोकिता[187] ।।

इस प्रकार तत्कालीन समाज में लज्जा को आभूषण के रूप में देखा जाता था। पति से भी लज्जा करने वाली स्त्री समाज में प्रशंसनीय स्थान प्राप्त करती है, इसीलिये यहाँ उस का उल्लेख किया गया है । निर्लज्ज स्त्रियाँ समाज में उपहास की ही पात्र होती हैं ।

समाज में मद्य पीना, जुआ खेलना आदि कर्मों को करने वाले के प्रति दया-भावना का अभाव दिखाई देता है । बोलारराय कालवर्मा को कहते हैं कि यदि पुत्र को जुआ खेलने की बुरी आदत हो तो भी पिता को उस के प्रति दयालुता का व्यवहार करना चाहिये[188] । यह उल्लेख इस बात को प्रदर्शित करता है कि तत्कालीन समाज में जुआ खेलने वाले लोग विद्यमान थे जिन के प्रति कठोर-दण्ड का प्रावधान करने के लिये कहा गया है । नानक देव के द्वारा निन्दनीय कर्मों का आचरण न करने पर भी पिता उनकी उदासीनता देख कर जंगल में गौयें चराने के लिये प्रेषित करते हैं, क्योंकि घर में वह अन्य कोई कार्य नहीं करते हैं[189] । इस प्रकार गृहस्थ जीवन में सन्तान से गृह कार्य करने की आशा माता-पिता करते हैं, जिन का आचरण न करने पर कठोर कार्य सौंपा जाता है । चतुर्दश प्रस्ताव में नर्कों का वर्णन करते हुये दूसरों के धन, दारा का हरण करने वाले तथा शराब पान करने वाले व्यक्तियों के लिये नरक प्राप्य कहे गये हैं । इस प्रकार वहाँ सम्पूर्ण निन्दनीय कर्मों का उल्लेख कर यातनाओं का वर्णन किया गया है[190] । जिस से तत्कालीन समाज में निन्दनीय कर्मों को करने वालों के लिये उन के त्याग की अनिवार्यता दिखाई गई है ।

---

187. ना॰चं॰ 2॰39
188. वही, 3॰47
189. वही, 2॰107
190. ना॰चं॰ 14॰ : 285 त: 305 पर्यन्तं

गुरू नानक देव की दानशीलता के उल्लेख से प्रतीत होता है कि वह दान को अधिक महत्त्व देते थे। अधिकार प्राप्त होने पर वह यथाशक्ति दान करते हैं। ब्राह्मणों को धन तथा गौओं को प्रदान करते हैं तथा वहाँ रहने वाले सभी लोग उन की दानशीलता से प्रसन्न होते हैं[191]। कोई भी याचक नानकदेव के पास से रिक्त-हाथ लौट कर नहीं जाता है[192]। इस प्रकार समाज में दान देने वाले लोगों के यहाँ याचकों के जाने का आभास होता है जिस से वह आवश्यक वस्तु प्राप्त कर अपने दैनिक प्रयोग में लाते हैं। शुभ अवसरों पर दान करना दृष्टिगोचर होता है जैसे कालवर्मा पुत्र जन्म पर तथा उस के पाणिग्रहण के समय दान देकर ब्राह्मणों तथा अन्य लोगों को सन्तुष्ट करते हैं[193]। इस प्रकार सामाजिक आदर्श दान का वर्णन प्रस्तुत महाकाव्य में किया गया है, जिस से तत्कालीन समाज में रहने वाले दाताओं तथा दान ग्रहण करने वालों की विद्यमानता प्रतीत होती है।

श्रेष्ठ कर्मों का आचरण करने से समाज उन्नत होता है तथा ऐसा व्यक्ति मरणोपरान्त भी मोक्ष को प्राप्त करता है। गृहस्थ जीवन का पालन सर्वोत्तम मानते हुये तीर्थों तथा देवताओं की गौणता का उल्लेख किया गया है[194]। अर्थात् जो गृहस्थ धर्म का पालन करते हैं, उन के लिये अन्य कर्मों की आवश्यकता नहीं रहती है। इस का पालन ही प्रशंसनीय कहा है। मर्दन नानक के समाधि में बैठने पर नानकी से बीस मुद्रा ग्रहण करता है तथा बाद में गुरू को बता देता है, जिस के कारण वह प्रशंसा ही प्राप्त करता है तथा नानक उसे वह धन नानकी को लौटाने के लिये भेज देते हैं[195]। इस प्रकार बिना कपट से यथार्थ बात कह देने पर किसी भी सज़ा अथवा कोपभाजन बनने का अधिकारी मनुष्य नहीं होता है।

---

191. ना॰चं॰ 4॰25, 26

192. वही, 4॰3 एवं द्र॰ 2

193. वही, 2॰80 एवं द्र॰ 5॰145

194. वही, 2॰90

195. वही, 7॰107 तः 111 पर्यन्तं

स्वर्ग के सुखों का उल्लेख करते हुये मन, वाणी तथा कर्म से भी किसी का अनिष्ट न करने के लिये कहा गया है तथा निखिल प्रशंसनीय कर्मों का वर्णन किया गया है,[196] जिन से सुख प्राप्त कर मनुष्य स्वर्ग को प्राप्त करता है। गुरूनानक देव ने सामाजिक आदर्श, श्रेष्ठ गुणों का निरूपण ही यहाँ किया है जिस से प्रतीत होता है कि वह समाज को एक आदर्श रूप में देखना चाहते थे। यहाँ किसी प्रकार का अन्याय तथा अनैतिक कर्म न हो, यही उनकी हार्दिक वांछा थी।

सभी प्राणियों के प्रति दयाभावना भी समाज का आदर्श होता है। प्रस्तुत महाकाव्य में ममता से शून्य सज्जन लोगों की दया भावना का उल्लेख करते हुये कहा है कि वे दया करने योग्य व्यक्ति को देख कर उस की आवश्यक सहायता करते हैं[197]। दीन, अनाथ और आर्त बन्धु तथा भृत्य का पालन करना सज्जन लोगों का कर्त्तव्य होता है। जिस प्रकार दया भावना से स्वामी अपने सेवक का भरण पोषण करता है, उसी प्रकार सेवक भी अपने कर्त्तव्य का पालन करता है। सभी अवस्थाओं में वह स्वामी का पालन करता है[198]। चन्दोराणी जब सुलक्षणी के पास जाती है तो उसे देख कर दया भावना से वह नानक देव को उपालम्भ देती है क्योंकि पुत्री के आँसू उस से देखे नहीं जाते हैं[199]। जो प्राणियों की हिंसा करते हैं, उन की निन्दा करते हुये उन्हें नरक प्राप्त होने का वर्णन किया गया है[200]। गुरू नानक देव की दानशीलता भी अन्य दया-योग्य लोगों के प्रति दया भावना को ही द्योतित करती है।

सामाजिक जीवन में ईश्वर भक्ति का विशेष स्थान होता है। नानक-चन्द्रोदय महाकाव्य में यद्यपि उदासी सम्प्रदाय के प्रवर्तक गुरूनानक देव के जीवन तथा उपदेशों का चित्रण किया है परन्तु उसी का अवलोकन करने से तत्कालीन

---

196. ना॰चं॰ 14॰325, 326, 327, 334

197. वही, 6॰116

198. वही, 7॰14

199. वही, 6॰3 तः 5 पर्यन्तं

200. वही, 14॰294

समाज की देवताओं के प्रति श्रद्धा तथा भक्ति का दर्शन भी होता है । गुरू नानक देव के पूर्वज समस्त देवी-देवताओं की पूजा करते हैं । बालक के जन्म काल पर कालवर्मा जातकर्म, नामकरण संस्कारों का अनुष्ठान करते हैं तथा गौरी गणेशादि देवताओं की अर्चना करते हैं[201] । इस प्रकार ईश्वरवाद के प्रति पूर्ण आस्था दृष्टिगोचर होती है जो कि आदर्श समाज का प्रतीक होती है । वेदों का अध्ययन करने हेतु माता-पिता सन्तान को गुरूओं के पास भेजते हैं ताकि वहाँ पर स्मृतियों तथा धार्मिकशास्त्रों का ज्ञान प्राप्त किया जा सके । कालवर्मा नानकदेव को वैदिक अध्ययन के लिये गुरू के पास भेजते हैं । जहाँ पर वह शिक्षा ग्रहण करते हैं -

उपनीय गुरूपनीय सुतं, निगमाध्ययने नियुयोज पिता ।
चतुरो निगमान्स्वयमेष पठन्न-भवद्बहुवैदिकविस्मयकृत्[202] ।।

इस प्रकार प्रतीत होता है कि धर्मशास्त्रों का ज्ञान प्राप्त करना तथा देवी-देवताओं के प्रति आस्थाभाव का तत्कालीन समाज में प्रचलन था । म्लेच्छों की समाज की धार्मिक प्रवृत्ति का उल्लेख भी किया गया है, मालाओं को ग्रहण कर वे अपने ईश्वर को भजते हैं तथा दूसरे के द्वारा अपने देवता का अपमान करना सहन नहीं करते हैं । जैसे नानक देव ईश्वर को सर्वव्यापक मान कर मक्का में मस्जिद की ओर जब पाँव कर के शयन करते हैं तो म्लेच्छाचार्य उन की निन्दा करते हैं[203] । अपने-अपने धर्मानुसार ईश्वर के प्रति भक्ति तथा निष्ठा से युक्त लोगों का चित्रण दिखाई देता है । स्वयं नानकदेव भी भ्रमण करते हुये सारे समाज को सद्गुरू की उपासना एवं वन्दना करने का उपदेशामृत प्रदान करते हैं, जिस से आदर्श समाज की परिकल्पना की उन की जिज्ञासा दृष्टिगोचर होती है, जिस को सुव्यवस्थित व तथा आदर्श बनाने के लिये वह अपना सम्पूर्ण जीवन न्योछावर करते हैं ।

---

201. ना.चं. 2.51

202. वही, 3.3

203. वही, 10.7, 25 त: 28 पर्यन्तं

निष्कर्षत: प्रस्तुत महाकाव्य में आदर्श सामाजिक जीवन का प्रतिपादन किया गया है, जिस का अनुसरण करने से आधुनिक समाज भी सुसंगठित और कल्याणयुक्त हो सकता है, क्योंकि सर्वत्र व्याप्त हिंसा, ईर्ष्या, चरित्रहीनता तथा स्वार्थपरायणता सामाजिक आदर्शों के अध्ययन तथा अनुशीलन करने से ही दूर हो सकती है ।

= = = = = =

पंचम अध्याय

धार्मिक जीवन

(क) सामान्य धर्म साधना

(ख) भक्ति का स्वरूप

(ग) धार्मिक अनुष्ठान

= = = = = =

पंचम अध्याय

धार्मिक जीवन

सामान्य धर्म साधना -

किसी उद्देश्य विशेष की पूर्ति के लिये स्थिर चित्त हो कर अविरत रूप से जो क्रिया की जाती है उसे साधना कहा जाता है । आत्मा को जागृत-अवस्था में लाने वाली चैतन्य-भावना को भी साधना कह सकते हैं । प्राचीनकाल से परम-तत्त्व को प्राप्त करने हेतु भारतीय साधकों ने तीन मार्गों - ज्ञानमार्ग, भक्तिमार्ग और योगमार्ग - को अपनाया है । समयानुसार कभी एक मार्ग गौण रूप में सामने आया है तो अन्य प्रधान रूप में । परन्तु एक दूसरे के साथ इन का सम्पर्क बना रहा है, क्योंकि परस्पर इन्हें पूरक माना गया है । डा॰ केशनी प्रसाद ने भी साधना के विषय में कहा है कि "चाहे भौतिक सुख समृद्धि के लिये चेष्टा की जा रही हो, अथवा पारलौकिक आनन्द की प्राप्ति के लिये, साधक इसी सिद्धि के अस्तित्व में विश्वास रख कर कार्यशील रहता है और जब तक उसे पूर्ण सफलता नहीं मिलती तब तक प्रयत्नशील रहता है"[1] । वस्तुत: हमारी चित्तवृत्ति बहिर्मुखी होती है, इन्द्रियों को संयम में कर, मन को एक स्थान पर केन्द्रित कर अभीष्ट लक्ष्य को प्राप्त करने के लिये अविच्छिन्न प्रयत्न करना ही साधना है ।

नानक चन्द्रोदय महाकाव्य में साधना के तीनों मार्गों का उल्लेख मिलता है । साधक अपने हृदय के ऊपर आच्छादित अन्धकार को नष्ट करने के लिये और ईश्वर शक्ति को प्राप्त करने हेतु जंगलों में भ्रमण करता है[2] । इस संसार को जरा, मृत्यु, व्याधि, दरिद्रता और वियोगादि दु:खों से संतप्त जान कर पारलौकिक आनन्द की प्राप्ति के लिये गृह त्याग किया जाता है[3] । इस प्रकार

---

1. मध्यकालीन हिंदी संत - विचार और साधना; डा॰ केशनी प्रसाद चौरसिया, पृ॰ 235॰

2. आयामि मङ्गलद: जङ्गलत: प्रदेशात्.....।।
ज्वाला मुखी भावतीमवलोकयिष्यन, यामि स्वहार्दतिमिरावरणापनुत्यै ।।
- ना॰चं॰ 1॰42

3. विपत्ति संयोग वियोग दु:खैर्जरामृतिव्याधिदरिद्रताभि: ।
मानापमानैर्गहनो भवोऽयं भवेन्न केनातिविषादहेतु: ।।- ना॰च॰1॰46

हृदय के अन्धकार को नष्ट करने के लिये ज्ञान मार्ग, ईश्वर को प्राप्त करने के लिये भक्ति मार्ग और गृह त्याग कर योग द्वारा साधना को प्राप्त किया जाता है । धर्मसाधना के लिये वैराग्य, योग, प्राणायाम, आत्मज्ञान, तीर्थयात्रा, व्रत, जप, तप, दान और भक्ति आदि विभिन्न मार्ग हैं, जिन का उल्लेख निम्नलिखित है -

वैराग्य - मन का संयम कर सांसारिक सुखों का परित्याग कर आत्म-ज्ञान अर्थात् ब्रह्मज्ञान प्राप्त करने के लिये प्रयत्नशील होना ही वैराग्य है । इस स्थिति में ज्ञाता और ज्ञेय में अभिन्न सम्बन्ध स्थापित होता है । ज्ञाता केवल मात्र ईश्वर को प्राप्त करने के लिये उसी का चिन्तन और मनन करता है । ईश्वर के निरन्तर चिन्तन तथा वैराग्य द्वारा वृत्तियों का अवरोध होता है । इस विषय में पातंजलि उल्लेख करते हैं -

"अभ्यासवैराग्याभ्यांतन्निरोधः"[4] ।।

आत्मिक सुखों के बारे में भी मन में न सोचना वैराग्य का लक्षण कहा है - "पुनर्जन्म में अच्छे कुल में उत्पन्न होऊँ, यह आमुष्मिक विषय में जो तृष्णा है उस के निरोध को वैराग्य कहा गया है[5]। विवेक चूडामणि में कहा गया है कि वैराग्यवान् मनुष्य को ही समाधि लाभ होता है । दृढ़बोध, संसार बन्धन से छुटकारा और नित्यानन्द का अनुभव भी क्रमशः होता है[6]। विष के समान विषम-विषयों का त्याग कर, जाति, कुल और आश्रम आदि के अभिमान को छोड़कर तथा आत्मा में अहंबुद्धि करने से वैराग्य प्राप्त कर ईश्वर प्राप्ति हो सकती है[7]। पातंजलयोग दर्शन में कहा है कि परमेश्वर का पूर्ण ज्ञान हो जाने से जो प्रकृति के गुण और कर्मों में उदासीनता आती है, उसे ही वैराग्य कहा जाता है -

---

4. पा·यो·द·,1.12
5. दृष्टानुश्रविकविषयवितृष्णस्य वशीकार संज्ञा वैराग्यम् ।। - पा·यो·द·1.15
6. अत्यन्तवैराग्यवतः समाधिः समाहितस्यैव दृढ़प्रबोधः ।।
   प्रबुद्धतत्त्वस्य हि बन्धमुक्ति,र्मुक्तात्मनो नित्यसुखानुभूतिः ।।-वि·चूड़ा·,376
7. आशां छिन्धि विषयोपमेषु विषयेष्वेषैव मृत्योः सृति····।।- वही,378

तत्परं पुरुषख्यातेर्गुणवैतृष्ण्यम्[8] ।।

विवेक चूड़ामणि में कहा गया है कि इन्द्रियों का विषयों के साथ बाह्य-संग और अहंकारादि के साथ आन्तरिक संग का त्याग विरला ब्रह्मनिष्ठ विरक्त पुरुष ही कर सकता है -

बहिस्तु विषयैः सङ्गं तथान्तरहमादिभिः ।
विरक्त एव शक्नोति त्यक्तुं ब्रह्मणि निष्ठितः[9] ।

अर्थात् सभी लोग वैराग्य प्राप्त नहीं कर सकते हैं तथा न ही ब्रह्मनिष्ठ हो सकते हैं। जितेन्द्रिय पुरुष के लिये वैराग्य से बढ़कर सुखदायक और कुछ भी नहीं है तथा यह शुद्ध आत्मज्ञान के साथ हो तो स्वर्गीय सुख प्रदान करता है[10]। इस प्रकार विषय उपभोगों का परित्याग कर सच्चे हृदय से एकाग्रचित्त हो कर साध्य को प्राप्त करने की क्रिया ही वैराग्य कहलाती है।

नानक चन्द्रोदय महाकाव्य में उल्लेख मिलता है कि जब तक सांसारिक सुखों की परिकल्पना करना मनुष्य नहीं छोड़ता है, तब तक उस का संताप नष्ट नहीं हो सकता है[11]। अर्थात् मन का संताप नष्ट होने से ही वैराग्य प्राप्त हो सकता है। "भव" से अनुराग का त्याग ही वैराग्य कहा है। निरन्तर सत्सङ्गादि श्रवण द्वारा स्वयमेव ईश्वर प्राप्ति का श्रेष्ठ मार्ग ज्ञात हो जाता है[12]। संसार रूपी सागर से पार करने वाले ईश्वर की अनन्य भक्ति, निष्काम भाव से सत्कर्म करना, विशुद्ध चित्त रहना और मन में सांसारिक सुखों से वैराग्य ही भगवान को प्राप्त करने का सुलभ उपाय कहा है[13]। गृहस्थरूपी दृढपिंजरे में

---

8. पा॰यो॰द॰, 16
9. वि॰चूड़ा॰, 374
10. वैराग्यान्न परं सुखस्य जनकं पश्यामि वश्यात्मन-
स्तच्चेच्छुद्धतरात्मबोधसहितं स्वाराज्य साम्राज्य । -वि॰चूड़ा॰, 377
11. जीर्णज्वरोऽयं भवनामधेयो जहाति यावन्न जनं कुतश्चित् ।।
तापः कथं शाम्यतु·····सुचिरा रुचिः स्यात् ।। - ना॰चं॰ 1·60
12. रागो भवे हन्त भवे विरागः सङ्गः सतां खल्वसतामसङ्गः ।।
निरन्तरं च·····प्रथितः सुपन्थाः ।। - ना॰चं॰ 1·68
13. ना॰चं॰ 1·81

बन्धे हुये मनुष्यों के लिये देव और तीर्थ के दर्शन दुर्लभ कहे हैं[14]। पारिवारिक सुखों का त्याग कर वैराग्य धारण कर के ही परमतत्त्वज्ञान को प्राप्त करने का उल्लेख मिलता है। नानक देव तपस्वी को देखकर पूछते हैं कि "आप जंगल में क्यों बैठे हो, वस्त्र धारण क्यों नहीं किये हैं, आप का रास्ता कौन है, अन्न कहाँ से उपलब्ध होता है, आप की रक्षा कौन करता है तथा किस लिये तप कर रहे हैं[15]। अर्थात् वैराग्य धारण कर ईश्वर को प्राप्त करने की साधना करते समय तपस्वियों का अपने आप को भी विस्मृत करना दिखाई देता है। नानक स्वयं भी बालसिन्धु को कहते हैं कि आप घर चले जाओ मैं उस (ईश्वर) के बिना शोभित नहीं हो रहा हूँ -

स्थित: सरोरोधसि नानकस्तु, मामब्रवीद्गच्छ सखे गृह त्वम् ।।
अहं बिना तेन न शोभमानो, धर्मेण हीनोऽर्थ इव प्रपोत:[16] ।।

यहाँ गुरूनानक देव का पारिवारिक जीवन से विमुख होकर सर्वोत्तम शक्ति को प्राप्त करने के लिये वैराग्य धारण करना अवलोकित होता है। क्योंकि त्याग के बिना उसे प्राप्त करना सुकर नहीं होता है। धनखान के पास नौकरी करते समय जब नानक मुक्तहस्त से दान करते हैं तो उस समय उन को कालवर्मा कहते हैं कि गृहस्थी होने पर भी तुम यह सन्यासियों जैसी विरक्ति क्यों दिखा रहे हो[17]। इस प्रकार वैराग्य धारण करना सन्यासियों के लिये ही उपयोगी कहा है। सुन्दर गुणयुक्त सुलक्षणी भी वैराग्य के कारण नानक के मन को मोहित नहीं कर सकती है -

सुलक्षणी सुरूपापि पत्युर्नारमयन्मन: ।।
यथा हंसस्य रुचिरा बध्नन्ती स्वर्णशृङ्खला:[18] ।।

पत्नी तक का परित्याग कर सांसारिक सुखों से मन को अवरोधित कर वैराग्य द्वारा ईश्वर को प्राप्त करने का प्रयत्न किया जाता है। आत्मज्ञान प्राप्त करने

---

14. ना·चं· 2·90
15. वही, 3·13 एवं द्र·15
16. वही, 3·40
17. पित्रोक्तं गृहमेधिनापि भवता संन्यासि-धर्मो धृत: ।। - ना·चं·4·35
18. ना·चं· 6·2

के लिये प्रयास करना आवश्यक होता है, अन्यथा समीप स्थित होने पर भी बन्धन में पड़ी हुये पक्षियों की तरह ईश्वर से मिलन असम्भव कहा है[19]। सांसारिक बन्धनों से मुक्त होना ही वैराग्य है, इस का उल्लेख करते हुये कहा है कि जिस प्रकार सर्प अपने शरीर के ऊपर से केंचुली का त्याग करता है उसी प्रकार परिवार आदि से मन को हटा कर आराधना की जा सकती है[20]। वैराग्यवान् दूसरों को यही उपदेश देता है कि मोहवश किसी के लिये विलाप नहीं करना चाहिये क्योंकि यहाँ किसी का परस्पर कोई सम्बन्ध नहीं होता है, जैसे नानक के बारे में उल्लेख किया गया है -

नानकस्तामुवाचेदं त्वं मोहात्किं प्रलापिनी ।।
एको जातो मृतश्चैकः सम्बन्धः केन कस्यकः[21] ।।

इस प्रकार मन में सच्ची लग्न हो जाने पर सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड शून्य तथा सम्बन्धहीन प्रतीत होता है। युवावस्था में वैराग्य धारण करने का उल्लेख किया गया है। बाल्यावस्था, वृद्धावस्था और युवावस्था किसी में भी वैराग्य धारण किया जा सकता है परन्तु यौवन में गृहत्याग इत्यादि कर विरक्त होना समाज में प्रशंसनीय नहीं था[22]। परन्तु सम्पूर्ण आयु परिवार के भरण पोषण की प्रतिज्ञा कर विषयोपभोगों में ही जीवन को व्यतीत करने की भी निन्दा की गई है[23]। इस प्रकार परिवार पोषण के साथ-साथ ईश्वर प्राप्ति के लिये सुखों से निरासक्ति के लिये कहा है। विरक्ति मार्ग के अभाव में भक्ति, योग, कला और क्रिया इत्यादि सभी की शून्यता कही है। वैराग्य हो जाने पर सब कुछ सफल हो जाता है -

---

19. ना॰चं॰ 4॰14

20. हित्वा कुटुम्बं सहसा यियासु निर्मोकमुत्सृज्य यथा भुजङ्गम् ।।
न कोऽपि ··· ···· ···· ··· सदयं जगाद ।। - ना॰च॰6॰114

21. ना॰चं॰ 6॰117

22. परात्मजायावनवर्त्मपातं कर्तुं विरक्तोऽयमभूत्पूर्वः ।।
न शैशवे नापि च वार्धके हा तारुण्यमाविष्कृतवान् विडम्बम् ।।
- ना॰च॰6॰121 एवं द्र॰ 122

23. ये नैष्ठिकास्ते दुरदृष्टयः स्त्रीं शुनीमनुश्वान इव भ्रमन्ति ।।
कुटुम्बपोषे ····· गतायन्ति पोषाय निजोदरस्य ।।
- ना॰चं॰ 6॰135

दृष्टानुश्रविकं सदोषमखिलं बोद्धुर्विरिक्तेर्न चेद्-
भक्ति योग कला क्रिया बहुविधा रिक्तैव संलक्ष्यते ।।
वैराग्ये सति सर्वमेव सफलं प्रीत्यै यदारभ्यते
गोविन्दस्य विशोधनाय मनसो लब्धुं च भूम्नोऽस्यदाम् [24] ।।

इस प्रकार नानक चन्द्रोदय महाकाव्य में वैराग्य द्वारा ही ईश्वर प्राप्ति सुकर कही है ईश्वरीय साधना में इसे सर्वोपरि स्वीकार किया गया है ।

आश्रम व्यवस्था - नानक चन्द्रोदय में संन्यास आश्रम को ही वैराग्य माना है तथा संन्यासी को भिक्षु नाम से उल्लिखित किया है ।

ब्रह्मचारी गृही वानप्रस्थो भिक्षुरिति क्रमः ।।
अक्रमोऽपि विरक्तत्वं यत्र तत्र परिव्रजेत [25] ।।

ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और भिक्षुक(संन्यास)आश्रमों का क्रम कहा है, परन्तु संन्यास आश्रम को अक्रम से भी प्राप्त किया जाता है । तीन ऋणों को पूर्ण कर गृहस्थ को विरक्त होने के लिये कहा है [26] । ऐसा न करने पर अधोगति की प्राप्ति का उल्लेख मिलता है । प्रजापति के निमित्त होम करने के पश्चात् एकदण्ड व त्रिदण्ड आदि धारण करने के लिये संन्यासी को कहा है [27] । एक समय भिक्षा ग्रहण करने, विस्तर पर शयन न करने और विषयों से विरक्त रहने का उल्लेख किया गया है [28] । वैराग्य के तारतम्य द्वारा कुटीचक्र, बहूदक, हंस और परमहंस चार प्रकार के यति कहे हैं । इन में भी कुछ ज्ञान संन्यासी होते हैं, कुछ वेद संन्यासी तथा कुछ धर्मसन्यासी आदि भेदों से विभिन्न प्रकार के स्वीकार किये हैं -

---

24. ना॰चं॰ 12॰167

25. वही, 17॰88

26. ऋणानि त्रीण्यपाकृत्य गृहमेधी परिव्रजेत ।
अधो व्रजत्यन्यथा तु मनुनेदमुदीरितम् ।। - ना॰चं॰ 17॰90

27. ना॰चं॰ 17॰91-93

28. एककालं चरेद् भिक्षां न प्रसज्जेत विस्तरे ।।
भैक्षे प्रसक्तो हि यतिर्विषयेष्वपि सज्जति ।। - ना॰चं॰17॰94-95

वैराग्य तारतम्येन कुटीचकबहूदकौ । हंस: परमहंसश्च यतिरुक्तश्चतुर्विध: ।।
ज्ञानसंन्यासिन: केचिद् वेदसंन्यासिन: परे । धर्मसंन्यासिन: केचित्
तद्भेदा विविधा मता: [29] ।।

इस प्रकार उदासीन, साधक, नैष्ठिक और वनाश्रय आदि संन्यासियों में वैराग्यवान् विरक्त संन्यासी को ज्ञानसम्पन्न माना गया है[30] । अत: नानक चन्द्रोदय महाकाव्य में विरक्त संन्यासी को अन्य सभी से श्रेष्ठ स्वीकार किया है। जिस से हम कह सकते हैं कि वैराग्य धारण कर संन्यासी बन कर ईश्वर को प्राप्त किया जा सकता है । चारों आश्रमों में संन्यास आश्रम को सर्वोपरि स्वीकार किया है, जिस को वैराग्य द्वारा धारण किया जाता है ।

योग - वैयाकरण दृष्टिकोण के अनुसार योग शब्द "युज्यते अनेन" इस व्युत्पत्ति से "युजिर् योगे" धातु से करण अर्थ में "घञ्" प्रत्यय होने से बना है । जिस का अर्थ संयुक्त होना है । "संयोग" हेतु इस का वैदिक विचार धारा से किया गया अर्थ है, गणितशास्त्र के अनुसार इस का अर्थ जोड़ना होता है । "योग" शब्द का विभिन्न प्रकार से अर्थ होने पर भी आध्यात्मिक अर्थ में अंशत: ही भिन्नता है मूलरूप से सामंजस्य ही प्रतीत होता है । याज्ञवल्क्य स्मृति में जीवात्मा और परमात्मा का संयोग योग कहा गया है[31] । पातंजल योग दर्शन में चित्तवृत्ति का निरोध योग कहा है -

"योगश्चित्तवृत्तिनिरोध:"[32] ।

गीता के दूसरे अध्याय में कहा गया है "समत्वं योग उच्यते"[33] अर्थात् समत्व ही योग है । कठोपनिषद् में इन्द्रिय, मन और बुद्धि की स्थिरता को योग कहा है[34] ।

---

29. ना॰चं॰ 17॰96-97
30. उदासीन: साधकश्च नैष्ठिकश्च वनाश्रय: ।
विरक्तो ज्ञानसंपन्न: सर्वेष्वेतेषु सत्तम: ।। - ना॰चं॰ 17॰98
31. अर्थानां छन्दत: सृष्टियोगसिद्धेर्हि लक्षणम् ।।
सिद्धे योगे त्यजन्देहममृतत्वाय कल्पते ।। - याज्ञ॰स्मृ॰ 3,203
32. पा॰यो॰द॰ 1,2
33. गीता॰ 2॰48
34. तां योगमिति मन्यन्ते स्थिरामिन्द्रिय धारणम् ।
अप्रमत्तस्तदा भवति योगो हि प्रभवाप्ययौ ।। - कठोपनिषद्॰ 2॰3॰।।

लिङ्गपुराण में चित्तवृत्ति के निरोध को ही योग कहा है -

योगो निरोधो वृत्तेस्तु चित्तस्य द्विजसत्तमा: ।
साधनान्यष्टधा चास्य कथितानीह सिद्धये[35] ।।

महाभारत में योग द्वारा परमतत्त्व की प्राप्ति संभव कही है[36] ।

भारतीय संस्कृत साहित्य में अष्टांग, मन्त्र, हठ, लय, राज, कर्म, भक्ति, तारक और जप आदि नामों से योग को जाना जाता है । परन्तु मुख्य रूप से मन्त्र, हठ, लय और राजयोग ये चार भेद ही स्वीकार किये हैं । मनुष्य के अन्दर विश्वात्मा से युक्त होने की जो व्याकुलता चली रहती है और अपना सर्वस्व विश्वसागर में समर्पित करना चाहता है, समर्पित करने की यह भावना ही योग कहलाती है ।

हठयोगप्रदीपिका में योग की सिद्धि के लिये शास्त्र, गुरु वाक्य में विश्वास आदि छ: बातों की आवश्यकता कही है -

उत्साहत्सहासद्धैर्यात्तत्वज्ञानाच्च निश्चयात् ।
जनसङ्गपरित्यागात्षड्भिर्योग: प्रसिद्धयति[37] ।।

वाणी को रोकना, लौकिक पदार्थों से वैमनस्य, कामनाओं से अरुचि और सदा एकान्त में निवास करना योग का पहला द्वारा कहा है[38] ।

नानकचन्द्रोदय महाकाव्य में सभी वृत्तियों से मन का निरोध करने, क्रोधादि से मन को हटा कर संस्कारों में दृढ़ करने तथा वासना का क्षय करने को योग मार्ग कहा है -

वृत्तिसन्तानरूपेण परिणामि मन: स्मृतम् ।
निरोध: सर्ववृत्तीनां मनोनाश उदाहृत: ।।

---

35. लिङ्ग पुरा. - अष्टाङ्ग योग द्वारा शिवाराधना, 6.7

36. तपो नि:श्रेयसं जन्तोस्तस्य मूलं शमो दम: ।
तेन सर्वानवाप्नोति यान्कामान्मनसेच्छति ।। - महा.भा.शान्तिपर्व, 232.22

37. हठ योग. प्र.1.16

38. योगस्य प्रथमं द्वारं वाङ्.निरोध परिग्रह: ।
निराशा च निरीहा च नित्यमेकान्तशीलता ।। - वि.चूड़ा. 368

हेतुक्रोधादिवृत्तीनां संस्कारश्चित्तगो दृढ: ।
वासना तत्क्षयो ज्ञेय: क्रोधादीनामनुद्भव: ।।[39]

विभिन्न प्रकार के विषयों से मन को रोक कर मनुष्य भगवान के चरणों में अर्पित कर कृत्तार्थ होता है, वह दु:ख प्राप्त नहीं करता है[40] । इस प्रकार विषयों से मन का निरोध योग द्वारा ही सम्भव होता है । सकल तत्त्व ज्ञान भी योग द्वारा ही होता है । जैसे नानक देव के प्राणत्याग का उल्लेख करते समय प्रतिपादित है कि योग द्वारा निखिलतत्त्व का ज्ञान प्राप्त करने के उपरान्त वह प्राण त्याग देते हैं[41] । इस प्रकार योग की मनुष्य के जीवन में अत्यन्त उपादेयता ज्ञानादि की प्राप्ति के लिये होती है ।

पातंजल योगदर्शन में यमादि क्रम से योग के आठ अंगों का उल्लेख मिलता है -

यमनियमासनप्राणायाम प्रत्याहार ध्यान धारणा समाध्योऽष्टावङ्गानि।[42]

धारणा, ध्यान और समाधि आदि का वर्णन भी उदधृत किया है ।

"देशबन्धश्चित्तस्य धारणा, तत्र प्रत्ययैकतानता ध्यानम्, तदवार्थमात्र-निर्भासं स्वरूप शून्यमिव समाधि:[43] । नानक चन्द्रोदय में सात प्रकार की ज्ञान भूमि का उल्लेख मिलता है जिन के द्वारा मनुष्य योग प्राप्त करता है । प्रथम तीन प्रकार श्रवण, मनन और निदिध्यासन कहे हैं जिन में जाग्रादवस्था रहती है। चतुर्थ में संसार को स्वप्न की तरह देखता है, पंचम सुषुप्ति अवस्था होती है, षष्ठी गाढ़ सुषुप्ति तथा सप्तम ज्ञान भूमि वाणी द्वारा अगम्य देह को मुक्त करने वाली "योग भूमि" उल्लिखित मिलती है[44] । योग के आठ अंगों का प्रतिपादन

---

39. ना·चं· 14·29,30
40. वही, 17·29
41. अथ रहसि सुषुम्णा मार्गमानीय योगा-
द्विदितसमलतत्त्व: प्राणमाशूत्ससर्ज ।। - ना·चं· 19·226
42. पा·यो·द· - सा·पाद· 29
43. वही, 3·1,2,3
44. ना·चं· 14·46, त: 50 पर्यन्तं

किया है[45]। जिन के द्वारा उपासना का मार्ग अपनाने से भावत्प्राप्ति की जाती है। वासना के प्रभेदों का वर्णन प्रस्तुत महाकाव्य में निम्न प्रकार से किया गया है -

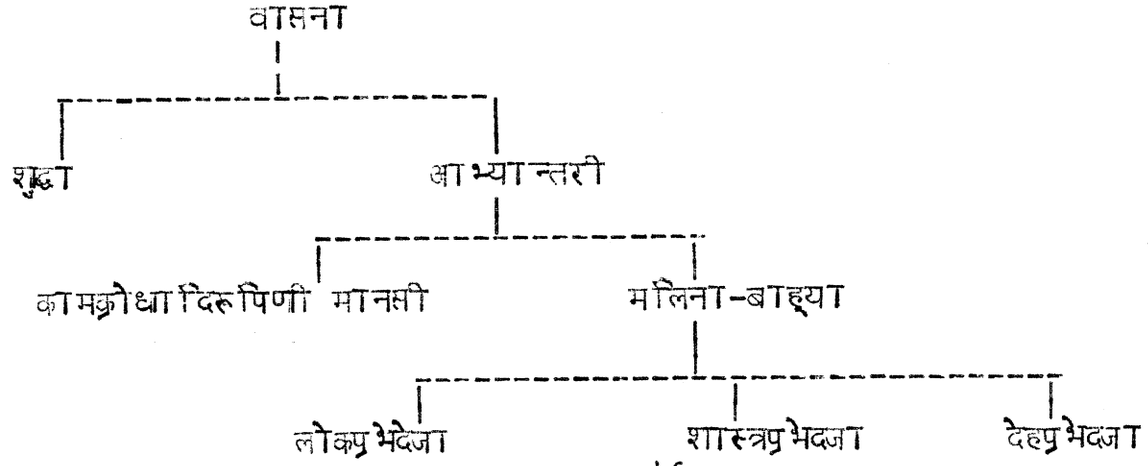

इस प्रकार आठ प्रकार की वासना कही गई है[46]। पातंजलयोगदर्शन में यमनियमादि जिन अंगों का वर्णन मिलता है, उन का यहाँ नामोल्लेख नहीं प्राप्त होता है, अत: वासनादि आठ भेदों को ही स्वीकार किया होगा, क्योंकि योग के आठ अंगों का उल्लेख करने के साथ ही इन प्रभेदों को उद्धृत किया गया है। इस प्रकार योग द्वारा विषयों से मन का अवरोध कर श्रवण, मनन और निदिध्यासनादि द्वारा भावत्प्राप्ति सुलभ कही है।

हठयोग -

हठयोग आत्मज्ञान स्वरूप परमतत्त्वबोध को प्राप्त करने के लिये भारत की पुरातन साधना के मार्ग को निरूपित करता है। "हठयोग प्रदीपिका" में ग्रन्थकार सर्वप्रथम आदिनाथ को स्मरण कर हठयोग से भी उच्चतम राजयोग की सुलभता के लिये, मंत्रयोग आदि अनेक मतों का जो गाढ अन्धकार है, उस भ्रम से राजयोग से अनभिज्ञ लोगों के लिये प्रदीपिका करते हैं[47]। यहाँ हठयोग साधन है

---

45. योगोऽष्टाङ्गो मनोनाशे कारणं गुर्वनुग्रहात्।
प्रतिकूला वासनैव वासनाक्षयकारणम्॥ - ना.चं. 14.32 एवं द्र.16.136

46. ना.चं. 14.33 त: 36 पर्यन्त

47. हठयोग.प्र. 1.3

तथा राजयोग साध्य है । हठयोग की गुप्तता को परमशक्तिसम्पन्न तथा प्रकटता को शक्तिहीन उल्लेख किया है -

हठ विद्या परं गोप्या योगिना सिद्धिमिच्छता ।
भवेद्वीर्यवती गुप्ता निर्वीर्या तु प्रकाशिता[48] ।।

शिव संहिता में भी इस की गुप्तता का उल्लेख मिलता है[49] । स्थान निर्धारण के लिये हठयोगी को कहा गया है कि वह अच्छे राज्य, धार्मिक देश, सुभिक्ष स्थान पर और उपद्रवों से रहित एकान्त में ऐसी कुटिया में वास करे जिस के चार हाथ प्रमाण पर्यन्त पत्थर, अग्नि और जल न हो -

सुराज्ये धार्मिके देशे सुभिक्षे निरुपद्रवे ।
धनुः प्रमाणपर्यन्तं शिलाग्निजलवर्जिते ।
एकान्ते मठिकामध्ये स्थातव्यं हठयोगिना[50] ।।

स्थान निर्धारण के पश्चात् इस के बाधक तत्त्वों का उल्लेख करते हुये गीता में उद्धृत है कि अति अश्न करने वाले, न अश्न रहित, न अधिक शयन करने वाले और न अधिक जाग्रदावस्था में रहने से योग लाभ होता है । अपितु युक्त आहार विहार, युक्त चेष्टा करने वाले तथा युक्त शयन जागरण करने वाले को ही योग लाभकारी होता है[51] । शिवसंहिता में भोगरूप, धर्मरूप और ज्ञानरूप ये तीन मुख्य रूप से बाधक माने हैं,[52] शेष सभी का इन्हीं में अन्तर्भाव कर दिया है । योगी को पुष्ट, मधुर, स्निग्ध, गव्य, धातु को पोषित करने वाला, मनोभिलषित और उचित भोजन करने का प्रतिपादन मिलता है[53] । अभ्यास द्वारा योगसिद्धि को

---

48. हठ·यो·प्र· 1·11

49. गोपनीयं प्रयत्नेन न देयं यस्य कस्यचित् ।
येन शीघ्रं भवत्सिद्धिर्भवेद्दुःखौघनाशिनी ।। - शिवसंहिता, 3·115

50. ह·यो·प्र· 1·12

51. नात्यश्नतस्तु योगोऽस्ति न चैकान्तमनश्नतः ।
न चाति स्वप्नशीलस्य जाग्रतो नैव चार्जुन ।।
युक्ताहारविहारस्य युक्तचेष्टस्य कर्मसु ।
युक्तस्वप्नावबोधस्य योगो भवति दुःखहा ।। - गीता· 6·16-17

52. शिव संहिता, 5·3-5

53. पुष्टं सुमधुरं स्निग्धं गव्यं धातुप्रपोषणम् ।
मनोभिलषितं योग्यं योगी भोजनमाचरेत् ।। - ह·यो·प्र· 1·63

सुलभ बताया है -

क्रियायुक्तस्य सिद्धिः स्यादक्रियस्य कथं भवेत् ।
न शास्त्र पाठमात्रेण योगसिद्धिः प्रजायते[54] ।।

इस प्रकार केवल मात्र शास्त्रों का अध्ययन करने से योग की उपलब्धि को अप्राप्यकर कहा है ।

नानक चन्द्रोदय महाकाव्य में आसनों, षट्कर्मों और प्राणायाम आदि का उल्लेख उपलब्ध होता है, जो कि हठयोग द्वारा ही साध्य होते हैं । साध्य वस्तु को प्राप्त करने के लिये जो उपाय किये जाते हैं, उन में "हठ" भी एक है, जिस के द्वारा परम दुर्लभ लक्ष्य की प्राप्ति होती है । यहाँ दृष्टान्त दिया है कि जैसे गन्तव्य स्थान पर पहुँचने के लिये विविध यानों और मार्गों का आश्रय ग्रहण करना पड़ता है, वैसे ही साध्य की प्राप्ति के लिये हठयोग भी एक मार्ग है[55] । यहाँ हठयोग का विस्तृत उल्लेख नहीं मिलता है परन्तु जैसे अन्य ग्रन्थकारों ने इस के स्थान आदि का निरूपण सिद्धि के लिये किया है, वैसा दिखाई देता है । गौयें चराने के लिये गये हुये एकान्त स्थान को प्राप्त कर नानक ध्यान मग्न हो जाते हैं[56] । अतीव श्रम का त्याग करने हेतु ही नानक मर्दन को जंगल में साधना करने को कहते हैं, जिस में वह विफल हो जाता है तथा भूख से व्याकुल हो जाता है[57] । इस प्रकार हठ योग के बाधक तत्त्वों का भी अवलोकन होता है, जिन का परित्याग करने से ही योग प्राप्ति कही जाती है ।

आसन - भारतीय धर्मशास्त्रों तथा पौराणिक ग्रन्थों में आसनों का वर्णन आता है, जिन के द्वारा विविध प्रकार से ईश्वर भक्ति की जाती है । परन्तु इन की संख्या के बारे में निश्चित कुछ भी नहीं कहा जा सकता है । अपने अपने मतानुसार आसनों की संख्या निर्धारित की गई है । हठयोगप्रदीपिकाकार ने आसनों के उल्लेख में "स्वस्तिक" नामक आसन को सर्वप्रथम प्रतिपादित किया है[58] । इस

---

54. ह.यो.प्र. 1.65
55. उपेयबोधाय भवन्त्युपाया व्यवस्थितत्वेन हठोऽस्ति तेषाम् ।
गन्तव्यं देशं पथिभिर्विचित्रै-र्यानैश्च गच्छन्ति जना यथेच्छम् ।। - ना.च.1.7।
56. ना.चं. 2.115
57. वही, 7.93
58. हठ.यो.प्र., 1.19

के पश्चात् गोमुख, वीर, कूर्म, कुक्कुट, धनु, उत्तानकूर्म, मत्स्येन्द्र, पश्चिमतान, मयूर, शव, सिद्ध, पद्म, सिंह और भद्र आसनों का निरूपण किया है । सम्पूर्ण विश्व का कल्याण हो, इस भावना से ग्रन्थकार ने मङ्गलसूचक "स्वस्तिक" आसन को सर्वप्रथम उद्धृत किया है । घेरण्ड संहिता में चौरासी लाख आसनों का उल्लेख मिलता है परन्तु उन में चौरासी को श्रेष्ठ तथा इन में से भी बत्तीस को सर्वश्रेष्ठ स्वीकार किया है[59] । हठयोगप्रदीपिका में भी चौरासी आसनों का उल्लेख कर बहत्तर हज़ार नाड़ियों के मल को शोधित करने वाले "सिद्धासन" की परमावश्यकता कही है -

चतुरशीतिपीठेषु सिद्धमेव सदाभ्यसेत् ।
द्वासप्ततिसहस्राणां नाड़ीनां मलशोधनम्[60] ।।

नानक चन्द्रोदय में आसनों की संख्या और नामों का उल्लेख विशेषत: उपलब्ध नहीं होता है परन्तु पद्मासनादि का वर्णन प्राप्त होता है । देवदारु वृक्ष के नीचे बैठे तपस्या कर रहे तेजस्वी यति का निरूपण करते हुये लिखा गया है कि अपने नासिकाग्र की ओर देखता हुआ, उन्नत की हुई हनु वाला, हाथों द्वारा अपनी जंघाओं को पकड़ कर पद्मासन लगा कर स्थित है[61] । हठयोग प्रदीपिका में भी वाम जंघा के ऊपर दक्षिण पाँव रख कर, तथा वैसे ही वाम चरण को दक्षिण जंघा पर भली प्रकार रख कर, हृदय के समीप चार अंगुल के अन्तर पर हनु (ठोडी) रखकर, दोनों हाथों द्वारा पैरों के अँगूठों को ग्रहण कर स्थित रहना पद्मासन कहा है[62] । इस प्रकार देवराज शर्मा ने महाकाव्य में पद्मासन को प्रदीपिका की तरह ही निरूपित किया है । आसनों द्वारा ईश्वर भक्ति में

---

59. आसनानि समस्तानि यावत्तो जीव जन्तव: ।
चतुरशीतिलक्षाणि शिवेन कथितानि च ।। -
तेषां मध्ये मर्त्यलोके द्वात्रिंशदासन शुभम् ।। - घेरण्ड संहिता, 2·1, 2
एवं द्र· 3-6

60. ह० यो०प्र० 1·39

61. ना०चं० 1·30, 31

62. वामोरूपरि दक्षिणं च चरणं संस्थाप्य वामं तथा
····· यमिनां पद्मासनं प्रोच्यते ।। -ह०यो०प्र० 1·44

संलग्न दत्तात्रेय अवधूतादि सिद्ध पुरुष जाग्रत अवस्था के समान शयन करते हैं[63]। सिद्धासन द्वारा ऐसी अवस्था को वे प्राप्त करते हैं कि सोये हुये भी जाग्रतावस्था को धारण करते हैं। आसन में स्थित दत्तात्रेय का शरीर तपस्या द्वारा रमणीय दिखाई देता है[64]। यहाँ आसनों द्वारा शरीर की निरामयता एवं तेजस्विता अवलोकित होती है। साधारण जनता एवं समाज में रहने वाले प्रतिष्ठित लोगों में योगासनों के ज्ञान का अभाव दिखाई देता है क्योंकि योगजिज्ञासु राजा दो वर्ष पाँच मास तक यति की सेवा करता है[65]। जिस से वह योग तथा आसनों आदि के बारे में ज्ञान प्राप्त करता है। पन्द्रह दिन तक यति का भूमि की तरह ही जल में रहने का उल्लेख मिलता है -

दिवसानथ पंचदशाम्बुनिधेः स्थलवज्जल एव जगाम यतिः[66]।।

जल में स्थल की तरह निवास करने के उल्लेख से ज्ञात होता है कि आसन विशेष द्वारा ही ऐसा सम्भव होता है, जिस का नामोल्लेख नहीं किया गया है। इस प्रकार आसनों का नामों द्वारा पृथक्-पृथक् वर्णन नहीं मिलता है, परन्तु योगीजनों की क्रियाओं द्वारा ही आसनों के बारे में ज्ञान प्राप्त होता है। अभ्रं, कुब्जयष्टि, मुद्रा और मुद्रिका आदि मुद्राओं का उल्लेख मिलता है, जो योगासन के अन्तर्गत ही आती हैं। शम्भुनाथ इन मुद्राओं द्वारा सिद्धि प्राप्त करता है तथा फिर यति को भी जीतने की इच्छा करता है -

मुद्रामभ्रं कुब्जयष्टिं दधानः सिद्धैर्लाभान्मानगर्वः प्रधानः।
जेष्यामीति प्रौढ़बुद्धया सनाथ-स्तत्रायातस्तापसः शम्भुनाथः[67]।।

हठयोग से सम्बन्धित आसनों द्वारा इन मुद्राओं को यत्नपूर्वक करने के लिये कहा जाता है जिन से अद्भुत तेज तथा सिद्धि प्राप्त होती है[68]। परन्तु नानक शम्भुनाथ द्वारा प्रदर्शित इन मुद्राओं की आवश्यकता स्वीकार नहीं करते हैं, इन को धारण करने से स्वतन्त्र ज्ञान में बाधा उत्पन्न होना, वह मानते हैं[69]। नानक योगासनों

---

63. व्यारो गिरिरयं सौम्य ! सर्वसिद्धशिरोमणिः।। - ना॰चं॰ 13·4
64. पद्मेक्षणो विस्तृतपिङ्गजटः सुवक्षा नग्नः पिपिण्डलतया रमणीयरूपः।। - ना॰चं॰, 13·5
65. ना॰चं॰ 8·118, 119
66. वही, 9·20 एवं द्र॰21
67. वही, 12·43
68. वही, 12·44
69. तं नानकोऽपि निजगाद बिमुद्र एव त्रैगुण्यतो बहिरहं परितो भ्रमामि।। - ना॰चं॰ 12·47

के अतिरिक्त स्वतन्त्र रूप से ज्ञान को प्राप्त करने की उपादेयता पर बल देते हैं -

अज्ञानादेष संसार: कर्माप्यज्ञानत: कृतम् ।
बन्धकं तद्वयोनाशि ज्ञानादेव न चान्यथा[70] ।।

इस प्रकार आसनादि से अधिक शक्तिसम्पन्न, जिस के द्वारा भवसागररूपी बन्धन से छुटकारा प्राप्त हो सकता है, वह ज्ञान कहा है । अर्थात् बाह्य आडम्बरों का दिखावा करने का विरोध दिखाई देता है । प्राणायाम एवं योगों को नानक प्रयोजनहीन स्वीकार करते हैं[71] । वे आसन नियमों आदि को गौण मानते हैं तथा ज्ञान को मुख्य रूप में स्वीकार करते हैं जिस से परमतत्त्व की प्राप्ति होती है । इस प्रकार महाकाव्य में आसनों के विषय में अधिक उल्लेख प्राप्त नहीं होता है, केवल मात्र पद्मासन का स्पष्ट तथा अन्यों का कुछ संकेत मात्र ही उल्लेख हुआ मिलता है ।

नाड़ीशोधन प्राणायाम - शरीर में जब तक वायु की विद्यमानता है तब तक जीवन कहलाता है, शरीर से वायु का निष्क्रमण मृत्यु होती है । इसीलिये मन को स्थिरता और मोक्ष प्राप्ति हेतु प्राणायाम आवश्यक होता है । परन्तु मल युक्त नाड़ियों द्वारा प्राणवायु का गमन सम्यक् प्रकार से नहीं हो सकता है तथा इस के गमन के अभाव में "उन्मनी" अवस्था की प्राप्ति नहीं हो सकती है । हठयोग प्रदीपिका में सुषुम्णा नाड़ी के प्राण संचार होने को "उन्मनी" भाव कहा है[72] । ऐसी अवस्था होने पर मन में स्थिरता आ जाती है । कार्यसिद्धि भी इस के अभाव में सम्भव नहीं होती है । सुस्थिर अवस्था को ही मनोन्मनी कहते हुये उल्लेख किया है कि प्राण वायु के मन में संचार करने पर जब स्थिरता आती है उस समय मोक्ष प्रदान करने वाली यह अवस्था "मनोन्मनी" कहलाती है[73] । नाड़ियों के शोधन के लिये प्रतिदिन प्राणायाम करना अनिवार्य कहा है । दृढ़ आसन पर

---

70. ना·चं· 12·52
71. प्राणायामैश्च योगैश्च न मे किंचित्प्रयोजनम् ।। - ना·चं· 12·51
72. मलाकुलासु नाड़ीषु मारुतो नैव मध्यग: ।
कथं स्यादुन्मनीभाव: कार्यसिद्धिस्तथं भवेत् ।। - ह० यो·प्र· 2·4
73. मारुते मध्यसंचारे मन: स्थैर्यं प्रजायते ।
यो मन: सुस्थिरीभाव: सैवावस्था मनोन्मनी ।। - ह०·यो·प्र·2·42

स्थित हो कर गुरू द्वारा उपदिष्ट मार्ग से प्राणायाम का अभ्यास करने का उल्लेख मिलता है -

अथासने दृढ़े योगी वशी हितमिताशन: ।
गुरूपदिष्टमार्गेण प्राणायामान्समभ्यसेत्[74] ।।

घेरण्ड संहिता में कुशासन, मृगशाला, सिंहशाला, कम्बल व स्थल पर किसी प्रकार के भी आसन पर पूर्व या उत्तराभिमुख स्थित हो कर प्राणायाम करने का उल्लेख किया है[75] । हठयोगप्रदीपिकाकार ने पद्मासन लगा कर प्राणवायु को चन्द्रनाड़ी (इड़ा) से पूर्ण करने, शक्ति द्वारा श्वास रोक कर सूर्यनाड़ी (पिंगला) द्वारा छोड़ने, पुन: सूर्य नाड़ी द्वारा प्राणवायु रेचन कर चन्द्रनाड़ी द्वारा पूर्व क्रम से छोड़ना कहा है । इस प्रकार बायें से वायु ग्रहण कर, कुम्भक कर, दायें से छोड़ देना तथा दायें से ग्रहण कर, कुम्भक कर बायें से निकालने का उल्लेख किया है । नासिकारन्ध्रों द्वाराप्राणायाम करने से योगीजनों के मन तथा नाड़ियों की मलिनता तीन मास में शुद्ध हो जाती है[76] ।

नानक चन्द्रोदय महाकाव्य में प्राणायाम द्वारा नाड़ी शोधन तथा मन को स्थिर कर मोक्ष की प्राप्ति का उल्लेख उपलब्ध होता है । "मनोन्मनी" अवस्था को प्राप्त कर मनुष्य धन्य हो जाता है तथा अन्य स्पृहा उसे नहीं रहती है । यह अवस्था कुम्भक आदि प्राणायाम करने से ही प्राप्त होती है -

कुम्भकेन सुषुम्णाया मध्ये वहति मारूते ।
मनोन्मन्यामवस्थाय धन्यां नान्याभिलाषिण:[77] ।।

इस प्रकार हठयोगप्रदीपिका में प्रतिपादित "मनोन्मनी" अवस्था की तरह ही यहाँ

---

74. ह•यो•प्र• 2•।

75. कुशासने मृगाजिने व्याघ्राजिने च कम्बले ।
स्थलासने समासीन: प्राङ्•मुखो वाऽप्युदङ्•मुख: ।
नाड़ीशुद्धिं समासाद्य प्राणायामं समभ्यसेत् ।। - घेरण्ड संहिता, 5•33

76. बद्ध पद्मासनो योगी प्राणं चन्द्रेण पूरयेत् ।
धारयित्वा यथाशक्ति: भूय: सूर्येण रेचयेत् ।। - ह•यो•प्र•2•7 एवं द्र• 8 त: 10 पर्यन्तं

77. ना•चं• 10•118

निरूपण किया गया है । सुषुम्णा नाड़ी द्वारा प्राणवायु का निरोध कर त्रिपुट विभाग से निकालने द्वारा मनस्थिर और परमज्योति दिखाई देती है[78] । इड़ा, पिङ्गला, सुषुम्णा, गान्धारी, हस्तजिह्वा, पूषा, यशस्विनी, अलंबुषा, कुहू और शंखिनी[79] नाड़ियों का उल्लेख मिलता है । इन नाड़ियों में चन्द्रमा इत्यादि की स्थिति कही है । इड़ा में चन्द्रमा, पिंगला में भास्कर और सुषुम्णा में शम्भु स्थित हैं । इसलिये अन्य ग्रन्थों में चन्द्रनाड़ी तथा सूर्यनाड़ी के नामों से इड़ा व पिंगला को उल्लिखित किया गया है -

इड़ायां संस्थितश्चन्द्रः पिङ्गलायां तु भास्करः ।
सुषुम्णायां स्थितः शम्भुः शम्भोर्हंसस्वरूपता[80] ।।

चन्द्र नाड़ी द्वारा वायु पान कर सूर्यनाड़ी द्वारा छोड़ने से पुनः सूर्यनाड़ी द्वारा ग्रहण कर चन्द्रनाड़ी द्वारा निःसृत करने का उल्लेख मिलता है । रात्रिकाल में चन्द्रनाड़ी द्वारा श्वास ग्रहण करना तथा दिनमेंसूर्यनाड़ी द्वारा, यह श्वास प्रश्वास लेने की मनुष्यों की क्रिया स्वाभाविक उद्धृत की गई है । मनुष्य दिन में छः सौ तथा रात्रि में एक हज़ार इक्कीस श्वास-प्रश्वास ग्रहण करता है[81] । इस प्रकार कुम्भक प्राणायाम, जो कि योग के अन्तर्गत आता है, द्वारा महाकाव्य में नाड़ियों का शोधन कर आत्मा द्वारा "सोऽहं" का उच्चारण किया जाता है -

अग्नीषोममयो नाड़ीं सुषुम्णामाश्रितः स च ।
आब्रह्मरन्ध्रमुद्गच्छन्नुदानो नाम वर्धते ।।
आत्मा सोऽहमुदीरयत्यविरतं तस्मिन् सहोलापिनाद्
ओंकारेणापूर्वरूपकरणादोंकार आविर्भवेत्[82] ।।

निरन्तर प्राणायाम करने से योगी की नाड़ियों के शुद्ध हो जाने पर "सोऽहं" का उच्चारण होने के उपरान्त "ओंकार" आविर्भूत होता है । वायु को रोकने

---

78. सुषुम्नया प्राणसमीरमुच्चै-र्निरुध्य·····।।
स तीव्रसंवेग·····पश्यन्परं ज्योतिरहो ननन्द ।। - ना·चं·7·92

79. ना·चं· 10·110, 111, 112

80. वही, 10·115

81. वही, 10·116, 117; 119

82. वही, 10·122, 123

आदि की क्रिया द्वारा छः चक्रों का भेदन कर मुमुक्षु को सकल प्रकाश प्राप्त होता है[83] । अतः नानकचन्द्रोदय महाकाव्य में नाड़ी शोधन द्वारा मोक्ष की प्राप्ति निरूपित की गई है ।

षट् कर्म - षट् कर्म करने के पश्चात् प्राणायाम आदि योग करने में सरलता रहती है । इसी को प्रतिपादित करते हुये हठयोगप्रदीपिका में लिखा गया है कि धौती, वस्ति, नेति, त्राटक, नौलिक और कपालभाति ये षट्कर्म हैं -

धौतिर्बस्तिस्तथा नेतिस्त्राटकं नौलिकं तथा ।
कपालभातिश्चैतानि षट् कर्माणि प्रचक्षते[84] ।।

इन षट् कर्मों को करने के उपरान्त प्राणायाम करने का उल्लेख मिलता है । क्योंकि इन को कर लेने से प्राणायाम में सरलता रहती है[85] । इस प्रकार धौति-बस्ति आदि की आवश्यकता प्राणायाम के लिये मानी गई है ।

नानक चन्द्रोदय महाकाव्य में षट्कर्मों द्वारा सर्वप्रथम शुद्धि कर के, मन को भी जीतने वाले कुम्भक आदि प्राणायाम करने का उल्लेख मिलता है -

स्रोतः शुद्धिं कर्मभिः षड्भिरादौ कृत्वाभ्यस्ते कुम्भके चित्तजित्या ।
वायौ वश्ये चामनस्कं प्रपन्नो मुक्तो योगी ह्यन्यनाख्याति भागी[86] ।।

"कर्मभिः षड्भिः" से यही अभिप्राय दिखाई देता है कि ये छः कर्म धौति-बस्ति आदि ही हैं जिन के पश्चात् प्राणायाम की व्यवस्था की गई है । परन्तु देवराज शर्मा ने महाकाव्य में वस्ति, धौति, नौलि, कपाल, खेचरी और वज्रोलिका का नामोल्लेख करते हुये इन की परमावश्यकता मान्य नहीं कही है । उन्होंने उल्लेख किया है कि सत्य, सन्तोष और पवित्रता द्वारा ही ईश्वर के स्वरूप का बोध तथा सिद्धि प्राप्त होती है -

न वस्तिर्न धौतिर्न नौलिः कपालं, न या खेचरी नापि वज्रोलिकाख्या ।
विरक्तिर्भवेत् सत्य सन्तोष शौचं, स्वरूपावबोधश्च सिद्धिं नयन्ति[87] ।।

---

83. वायुनोर्ध्वं नयन् योगी भित्वा चक्राणि तां तु षट् ।
हिताहिताख्या.....मण्डलमिन्दुतुल्यम् ।।
निवातदीपाकृतिं रत्र.....मुमुक्षुणात्मा सकल प्रकाशः ।। -ना॰चं॰10॰124,125

84. ह॰यो॰द्र॰ 2॰22

85. वही, 2॰36

86. ना॰चं॰ 12॰158

87. वही, 11॰54

अत: नामोल्लेख कर इन की महत्ता कम वर्णित की गई है परन्तु साथ ही षट्कर्मों के पश्चात् कुम्भक आदि करने का जो उल्लेख मिलता है, उससे यही ज्ञात होता है कि षट्कर्म करने तो चाहियें, परन्तु यदि न भी किये जायें तो कोई हानि भी नहीं होती है ।

प्राणायाम तथा उसके भेद - पातंजल योग दर्शन में प्राणवायु अर्थात् श्वास-प्रश्वास की गति का निरोध ही प्राणायाम कहा है - "प्राणस्य आयामो गतिरोध:"। इस प्रकार प्राण वायु का अवरोध ही प्राणायाम होता है । आसन पर स्थिर हो कर जो प्राण की गति का अवरोध होता है, वही प्राणायाम होता है -

तस्मिन् सति श्वासप्रश्वासयोर्गतिविच्छेद: प्राणायाम:[88] ।

योग-दर्शन में बाह्य आभ्यन्तर और स्तम्भवृत्ति (कुम्भक) भेद से तीन प्रकार का प्राणायाम कहा है[89] । जहाँ बाह्य विषयों तथा आभ्यन्तर विषयों का परित्याग हो, वह चतुर्थ प्राणायाम माना है -

"बाह्याभ्यन्तरविषयाक्षेपी चतुर्थ:"[90]

पुरातन ऋषियों ने प्राण विद्या के रहस्य को जान कर जिस योग विधि का आविष्कार किया, अनन्तकाल तक यही विधि अमृततत्त्व और दीर्घ आयुष्य की प्राप्ति के लिये सर्वोत्कृष्ट मानी जाती रहेगी । प्राण की प्रतिष्ठा ही अमृततत्त्व है, प्राण की उत्क्रान्ति ही मृत्यु है । ब्रह्मचर्य ही प्राण-प्रतिष्ठा का सर्वोत्तम मार्ग है । सर्व प्रकार की निर्विकारिता ही प्राणों को प्रकृतिस्थ क्षोभरहित रखती है[91] । हठयोगप्रदीपिकाकार ने रेचक, पूरक और कुम्भक के भेदों से प्राणायाम तीन प्रकार का मान कर सहित और केवल के भेद से कुम्भक को दो प्रकार का कहा है -

प्राणायामस्त्रिधा प्रोक्तो रेचक पूरक कुम्भकै: ।
सहित: केवलश्चेति कुम्भको द्विविधो मत:[92] ।।

कुम्भक के ही सूर्यभेद आदि आठ भेद स्वीकार किये हैं -

---

88. पा•यो•द• 2•49
89. बाह्याभ्यन्तरस्तम्भवृत्तिर्देशकाल संख्याभि परिदृष्टोदीर्घसूक्ष्म: ।।
- पा•यो•द• 2•50
90. पा•यो•द• 2•51
91. कल्याण योगांक - पृ• 658
92. हठ•यो• प्र• 2•71

सूर्यभेदनमुज्जायी सीत्कारी शीतली तथा ।
भस्त्रिका भ्रामरी मूर्च्छा प्लाविनीत्यष्टकुंभका: [93] ।।

मनुस्मृति में तीन प्राणायामों का उल्लेख मिलता है[94] । गोरक्षसंहिता में भी प्राणायाम के तीन भेद उल्लिखित किये हैं[95] । इस प्रकार प्राणायाम द्वारा प्राणवायु के साथ अन्य दस वायु भी वश में हो जाती हैं । वायु अन्दर प्रवेश करने पर उसे रोकने से स्थिरता आती है, जिस से अभीष्ट प्राप्ति होती है -

नानक चन्द्रोदय महाकाव्य में सुषुम्णा के मध्य वायु स्थित होने पर कुम्भक प्राणायाम को प्रतिपादित किया है[96] । रेचक, पूरक का नामोल्लेख उपलब्ध नहीं होता है, परन्तु इड़ा पिंगला नाड़ियों द्वारा जो कुम्भक प्राणायाम किया जाता है, उसी प्रकार जो अवस्था धारण होती है उस में इन्हीं नाड़ियों द्वारा श्वास को रोक कर तथा ग्रहण कर रेचक, पूरक प्राणायाम भी किये जाते हैं[97] । इस प्रकार कुम्भक, रेचक, पूरक तीन भेद प्राणायाम के उपलब्ध होते हैं । हठयोग प्रदीपिका में कहा भी गया है कि दक्षिण नाड़ी से शनै: शनै: पूरक प्राणायाम कर के, नख के अग्रभाग से ले कर केशों तक पवन को रोक कर कुंभक करे फिर वाम नाड़ी से प्राण वायु का धीरे-धीरे रेचन करे[98] । अत: नानकचन्द्रोदय में भी इन्हीं तीनों का उल्लेख ज्ञात हो जाता है । अन्य ग्रन्थों में कुम्भक के जो आठ भेद कहे हैं उन का स्पष्ट उल्लेख नहीं मिलता है, परन्तु सुषुम्णा नाड़ी में जब वायु-प्रवेश करती है तो आठ प्रकार का नाद होता है[99] । सुषुम्णा में प्राणवायु के स्थिर हो जाने पर कुंभक प्राणायाम की स्थिति आती है इसलिये आठ प्रकार की जो ध्वनि उस अवस्था में आती है उस से आठ कुंभकों का आभास होता है । इस

---

93. हठ·यो·प्र· 2·44
94. प्राणायामा ब्राह्मणस्य त्रयोऽपि विधिवत्कृता: ।।
व्याहृति प्रणवैर्युक्ता विज्ञेयं परमं तप: ।। - मनु·स्मृ·6·70
95. गोरक्ष संहिता, 2·4-6
96. ना·चं· 10·118
97. वही, 10·115-116
98. आसने सुखदे····दक्ष नाड्या समाकृष्य···पवनं शनै: ।।
आकेशादानखाग्राच्च···कुंभयेत् ।। तत: शनै···रेचयेत्पवनं शनै: ।।
- हठ·योग·प्र· 2·48,49
99. सौषुम्नीं सृतिमाश्रिते च पवने नादोष्टधा श्रूयते ।। - ना·चं·12·162

प्रकार नानक चन्द्रोदय महाकाव्य में हठयोग प्रदीपिका में वर्णित तीन कुंभक, रेचक और पूरक प्राणायामों तथा कुंभक के आठ भेदों के बारे में संकेत मात्र मिलता है । स्पष्ट नामोल्लेख तो केवल मात्र कुंभक का ही उपलब्ध होता है ।

प्राण, अपान आदि दश वायु का उल्लेख भी मिलता है, जिन के द्वारा योगी प्राणायाम का अभ्यास कर के अभीष्ट फल प्राप्त करता है -

प्राणोपान: समानश्चोदानो व्यानस्तथैव च ।
नाग: कूर्मोऽथ कृकरो देवदत्तो धनंजय: ।।
वायवो दश विख्यातास्तत्तत्कर्मकरास्तनौ ।
प्रणामा यच्छतो वश्यास्तेभ्यासेनाखिलेष्टदा:[100] ।।

इस प्रकार प्राण, अपान, समान, उदान, व्यान, नाग:, कूर्म, कृकर, देवदत्त और धनंजय नाम से दश वायु कहे हैं । अपानवायु का आकुंचन कर तथा यत्नपूर्वक प्राणवायु का अवरोध कर निरन्तर जो प्राणायाम का अभ्यास करता है, वह शीघ्र ही सिद्धि को प्राप्त करता है[101] । शरीर में निरोगता, तनु में लघुता, कफ, मल का नाश, स्वर की सौरभता और श्रुति के दर्शन प्राणायाम द्वारा वायु की प्रक्रिया करने से होते हैं[102] । ब्रह्मपुराण में इन्द्रियों को समाहृत कर, दृष्टि को नासिका के अग्रभाव में स्थापित कर प्राणायाम करने से स्थिर अवस्था प्राप्त होने का वर्णन मिलता है[103] । नानकचन्द्रोदय महाकाव्य में भी प्राणायाम का निरन्तर अभ्यास करने से स्वर्ग की करस्थिता का उल्लेख मिलता है[104] । इस प्रकार प्राणायाम द्वारा ईश्वर प्राप्ति कर मोक्ष प्राप्ति का साधन निरूपित उसे किया गया है ।

समाधि - ध्येयाकार के लिये लगाया गया ध्यान ही जब ध्येयाकाररूप में हो जाता है अर्थात् दोनों में कोई अन्तर नहीं रहता है, तो वह समाधि कहा जाता

---

100. ना·चं· 10·113, 114

101. अपानमाकुंच्य निरुध्य यत्नात्प्राणं····· । - ना·चं·12·159

102. ना·चं· 12·161

103. नाभौ निधाय हस्तौ·····पदमासने स्थित: ।
संस्थाप्य दृष्टिं·····प्राणायाम्य वाग्यत: ।। - ब्रह्मपुराण·235·17,18

104. ना·चं· 14·333

है । जैसे नमक पानी में मिल जाने से एकरूपता को प्राप्त करता है, वैसे आत्मा और मन की एकरूपता समाधि होती है । हठयोग प्रदीपिका में कहा है कि जब मनुष्य निष्प्राण अवस्था को प्राप्त करता है तथा मन का लय हो जाता है, उस समय जीवात्मा और परमात्मा में हुई एकरूपता समाधि कहलाती है । इस अवस्था में सम्पूर्ण संकल्प नष्ट हो जाते हैं[105] । पातंजल योग दर्शन में कहा है कि ध्यान ही जब अर्थमात्र भासित हो और अपना स्मरण न रहे तो वह समान गति समाधि होती है -

तदेनार्थमात्रनिर्भासं स्वरूपशून्यमिव समाधिः[106] ।।

विवेक चूड़ामणि में कहा है कि एकाग्रचित्त से अविरत सत्स्वरूप ब्रह्म में स्थिति रहने से मनुष्य ब्रह्मस्वरूप हो जाता है जैसे भयपूर्वक भ्रमर का ध्यान करने से कीट भ्रमरस्वरूप हो जाता है । इस प्रकार अपने आप को तद्रूप करना समाधि है-

सति सवतो नरो याति सद्भावं ह्येकनिष्ठया ।
कीटको भ्रमरं ध्यायन्भ्रमरत्वाय कल्पते[107] ।।

नानक चन्द्रोदय महाकाव्य में समाधि का विशेष लक्षण तथा निरूपण उपलब्ध नहीं होता है, परन्तु समाधिरूप में समाधिस्थ योगियों की ब्रह्मलीन अवस्था का उल्लेख दिखाई देता है । ध्येय के स्वरूप में ही अपनी समस्त क्रियाओं का समारोपण और वृत्ति में समरूपता होने से योगियों की समाधि अवस्था अवलोकित होती है । शरीर के सुखदुःख को मिथ्या जानने वाला ज्ञानी समाधिबोध मुद्रा को प्राप्त करता है -

द्रष्टुः स्वरूपेऽवस्थानं समाधौ परिकीर्तितम् ।
वृत्तिसारूप्यमन्यत्र योगैरेव वर्णितम्[108] ।।

शारीरिक चिन्ताओं को विस्मृत कर समाधि अवस्था को आत्मलीन हो कर प्राप्त

---

105. सलिले सैन्धवं यद्वत्साम्यं भजति योगतः
तथात्ममनसोरैक्यं समाधिरभिधीयते ।।
यदा संक्षीयते प्राणो मानसं च प्रलीयते ।
तदा समरसत्वं च समाधिरभिधीयते ।। - ह०योग०प्र० 4.5-7

106. पा०यो०द० 3.3

107. वि०चूड़ा० 359

108. ना०चं० 12.172 एवं द्र० 173

किये जाने का उल्लेख मिलता है । आत्मलीन होने पर आत्मबोध होता है तथा अन्य ज्ञान की आवश्यकता नहीं रहती है क्योंकि समाधि द्वारा ही हृदय में विद्यमान ज्योति बिना दीपक के स्वयं जलती है तथा परमपद की प्राप्ति होती है[109] । योगियों का समाधिस्थ होने पर समय के साथ सम्बन्ध-विच्छेद दिखाई देता है अर्थात् अपने चारों ओर विद्यमान वस्तुओं तथा समय का बोध उन्हें नहीं रहता है । जैसे नानकदेव के समाधिनिष्ठ होने पर मर्दन भूख से व्याकुलता का वर्णन करता है[110] । कौपीनधारी, जटाओं से युक्त और अङ्गों पर भस्म का लेप करने वाले तपस्वियों का वर्णन मिलता है[111] जो कि समाधि अवस्था में ईश्वर भजन करते हैं । समाधि द्वारा ही मनुष्य को "सोऽहं" का बोध होता है तथा जन्म-मरण के चक्र से स्वतन्त्र हो जाता है[112] । गुरूसेवक जिज्ञासु शिष्य योग प्राप्त करता है, ज्ञान द्वारा मोक्ष प्राप्त होता है, शास्त्रों द्वारा तत्त्व अन्वेषण किया जाता है तथा अद्वैतभ्रम मनन द्वारा निवारित होने का उल्लेख मिलता है[113] । मनन से यहाँ यही अभिप्राय: निकलता है कि समाधिनिष्ठ हो निरन्तर मनन चिन्तन करना जिसके द्वारा ज्ञान प्राप्त होता है तथा उत्पन्न भ्रम भी स्वयं नष्ट हो जाता है । "निर्बीज समाधि" का उल्लेख भी उपलब्ध होता है । प्राणवायु का अवरोध कर मन को विषयों से रोक कर तथा आसन पर स्थित हो नानक "निर्बीज समाधि निद्रा को प्राप्त होते हैं । समाधि द्वारा परमज्योति को प्राप्त करते हैं -

भूमौ चतुर्थ्यामवतिष्ठमानो; तिक्रान्त भाव्यो बशवायुचित्त: ।
स एकदा स्वासनमाश्रित: स;—न्नवाप निर्बीजसमाधिनिद्राम्[114] ।।

अत: समाधि युक्त योगी स्मृति-विस्मृति से दूर, शीत-उष्ण, सुख-दु:ख, जय-विजय आदि का आभास नहीं करता है । गन्ध, रस, रूप, स्पर्श आदि से निर्लिप्त रहता है । समाधिस्थ योगी सभी प्राणियों से दिव्यशक्ति सम्पन्न होता है ।

---

109. ना·चं· 12·163 एवं द्र·11·127
110. वही, 7·107
111. कौपीनमात्रावरणान् जटाधरा-नादिग्धगात्रान्भसितेन भास्वता ।।-ना·चं· 3·12
112. ना·चं· 14·25
113. वही, 16·26
{114} वही, 7·91

आत्म तत्त्व ज्ञान - ऋग्वेद में ब्रह्म का निरूपण करते हुये उद्धृत है कि उस के सहस्र मस्तक, सहस्र नेत्र और सहस्र पैर हैं। सम्पूर्ण पृथ्वी पर वह व्याप्त है। दश अंगुल परे भी वह व्याप्त है। वर्तमान और भविष्य में जो कुछ है, वह वही पुरुष है। अमरत्व का स्वामी है तथा अन्न से पोषित होने वाले प्राणियों में भी वह ही है[115]। छान्दोग्योपनिषद् में कहा है कि वह ब्रह्म एक ही रूप में सर्वव्याप्त है दूसरा नहीं है। "ब्रह्म एकमेवाद्वितीयम्"[116] बृहदारण्यक में उल्लेख मिलता है कि वह इस संसार में व्याप्त है, इस लिये सम्पूर्ण विश्व ब्रह्म ही है[117]। विवेक चूड़ामणि में शरीर पोषण करते रहने पर आत्मतत्त्वज्ञान/अनुपलब्धता को कही है -

शरीर पोषणार्थी सन् य आत्मानं दिदृक्षति।
ग्राहं दारुधिया धृत्वा नदीं तर्तुं स इच्छति[118] ॥

वह ब्रह्म, सम्पूर्ण विश्व को व्याप्त किये हुये है और उसे कोई भी व्याप्त नहीं कर सकता है -

येन विश्वमिदं व्याप्तं यन्न व्याप्नोति किंचन्।
आभा रूपमिदं सर्वं यं भान्तमनुभात्ययम्[119] ॥

श्रीमद्भगवद्गीता में विराट् ब्रह्म का स्वरूप आदि, मध्य और अन्त से हीन कहा है। सम्पूर्ण विश्व को वही अपनी शक्ति द्वारा तपा रहा है जो अनन्त पराक्रम युक्त है -

अनादि मध्यांतमनंतवीर्यमनंतबाहुं शशिसूर्यनेत्रम्।
पश्यामि त्वां दीप्त हुताशवक्त्रं स्वतेजसा विश्वमिदं तपन्तम्[120] ॥

पातंजल योग दर्शन में सर्वदा अखण्ड स्वरूप एक जैसा रहने वाली पारमार्थिक

---

115. सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात्।
स भूमि·····दशांगुलम्॥ - ऋग्वेद· 1·60·1-3

116. छान्दोग्योपनिषद्· 6·2·1

117. "एकमेव सत् नेह नानास्ति किंचनः" - बृहदारण्यक· 4·4·19

118. वि·चूड़ा· 86

119. वही; 130 एवं द्र· 138

120. गीता· 13·19

सत्ता को ब्रह्म कहा है[121] । इस प्रकार लक्षण ग्रन्थों ने आत्मतत्त्वज्ञान स्वरूप ब्रह्म का निरूपण अपने-अपने मतानुसार उल्लिखित किया है ।

नानक चन्द्रोदय महाकाव्य में "ब्रह्म" का निर्विकल्प रूप में उल्लेख प्राप्त होता है । जिस को माया से युक्त संसार में स्व-स्व बुद्धि अनुसार जाना जाता है[122] । सम्पूर्ण विश्व उस के द्वारा विवृत है तथा जीव भी ब्रह्म स्वरूप कहा है । सर्वव्यापक को प्राप्त करने हेतु निखिल जगत् से विराग धारण करना कहा है -

अध्यारोपापवादौश्रुतिषु निगदितौ ब्रह्मणो बोधनार्थम्,
माया तस्मिन् विवर्तो जगदिदमखिलं जीवभावश्च तस्य ।
नाज्ञो बोद्धुं समर्थः कथमपि हि बिना यं च कोशादिशैलीम्,
सत्येषु सत्यं स्वयमिहमनुते ब्रह्म सर्वं न चान्यत्[123] ।।

इस प्रकार निष्कामभाव द्वारा विशुद्ध चित्त हो आत्मबोध द्वारा उसे प्राप्त किया जाता है । व्योम की तरह आत्मतत्त्वज्ञान स्वरूप ब्रह्म की विद्यमानता होने पर भी उसे दुष्प्राप्य कहा है । वासनाओं का त्याग कर उसे प्राप्त किया जा सकता है -

वासना तंतुमातत्य कोशकार इवाविशत् ।
जीवो ब्रह्म सदप्यत्र व्योमेव दुरवग्रहम्[124] ।।

देह, इन्द्रिय, प्राण और बुद्धि से परे सदानन्दस्वरूप अचैतन्य वह "आत्मज्ञान"[125] है । इन सब पर विजय प्राप्त कर उस की प्राप्ति होती है । कठोपनिषद् में भी इसी प्रकार उद्धृत किया है कि जिस का चित्त दुष्कर्मों से निवृत्त नहीं होता है,

---

121. "तत्र निरतिशयं सर्वज्ञ बीजम्" - पा.यो.द. 1.26
122. बोधानन्दाद्वितीयं निगमपथगुणां ब्रह्म तन्निर्विकल्पम् ।। -ना.चं.1.72
123. ना.चं. 1.82 एवं द्र. 1.81
124. ना.चं. 1.85
125. वही;1.88

इन्द्रियाँ शान्त नहीं होती हैं वह आत्मज्ञान प्राप्त नहीं कर सकता है[126]। नानक देव आत्मतत्त्व के ज्ञान के बिना अपने आप को अधूरा मानते हैं। जैसे धर्म से हीन अर्थ शोभा नहीं देता है वैसे "ब्रह्म" स्वरूप ज्ञान के अभाव में मनुष्य होता है[127]। ब्रह्म के बारे में मूढ़ व्यक्तियों को ज्ञान देने का निषेध किया है क्योंकि यह ज्ञान स्वान्त: सुख के लिये होता है[128]। जो विवेकी मनुष्य होता है तथा सांसारिक विषयों से दूर स्थित होता है वही इसे प्राप्त करने में समर्थ होता है। "ब्रह्म ज्ञानी" हानि, लाभ और शोकादि को मिथ्या समझता है और व्यथित नहीं होता है[129]। क्योंकि आत्मज्ञान को प्राप्त करने का उपाय बन्धनों से मुक्त होना है। विवेक चूड़ामणि में भी उल्लेख मिलता है कि भवबन्धन से युक्त होने के लिये ब्रह्म और आत्मा का अभेद ज्ञान होना आवश्यक होता है, जिस के द्वारा बुद्धिमान अद्वितीय आनन्दस्वरूप "ब्रह्मपद" को प्राप्त करता है -

ब्रह्माभिन्नत्वविज्ञानं भवमोक्षस्य कारणम्।
येनाद्वितीयमानन्दं ब्रह्म सम्पद्यते बुधैः[130] ।।

नानक चन्द्रोदय महाकाव्य में भी पक्षियों के लिये उन्नत आकाश की तरह स्नेहरूपी बन्धन में बन्धे प्राणियों के लिये ब्रह्म पद को दुर्गम कहा है[131]। इस को प्राप्त करने के लिये बन्धनों से देह को मुक्त करना आवश्यक होता है। मन को बाह्य विषयों से अवरुद्ध कर निर्गुणस्वरूप पर ब्रह्म का अहंकार रहित हो जो ध्यान करते हैं, वह उसे प्राप्त करते हैं[132]। दूसरों के दोषों में ध्यान न देने वाले, हर्ष तथा शोक से रहित पुरुष इस को प्राप्त करते हैं[133]। आत्मज्ञान को अद्वितीय कहा है जो कि ज्योतिर्मय सर्वप्रकाशक होता है[134]। मुण्डकोपनिषद् में भी उल्लेख

---

126. नाविरतो दुश्चरितान्नाशान्तो नासमाहित:।
नाशांतमानसो वाऽपि प्रज्ञानेनैनमाप्नुयात् ।। - कठोपनिषद्, 1·2·24

127. ना·चं· 3·40

128. वही, 4·97

129. वही, 4·99

130. वि·चुड़ा· 225

131. स्नेह निर्यास वद्धानां जीवानां पक्षिणामिव।
पर ब्रह्ममोक्षुदुर्गमाकाशमिव दुर्गमम् ।। - ना·चं· 6·67

132. ना·चं· 14·40 एवं द्र· 14·25

133. वही, 14.39 {134} वही 16·25

मिलता है कि "निर्मल और कलाहीन ब्रह्म हिरण्यमय परमकोश में विद्यमान है। वह शुद्ध और सम्पूर्ण ज्योतिर्मय वस्तुओं की ज्योति है[135]। इस प्रकार उपनिषदों में वर्णित आत्मतत्त्व ज्ञान की तरह नानकचन्द्रोदय महाकाव्य में उल्लेख मिलता है। सकल प्रकाश ब्रह्म द्वारा प्राप्त होता है-

"ब्रह्म प्रसिद्धं सकल प्रकाशम्"[136]

भावना के आवेश में भक्त, अपने उपास्य में श्रेष्ठतम एवं भावनोचित विशिष्टताओं का आरोपण करता है और स्वयं को उस के समक्ष अज्ञानी रूप में प्रस्तुत करता है। इसलिये कहा गया है कि तपस्वियों द्वारा कही गई विद्याओं द्वारा, बोध प्राप्त कर जीव धर्म, भक्ति और श्रवणादि द्वारा गुरू की वाणी से ब्रह्मपद स्वरूप आत्मज्ञान को प्राप्त करता है[137]। सांख्य दर्शन में भी गुरू को आत्मतत्त्वज्ञान में परमावश्यक माना है -

प्रणति ब्रह्मचर्योपसर्पणानि कृत्वा सिद्धिर्बहुकालात्[138] ।।

इन्द्र के समान गुरू के प्रति नम्रभावना, ब्रह्मचर्य सेवन और श्रद्धापूर्वक गुरू शुश्रूषा द्वारा अतीव काल पर्यन्त आत्मतत्त्वज्ञान प्राप्त हो जाता है।

इस प्रकार देवराज शर्मा ने अन्य ग्रन्थों के अनुरूप ब्रह्म का निरूपण किया है, जिस आत्मतत्त्व स्वरूप का ज्ञान प्राप्त कर मनुष्य निर्वाण पद को भी प्राप्त कर सकता है।

जीव - "जीव" का स्वरूप प्राचीन ग्रन्थों में विभिन्न प्रकार से चित्रित है। ब्रह्मवैवर्तपुराण में जीव का स्वरूप कहते हुये उल्लेख किया है कि "जीव" सच्चिदानन्द स्वरूप ईश्वर का अंश है -

ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः।
अंशाशिनोर्न भेदश्च ब्रह्मन्वह्निस्फुलिङ्गवत्[139] ।।

---

135. हिरण्यमये परे कोशे विरजं ब्रह्म.....दात्मविदो विदुः।
- मुण्डकोपनिषद्. 2.2.9

136. ना.चं. 16.33

137. वही, 19.121

138. सांख्य दर्शन, 4.19

139. ब्रह्मवैवर्तपुराण, 1.17.37

गीता में जीव को नित्य अर्थात् सर्वकालवर्ती कहा है । सम्पूर्ण जगत् जिस में व्याप्त है, ऐसा मूल आत्मस्वरूप जो तत्त्व है, वह अविनाशी है । इस अव्यय तत्त्व का विनाश कोई नहीं कर सकता है -

अविनाशी तु तद्विद्धि येन सर्वमिदं तत्तम् ।
विनाशमव्ययस्यास्य न कश्चित्कर्तुमर्हति [140] ।।

"जीव" न जन्म लेता है न मरता है । वह नित्य शाश्वत और सनातन है । शरीर का वध हो जाने पर भी मरता नहीं है । इस प्रकार पूर्ण रूप से अनश्वर है-

न जायते म्रियते वा कदाचिन्नायं भूत्वा भविता वा न भूयः ।
अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो न हन्यते हन्यमाने शरीरे [141] ।।

ऋग्वेद में जीव के स्वरूप का उल्लेख उद्धृत करते हुये वर्णित है कि परस्पर साथ वास करने वाले दो मित्र पक्षी एक ही वृक्ष पर रहते हैं । उन में से एक जीवात्मा उस वृक्ष के फलों का उपभोग करता है, किन्तु दूसरा उपभोग न करते हुये केवल साक्षी रूप में देखता है । अर्थात् उपभोग करने वाला शरीरधारी जीव है और साक्षी रूप में उस के क्रिया-कलापों को देखने वाला ब्रह्म है -

द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते ।
तयोरन्यः पिप्पलं स्वद्वत्यनश्नन्नन्यो अभिचाकशीति [142] ।।

"जीव" के जन्म मरण के व्यवहार के विषय में भागवतपुराण में उल्लेख मिलता है कि जीव के जन्म-मृत्यु का व्यवहार उस के देहसम्बन्ध एवं देह वियोग को ही द्योतित करता है । वास्तव में जीव आत्मा द्वारा अमर ही होता है ।

जन्माद्याः षडिमे भावा दृष्टा देहस्य नात्मनः [143] ।

नानक चन्द्रोदय महाकाव्य में भी "जीव" का स्वरूप उद्धृत मिलता है ।

---

140. गीता. 2.17
141. वही, 2.20
142. ऋग्वेद, 1.164.20
143. भाग.पुरा. 7.7.18

नानक देव "जीव" (सत्व) को अमूर्त कहते हैं । उन के मतानुसार जो विषय मूर्त हैं वही नयनों द्वारा दिखाई देते हैं[144] । "जीव" का स्वरूप तो अमूर्त है इस लिये देखा नहीं जा सकता है । "जीव" को ही ब्रह्म स्वीकार किया गया है[145] । जो इस के बारे में शंका करते हैं उन के लिये स्पष्ट उल्लेख मिलता है कि अनादि विद्धा द्वारा अखिल जगत् में निवास करने वाले जीव-भाव को जो प्राप्त करता है, वह पुरुष प्रबुद्ध होता है[146] । अर्थात् जीव ही ब्रह्म स्वरूप होता है । सच्चिदानन्द आत्मतत्त्व को प्रत्यक्ष करने वाले जीव का स्वरूप "सत्य" होता है । जिस का प्राणों द्वारा विस्तार किया जाता है-

ततोवदन्नानकयोगिराजः, प्रत्यक्षिताखण्डचिदात्मतत्त्वः ।
सत्य स्वरूपः कथितस्तु जीवः, प्राणास्तु विस्तार इवास्य देहे[147] ।।

जीव के देह के अन्दर उपाधि सिद्धि, तेज द्वारा भासित होती है तथा शब्द द्वारा अन्त होता है[148] । सम्पूर्ण विश्व में प्रकाशित ब्रह्मरूप "जीव" देहधारी होने के फलस्वरूप एक शरीर के नष्ट हो जाने पर अन्य में प्रवेश करता है -

ब्रह्मप्रसिद्धं सकलप्रकाशं, ततोऽयमागच्छति तत्प्रयाति ।
पिण्डे विलीने समुपैति जीवः, पिण्डान्तरं ज्ञानजनिर्न यावत्[149] ।।

गीता में भी शरीर धारण करना तथा उस का त्याग करना "जीव" के लिये अवश्य कहा है परन्तु आत्मस्वरूप जीव तो नित्य ही होता है -

जातस्य हि ध्रुवो मृत्युः ध्रुवं जन्म मृतस्य च[150] ।।

इस प्रकार श्रीमद्भगवद्गीता के अनुरूप जीव का निरूपण उपलब्ध होता है । जीव और ब्रह्म विषयक भ्रान्ति, रज्जु में सांप की भ्रान्ति की तरह होती है[151] । जब जीव ही ब्रह्म है, उस का ज्ञान हो जाता है तो शंका नष्ट हो जाती है ।

---

144. ना·चं· 10·44
145. जीवो ब्रह्म न संशयोऽत्र ।। - ना·चं· 10·46 एवं द्र· 1·85
146. ना·चं· 11·48
147. वही, 16·31
148. वही, 16·32
149. वही, 16·33
150. गीता, 2·27
151. ना·च· 1·63

संसार में सम्पूर्ण माया का अंश जीव होता है । जीवात्मा बुद्धि द्वारा प्रकाशित होता है और ब्रह्म स्वत: प्रतिभासित होता है[152] । जो जीव को भी ज्ञान द्वारा तद्रूप बनाता है । सकल जीवों की अशुद्धता प्रतिपादित की है और ईश्वर को शुद्ध रूप में माना गया है । अर्थात् जब तक "जीव" ईश्वर से भिन्न है तब वह सांसारिक भोगों द्वारा अशुद्ध होता है तथा जब उसे प्राप्त करता है तो ब्रह्मस्वरूप ही हो जाता है । तब वह भी शुद्ध रूप में आता है -

अमी अशुद्धा: सकलास्तुजीवा:, शुद्ध: सदा केवल ईश एव[153] ।

इस प्रकार जीव ब्रह्म के एक स्वरूप द्वारा सभी को आत्म साक्षात्कार करने के लिये प्रेरित किया है । जीव को परमात्मा से जो भिन्न देखा जाता है, वह इस लिये है कि उन दोनों में शक्ति-पुंज ईश्वर ही है इस को स्वीकार किया जा सके ।

परमतत्वबोध -

जब साधना द्वारा बाह्य निखिल कर्मों का परित्याग हो जाता है और जीव सर्वज्ञता की अवस्था को प्राप्त कर लेता है, तब वह मुक्त होता है । इस प्रकार जरा, जन्म, मृत्यु आदि के चक्कर से भी मुक्त हो जाता है । विवेक चूड़ामणि में सम्पूर्ण बाह्य विषयों और भोगों का त्याग कर, सन्त शिरोमणि गुरु की शरण में जा कर, समाहित हो कर के मुक्ति प्राप्त करने का उल्लेख उपलब्ध होता है[154] । न्याय दर्शन में मोक्ष के लिये यम, नियम, योग तथा अध्यात्मशास्त्रोक्त उपायों से आत्मा का संस्कार करना कहा है -

तदर्थं यमनियमाभ्यामात्मसंस्कारो योगाच्चाध्यात्मविध्युपायै:[155] ।।

भगवती सूत्र में कहा है कि जब आत्मा के सभी कर्मांश समाप्त हो जाते हैं तो

---

152. ना·च· 1·82, 14·19

153. ना·च· 18·46

154. अतो विमुक्त्यै प्रयतेत् विद्वान, ····· सन् ।
सन्तं महान्तं समुपेत्य····तेनोपदिष्टार्थसमाहितात्मा ।। -वि·चूड़ा·8

155. न्याय दर्शन, 4·2·46

वह कर्मों से छुटकारा प्राप्त कर परमतत्वबोध स्वरूप मोक्ष पद का अनुगामी होता है[156]। सभी कर्मों से मन को पीछे हटाना निर्वाण प्राप्ति के लिये होता है। ब्रह्मपुराण में इस का प्रतिपादन करते हुये उद्धृत है कि सम्पूर्ण कर्मों से मन का अवरोध परमतत्वबोध को प्राप्त करने के लिये होता है[157]। देवराजशर्मा ने सम्पूर्ण विश्व का त्याग कर मुक्ति को प्राप्त करने का उल्लेख किया है। अर्थात् परमतत्वबोध सांसारिक बन्धनों से स्वतन्त्र होने पर ही उपलब्ध होता है। भोगों द्वारा मोक्ष को प्राप्त नहीं किया जा सकता इन का त्याग करने वालों की मोक्ष प्राप्ति सुलभ कही है[158]। परमतत्त्व का ज्ञान प्राप्त कर लेने वाले निन्दा आदि करने वालों से भयभीत नहीं होते हैं -

सौत्रामण्यां कुलाचारे सुरापानं न दुष्यति।
इति तत्त्वविदः सन्तो निन्दकेभ्यो नबिभ्यति[159] ।।

सद्गुरु द्वारा ज्ञान-प्राप्त कर मोक्ष प्राप्त होता है। अतः गुरु को मोक्ष का द्वार निरूपित किया है[160]। ब्रह्म के ज्ञाता से उपदेश प्राप्त करना मुक्ति का साधन होता है। इस का उल्लेख उपलब्ध होता है[161]। जब मनुष्य की बाह्य विषयों में विचार करने की शक्ति शिथिल हो जाती है, उस समय उस को तत्त्व विचार होता है -

विषय दोष विचिन्तनमन्वहं प्रथममेव मुमुक्षुरुपाश्रयेत् ।
शिथिलशक्तिमनो विषयेषु चेद् भवति तत्त्वविचारसमंजसम्[162] ।।

इस प्रकार परमतत्त्वबोध के लिये मन की एकाग्रता एवं सांसारिक कार्यों में अनास्था अपेक्षित होती है। तभी यह प्राप्त हो सकता है। तत्त्व बोध हो जाने पर परलोक के भय से छुटकारा प्राप्त हो जाता है। जिस को "सोऽहम्" का बोध प्राप्त हो जाता है तथा सोते और जागते इस को जानता है, वह

---

156. भागवतीसूत्र, 7·1·225
157. असंसक्त यदा चित्तं योगिनः सर्वकर्मसु ।
भवत्यानन्दमासाद्य तदा निर्वाणमृच्छति ।। - ब्रह्मपुरा· 235·24
158. ना·चं· 12·77 एवं द्र· 6·144
159. वही, 12·80 एवं द्र· 12·79
160. वही, 12·137
161. वही, 12·183
162. वही, 14·17

जन्म-मरण के चक्कर से मुक्त हो जाता है[163]। जन्म-मरण के चक्कर से अभिप्राय: यही है कि वह मोक्ष स्वरूप परमतत्त्व बोध प्राप्त कर लेता है। मोक्ष को प्राप्त करने के साधन सभी धर्मों में उद्धृत हैं उन का अनुसरण कर तथा अविरोध से हरि भक्ति का आचरण करने से सभी को यह प्राप्त होता है-

स्वस्वधर्मानुसरणमराग: संमृतोशनै: ।
अविरोधो हरेर्भक्ति: सर्वेषां मुक्ति कारणम्[164] ।।

इस प्रकार परमतत्त्वबोध का वर्णन करते समय "मुमुक्षु" के स्वरूप का उल्लेख भी किया है। त्रिलोकी स्वामी विष्णु भगवान् नानक को कहते हैं कि तत्त्वज्ञान, मनोनाश, वासनाक्षय इन तीनों को मुमुक्षु स्वपरिश्रम एवं बुद्धि द्वारा अधिग्रहण करता है -

तत्वज्ञानं मनोनाशं वासनाक्षयमेव च ।
मुमुक्षुर्व्यवसायेन स्वेन सम्पादयेत् त्रयम्[165] ।।

सम्पूर्ण विश्व द्वैत से उत्पन्न माया द्वारा निर्मित है, अद्वितीय आत्मस्वरूप में "सोऽहम्" का बोध हो जाना तत्त्वज्ञान निर्दिष्ट किया है -

इदं सर्वं द्वैतजातमद्वितीये चिदात्मनि ।
मायया कल्पितं सोऽहमिति तत्त्वमतिर्मता[166] ।।

मनोनाश का उल्लेख करते हुये लिखा है कि बाह्य वृत्तियों में अनुराग मन होता है तथा वृत्तियों से मन का अवरोध ही मनोनाश है जिस के द्वारा मोक्ष को प्राप्त किया जाता है -

वृत्ति सन्तान रूपेण परिणामि मन: स्मृतम् ।
निरोध: सर्ववृत्तीनां मनोनाश उदाहृत:[167] ।।

क्रोधादि चित्तवृत्तियों का मन में दृढ़ता से संस्कार होना वासना कहा है

---

163. ना.चं. 8.85, 14.25
164. वही, 18.64
165. वही, 14.27
166. वही, 14.28
167. वही, 14.29

तथा उन की क्षीणता को वासना-क्षय प्रतिपादित किया है -

हेतु क्रोधादिवृत्तीनां संस्कारश्चित्तगो दृढ: ।
वासना तत्क्षयो ज्ञेय: क्रोधादीनामनुद्भव: [168] ।।

इन तीनों द्वारा मुमुक्षु परमतत्वबोध को प्राप्त करता है । श्रवण, मनन और निदिध्यासन भी तत्त्वज्ञान के लिये साधन रूप में उल्लिखित मिलते हैं[169] । वासना के आठ भेदों का प्रतिपादन प्राप्त होता है । जिन में मोक्ष प्राप्त करने के लिये शुद्धा-वासना को ग्राह्य माना है और मलिना को त्याज्य कहा है[170] । इस प्रकार परमतत्वबोध स्वरूप मोक्ष को प्राप्त करने वाले साधनों का वर्णन उपलब्ध होता है, जिन के द्वारा उसे प्राप्त किया जा सकता है । "मुक्त जन" प्रारब्ध से प्राप्त इस देह को ममता रहित दृष्टि से देखता है[171] । क्योंकि मोह-माया के जाल में फँस कर मोक्ष से रहित नहीं होता है । अत: मोक्ष प्राप्ति के लिये विषयोपभोगों का अभाव ही अपेक्षित निरूपित किया है ।

मुक्त-लक्षण -

साधक का मन विभिन्न प्रकार की साधना द्वारा एकाग्रचित हो जाता है । बाह्य विषयों से उस की वृत्ति हट कर अन्तर्मुखी हो जाती है । वह निज स्वरूप में निमग्न रहता है । उसे अपने शरीर की भी स्मृति नहीं रहती है । नानक-चन्द्रोदय महाकाव्य में मुक्त जीव का निरूपण करते हुये शुभेच्छा, विचारणा, तनुमानसा, सत्वापत्ति, संसक्ति, पदार्थाभावनी और तुर्यगा सात प्रकार की ज्ञान भूमि उल्लिखित है[172] । जिन के द्वारा क्रमश:

---

168. वह ना.चं., 14.30
169. वही, 14.31
170. वही, 14.33 त. 36 पर्यन्तं
171. वही, 14.43
172. ज्ञान भूमि: शुभेच्छाख्या प्रथमा परिकीर्तिता ।
विचारणा द्वितीया स्यात्तृतीया तनु मानसा ।
सत्वापत्तिश्चतुर्थी स्यात्ततो संसक्ति नामिका ।
पदार्था भावनी षष्ठी सप्तमी तुर्यगा स्मृता ।।
- ना.चं. 14.44, 45 एवं द्र. 43

श्रवण, मनन, निदिध्यासन और चतुर्थी ज्ञान भूमि द्वारा स्वप्न की तरह संसार को देखता हुआ मनुष्य सप्तमी अवस्था में यजन करता हुआ मुक्त होता है -

ज्ञानस्य भूमिकास्तिस्रश्चरमाः क्रमतोऽव्रजन् ।
परमानन्दनिस्पन्दो मुक्त इत्युच्यते बुधैः[173] ।।

इस प्रकार ज्ञान भूमियों द्वारा अगम्य, वाणी से भी अकथनीय मुक्ति को "मुक्त" प्राप्त करता है । सत्यस्वरूप को समझने के लिये उन्मुक्त हो कर अपने शरीर का आभास भी विस्मृत कर देता है[174] । क्योंकि मोक्ष के स्वरूप को पहचानना ही उस की वैयक्तिक संस्कृति का चरम लक्ष्य होता है । जिस के लिये मुक्त जीव प्रयत्नशील रहता है ।

गुरू महिमा -

नानक चन्द्रोदय महाकाव्य में "गुरू महिमा" का प्रतिपादन विस्तृत रूप से मिलता है क्योंकि गुरूनानकदेव से लेकर क्रमशः गुरूरङ्गदेव, गुरू अमरदास, गुरू रामदास, गुरू अर्जुनदेव, गुरू हरराय, गुरू हरकृष्ण, गुरू तेगबहादुर और गुरूगोविन्द सिंह पर्यन्त दश गुरूओं के जीवन को ही उद्धृत किया है । आजकल प्रचलित "सिख" शब्द की व्युत्पत्ति "शिक्ष्" शिक्षा प्राप्त करना (सीखना) धातु से मानी जाती है । "शासु" अनुशिष्टौ" धातु से क्यप् प्रत्यय होने पर भी शिष्य शब्द की निष्पत्ति स्वीकार की जाती है । सेवक इस शब्द द्वारा भी कुछ लोग शिष्य शब्द के अर्थ को ग्रहण करते हैं, उन के मतानुसार गुरू की सेवा शुश्रूषा करना ही शिष्य का परमकर्तव्य होता है । गुरूनानकदेव के जीवन तथा उनकी शिक्षाओं से ज्ञात होता है कि वह उपदेशों का पालन करने वालों को ही शिष्य रूप में मानते हैं । गुरू को सर्वोत्तम पथप्रदर्शक मानते हैं ।

गुरूमहिमा का उल्लेख अन्य धार्मिक ग्रन्थों तथा स्मृतियों में भी उपलब्ध होता है । मनुस्मृति में गुरू की चर्चा एवं निन्दा को श्रवण करने से बाधित किया है । वह कहते हैं कि उस स्थान का त्याग कर अन्यत्र चले जाना चाहिए

---

173. ना·चं· 14·52 एवं द्र· 14·46 तः 51 पर्यन्त

174. वही, 14·43 एवं 14·53

गुरोर्यत्र परीवादो निन्दा वाऽपि प्रवर्तते ।
कर्णौ तत्र पिधातव्यौ गन्तव्यं वा ततोऽन्यत: ।।
परिवादात्खरो भवति श्वा वै भवति निन्दक: ।
परिभोक्ता कृमिर्भवति कीटो भवति मत्सरी[175] ।।

इस प्रकार गुरू निन्दक के लिये निकृष्ट योनियों का प्रावधान कहा है । गुरू सेवा करने वाला शिष्य उस की विद्या को प्राप्त कर लेता है[176] । वाल्मीकि रामायण में गुरू को प्रज्ञा चक्षु प्रदान करने वाला, एवं माता-पिता से भी श्रेष्ठ कहा है[177] । आपस्तम्ब धर्म सूत्र में गुरू का सत्कार ईश्वर की तरह करने का प्रतिपादन मिलता है[178] । विवेक चूड़ामणि में भयंकर संसार सागर से पार करने वाले, लोकहित का आचरण करने वाले गुरु को, जिस का स्वरूप शान्त होता है, महापुरुषा उल्लिखित किया है[179] । इस प्रकार गुरू महिमा का गान कर सर्वोपरि स्वीकार किया है ।

नानक चन्द्रोदय महाकाव्य में उद्धृत है कि गुरू में श्रद्धा रखने वाला तथा सेवा करने वाला भवसागर से पार होजाता है[180] । निरन्तर गुरू शुश्रूषा करने से अपरोक्ष ब्रह्मज्ञान प्राप्त होता है । गुरू शिष्य का आपस में सम्बन्ध "गड्डलिकानां प्रवाह" की तरह कहा है[181] । इस प्रकार गुरु अपने साथ शिष्य को भी मोक्षरूपी परमतत्त्व का बोध कराता है । धार्मिक अनुष्ठानों तथा

---

175. मनु.स्मृ. 2.200,201
176. यथा खनन्खनित्रेण नरो वार्यधिगच्छति ।
तथा गुरुगतां विद्यां शुश्रूषुरधिगच्छति ।। - मनु.स्मृ. 2.218
177. पिता ह्येनं जनयति पुरुषं पुरुषर्षभ ।
प्रज्ञां ददाति चाचार्यस्तस्मात्स गुरुरुच्यते ।। - वाल्मीकि.रामा.2.111.3
178. आप.धर्म सूत्र. 1.2.6.13
179. शान्ता महान्तो निवसन्ति सन्तो.....चरन्त: ।
तीर्णा: स्वयं भीम भवार्णवं जना-नहेतुनान्यानपि तारयन्त: ।।-वि.चूढ़ा.39
180. ना.चं. 1.66, 67, एवं द्र. 16.28
181. वही, 1.68, 86 एवं द्र. 11.74, 128

सामाजिक जीवन में सम्पन्न होने वाले उत्सवों में गुरूओं द्वारा अनुष्ठान उन्हें आचार्य रूप में मान कर सम्पूर्ण करवाये जाते हैं और उनकी अर्चना भी की जाती है[182]। जिस से गुरू महिमा का पूर्ण सत्कार दिखाई देता है। गुरू चरणों की सेवा करने वाला अपने हृदय को तीर्थ में किये हुये स्थान की तरह निर्मल कर लेता है। जो बिना गुरू के होता है वह मलिन ही रहता है। इस प्रकार गुरू में विश्वास करने वाला ज्ञानवान् बन जाता है -

स्नानी गुरूचरणाम्बुज तीर्थे य: क्षाल्येच्चितम्।
मलिनो निर्गुरूरूक्तो गुरूवाक्यै: शोधित: विमल:[183] ।।

गुरूनानक देव जो कालान्तर में गुरू हुये हैं अपने आप को गुरू के अभाव में अपूर्ण मानते हैं इसी लिये भगवान् से अपने गुरू के बारे जिज्ञासा की दृष्टि से पूछते हैं कि मेरा गुरू कौन है[184]! गुरू शुश्रूषा करने वाले शिष्य के लिये गुरूमहिमा से स्वर्ग प्राप्त होता है -

गुरूशुश्रूक: शिष्यो भार्या पतिपरायणा।
पुत्र: पित्रोर्भक्तियुक्त: सर्वे स्वर्गनिवासिन:[185] ।।

गुरू की प्रसन्नता द्वारा निखिल सिद्धियाँ करवत् स्वयं ही प्राप्त हो जाती हैं। पाखण्ड धारण कर जो अन्य लोगों को उपदेश देते हैं उन का जीवन निरर्थक होता है[186]। ईश्वर प्राप्ति अपने-अपने धर्म तथा गुरू के उपदेश द्वारा जो प्राप्त होती है -

स्वेन स्वेनैव शास्त्रेण स्वस्वेन गुरूणा तथा।
आर्यश्च यवनश्चैव स्वकृतेन हरिं व्रजेत्[187] ।।

यहाँ आर्यों तथा यवनों दोनों के लिये गुरू की परमावश्यकता कही है। जिस के द्वारा वे ईश्वर को प्राप्त कर सकते हैं। इस प्रकार विश्व के सम्पूर्ण समाज

---

182. ना॰चं॰ 5॰118 त: 120 पर्यन्तं एवं द्र॰ 5॰126, 127, 12॰137, 16॰26

183. वही, 11॰73 एवं द्र॰ 11॰72

184. वही, 11॰132

185. वही, 14॰334

186. वही, 12॰150

187. वही, 18॰130

के लिये गुरू महिमा को सर्वोपरि बताया गया है । नानकदेव स्वयं यवनों के घर जा कर उन्हें उपदेश देते हैं ताकि वे सन्मार्ग पर आ कर अपना तथा दूसरों का कल्याण कर सकें[188] । सैन्धव नामक यवन को गुरूमुख के बारे बताते हुये अधोनिर्दिष्ट प्रकार से मार्गदर्शन कराते हैं -

नादो गुरूमुखश्चैव वेदो गुरूमुखस्तथा ।
ईशा गुरूमुखश्चैव गोरक्षस्तादृशो मतः ।।
ब्रह्मा गुरूमुखश्चैव पार्वती तादृशी मता ।
यो दुर्ज्ञेयो दुर्निरूपस्तं गुरूः परिबोधयेत्[189] ।।

इस प्रकार वेद, ईसा मसीह, ब्रह्मा, पार्वती आदि को गुरू रूप में वर्णित किया है अर्थात् ये सभी गुरू में विद्यमान होते हैं । ऐसी कोई अचिन्तनीय वस्तु नहीं जिस का गुरू को बोध नहीं होता है । गुरू के साथ शत्रु की तरह व्यवहार करने वाला घोर नरक को प्राप्त करता है[190] । इसलिये गुरू के प्रति सद्व्यवहार करने का संकेत किया है ।

अतः सम्पूर्ण नानकचन्द्रोदय महाकाव्य में गुरू की महिमा का अवलोकन होता है । सभी धार्मिक अनुष्ठानों में गुरू का सम्मान दिखाई देता है । गुरू सम्पूर्ण ज्ञान-विज्ञान का ज्ञाता वर्णित है, जिस का आलम्बन कर शिष्य परम सुख को प्राप्त करता है ।

भक्ति का स्वरूप

भक्ति -

आराधना द्वारा मानसिक आनन्द प्राप्त करना मनुष्य का स्वाभाविक गुण होता है । इस के लिये मन को विशिष्ट आराध्य में संयोजित कर इष्ट-लाभ प्राप्त किया जाता है । इस प्रकार भक्ति हृदय की वह भावना है जिसके

---

188. ना·चं· 19·4
189. वही, 19·7 तः ~~8~~ पर्यन्तं ~~श्लोक~~ 9
190. यः साधि वीक्षत इह स्वगुरूनरिभ्यो ।
सूचीमुखे वपुषि सीव्यति सूत्रजालैः ।। - ना·चं· 14·303

द्वारा वह किसी केन्द्र पर, केन्द्रीभूत कर के आराध्य वस्तु से तादात्म्य प्राप्त कर आनन्द प्राप्त करता है । जब अनन्य भाव से अपने इष्ट की आराधना में तल्लीन हो जाता है तो वह भक्ति कहलाती है ।

भक्ति शब्द "भज्" सेवायाम् धातु से पाणिनि के सूत्र "स्त्रियां क्तिन्" से क्तिन् प्रत्यय होने पर निष्पन्न हुआ है । जिस का अर्थ तत्परता पूर्वक सेवा करना है । विद्वानों ने साधन सामग्रीप्रधान सेवा को ही "भक्ति" कहा है । नारद भक्ति सूत्र में ईश्वर के जप, तप और नियम आदि में दृढ़प्रीति, निष्ठा तथा अनन्य अनुराग को भक्ति कहा है । भगवान् की कथा आदि से प्रेम होना ही भक्ति होती है -

पूजादिष्वनुराग: इति पराशर्य:[191] ।

भक्ति को कर्म, ज्ञान और योग से भी श्रेष्ठतर उद्घृत किया है -

सा तु कर्म-ज्ञान-योगेभ्यो ऽप्यधिकतरा[192] ।

भागवत पुराण में शुद्ध सत्त्वमय भगवान् में इन्द्रियों की निष्काम वृत्ति ही भक्ति उल्लिखित है[193] । श्रीमद्भगवद्गीता में भगवान् ने अनन्य-भाव से भजन करने को भक्ति प्रतिपादित किया है -

ये तु सर्वाणि कर्माणि मयि संन्यस्य मत्परा: ।
अनन्येनैव योगेन मां ध्यायन्त उपासते[194] ।।

भक्ति द्वारा भक्त सिद्ध, अमृतस्वरूप एवं तृप्त हो जाता है, अन्य स्पृहा उसे नहीं सताती है । इस का निरूपण नारद भक्ति सूत्र में मिलता है -

यल्लब्ध्वा पुमान्सिद्धो भवत्यमृतो भवति तृप्तो भवति[195] ।

नानक चन्द्रोदय महाकाव्य में भी देव राज शर्मा ने भक्ति के बारे उल्लेख करते हुये, समस्त सांसारिक विषयों से वैराग्य धारण कर, निष्काम भाव

---

191. नारद भक्ति सूत्र 16, 17

192. वही, 25

193. अनिमित्ता भागवती भक्ति: सिद्धेर्गरीयसी ।
जरयत्याशु या कोशं निगीर्णमनलो यथा ।। - भाग.पुरा.3.25.33

194. गीता, 11.6 एवं द्र. 7

195. नारद भक्ति सूत्र, 4

से, मन को विशुद्ध कर भवसागर से मुक्त करने वाले ईश्वर में अनन्यभाव से तल्लीनता को भक्ति कहा है[196]। आराध्य के अन्वेषण में श्रेष्ठ लोगों की संगति को कल्याणकारी बताया है। भक्तियुक्त चित्त से अङ्गद बालसिन्धु के संसर्ग को मरुस्थल में वर्षा के समान, दरिद्र के लिये स्वर्ण कलश की तरह तथा अन्तिम समय को प्राप्त के लिये जैसे अमृतरस की वर्षा हो रही है, ऐसा स्वीकार करते हैं, जोकि भक्ति के द्वारा ही दिखाई देता है -

अवग्रहे वृष्टिरियं प्रथीयसी, सुवर्णकुम्भाधिगतदरिद्रता:।
उदीर्णदाहस्य सुधारसच्छटा, ममाति दूनस्य तवाङ्ग सङ्गति:[197]॥

गुरू के प्रति भक्ति का अधिक उल्लेख उपलब्ध होता है। शुद्ध मन से किसी भी वस्तु में अनुराग भक्ति कहलाती है इसलिये अङ्गद गुरू की भक्ति में ओत-प्रेत जंगलों आदि में उन की खोज करते हुये दिखाई देते हैं[198]। अत: अनन्यभाव से आन्तरिक मन से वाँच्छित वस्तु का अन्वेषण ही भक्ति होती है।

भक्ति का स्वरूप -

भक्ति ज्ञान की चरम सीमा है। जब ज्ञान पूर्ण नहीं होता है तो भक्ति में, श्रद्धा, निष्कपट निष्ठा, मन के समर्पण तथा बुद्धि को नियोजित कर प्राप्त किया जाता है। प्राचीन ग्रन्थों में भक्ति के स्वरूप के बारे में विस्तृत विवेचन मिलता है। भागवतपुराण में तामसी, राजसी और सात्त्विकी भेद से भक्ति के तीन स्वरूप कह कर, अधम, मध्यम और उत्तम भेदों से तीनों के क्रमश: तीन तीन रूप होने से नौ प्रकार के रूप उल्लिखित किये हैं[199]। इन रूपों को गौण माना गया है। निष्काम भाव से लगातार की जाने वाली भेद

---

196. अनन्य भक्त्या भवमोचनस्य निष्कामसत्कर्मविशुद्धचित्त:।
विरागमासाद्य जगत्यहृद्ये हृद्येवदेवं सुलभं लभस्व॥ - ना.चं. 1.81

197. ना.चं. 1.112

198. वही, 1.98 त: 105 पर्यन्त

199. भक्ति योगो बहु विधो.....भाव्यते।
कर्मनिर्हरिमुद्दिश्य.....सात्त्विक:॥ - भाग.पुरा.3.29.7
त: 10 पर्यन्त

बुद्धिरहित निर्गुण भक्ति एक ही है । जो अहैतुकी और अव्यवहित होती है[200] । भागवत पुराण में भी भक्ति के नव भेद निम्न प्रकार से उद्धृत हैं -

श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम् ।
अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम्[201] ।।

जो मनुष्य इन का आचरण भावदर्पणपूर्वक करता है उसी को भगवान् श्रेष्ठ स्वाध्यायी मानते हैं[202] । गीता में भगवान् ने कहा है कि दुःखी, जिज्ञासु, अर्थार्थी और ज्ञानी चार प्रकार के भक्त मुझे भजते हैं । इन में अनन्य भक्ति से समाहित चित्त को सर्वश्रेष्ठ कहा है[203] । नारद भक्तिसूत्र में भी ज्ञान को ही भक्ति का मार्ग माना है -

तस्या ज्ञानमेव साधनमित्येके[204] ।

देवराजशर्मा ने ज्ञान को ही भक्ति का अंग उल्लिखित करते हुये गीता का नाम भी लिखा है अर्थात् जिस ज्ञान को गीता भक्ति का अंग स्वीकार करती है, उसी को नानक चन्द्रोदय में भी माना गया है -

ज्ञानं भक्तेरङ्गं लोकाद्गीता गिरश्चापि ।
योगो भक्तौ ज्ञाने प्रयाजवच्चाङ्गतां भजति[205] ।।

साधन भक्ति से ज्ञान और ज्ञान से फल भक्ति उत्पन्न होती है । इस प्रकार साक्षात् आत्मतत्त्व ज्ञान भक्ति द्वारा ही प्राप्त होता है -

साधनं भक्तेर्ज्ञानं, ज्ञानात्फलभक्तिरुत्पन्ना ।
साक्षादात्मपदस्थिति-हेतुर्भक्तेरुदीर्यते स्पष्टम्[206] ।।

---

200. लक्षणं भक्तियोगस्य निर्गुणस्य ह्युदाहृतम् ।
अहैतुक्यव्यवहिता या भक्तिः पुरुषोत्तमे ।। - भाग॰पुरा॰3॰29॰12

201. भाग॰पुरा॰ 7॰5॰23

202. वही, 7॰5॰24

203. तेषां ज्ञानी नित्ययुक्त॰॰॰॰विशिष्यते ।
प्रियो हि ॰॰॰॰स च मम प्रियः ।। - गीता॰ 7॰16,17

204. नारद भक्ति सूत्र - 28

205. ना॰चं॰ 13॰22

206. वही, 13॰23

भगवान् के प्रति अनुराग भी भक्ति का स्वरूप होता है। जिस के द्वारा गोपियाँ भगवान् कृष्ण को प्राप्त करती हैं[207]। भागवत पुराण की तरह ही यहाँ भी नवधा भक्ति-श्रवण, कीर्त्तन, स्मरण, पादसेवन, अर्चन, वन्दन, दास्य, सख्य और आत्मनिवेदन का उल्लेख मिलता है -

श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम् ।
अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम् ।।[208]

इन नौ भेदों को ध्यान में रखते हुये जो भक्ति करता है वह परमधाम को ग्रहण कर लेता है[209]। इस प्रकार भक्ति को परमतत्त्व ज्ञान का सर्वश्रेष्ठ साधन कहा है। भागवत पुराण में भी उल्लेख मिलता है कि जो भक्ति युक्त मन से मेरे चिन्तन में मग्न रहता है उस के लिये ज्ञान, वैराग्य की उपादेयता नहीं रहती है। भक्ति द्वारा ही उस का कल्याण हो जाता है -

तस्मान्मद्भक्तियुक्तस्य योगिनो वै महात्मनः ।
न ज्ञानं न च वैराग्यं प्रायः श्रेयो भवेदिह[210] ।।

अतः नानक चन्द्रोदय महाकाव्य में प्राचीन पुराणों एवं लक्षण ग्रन्थों के अनुरूप भक्ति के स्वरूप का प्रतिपादन मिलता है। ईश्वर का सामीप्य ग्रहण करने हेतु भक्ति को ही सर्वोत्तम साधन माना गया है।

प्रणय मूलक भक्ति -

अपने अन्दर विद्यमान अहंकारादि का त्याग कर, जिज्ञासु बन कर, अत्यन्त नम्रता युक्त और कामना रहित हो कर सर्वव्यापक ईश्वर में पूर्ण निष्ठा रख कर आराधना करना प्रेम भक्ति कहा जाता है। आरम्भ में प्रियतम गुरू को जानने की अभिलाषा रहती है, जिस की पूर्ति प्रेम भक्ति द्वारा होती है। जब तक उससे परिचय नहीं हो जाता है तब तक जो विरहावस्था है उसी का नाम प्रेम होता है। प्रेमभक्त के मन की ऐसी दशा हो जाती है कि उस की वाणी

---

207. [illegible] ना॰चं॰ 13·24
208. वही, 13·25
209. वही, 13·26,27 एवं द्र॰13·20,28
210. भाग॰पुरा॰ 11·20·31

के मर्म, आचरण, कार्यकलाप एवं मुद्रा को बड़े-बड़े विद्वान् भी अवगत नहीं कर पाते हैं ।

भागवत पुराण में निष्काम भाव, शुद्ध मन से आचरित वर्णाश्रम धर्म, चिरकाल तक श्रवण द्वारा परिपुष्ट भक्ति, तत्त्व ज्ञान, सुदृढ़ वैराग्य, यम नियमादि युक्त तीव्र अष्टांग योग तथा आत्मा की शुद्ध रूप से की गई एकाग्रता ये सात भक्ति के अंग माने हैं[211] । जिनके भक्त प्रभु में आसक्ति धारण कर आत्मतत्त्व बोध कर सकता है । गीता में भगवान् कहते हैं कि जो मेरे से प्रेम नहीं करता है तथा निन्दा करता है, उसे गीता शास्त्र का ज्ञान नहीं देना चाहिये । इस प्रकार सच्ची प्रेम भक्ति द्वारा ही ज्ञान की उपलब्धता होती है -

इदं ते न तापस्काय नाभक्ताय कदाचन् ।
न चाशुश्रूषवे वाच्यं न च मां योऽभ्यसूयति[212] ।।

विवेक चूड़ामणि में श्रद्धा-भक्ति से ध्यान, चिन्तन और योग करने वाले को मोक्ष सुलभ कहा है[213] । श्रद्धाभक्ति से अभिप्राय: है इष्ट के प्रति प्रेम करना ।

नानक चन्द्रोदय महाकाव्य में श्रद्धा और पूर्णनिष्ठा से परिपूर्ण सच्ची प्रणय भक्ति का अवलोकन होता है । अङ्गद ज्वालामुखी भगवती के दर्शन करने के लिये जाता है, एवं भगवती के दर्शन कर हृदय पर आच्छादित अन्धकार के आवरण को अपसारित करने की इच्छा करता है[214] । यहाँ अङ्गद की श्रद्धा-युक्त प्रेमभक्ति ही दृष्टिगोचर होती है । नानकदेव के पाणिग्रहण के शुभ अवसर पर कुलगुरू हरिदयालु को स्वर्ण रचित पालकी में ले जाया जाता है[215] । गुरू के प्रति अटूटश्रद्धा प्रेमाभक्ति को द्योतित करती है । आनन्द प्रदान करने वाले निरंजन प्रभु के प्रेम में मदमस्त हो कर भक्त तीनों लोकों को तृण के समान

---

211. अनिमित्तनिमित्तेन स्वधर्मेणामलात्मना·····।
प्रकृति: पुरुषस्येह दह्यमाना·····शनकैरग्नेर्यो निरिवारणि: ।।
- भाग·पुरा· 3·27·21,22,23

212. गीता· 18·67

213. श्रद्धा भक्तिध्यान योगान्मुमुक्षो·····।
यो वा·····मोक्षो विद्याकल्पितद्देहबन्धात् ।। - वि·चूड़ा·48

214. ना·चं· 1·42

215. वही, 5·56

समझता है । अर्थात् प्रेम भक्ति द्वारा सत्मार्ग का दर्शन होने से अन्य स्पृहा से रहित हो जाता है -

उन्मादवानस्मि जनार्दनस्य प्रेम्णा निजानन्दनिरञ्जनस्य ।
तृणाय मन्ये सकलां त्रिलोकीं प्रतिक्षणं क्षीणतरत्वं भाजम् [216] ।।

भक्त की नि:स्वार्थ भाव से श्रद्धा युक्त प्रेम भक्ति में भगवान् को भी आकर्षित करने की शक्ति होती है । मर्दन नानक की खोज करता हुआ, वृक्ष के नीचे आसन पर स्थित गुरू को प्राप्त कर लेता है जैसे असार संसार में भक्त भक्ति के बल से सर्वव्यापक प्रभु को वश में कर लेता है [217] । स्वामी के प्रति प्रेमभक्ति का उल्लेख करते हुये कहा है कि सज्ज सपत्नीक, सपरिवार सभी अवस्थाओं में स्वामी का सम्मान करना चाहिये । सनातन धर्म का यही उपदेश दिखाई देता है । इस प्रकार धर्मानुसार भक्ति पूर्वक आचरण करने का प्रतिपादन मिलता है-

स्वामी सर्वास्ववस्थासु पत्न्या परिजनेन च ।
सम्माननीय: सततमेष धर्म: सनातन: [218] ।।

सगुण भगवान् के प्रति अनुराग का निरूपण करते हुये कहा है कि जैसी जैसी बुद्धि द्वारा भक्त भगवान् का भजन करते हैं, उसी के अनुरूप वह उन को दर्शन देकर एवं मनोरथ पूर्ति करते हैं [219] । अर्थात् भक्तों को आत्मज्ञान हो जाता है । सगुण रूप में कृष्ण के स्वरूप का वर्णन मिलता है । कृष्ण के प्रति भक्तों को प्रणय भक्ति रखने का उपदेश मिलता है [220] । नानक देव "लहुरीया" को भक्ति और ज्ञान का उपदेश देते हैं कि भक्तियोग द्वारा भक्त गुणों से अतीत ब्रह्म को प्राप्त करता है [221] । यहाँ तीन प्रकार से उस के स्वरूप को जानते हुये भक्ति का उल्लेख मिलता है । अर्थात् स्व स्वरूप और परमतत्त्व बोध स्वरूप में अभिन्नता दिखाई देती है -

---

216. ना॰चं॰ 6॰83
217. जगत्यसारे जगती निवासं भक्तो यथा भक्ति वशादुपैति ।
तथा स तं प्राप वने वसन्तं क्वचित्तरोर्मूलङ्कारिष्णुम् ।। - ना॰चं॰7॰10
218. ना॰चं॰ 7॰14
219. वही, 8॰54, 55 एवं द्र॰8॰14
220. वही, 8॰59, 58
221. वही, 11॰116

तस्यैवाहं ममैवासौ सएवाहमिति त्रिधा ।
प्रपत्तिस्तां हरौ कृत्वा तेन गुप्तो न शोचति[222] ।।

मैं उसका हूँ, वह मेरा ही है और वह ही मैं हूँ, समाहित हो दृढ़अनुराग द्वारा ऐसा ज्ञान भासित होने पर ईश्वर प्राप्ति स्वरूप मोक्ष की प्राप्ति होती है । भक्तजन अपने मार्ग को निर्विघ्न कर हरि भजन करते हैं । मन, वाणी से अगोचर को भजन द्वारा ही प्राप्त किया जाता है । जो कि नयनों को आनन्दित करता है[223] । अत: प्रेमभक्ति से शरीर के पुलकित होने पर ही नयन आनन्द प्राप्त करते हैं । विष्णु भगवान् के स्वरूप और गुणों का गायन श्रद्धा से किया गया है,[224] जिस से त्रिलोकी नाथ के प्रति श्रद्धा स्वरूप प्रेमभक्ति दृष्टिगोचर होती है । समाहित चित्त से प्रह्लाद जैसे भक्त ईश्वर से प्रेम करते हुये एकान्त में भक्ति करते हैं[225] । श्रद्धायुक्त भक्ति द्वारा सन्तुष्ट हो देवी-देवता भक्त को आशीर्वाद प्रदान करते हैं । जिस से उसका जीवन मंगलमय हो जाता है । गुरू गोविन्द सिंह को प्रसन्न होकर देवी खड्ग प्रदान करती है,[226] जो कि शारीरिक रक्षा के लिये महत्त्वपूर्ण होती है । हरि भक्ति से युक्त श्रेष्ठ बातों का श्रवण कर प्रेम भक्त आनन्दित हो जाता है । क्योंकि जिस से वह प्रणय-भक्ति रखता है उस के गुणों का गान भी उसके लिये सन्मार्ग प्रदर्शन करता है । ध्रुव इसी प्रकार परमोल्लास को प्राप्त करता है -

इति नानकस्य वचनानि निशम्य····ध्रुवं इदं च जगाद ।
तव सुनृतानि हरि भक्तियुक्तानि·····परमहर्षमुपेत:[227] ।।

अत: नानकचन्द्रोदय महाकाव्य में स्व-स्व धर्मानुसार, सर्वव्यापक, अलौकिक, शक्ति-युक्त प्रभु के प्रति श्रद्धा और निष्काम भावना से समाहित

222· ना·चं· 11·114 एवं द्र·11·118

223· वही, 11·120, 13·28

224· वही, 13·31 त: 35 पर्यन्तं

225· वही, 13·69 त: 72 पर्यन्तं

226· गोविन्दसिंहो नैवेद्यं····देवी जगाद तम ।
खड्गं गृहाण····कामना भवेत् ।। - ना·चं· 21·142

227· ना·चं· 13·112

हो कर प्रेम भक्ति का तथा भक्तजनों का निरूपण अवलोकित होता है ।

सेव्य-सेवक भाव मूलक भक्ति -

सेवक जब भावना पूर्ण एवं आस्था युक्त हृदय द्वारा सेव्य की सेवा करता है, तब उस की भावना को देख कर सेव्य-भावना भी जाग्रत हो जाती है । इस प्रकार सेव्य-सेवन की श्रद्धापूर्वक भावना ही भक्ति रूप में विकसित एवं पुष्पित होती है । भागवत पुराण में उल्लेख उपलब्ध होता है कि जो भगवान् के लिये सुख आदि को बहिष्कृत कर व्रत, तप आदि उस के निमित्त करते हैं, ऐसे सेवक ईश्वर की भक्ति को आत्म निवेदन द्वारा प्राप्त कर लेते हैं । भगवान् स्वयं इस बात को कह रहे हैं -

मदर्थेऽर्थपरित्यागो भोगस्य सुखस्य च ।
इष्टं दत्तं हुतं जुप्तं मदर्थं यद्व्रतं तपः ।।[228]

सेवक भाव से जो मेरे लिये सब कुछ त्याग देते हैं और मेरी भक्ति करते हैं उन्हें तीनों प्रकार के ताप खिन्न नहीं करते हैं[229] । भगवान् स्वयं इस का प्रतिपादन करते हैं । इस प्रकार सेव्य की प्राप्ति के लिये उस के निमित्त सर्वस्व न्योछावर करना पड़ता है ।

नानक चन्द्रोदय महाकाव्य में गुरू-शिष्य के रूप में सेव्य-सेवक भावना अवलोकित होती है । अङ्गद जो कि नानक देव के पश्चात् दूसरे गुरू बनते हैं नानक की सेवा द्वारा ही सिद्ध-पुरुष बनते हैं । उनकी भक्ति से सन्तुष्ट होकर नानक कहते हैं कि तेरे शरीर की उत्पत्ति मेरे अङ्गों द्वारा हुई है । इस प्रकार गुरू-शिष्य का अनन्य सम्बन्ध द्योतित कर, अङ्गद को गुरू के पवित्र पद पर आसीन करते हैं[230] । सेवक की भक्ति को परखने के लिये परीक्षा भी ली जाती है ताकि शिष्य के अन्दर विद्यमान श्रद्धा एवं निष्ठा को प्रकाशित

---

228. भाग.पुरा. 11.19.23 एवं द्र. 24

229. तितिक्षवः कारुणिकाः सुहृदः.....।
मय्यनन्येन भावेन भक्तिं.....।।
मदाश्रयाः कथा.....तपन्ति विविधास्तापा न....।।
-भाग.पुरा.3.25.21,22,23

230. ना.चं. 19.195

किया जा सके । अङ्गद इस कसौटी पर पूर्ण उतरते हैं । जब सुलक्षणी नानकदेव को कहती है कि अपने दो पुत्र होने पर भी आप ने अङ्गद को गुरू पद का लाभ प्रदान क्यों किया है । तब नानक देव ने उस के समक्ष वस्त्र से आच्छादित लस्सी को पान करने की आज्ञा अन्य शिष्यों, पुत्रों एवं अङ्गद को दी । अङ्गद के बिना दूसरा कोई भी पान नहीं करता है । गुरू के आदेश को शिरोधार्य स्वीकार कर अंगद पी जाता है । उस समय नानक कहते हैं कि इस भक्ति के कारण यह मुझे प्रिय है[231] । यहाँ सेव्य की सेवक में तथा सेवक की सेव्य में निष्काम भक्ति का प्रदर्शन होता है । सेवक निरासक्त हो कर दत्तचित्त भक्ति से परमपद पर आरूढ़ होता है । श्रीरामचन्द्र जी के प्रति जो भरत की भक्ति थी, उस को भी उद्धृत किया गया है । भरत अपने प्रभु के अभाव में नन्दिग्राम में वास करते हुये, तपस्वियों के वेश में राज्य व्यवस्था देखते हैं -

ते तु भद्रासनेऽन्यस्य नन्दिग्रामे जितेन्द्रियः ।
राज्यं स सचिवैः सार्धं मुनिवेष धरोऽकरोत्[232] ।।

प्रस्तुत महाकाव्य के प्रारम्भ के अध्ययन से ज्ञात होता है कि सेवक, सेव्य को प्राप्त न करके विरह में व्याकुल हो जाता है । अङ्गद गुरू के अन्यत्र चले जाने पर, विरह से दुःखी उन का अन्वेषण करता है तथा बाल सिन्धु को प्राप्त कर उन से सेव्य-स्वरूप गुरू की कथा का श्रवण करता है[233] । वीणावादक मर्दन की भक्ति का भी उल्लेख मिलता है । समाज के लोगों द्वारा यह कटाक्ष किये जाने पर कि तुम एक क्षत्रिय की सेवा कर रहे हो, उस अवस्था में भी गुरू-संसर्ग का त्याग नहीं करता है[234] । यहाँ समाज में प्रसृत निन्दा करने की कुरीति की ओर संकेत होता है कि प्रत्येक काल में ऐसे दुष्टजनों से मानव जीवन कलंकित होता रहा है । इसीलिये उद्धृत किया है सांसारिक लोग इर्ष्यालु हैं वे किसी को भी श्रेष्ठ नहीं कहते हैं -

---

231. ना॰चं॰ 19॰206 तः 208 पर्यन्तं
232. वही, 15॰117
233. वही, 1॰99 तः 116 पर्यन्तं
234. वही, 7॰19,21

निशाम्य नानकोऽब्रूत व्रज वीणां समानय ।
लोकस्तु सर्वथा भद्रं न कमप्याह मत्सरी[235] ।।

लोगों के कथन को ध्यान में न रखते हुये सेवारूप भक्ति में मग्न रहना चाहिये क्योंकि भक्तजनों की आलोचना प्राय: होती रहती है । वृद्धावस्था को प्राप्त कर अन्तिम समय पर सेवक अपने सेव्य गुरू के दर्शन करना अपेक्षित मानता है । जिस से मोक्ष प्राप्ति करना चाहता है । बोलाराय विष्णु स्वरूप गुरू के दर्शनों से निर्वाणपद प्राप्ति की अभिलाषा करता है[236] । इस प्रकार अन्य भी गुरू नानक देव के सेवक रूप में शिष्य वर्णित उपलब्ध होते हैं । जैसे लहुरीया, बालसिन्धु, फेरु, उबारखान, गोरक्ष तथा यवन शासक आदि जो कि गुरू के उपदेशों द्वारा भक्त बन जाते हैं तथा सेव्य भावना से उन की शुश्रूषा करते हैं ।

गुरू भक्ति -

गुरू बुद्धि के अज्ञान को समाप्त कर ज्ञानरूपी प्रकाश को प्रज्ज्वलित करता है । इसीलिये नानक चन्द्रोदय महाकाव्य के रचयिता ग्रन्थ के आरम्भ में ही गुरू-भक्ति को प्रकट करते हुये गुरू धर्मदास, हरिदास और पुत्रों सहित गुरू नानक देव का स्मरण कर कथा का व्याख्यान करते हैं[237] । गुरूओं की आज्ञा शिरोधार्य होती है तथा जो शिष्य उन की आज्ञानुसार कार्यों का आचरण करता है वह "तत्त्वज्ञता" को प्राप्त करता है[238] । इस प्रकार सर्वतोन्मुखी विकास करने वाले गुरू की भक्ति को सर्वोपरि स्वीकार किया है । गुरू के निमित्त सकलार्पण करने वाला शिष्य सब कुछ ग्रहण कर लेता है । इस का उल्लेख करते हुये वर्णित है कि गुरू भक्ति करने वाला ही भगवान् को पाता है तथा गुरू ही भवसागर से पार करता है[239] । गुरू विनयशील स्वभाव से प्रसन्न होते हैं, उन्हें विनम्रता से ही प्राप्त किया जा सकता है[240] । इस प्रकार जो नम्रता से युक्त हो सकल-क्रिया-कलापों का अनुष्ठान करता है वही भक्ति करने में सक्षम

---

235. ना॰चं॰ 7॰22
236. वही, 8॰12 एवं द्र॰।।
237. ना॰चं॰ 1॰12
238. वही, 7॰85, 87.
239. वही, 8॰164 एवं द्र॰ 13॰94
240. विनयेन तस्य परमं प्रसेदिवानथ नानको गुरूस्वाच तं पुन: ।
उपकार एष सह सेवया गुरोर्वचनस्य यत्तु परिपालनं सदा ।। -ना॰च॰1॰96

होता है । बहादुरशाह की गुरू भक्ति को प्रतिपादित करते हुये उल्लेख मिलता है कि अतीव गुरू भक्ति के कारण वह सार्वभौम राज्य को प्राप्त करता है-

भक्तिं गुरोर्बहु बहादुरशाहनामा, चक्रे ततो गुरूरगाद् तमिदं जगाद ।
त्वां सार्वभौममधुना कलयामि सौम्य क्रूरस्य तस्य विगमो मनसामथेष्टः[241] ।।

गुरू भक्त निखिल पदार्थों को प्राप्त कर सुख अनुभव करता है तथा विष्णु भक्तों के लिये कलियुग में गुरू की भक्ति को ज्ञानदात्री कहा है[242] । गुरू भक्त शिष्य गुरू के नामोच्चारण का श्रवण कर पुलकित हो आनन्द-विभोर हो जाते हैं । अंगद जब गुरू नानक की कथा का श्रवण करता है तो वह मोहित होता है-

बालसिन्धुरितिसभ्यसमाजे, नानकस्य चरितं वदति स्म ।
अङ्गदोऽथ गुरू-भक्ति-भावेन, प्रेममूरविभवेन मुमूर्च्छ[243] ।।

इस प्रकार अपने आप को समर्पित करना ही गुरू-भक्ति का वास्तविक साधन दिखाई देता है । राजा दशरथ गुरू भक्ति से उन के आदेशानुसार परम प्रिय वस्तु को भी अनिच्छा होने पर भी राष्ट्र कल्याण के निमित्त प्रेषित कर देते हैं । इस रूप में गुरू विश्वामित्र की आज्ञा से प्रिय राम को वह देवताओं तथा ऋषियों के त्राण हेतु भेजते हैं -

नेच्छन्नपि स्वगुरूणा कथितानुभावं, प्राणप्रियं दशरथो विससर्ज रामम्[244] ।।

गुरू भक्त अन्य प्राणियों के लिये दया भाव से युक्त होते हैं । यह भावना गुरू उपदेशामृत द्वारा आती है, जिस का श्रवण भक्ति द्वारा ही होता है -

यूयं किल गुरोर्भक्ताः परं जीव दयालवः[245] ।।

भयंकर कष्ट से आवृत हो जाने पर भी गुरू भक्ति रक्षा करती है । सायांत्रिक की जब नाव समुद्र के जल में डूबने लगती है, तब वह गुरू से प्रार्थना करता है[246] । इस प्रकार देवराज शर्मा ने इस ग्रन्थ में दस गुरूओं का निरूपण किया है और

---

241. ना॰चं॰ 21॰204 एवं द्र॰ 205
242. वही, 21॰239, 240
243. वही, 8॰109
244. वही, 15॰74
245. वही, 17॰42
246. वही, 21॰83, 94

समाज में रहने वाले लोगों की उन में पूर्ण-भक्ति तथा निष्ठा का अवलोकन कराया है । अन्तिम गुरू, गोविन्दसिंह के कथनानुसार "ग्रन्थ साहिब" को आज भी शिष्य गुरू रूप में मान रहे हैं -

ऊचे गुरूस्तु युष्माकं ग्रन्थ एव गुरूर्मत: ।
तं नमेत च पश्येत तस्मै वार्तां वदेत च[247] ।।

इस प्रकार गुरू साधनामार्ग को प्रशस्त करता है । विविध बाधाओं को, जो कि भक्ति के मार्ग में आती हैं उन्हें गुरू के उपदेशामृत का परिपालन कर, अवरूद्ध किया जा सकता है । गुरू-शिष्य परम्परा से उत्तरोत्तर गुरू की शिक्षायें आज भी समाज में विद्यमान हैं । अत: यह कह सकते हैं कि भक्ति के मार्ग को श्रेयस्कर स्वीकार किया है जो कि मोह-माया के बन्धनों से मुक्त कर ज्ञान का प्रकाश प्रज्ज्वलित करता है ।

धार्मिक अनुष्ठान

तीर्थ-यात्रा -

मं गंगा, यमुना, सरस्वती और गोदावरी आदि पावन नदियों के किनारे स्थित धार्मिक स्थानों तथा अन्य तीर्थस्थलों पर जा कर स्नान, जप, तप आदि की मान्यता प्राचीन काल से ही चली आ रही है । प्राय: सभी धर्मों का अंग तीर्थ-स्थल रहे हैं । भारत धर्म प्रधान राष्ट्र है इस लिये आध्यात्मिकता की दृष्टि से सभी सम्प्रदायों के प्रवर्तकों के निवास स्थान एवं उन से सम्बन्धित केन्द्र विशेष तीर्थ-स्थलों के रूप में माने जाते हैं । हमारे धर्मशास्त्रों तथा पुराणों में भी तीर्थ-स्थानों की यात्रा को उद्धृत किया गया है । भागवत पुराण में तीर्थ-यात्रा से भावत् प्राप्ति सुकर उल्लिखित हैं -

शुश्रूषो: श्रद्धानस्य वासुदेव-कथा-रुचि: ।
स्यान्महत्सेवया विप्रा: पुण्यतीर्थनिषेवणात्[248] ।।

मुनिजनों द्वारा तीर्थस्थलों की पवित्रता और भी अत्यधिकता को प्राप्त होती हैथी।

---

247. ना.चं. 21.229

248. भाग.पुरा. 1.2.16

मुनिजन अपने शिष्यों के साथ यात्रा करते थे तथा अपने पवित्र आचार-विचार द्वारा उन को और भी पावन कर देते थे -

तत्रोपजग्मुर्भवनं पुनाना महानुभावा मुनय: सशिष्या: ।
प्रायेण तीर्थाभिगमापदेशै: स्वयं हि तीर्थानि पुनन्ति सन्त:[249] ।।

नानक चन्द्रोदय महाकाव्य में भी अनेक तीर्थस्थलों तथा नानक द्वारा उन की यात्रा करने का उल्लेख मिलता है । नानकदेव उदासी सम्प्रदाय के प्रवर्तक थे, अत: यहाँ पर वे जाते हैं वे स्थान उन के शिष्यों के लिये तीर्थ स्थल बन जाते हैं, जिनमें कीर्तपुर, आनन्दपुरसाहिब प्रमुख हैं[250] । यतियों एवं सज्जन लोगों के निवास स्थान तीर्थ ही होते हैं, जैसे अङ्गद गुरू का अन्वेषण करते हुये तीर्थ-स्थलों पर वास करता है -

स्मरन् स तीर्थेषु निनाय वासरान्[251] ।

गंगा की पवित्रता का भी उल्लेख मिलता है । गंगा जल सेवन करने वाले को आत्मतुल्य पवित्र कर देता है[252] । गंगा के जल में एक बार ही स्नान करने वाले को स्वर्ग प्राप्ति सुलभ कही है -

कदाचिदपि गङ्गायां कथंचित् स्नाति य: पुमान् ।
स स्वर्गं नियतं याति न याम्यास्तस्य यातना[253] ।।

महात्मा लोगों के दर्शन मात्र तीर्थ के समान पवित्र कहे हैं । राजा बोलारराय अपनी मलिनता को गुरू के दर्शन कर, तीर्थ जल की तरह शुद्ध करना चाहते हैं[254] । गुरूनानक देव गुजरात, बंगाल, ब्रह्मपुत्रनदी को पार कर उत्कल, कलिङ्ग, कर्नाटक, केरल और द्रविड़ जाते हैं[255] । यहाँ पर स्थित सभी तीर्थ स्थलों की वह यात्रा करते हैं । एरावती, चन्द्रभागा, विपाशा, वितस्ता और सतलुज[256] नदियों

---

249. भाग.पुरा. 1.19.8
250. ना.चं. 21.135
251. वही, 1.101 एवं द्र. 102
252. वही, 6.45 एवं द्र. 139
253. ना.चं. 14.332 एवं द्र. 336
254. वही, 8.10
255. वही, 8.82, 91,95
256. इरावत्यथो चन्द्रभागा प्रसिद्धा, विपाशा.... शतद्रुश्च नद्य: ।
तदन्तर्गत.....विन्ध्यपादान भूतम् ।। - ना.चं. 9.60

के उल्लेख से ज्ञात होता है कि नदियों के तटों पर स्थित पवित्र तीर्थ स्थलों पर स्नान द्वारा शुद्धता प्राप्त की जाती है । मर्दन को यति नानक "सरयूयू" नदी का महत्त्व बताते हैं कि उसके तट पर "साकेत" नामक नगरी में रघुवंश कुल-दीपक राजा दशरथ सकल भूमि पर राज्य करते थे । सरयूयू नदी पर तर्पण करने के विधान को भी कहा है[257] । इस प्रकार उस की पवित्रता दृष्टिगोचर होती है ।

अनेक रमणीय पर्वतों की यात्रा का उल्लेख भी मिलता है । जिन सुमेरु, हिमालय, व्यासगिरि और अनलाचि नामक पहाड़ों पर नानक मर्दन के साथ यात्रा करते हैं[258] उन पर्वतों पर एकान्त में निवास कर तपस्या में मग्न दत्तात्रेय, प्रह्लाद और विरोचनतात जैसे भक्तों के दर्शन भी करते हैं । सभी धर्मों के तीर्थस्थलों को एक समान समझते हुये नानक का म्लेच्छाचार्यों से अलंकृत, जाह्नवी की तरह वन्दनीय "मक्का"(मदीना) की यात्रा करने का भी उल्लेख उपलब्ध होता है[259] । यवनों के तीर्थस्थल की उपमा गंगा के साथ जो की गई है उस से नानक की सभी धर्मों के प्रति एकता की दृष्टि में आस्था प्रतिभासित होती है । जो आज भी सम्पूर्ण समाज में अपेक्षित है ।

अगम्य, अगोचर विष्णुधाम में यति नानक दिव्य-शक्ति द्वारा पहुँचते हैं, जहाँ पर नारदादि ऋषियों की ही विद्यमानता कही जाती है[260] । उस पवित्र धाम की सम्पूर्ण वस्तुओं का दर्शन तथा भगवान के साक्षात् दर्शन नानक करते हैं । "श्री रामेश्वरम्" का उल्लेख भी उपलब्ध होता है । समुद्र पर सपर्कार निर्मित सेतु का वर्णन भी मिलता है, जिस को नल ने श्रीरामचन्द्र जी के लिये निर्मित किया था । वहाँ पर भी नानक जाते हैं[261] । आजकल भी यह पवित्र स्थल के रूप में प्रख्यात है । मथुरा, काशी और पाटलिपुत्र तीर्थस्थलों का भी

---

257. ना.चं. 15.64 एवं द्र. 164

258. वही, 9.149, 10.74, 12.2, 13.54

259. वही, 10.7, 8

260. वही, 7.113, 116, 121, 128

261. वही, 16.18, 20

वर्णन मिलता है[262] । इस प्रकार हिन्दु समाज के प्रसिद्ध पवित्र स्थलों का प्रतिपादन उद्धृत किया गया है । गुरू नानकदेव की तरेपन पवित्र स्थलों की यात्रा नानक चन्द्रोदय महाकाव्य में वर्णित मिलती हैं ।

प्रस्तुत महाकाव्य में गुरू को सर्वोपरि तीर्थ-स्थल स्वीकार किया गया है । उस के विषय में नानक प्रतिपादन करते हैं कि तीर्थस्थलों का भ्रमण देवताओं की जय और मन्त्रों का जप करना इन का मार्ग गुरू ही प्रदर्शित करता है[263] । तीर्थों का प्रभाव भी गुरू बोध कराते हैं -

तीर्थप्रभावो गुरूबोधनीयः, कर्माणि नानाफलदायकानि[264] ।।

तात्पर्य यह है कि गुरू से उपदेश ग्रहण कर के तीर्थयात्रा, जप, तप आदि कर्मों का अनुष्ठान करना अपेक्षित है । इस प्रकार सम्पूर्ण भारतवर्ष के प्रख्यात तीर्थ-स्थलों का वर्णन देवराज शर्मा ने नानक की यात्रा द्वारा उल्लिखित किया है जिस से तीर्थों के प्रति नानकदेव की श्रद्धा का निरूपण कवि द्वारा उद्धृत किया गया मिलता है ।

व्रत -

धार्मिक प्रवृत्ति के लोगों में व्रत (उपवास) का महत्त्व एवं उस की मान्यता प्राचीन काल से चली आ रही है । उन का विश्वास होता है कि ईश्वर-निमित्त अन्न-ग्रहण न कर के प्रभु को प्रसन्न किया जा सकता है । कुछ लोग= किसी का अहित न विचारना, सत्य वार्तालाप और अहिंसा को व्रत मानते हुये, अन्न आदि का त्याग करने वाले उन लोगों को आडम्बर-युक्त कहते हैं जो कि एक दिन उपवास का आचरण करते हैं, परन्तु दूसरे दिन मांस, मदिरा आदि अभक्ष्य पदार्थों का भक्षण करते हैं । इस प्रकार विशुद्ध मन द्वारा नियमपूर्वक व्रत का अनुष्ठान करने को वे कहते हैं । मनुस्मृति में भी कपट द्वारा व्रताचरण की निन्दा करते हुये उल्लेख मिलता है कि जो छलपूर्वक व्रत करते हैं, उस का फल उन्हें उपलब्ध नहीं होता है, राक्षस उस फल का उपभोग करते हैं -

---

262. ना·चं· 21·206 एवं द्र·207, 104, 105

263. भ्रमन्तु तीर्थानि जयन्तु देवान्, जपन्तु मन्त्रान् गिरिगह्वरेषु ।
पथो गुरूर्दर्शयिता·····न चान्यः ।। - ना·चं· 16·39

264. ना·चं· 19·9

प्रेत्येह वेदशा विप्रा गर्ह्यन्ते ब्रह्मवादिभि: ।
छद्मनाऽऽचरितं यच्च व्रतं रक्षांसि गच्छति[265] ।।

"श्री श्री हरि भक्ति विलास" में एकादशी आदि पवित्र तिथियों को अन्न ग्रहण करने का निषेध करते हुये उपवास करने के लिये कहा गया है । ब्रह्मचारी, गृहस्थी, वानप्रस्थी और यति इन में से जो भी एकादशी को भोजन करता है वह गो मांस भक्षण करता है -

ब्रह्मचारी गृहस्थो वा वानप्रस्थोऽथवा यति: ।
एकादश्यां हि भुंजानो भुङ्क्ते गोमांसमेव[266] ।।

प्रत्येक महीने में आने वाली शुक्लपक्ष तथा कृष्णपक्ष की एकादशी को पुत्र, पत्नी सहित व्रताचरण करने के लिये भी कहा है[267] ।

नानक चन्द्रोदय महाकाव्य में निष्काम भाव से व्रत करने का उल्लेख मिलता है । बाह्याडम्बरों के लिये व्रत करने का निषेध मिलता है । जब नानक यवनों के देवता की ओर पैर कर शयन करते हैं तो म्लेच्छाचार्य उन को कहता है कि तुम व्रत, नियम और भक्ति से रहित हो, पूजनीय देवता का अपमान कर रहे हो । तुम न विरक्त हो, न गृहस्थी इसलिये व्यर्थ में भूमि पर विचरण करते हुये अपना समय व्यतीत कर रहे हो[268] । इस उल्लेख से यवन लोगों में व्रत के प्रति आस्था द्योतित होती है क्योंकि इन कार्यों से रहित की निन्दा की गई है । नानकदेव दूसरे लोगों में दिखावा करने के लिये बाह्य विषयोपभोगों की अभिलाषा के वशीभूत हो, व्रत आदि का अनुष्ठान करने को लाभहीन कहते हैं । म्लेच्छाचार्य को उपदेश देते हैं कि जैसे जटायें काटने पर पुन: वृद्धि को प्राप्त होती हैं, उसी प्रकार वासनायें हैं, जो बार-बार उत्पन्न होती रहती हैं । इस लिये जब तक पूर्ण रूप से इन्हें मारा नहीं जाता व्रतादि का कोई लाभ नहीं होता है[269] । यद्यपि यहाँ व्रत का निषेध दिखाई देता है परन्तु वासना रहित हो, निष्काम

---

265. मनु॰स्मृ॰ 4॰199
266. श्री श्री हरि भक्ति विलास:, 12॰15
267. सपुत्रश्च सभार्यश्च स्वजनैर्भक्ति संयुत: ।
एकादश्यामुपवसेत् पक्षयोरुभयोरपि ।। - श्री श्री हरि भक्ति विलास॰12॰19
268. ना॰चं॰ 10॰27,28,29
269. छिन्नप्ररूढा: किल कामना या:, बाह्यैर्व्रतादै: किमु····?
एना हि वेतस्य ·····, जटासु लूना स्विह वासनासु।। - ना॰चं॰10॰33

भावना से व्रत को करने की प्रेरणा भी मिलती है । आगे प्रस्तुत महाकाव्य में ही उल्लेख मिलता है कि जो विधि से एकादशी व्रत एवं शालिग्राम की अर्चना करता है, वह गंगा आदि तीर्थों से भी अधिक पुण्य प्राप्त कर लेता है -

एकादश्युपवासाः शालग्रामस्य पूजनं विधिवत् ।
नित्यं तदम्बुसेवा रेवागङ्गादितीर्थैः किम् [270] ।।

इस प्रकार व्रताचरण का निषेध पूर्णतया न कर के निष्काम भाव से तथा विधिपूर्वक नियम में रहते हुये ही इन को अनुष्ठित करने का विधान किया है । स्मृतियों में निरूपित द्वादश व्रतों का आचरण करने के लिये अपनी विचारशक्ति द्वारा मनन कर के फिर पालन करने को कहा है [271] । अतः नानकचन्द्रोदय महाकाव्य में सद्विचार युक्त हो व्रतों का परिपालन करने का विधान किया गया है । अन्य ग्रन्थों में कथित व्रतों को केवलमात्र पढ़ कर आचरित करने से, उन के बारे में सम्पूर्ण ज्ञान प्राप्त कर फिर अनुष्ठित करना श्रेयस्कर वर्णित किया गया है । विवेकपूर्वक ही आचरण करने की प्रेरणा मिलती है, अन्धविश्वास द्वारा व्रताचरण करने की उपेक्षा दृष्टिगोचर होती है ।

तप -

बाह्य विषयों से मन, इन्द्रियों का संयम कर प्राणायाम, व्रत और योगादि द्वारा शरीर को कष्ट देने के जो साधन हैं, उन्हें तप कहा जाता है । मनुष्य का विनयशील, सहनशील और शान्तिप्रिय होना अनिवार्य है । ये गुण विलष्ट तपस्या का आचरण कर ही प्राप्य होते हैं । योग दर्शन में उद्धृत है कि जब तप के प्रभाव से अशुद्धि का क्षय हो जाता है तब शरीर और इन्द्रियों का संयम स्वयं हो जाता है -

---

270. ना.च. 14.336

271. स्मृतिद्वादशदिव्रतं बोधयन्तीं, विहातुं महाज्ञानिनो यूयमास्त ।
अधिक्षेमवाक्येपरेणप्रयुक्ते, ज्वलन्तो भवन्तो हि किं ज्ञानिनो ।।
-ना.चं. 12.86

कायेन्द्रियसिद्धिरशुद्धिक्षयात् तपस:[272] ।

वेदान्त दर्शन में तपस्या से उपासक को मोक्ष की प्राप्ति उल्लिखित मिलती है । "उपस्थितेऽतस्तद्वचनात्"[273] । अर्थात् श्रद्धा पूर्वक उपासना करने से ब्रह्मज्ञान प्राप्त हो जाता है । मनु स्मृति में सुख का अन्तिम लक्ष्य तप को कहा है -

तपो मूलमिदं सर्वं दैवमानुष्कं सुखम् ।
तपोमध्यं बुधै: प्रोक्तं तपोऽन्तं वेददर्शिभि:[274] ।।

तप करने वाले को ब्रह्मचारी होना, सदैव ध्यान मग्न रहना एवं आध्यात्मिक ज्ञान के प्रति भक्ति रखने का भी प्रतिपादन मिलता है[275] । याज्ञवल्क्य स्मृति तथा मनुस्मृति दोनों में संन्यासी को प्राणायाम और अन्य योग के अंगों द्वारा अपने मन को पवित्र करने के लिये कहा है[276] । तैत्तरीय उपनिषद् में संन्यासी के लिये यज्ञों, देवताओं और दार्शनिक विचारों से सम्बन्धित वैदिक वार्ता का अध्ययन एवं उच्चारण करने को कहा है[277] । ऋषि-लोग तप द्वारा तीनों लोकों का दर्शन कर लेते हैं । अर्थात् तप ईश्वर प्राप्ति का साधन निरूपित किया है -

ऋषय: संयतात्मन: फलमूलानिलाशन: ।
तपसैव प्रपश्यन्ति त्रैलोक्यं सचराचरम्[278] ।।

नानक चन्द्रोदय महाकाव्य में उल्लेख है कि तपस्वी लोग अपनी देह को तप द्वारा कृश बना कर, जटाओं को धारण कर, शुद्ध मन हो और शरीर पर विभूति धारण कर निवास करते हैं । हिंसक जीवों से परिवेष्टित जंगलों में यहाँ केवलमात्र अशन करने के लिये वायु और पानी मिलता है,उन स्थानों का

---

272. पा·यो·द· 2·43

273. वेदान्त·द· 3·3·41

274. मनु·स्मृ· ।।·234

275. अध्यात्मरतिरासीनो निरपेक्षो निरामिष: ।
आत्मनैव सहायेन सुखार्थी विचरेदिह ।। - मनु·स्मृ· 6·49 एवं द्र·6·41

276. कर्तव्याशयशुद्धिस्तु भिक्षुकेण विशेषत: ।
ज्ञानोत्पत्तिनिमित्तत्वात्स्वातन्त्र्यकरणाय च ।।
ध्यानयोगेन संपश्येत्सूक्ष्म आत्मात्मनि स्थिति:।। -याज्ञ·स्मृ·3·62,64 एवं द्र·मनु·स्मृ·6·70 त: 75,81

277. तैत्त·उप·2·1

278. मनु·स्मृ·।।·236

आश्रय धारण कर तपश्चरण करते हैं[279]। वृक्षों के नीचे पद्मासन में स्थित, एकाग्रचित्त, ध्यानमग्न, प्राणायाम और विभिन्न प्रकार के नियमों का आचरण कर अर्जित किये हुये तेज-पुंज वाले तपस्वियों का वर्णन मिलता है[280]। दयालुस्वभाव वाले, स्व-दर्शन-मात्र से सभी दिशाओं को शुद्ध करने वाले, मधुरभाषी, विनम्रतायुक्त, अखिल सिद्धियों से युक्त और लोगों की सकल कामनाओं को तप के प्रभाव द्वारा प्रत्यक्ष देखने वाले तपस्वियों का उल्लेख उपलब्ध होता है -

सकुन्दशुभ्रैर्दशनैः प्रकाशयन्, दिशो विमुष्यन् दुरितं दयादृशा ।।
स्मितावदातैर्वचनैर्विशोधयन्, मनांसि लोकस्य जगाद तापसः[281] ।।

संन्यासी रूप में तपश्चरण करने वाले तपस्वी किसी से भी प्रगाढ़ रूप में अनुराग नहीं करते हैं। विना किसी मोह-ममता से उठ कर अन्यत्र प्रस्थान कर देते हैं[282]। इस प्रकार तपस्या करने के लिये सांसारिक-विषयों से वैमनस्य होना परमावश्यक दिखाई देता है। तपस्या के बल द्वारा आठ प्रकार की सिद्धियों को प्राप्त किया जाता है। ये पूर्वजन्म में कृत तप के प्रभाव से भी प्राप्य होती है[283]। इस प्रकार तप का फल अवश्य प्राप्त होता है। इस का ज्ञान कराया गया है। निर्वाण प्राप्त करने की कामना से, ईश्वर को कर्म साक्षी मानकर तपस्वी लोग उस की प्रसन्नता के लिये ही तपस्या करते हैं[284]। इस प्रकार ईश्वर प्राप्ति को परमलक्ष्य स्वीकार किया गया है। एकान्त स्थान पर तपस्या की आवश्यकता के लिये कहा है कि वहाँ काम, क्रोध, लोभ, मोह, माया और अहंकार रूप छः शत्रुओं पर विजय प्राप्त हो जाती है[285]। गुरू नानक देव गृहत्याग कर, वन में, वृक्षों के नीचे, सिंहों से युक्त जंगलों में, और ऊँचे शिखरों पर द्वन्द्वरहित हो कर

---

279. ना॰चं॰ 1॰28,29 एवं द्र॰ 3॰12,13, 13॰5
280. ना॰चं॰ 1॰30,31,32
281. वही, 1॰38 एवं द्र॰40,41
282. देहे यतीनां ममता यतो नो, शिष्ये कुतः कुत्र कुटीकटादौ ।।-ना॰चं॰1॰98
283. पुरा कृतानां तपसां विपाकात्, सिद्धोऽसि किं वोपगताष्टसिद्धिः।।
-वही, 2॰119
284. निर्वाणिनो वयमपेतजटावधूता·····।
विश्वम्भरो·····कर्मसाक्षी····तनुमः तपस्याम् ।। - वही, 3॰15
285. वही, 6॰64 एवं द्र॰ 66

अखिल कामनाओं एवं मोह माया का परित्याग कर स्थिर-चित्त हो तपश्चरण करते हुये चित्रित मिलते हैं[286] ।

तपस्वी के लिये ईश्वर प्राप्ति सुलभ बताते हुये उल्लेख मिलता है कि जो भेद बुद्धि का त्याग कर उस परमेश्वर का भजन करते हैं वह उसे फिर आत्मवत् देखते हैं[287] । ईश्वर और तपस्वी में कोई अन्तर नहीं रहता है । इस प्रकार अगाध बोध हो जाने पर वे तपस्वी अपने दर्शनों द्वारा अन्य लोगों को पवित्र करते हैं[288] । प्रह्लाद और दत्तात्रेय आदि ईश्वर भक्त तपस्वियों का उल्लेख महाकाव्य में दिखाई देता है[289] । जो ईश्वर भक्ति में मग्न अन्य लोगों का भी कल्याण करते हैं । फलों आदि को भोजन रूप में ग्रहण कर ऋषि-मुनि बाह्य विषयों से मन को अवरोधित कर मुकुन्द चरणों में निवेशित कर तपस्या करते हुये निरूपित मिलते हैं[290] । इस प्रकार निष्काम भावना से तपश्चरण करने वाले तपस्वियों पर कलियुग का प्रभाव भी नहीं पड़ता है । इस को उद्धृत करते हुये कहा है कि स्वयं ब्रह्मा ने ही हरिभक्तों को सर्वोपरि स्वीकार किया है[291] ।

इस प्रकार नानक चन्द्रोदय महाकाव्य में कठोर आयास द्वारा तप कर के ईश्वर-प्राप्ति एवं सत्यज्ञान का प्रकाशन होना सुगम उल्लिखित किया है । विविध प्रकार के प्राणायामों और योगों द्वारा मन की शुद्धता कर तप में संलग्न तपस्वियों के निरूपण द्वारा तप की महत्ता पर बल दिया गया है ।

जप -

प्राचीन काल से ही मंत्र जप द्वारा इष्ट-सिद्धि तथा देवताओं को

---

286. ना॰चं॰ 7॰2,3

287. यथा यथा भेदधियं विहाय भजन्ति भक्ता॰॰॰॰॰।
तथा तथा ॰॰॰॰तेषां स आत्मैव भवत्यखण्डः ।। - ना॰चं॰ 8॰54

288. ना॰चं॰ 13॰48

289. वही, 13॰48,70,71

290. वही, 15॰14 एवं द्र॰ 17॰29

291. निःस्पृहेषु हरिभक्तिरतेषु, तापसेषु न कलेर्बलमस्ति । - ना॰चं॰9॰18

को प्रसन्न करने में आस्था अवलोकित होती है । वैदिक मंत्रों का जप विविध प्रकार की कामनाओं के लिये आज भी किया जाता है । "वैदिक काल से लेकर लोग यज्ञ-अनुष्ठान करते आ रहे हैं तथा इन यज्ञों में शुद्ध मंत्रोच्चारण द्वारा देवता लोग वहाँ हवन वेदी पर उपस्थित होकर लोगों की कामनाओं को पूर्ण करते हैं[292] । पातंजल योग दर्शन में "ओम्" को ईश्वर का यथार्थ रूप माना है । भावनापूर्वक "ओम्" का जप करने से आत्म-साक्षात्कार एवं विघ्नों का नाश होता है -

तस्य वाचक: प्रणव:, तज्जपस्तदर्थ भावनम्, तत: प्रत्यक्चेतनाधि-गमोऽप्यन्तरायाभावश्च[293] ।

मनु स्मृति में मानस जप को ही सर्वश्रेष्ठ कहा है -

विधियज्ञाज्जपयज्ञो विशिष्टो दशभिर्गुणै: ।
उपांशु स्याच्छतगुण: साहस्रो मानस: स्मृत:[294] ।।

विवेक चूड़ामणि में ब्रह्म और आत्मा की एकता कर के तन्मय भाव से अखण्ड-वृत्ति से अहर्निशं मन ही मन आनन्दपूर्वक ब्रह्मानन्द का पान करने को कहा है[295] । इस प्रकार प्राचीन ग्रन्थों में जप की महिमा का अवलोकन होता है ।

नानक-चन्द्रोदय महाकाव्य में जप का महत्त्व वर्णित करते हुये जप को दो प्रकार का स्वीकार किया है । लिब जप, अजपाजप । प्रथम लिब जप के द्वारा ईश्वर के नाम का जाप किया जाता है तथा सिद्धि प्राप्त कर जगदीश का कृपा-पात्र बना जाता है अर्थात् प्रभु उस पर प्रसन्न हो जाते हैं, जिस से स्वसुखानुभूति प्राप्त होती है ।

अजपाजप नामक अवस्था में परोक्ष विष्णु भगवान् का प्रत्यक्ष दर्शन हो जाता है और अज्ञानावस्था में भी हंस "सोऽहं" मन्त्र का निरन्तर बिना प्रयत्न के जप करता है । तब वह अजपाजप कहलाता है । व्यारगिरि पर तपस्या में मग्न दत्तात्रेय श्री नानकदेव को कहते हैं कि जब हंस (सुषुम्णा में स्थित शंभु) "सोऽहं"

---

292. बागची - इवोल्यूशन आफ तंत्राज : कल्चरल हेरिटेज़ आफ इंडिया, वाल्यूम 4, पृ.213

293. पा.यो.द. 1.27,28,29

294. मनु.स्मृ. 2.85

295. विवे.चूड़ा. 379

का अनवरत जाप करने लगता है तब परोक्ष का निरावरण हो जाता है । आत्मा को ही हंस ध्याने लगता है तो वह अजपाजप होता है -

दत्तोऽवदच्छृणु परेण न कश्चिदर्थः, सम्भाष्णादिह स्वसुखानुभूतिः ।
हंसो जपत्यविरतामजपामयत्नाद्, ध्येयं निरावरणमात्ममहो परोक्षम् [296] ।।

अजपाजप द्वारा जाप करने से परोक्ष ईश्वर का स्वरूप स्मरण किया जाता है । अर्थात् विष्णु भगवान के प्रत्यक्ष अवलोकन करने के लिये जप का महत्त्व कहा है [297] । इस प्रकार जप द्वारा मोक्ष प्राप्ति सुकर निरूपित की गई है ।

गुरू नानकदेव के अनुयायी शिष्यों में जप का महत्त्वपूर्ण स्थान दिखाई देता है । "नाम" की गरिमा को स्वयं नानकदेव ने प्रतिपादित किया है । "वाहगुरू" को बीज मंत्र स्वीकार किया जाता है । सिख धर्म में "शब्द" का महत्त्व सर्वाधिक दिखाई देता है । इसी को "नाम" भी कहा गया है । मूलमंत्र में भी "इक ओंकार सतनाम" का उल्लेख है । इस प्रकार नाम जप को सर्वोपरि माना जाता है । "नाम" के रूप के आगे सम्पूर्ण माया मिथ्या कही है क्योंकि "नाम" द्वारा ही सत्स्वरूप मैं ब्रह्म हूँ, ऐसा ज्ञान होता है [298] । नानकदेव ज्ञान मार्ग और भक्तिमार्ग स्वीकार करते हैं । निर्गुण का ज्ञान मार्ग द्वारा तथा सगुण का भक्तिमार्ग द्वारा साक्षात्कार सम्भव कहा है [299] । ज्ञान मार्ग की जो आत्मवत् स्थिति उल्लिखित है, उस से ज्ञान मार्ग को ही अजपाजप उद्धृत किया है, ऐसा ज्ञात होता है ।

गुरू नानकदेव ने परमपद को प्राप्त करने के लिये उदासी सम्प्रदाय का प्रचार किया है । सांसारिक सुखों से विरक्त, त्यागी उदासी कहलाते हैं । ओंकार को ही "नाम" समझ कर उस का जाप किया जाता है [300] । गुरू नानकदेव स्वयं ओंकार का जप करते हैं । इस का उल्लेख उपलब्ध होता है -

---

296. ना·चं· 13·7 एवं द्र·10,12

297. सोऽहमित्यजपया स्मरणीयं विस्मृतस्य महसः खलु रूपम् ।
स्व प्रकाशमहसामपरोक्षे तत्र तत्र भवतां किमु यत्नः १। - ना·चं·13·11 एवं द्र·15

298. मायात्र मिथ्या किल नामरूपे, ब्रह्मास्मि भाति प्रियमत्र सत्यम् ।
- ना·चं· 8·63

299. ना·चं· 13·22,23 एवं द्र· 29

300. वही, 11·126

प्रणवं जपामि मनुमन्त्रमुदस्य[301] ।

राम, शिव और विष्णु आदि के नामों का जप करने का भी उल्लेख मिलता है । दत्तात्रेय राम नाम के जप को कलियुग में भवसागर से पार ले जाने का साधन कहते हैं[302] । विष्णु भगवान् के नाम को अपनी जिह्वा पर वास करने का प्रतिपादन करते हुये नानकदेव "विष्णु नाम" को पापों को नष्ट करने में सूर्य के समान, सभी कामनाओं को पूर्ण करने वाला तथा यम के दूतों को भी त्रास देने के लिये सिद्धमन्त्र कहते हैं[303] । इस प्रकार अन्य देवी-देवताओं एवं ईश्वर अवतारों के नामों का जप करने का उल्लेख दिखाई देता है, जिस से नानकदेव की सभी धर्मों के प्रति आस्था द्योतित होती है । शिव के नाम का जो जप करता है, यमदूत उसके समीप आने से भयभीत होते हैं[304] । त्रिपाद "ओंकार" का महत्त्व वर्णित करते हुये उद्धृत मिलता है कि जो इन तीन अक्षरों का जप करता है उस तपस्वी को तीनों लोकों में यम की यातनायें नहीं सताती हैं -

त्रिपादाजपतत्परस्तपस्वी त्रिदिवं याति न यमाल्यम्[305] ।

"ॐ नमः भगवते वासुदेवाय" द्वादशाक्षर के जप का उल्लेख भी मिलता है । जो लोग इस का जाप करते हैं वे माधव के समीप ही निवास करते हैं । अर्थात् भगवान् का साक्षात्कार कर मुक्त हो जाते हैं और अपनी महिमा द्वारा सम्पूर्ण लोक को पावन करते हैं -

द्वादशाक्षरमनुं प्रजपन्तो वैष्णवा विगतमोहमदा ये ।
ते पुनन्ति भुवनं स्वमहिम्ना माधवस्य सविधे च वसन्ति[306] ।।

इस प्रकार जप का निरूपण करते हुये उल्लेख किया है कि गुरू द्वारा प्रदर्शित मार्ग का अनुसरण करते हुये ही मन्त्रों का जप करना चाहिये[307] । जिस से गुरू के बिना मन्त्रजप की सिद्धि अप्राप्य कही है ।

---

301. ना·चं· 13·17
302. वही, 13·45
303. वही, 13·151
304. वही, 14·328
305. वही, 14·331
306. वही, 14·335
307. भ्रमन्तु तीर्थानि जयन्तु देवान् जपन्तु मन्त्रान् गिरिगह्वरेषु ।
पथो गुरूर्दर्शयिता····· न चान्यः ।। - ना·चं· 16·39

अत: नानक चन्द्रोदय महाकाव्य में जप की महिमा, जप के विधान एवं जपनीय देवताओं के बारे में उल्लेख मिलता है । यद्यपि देवराजशर्मा ने सिख सम्प्रदाय में सर्वोपरि मान्य "वाह गुरू" के नाम का विवेचन किया है परन्तु साथ ही अन्य धर्मों के पूजनीय देवीदेवताओं के जप की महिमा का गान स्वयं गुरूनानकदेव द्वारा प्रतिपादित एवं अनुमृत दिखाई देता है । जिस से उन की उदारी सम्प्रदाय का प्रचार करने के साथ-साथ अन्य धर्मों के प्रति विशालहृदयता अवलोकित होती है ।

दान -

प्राचीनकाल से ही भारतीय समाज में दान की व्यवस्था चली आ रही है । दानीपुरुष इहलोक और परलोक दोनों में यश को प्राप्त करता है । वैदिक मन्त्रों में दानस्तुतियों का अत्यधिक उल्लेख उपलब्ध होता है[308] । मनुस्मृति में दान देते समय दाता को ग्रहण करने वाले की पात्रता तथा श्रद्धा आदि का समुचित ध्यान रखने को कहा गया है -

श्रद्धयेष्टं च पूर्तं च नित्यं कुर्यादतन्द्रित: ।
श्रद्धाकृते ह्यक्षये ते भवत: स्वर्गतेधने: ।।
दानधर्मनिषेवेत नित्यमैष्टिकपौर्तिकम् ।
परितुष्टेन भावेन पात्रमासाद्य शक्तित:[309] ।।

गीता में जीन प्रकार का दान कहा है, जो दान प्रत्युपकार भावना से रहित, देश, काल और पात्र के अनुसार दिया जाता है वह सात्त्विक दान, फल की आशा एवं प्रत्युपकार की इच्छा से दिया जाने वाला राजस और देश, काल का ज्ञान न कर के सत्कार रहित और कुपात्र को जो दान दिया जाये वह तामसदान

---

308. प्रस्तोक इन्नु वाध्मस्त इन्द्र दश कोशयीर्दश वाजिनोऽदात् ।
..... ।। - ऋग्वेद, 6·47·22,25; एवं द्र·
7·18·22,25; 8·46·21,24

309. मनु स्मृ· 4·226, 227

कहा है[310]। मनुस्मृति में भी वेद के अज्ञाता को दान देने का निषेध किया गया है[311]। अर्थात् विधिपूर्वक पात्र और कुपात्र का ज्ञान कर के ही दान देने के लिये धर्मशास्त्रों में उल्लेख मिलता है। वैशेषिक दर्शन में भी बुद्धिपूर्वक विधिविधान से दान देने के लिये कहा है -

बुद्धिपूर्वादिदाति[312]।

मीमांसा दर्शन में उल्लेख मिलता है कि जो जिस वस्तु का अधिकारी हो उसे तद्वस्तु का ही दान करना चाहिये[314]।

नानक चन्द्रोदय महाकाव्य में कहा गया है कि जिस दान से अपने आप को तथा परिवार को कोई दुःख न हो उसे दान कहते हैं। अर्थात् धन के अनुसार और शक्त्यानुसार दान देने का उल्लेख मिलता है -

ते देव दानं शंसन्ति धर्मज्ञा अपि सर्वशः।
न स्वस्य न कुटुम्बस्य येन पीड़ा प्रजायते[315] ।।

दान की महत्ता का निरूपण करते हुये उद्धृत किया है कि दान द्वारा होने वाले किंचित् कष्ट भी सहनीय होता है क्योंकि दान अतीव सुख-दाता है जैसे आरोग्यता का अभिलाषी (कषायतिक्त) (कड़वी) औषधी का सेवन करता है[316]। वैसे ही दान से उत्पन्न पीड़ा को इस लिये सहन करना चाहिये कि भविष्य में उस का फल सुख रूप में प्राप्य होता है। राजा की दानशीलता सभी ग्रन्थों में वर्णित मिलती है। उन्हीं ग्रन्थों तथा राजाओं की दानप्रियता का अनुकरण करते हुये कालवर्मा दिखाई देते हैं। सिद्धों, ब्राह्मणश्रेष्ठों द्वारा विभिन्न नियमों का आचरण कर

---

310. दातव्यमिति यद्दानं दीयतेऽनुपकारिणे।
देशे काले च पात्रे च तद्दानं सात्त्विकं स्मृतम् ।।
यत्तु प्रत्युपकाराय फलमुद्दिश्य वा पुनः।
दीयते च परिक्लिष्टं तद्दानं राजसं विदुः ।।
अदेशकाले यद्दानमपात्रेभ्यश्च दीयते।
असत्कृतमवज्ञातं तत्तामसमुदाहृतम् ।। - गीता·17·20-22

311. न वार्यपिप्रयच्छेत्तु वैडालव्रतिके द्विजे।
न बकव्रतिके विप्रे नावेदविदि धर्मवित् ।। - मनु·स्मृ·4·192

312. वैशे·दर्शन· 6।1·3

314. यस्य वा प्रभुः स्यादितरस्याऽशक्यत्वात्। - मीमां दर्श·6·7·2

315. ना·व·3·26

316. वही, 3·30

कालवर्मा दीनों, अनार्यों को शुभ अन्न दान द्वारा सन्तुष्ट करते हैं[317]। वह शिशु के जन्मकाल तथा पुत्र के पाणिग्रहणादि शुभ अवसरों पर यथाशक्ति सुवर्ण, वस्त्र और दुग्ध युक्त गौयें मुक्त-हस्त ब्राह्मणों को दान देते हैं[318]। अत: स्मृतियों में प्रतिपादित दान के विधान के अनुसार ब्राह्मणों को दान देने का अधिक महत्त्व परिलक्षित होता है। याचकों को हर समय दान देने का निषेध भी दिखाई देता है। जब गुरू नानक देव बाल्यावस्था में ही अत्यधिक धन भिक्षुक वर्ग को देते हैं तो "काल वर्मा" उन पर क्रोधित हो जाते हैं[319]। यहाँ यह प्रतीत होता है कि तत्कालीन समाज में भिक्षुक थे, जो कि दान रूप में दी हुई भिक्षा के ऊपर निर्भर करते थे। कालवर्मा के क्रोध से स्पष्ट होता है कि भिखारियों को अतीव धन देना उचित नहीं माना जाता है जिस से कि केवलमात्र भिक्षा-वृत्ति को बढ़ावा मिलता है तथा समाज के लिये वह हानिकारक होती है। परन्तु गुरूनानक देव दान देने के किसी नियम विशेष को जैसे ब्राह्मणों को ही दान देना चाहिये, आवश्यक नहीं मानते हैं। वह अधिकार प्राप्त कर शक्ति से भी अधिक दान, प्रत्येक आगन्तुक को देते हैं[320]। नानक देव के मतानुसार दान का पात्र वही है, जिसे किसी पदार्थ विशेष की आवश्यकता होती है। इसलिये कोई भी याचक वहाँ से रिक्त-हस्त नहीं लौटता है। जो वस्तु उन के अधिकार में होती है नि:संकोच उसे वितरित करते हैं -

न याचकोऽजायत कोऽपि मोव:[321] ।।

आय के अनुसार दान करने का उल्लेख मिलता है। यवन शासक धरखान का भक्ताधिकारी नानकदेव को कहता है कि जो राजा आय से अधिक व्यय कर देता है, वह शीघ्र ही दु:ख प्राप्त करता है, इसलिये चक्रवर्ती सम्राट् के अनुरूप तुम्हें दान नहीं करना चाहिये[322]। यहाँ यह स्पष्ट होता है कि चक्रवर्ती राजा

---

317. ना॰चं॰ 2॰30
318. वही, 2॰48 एवं द्र॰ 80
319. वही, 2॰102 एवं द्र॰ 106
320. वही, 4॰25
321. वही, 4॰3
322. किं चक्रवर्तीव करोषि दानम् । - ना॰चं॰ 4॰6

अधिक मात्रा में दान करते थे, क्योंकि उन को तरह दान करने का निषेध किया गया है । परधन का दान करने में उदारता दिखाने का भी निषेध दिखाई देता है[323] । जिस से स्वपरिश्रम द्वारा अर्जित धन के दान की श्रेष्ठता को माना है । विवाहादि के शुभ उत्सवों पर नट, नर्तक, विदूषक और बहुरूपधारी अपनी कला का प्रदर्शन कर, राजा वर्ग से पारितोषिक रूप में वस्त्राभूषण प्राप्त करते हैं[324] । इन्हें दान रूप में नहीं कहा जा सकता है परन्तु फिर भी अभिनय द्वारा जब राजा प्रसन्न हो जाते हैं तो वे प्रसन्नचित्त हो ईनाम देते हैं, जिस से उन का सम्मान होता है । बावली निर्माण करने वाले, छाया युक्त वृक्षारोपण करने वाले तथा गोग्रास देने वालों की दीर्घायु कही है । इसी प्रकार संन्यासियों के लिये मठ निर्माण करने वाले, धर्मशाला और विश्राम हेतु स्थान निर्मित करने वाले स्वर्ग में निवास करते हैं[325] । मनुस्मृति में भी इसी प्रकार उल्लेख करते हुये कहा है कि प्यासों को जल पिलाने वाला - सन्तोष को, क्षुधातुरों को भोजन कराने वाला अक्षय अन्न को, तिल दान करने वाला उत्तम सन्तान को और पथ में दीपक प्रज्वलित करने वाला उत्तम चक्षु को प्राप्त करता है-

वारिदस्तृप्तिमाप्नोति सुखमक्षय्यमन्नद: ।
तिलप्रद: प्रजामिष्टां दीपदश्चक्षुरुत्तमम् ।।[326]

अत: इसी का अनुसरण नानक-चन्द्रोदय महाकाव्य में उपलब्ध होता है । दान द्वारा मनुष्य महिमा को प्राप्त करता है[327] तथा उस का यश चारों दिशाओं में प्रसारित होता है । चन्दोरानी नानक देव को उसकी महिमा का त्याग न करने के लिये कहती है । दान द्वारा धन की उत्तरोत्तर वृद्धि उल्लिखित है । इस के बारे में उद्धृत है कि धर्म से स्वर्ग और अधर्माचरण से नरक प्राप्त होता है । दान करने से धन की वृद्धि होती है तथा मुकुन्द का स्मरण करने से मोक्ष प्राप्त होता

---

323. उदारता केयमहो परस्य, धनेषु दान व्यसनं किमेतत् । - ना•चं•4•50

324. वही, 5•145

325. वापी कूपतडागादि कारका वृक्षरोपका: ।
गोग्रासदायिन: स्वर्गे वसन्ति बहुवत्सरान् ।।
मठं यतीनां कुर्वन्ति ये च विश्राम मन्दिरं ।
धर्मशालां च विपुलां ते चिरं स्वर्गवासिन: ।। - ना•चं•14•326, 327

326. मनु स्मृ• 4•229

327. ना•च• 6•125

है[328]। इस प्रकार दान को सर्वोपरि स्वीकार करते हुये मोक्ष प्राप्ति के लिये भी इस को सहायक माना है।

सत्य-पालन -

सत्य-भाषण मन का सात्त्विक विचार कहा है। "सत्य" शब्द का अर्थ है "स्थिर" सर्वथा उपलब्ध, अभाव रहित। सत्य विचार करने वाला, सत्य-वक्ता और सत्-कर्म-कर्ता मनुष्य सत्याचारी कहलाता है। मनुस्मृति में कहा है कि प्रिय लेकिन सत्य भाषण ही करना चाहिये, असत्य परन्तु जो मधुर हो, ऐसा भाषण भी नहीं करना चाहिये -

सत्यं ब्रूयात्प्रियं ब्रूयान्न ब्रूयात्सत्यमप्रियम्।
प्रियं च नानृतम् ब्रूयादेष धर्मः सनातनः[329] ॥

नानक चन्द्रोदय महाकाव्य में सत्य को मूलरूप से सर्वोत्कृष्ट ब्रह्म ही स्वीकार किया है। सत्य का ज्ञान हो जाने पर ब्रह्मस्वयं प्रकाशित हो जाता है[330]। सत्य-संकल्प द्वारा अभीष्ट वस्तु प्राप्त होती है, जैसे मर्दन योगिराज नानक जी के चरण कमलों का आश्रय सत्य-संकल्प द्वारा ग्रहण कर लेता है[331]। मर्दन व्यवहार में भी सत्य भाषण का आचरण करता है, जिस से सत्य-बोलने के प्रति आस्था समाज में प्रतीत होती है। क्षुधार्त होने पर मर्दन नानकदेव के समाधिस्थ होने के समय नानकी के पास चला जाता है तथा अपनी भूख शान्त करता है, परन्तु नानक देव के बाद में पूछने पर, यथा-तथ्य सत्य बात कहता है, अनृत वचनों का सहारा ले कर बात को गुप्त नहीं रखता है। नानक देव स्वयं भी पिता जी के पूछने पर वास्तविकता को आच्छादित न रखते हुये धन के व्यय के बारे में बताते हैं[332]। सत्यस्वरूप को चरम सुख स्वीकार किया है, नानक भर्तृहरि को कहते हैं कि मैं "सत्य सुख का विलोड़न कर रहा हूँ। जिस

---

328. ना.चं. 14.339
329. मनु. स्मृ. 4.138
330. ज्ञाने सत्येष सत्यं स्वयमिह मनुते, ब्रह्म सर्वं न चान्यत् ॥ - ना.चं.1.82
331. ना.चं. 7.16
332. वही, 7.105 तः 108 पर्यन्तं एवं द्र. 4.35

से सत्य का स्वरूप परमानन्द रूप में भासित होता है -

कोशेषु सत्य सुखमेव विलोड्यामि[333] ।।

सत्य सन्तोष द्वारा अपूर्व कोश को प्राप्त किया जा सकता है । इसलिये परमार्थ भावना से इनका परिपालन करने का उल्लेख उपलब्ध होता है[334] । जब मनुष्य सत्य का आचरण करता है तो वह सत्य स्वरूप हो जाता है । इस लिये सत्य को गुरू रूप में उल्लिखित किया है[335] । तपस्वियों के सत्यशील आचरण का ज्ञान होता है । दत्तात्रेय कहते हैं कि तपस्वी कभी भी असत्य भाषण नहीं करते हैं[336] । इस प्रकार तपस्या में रत संन्यासियों को सत्य बोलने के लिये प्रेरणा दी गई है । ऐसे लोग भी समाज में दिखाई देते हैं, जो किसी बात की प्रतिज्ञा कर उस का पालन नहीं करते हैं, जैसे सांयत्रिक पांच सौ दीनारें गुरू निमित्त अर्पण करने की प्रतिज्ञा ग्रहण कर पश्चात् पांच ही गुरू अर्पण करता है[337] ।

सत्यव्रत को साधुशिरोमणि स्वीकार किया गया है[338] अर्थात् जो सत्य बोलता है उसे सर्वश्रेष्ठ स्वीकार किया जाता है । सत्य स्वरूप जीव ही माना गया है -

सत्य स्वरूप: कथितस्तु जीव:[339] ।

सन्देहास्पद विषय में निर्णय कर सत्य मत को स्वीकार करने का उल्लेख मिलता है[340] । धन, परिवार और गृह को मिथ्या मान कर तथा मोह का परित्याग कर सत्य रूपी सुख को प्राप्त करने के लिये प्रयास करने को कहा है[341] । इस प्रकार सत्य भाषण करने वाले के लिये स्वर्ग करस्थित बताया गया है अर्थात्

---

333. ना॰चं॰ 11॰14
334. सत्य सन्तोषसुभगो गम्यं निधिमवाप्नुहि ।
एषोऽर्थस्तव गोरक्ष भजस्व परमार्थत: ।। - ना॰चं॰ 12॰45
335. सन्तोषो जनक: क्षमा च जननी सत्यं गुरु: काश्यपो ।। - ना॰चं॰12॰154
336. ना॰चं॰ 13॰18
337. वही, 21॰94, 95
338. सत्यव्रत: साधुशिरोमणि: स: ।। - ना॰चं॰16॰28
339. ना॰चं॰ 16॰31
340. वही, 18॰175
341. वही, 18॰176

सत्यवादी स्वर्ग को प्राप्त कर सुखों को भोगता है[342]। सत्य का निरूपण सत् स्वरूप सर्वव्यापक पर ब्रह्म के रूप में किया गया है। सत्य का निष्ठा से परिपालन और परिवर्द्धन करने का उपदेश मिलता है। इसे स्वीकार कर नानक देव शरीरधारी होने पर भी साक्षात् देवस्वरूप में भूमि पर प्रख्यात होते हैं, जिस से सत्य ही परम शक्ति सम्पन्न दिखाई देता है -

सत्येपयावन्त्या प्रथित: पृथिव्यां, श्री नानको नर वपु: सुर एव साक्षात्।
स्मेरमुद्धरति स स्म विपत्तिजालाद्, व्यालादुपेत्य पतगेश इव प्रपन्नम्[343] ।।

अत: सम्पूर्ण सुखों को देने वाले तथा विपत्तियों से मुक्त करने वाले सत्य का प्रतिपादन साक्षात् ईश्वर स्वरूप में दृष्टिगोचर होता है, जो निखिल कामनाओं की पूर्ति करता है।

देव-पूजा -

भारतीय समाज में प्राचीन काल से ही देवी-देवताओं को मानने की प्रथा आस्तिक रूप से चली आ रही है। विभिन्न धार्मिक ग्रन्थों में विविध प्रकार के देवताओं के नामों का उल्लेख मिलता है। दैनिक पूजा-पाठ में प्रयुक्त वैदिक मन्त्रों में अनेक देवताओं के नामोल्लेख के साथ-साथ उन के स्वरूप का वर्णन भी मिलता है। आज भी वैदिक विधान के अनुसार देव-पूजा समाज में की जाती है।

नानक चन्द्रोदय महाकाव्य में अनेक देवी-देवताओं के उल्लेख से प्रति-भासित होता है कि उस समय भी समाज में देव-पूजा प्रचलित थी। महाकाव्य के प्रारम्भ में ही अंगद "ज्वालामुखी" देवी के दर्शन कर अपने अन्दर आच्छादित अन्धकार के आवरण को दूर करना चाहता है। जिस के नामोच्चारण से अनुमान होता है कि आजकल "हिमाचल प्रदेश" की पवित्र तपो भूमि पर स्थित "ज्वालामुखी" नामक देवी के बारे में कहा गया होगा क्योंकि इसी प्रदेश की

---

342. अप्रति ग्रहशीलो य: प्राणायामपरायण: ।
सत्यवादी शुचिर्दान्त स्वर्गस्तस्य करे स्थित: ।। - ना॰चं॰14॰333

343. ना॰चं॰ 19॰218

भूस्थली पर अन्य देवियाँ जैसे काँगड़ा, चामुण्डा, चिन्तपूर्णी, नयनादेवी और शीतला पर्वतों की चोटियों पर विराजमान हैं तथा श्रद्धालुजनों की कामनाओं को पूर्ण करती हैं -

आयामि मङ्गलद जङ्गलतः प्रदेशात्,
क्षत्रप्रसूतिरहमङ्गदनामधेयः ।।
ज्वालामुखीं भगवतीमवलोकयिष्यन्,
यामि स्वहार्दतिमिरावरणापनुत्यै[344] ।।

गुरूगोबिन्द सिंह मन्त्रज्ञाता, पवित्र विद्वानों को आमन्त्रित कर पाँच वर्षों तक होम के द्वारा भगवती की आराधना करते हैं तथा देवी, दर्शन देकर अर्चना द्वारा सन्तुष्ट हो उन्हें आज्ञा प्रदान करती है[345]। जिस से मन्त्रोच्चारण द्वारा देवताओं का प्रसन्न होना परिलक्षित होता है। प्रस्तुत महाकाव्य के प्रत्येक प्रस्ताव के आदि पद्य में "सरस्वती" देवी की वन्दना निर्विघ्नता के लिये एवं बुद्धिविकास हेतु की गई है[346]। जिस से शक्ति-स्वरूप देवियों की महत्ता स्वीकार्य दिखाई देती है।

आज समाज में जैसे धार्मिक अनुष्ठानों में सर्वप्रथम गणपति, गौरी तथा शिवजी इत्यादि की पूजा से कार्य का शुभारम्भ किया जाता है, वैसे ही देवताओं की पूजा का अवलोकन नानकदेव के जन्मकाल पर दिखाई देता है[347]। नवग्रह जो पूर्व ब्रह्माण्ड में अपनी शक्ति से व्याप्त हैं उन सूर्य, चन्द्रमा, भूमिसुत, बुध, गुरू, शुक्र, शनि, राहु और केतु का उल्लेख मिलता है[348]। इन सभी ग्रहों को पूजनीय माना गया है।

देव-पूजा में मन का स्थिर होना तथा एकान्तवास आवश्यक होता है, तभी सिद्धि प्राप्त होती है। इसीलिये महाकाव्य में गृहस्थ-रूपी पाश में बन्धे

---

344. ना॰चं॰ 1॰42
345. वही, 21॰140 तः 142 पर्यन्तं
346. वही, 2॰1 एवं द्र॰ 3॰1, 4॰1, 5॰1, 6॰1
347. आहूय बन्धून् गणकान् बुधांश्च, संपूज्य गौरीं गणनायकं च। -ना॰चं॰2॰51
348. ना॰चं॰ 2॰67

हुये मनुष्यों के लिये देव-पूजा अप्राप्य कही गई है[349] । गुरूनानक देव स्वयं देवताओं की पूजा करते हैं[350] । परन्तु देवताओं के नामों का उल्लेख नहीं मिलता है । जिस से सभी देवताओं के प्रति आदर प्रतीत होता है । आर्यों और म्लेच्छों के देवताओं में नानक अभिन्नता मानते हैं, वह उपास्य देव का एक स्वरूप स्वीकार करते हैं[351] । देवताओं की प्रसन्नता के लिये यज्ञों का अनुष्ठान दृष्टिगोचर होता है -

देवास्ते ते यज्वनां पूरयन्ति, कामास्तुष्टा कर्मभिस्तैश्च तैश्च ।
यज्वा यज्ञो देवता च त्वमेव, लीलामात्रं वास्तवोऽयं न भेद: [352] ।।

विष्णु पूजा एवं शिवपूजा का भी उल्लेख मिलता है, जो यम के दूतों से भी रक्षा करते हैं[353] । गंगादि पवित्र नदियों को देवी रूप में स्वीकार किया गया है तथा एकादशी के व्रत का आचरण करने वाला तथा शालिग्राम की विधान से पूजा करने वाला तीर्थों के तुल्य पुण्य प्राप्त करता है[354] । इस का उल्लेख किया गया है । श्रीरामचन्द्र जी की उपासना के लिये बल देते हुये नानक मर्दन को कहते हैं कि भाग्यवश अन्त में भी मनुष्य यदि "राम" नाम का उच्चारण करता है, तो वह संसार सागर को पार कर लेता है[355] ।

श्रीमद्भागवत पुराण में भी उल्लेख है कि जो इन्द्र, प्रजापति, शक्ति स्वरूपा देवी, रुद्र, अदिति, विष्णु और शिवादि देवताओं की पूजा करते हैं, वे अभीष्ट फल प्राप्त करते है[356] । इस प्रकार भागवत् पुराण के अनुसार रामादि की पूजा करने से परम दुर्लभ फल की प्राप्ति वर्णित उपलब्ध होती है । यद्यपि महाकाव्य में "नाम" का गान अधिक मात्र में मिलता है परन्तु अन्य देवी-

---

349. ना॰चं॰ 2॰90
350. वही, 5॰172
351. वही, 6॰89
352. वही, 13॰134
353. वही, 14॰327 एवं द्र॰ 328
354. वही, 14॰332 एवं द्र॰ 336
355. वही, 15॰167
356. अकाम: सर्वकामो वा मोक्षकामो उदारधी: ।
तीव्रेण भक्तियोगेन यजेत पुरुषं परम् ।। - भाग॰पुरा॰ 2॰3॰10 एवं द्र॰ 2 त: 9 पर्यन्तं

देवताओं के प्रति पूर्ण आस्था निर्धारित कर कवि ने सभी का यथा सम्भव निरूपण किया है । जिस से कह सकते हैं कि देवताओं को पूजनीय रूप में स्वीकार कर लोग उन की अर्चना किया करते थे तथा मनोवांछित फल करस्थ मानते थे । जैसे उल्लेख मिलता है कि राम, कृष्ण, नृसिंह, श्रीपार्वती और उन के वल्लभ शिवजी को तथा ब्रह्मा को भजने वाले उपासक का जीवन दु:खकर नहीं होता है । वह इन के शुभ चिन्तन द्वारा सुखों का उपभोग करता है-

रामं कृष्णममुं नृसिंहमथवा श्रीपार्वतीवल्लभं ।
ब्रह्माणं भजतो जनस्य न जनुर्जायेत दु:खाकर: [357] ।।

अत: इन सभी देवताओं की पूजा सभी को करने हेतु उल्लेख किया गया है । जिससे मनुष्य दु:खों से मुक्ति प्राप्त कर सकता है ।

सत्संगति-महिमा -

सत्संगति आत्मसंयम में सहायक सिद्ध होती है । सत्संगति कभी भी निष्फल नहीं जाती है । जैसी संगति में मनुष्य रहता है, वैसे ही गुण वह ग्रहण करता है । महाभारत में कहा गया है कि विद्या, कर्म और जन्म जिस के शुद्ध हों उन की सेवा करनी चाहिये, शास्त्रों की अपेक्षा उन लोगों की संगति विशेष ज्ञान देने वाली होती है [358] । नानक-चन्द्रोदय महाकाव्य में भी सत्संगति की महिमा तथा सज्जन लोगों के चरित्रों का उल्लेख उपलब्ध होता है । नानक सदृश सज्जन मलिन बुद्धि वालों के मन को शोधित करते हैं, जो शास्त्रों में पारंगत "स्वयंभू" होते हैं एवं ज्ञान वैराग्य की धारा अन्य लोगों में प्रसारित करते हैं [359] । सज्जनों के संसर्ग का फल अवश्यम्भावी होता है, इसलिये खलों की संगति का निषेध तथा श्रेष्ठ लोगों की संगति से मुक्ति का मार्ग प्रशस्त

---

357. ना.चं. 19.184

358. येषां त्रीण्यवदातानि विद्या योनिश्च कर्म च ।
तान्सेवेत्तै: समाख्या हि शास्त्रेभ्योऽपि गरीयसी ।।
- महा.भा. 3.1.27 (वन पर्व)

359. ना.चं. 1.13

बताया है[360]। सत्संगति दु:खी व्यक्ति के लिये अमृत के समान कही गई है[361]। अर्थात् जैसे मरुस्थल में वर्षा तथा दरिद्र के लिये सुवर्ण कलश सुखदायी होता है वैसे ही सत्संगति सुखों से परिपूर्ण होकर अमृतरस पान कराती है। सत्पुरुषों के बारे में उल्लेख किया है कि वे संयमी, दयाशील, यश की अभिलाषा वाले, धार्मिक और परमार्थ के दर्शक गुणों से भरपूर होते हैं[362]। साधुजनों से अनुराग रखने वाले सत्पुरुष अपने को महान् नहीं मानते हैं[363]। सज्जनों की शुश्रूषा द्वारा ही वे आनन्दपान करते हैं।

सत्संगति शीलस्वभाव द्वारा सभी को प्रिय होती है तथा सुखानुभूति देती है। परन्तु भाग्य के बिना उस का प्राप्त होना सम्भव नहीं होता है[364]। भर्तृहरि ने भी कहा है कि सत्संगति मनुष्यों के लिये सब कुछ करती है -

जाड्यं धियो हरति सिंचति वाचि सत्यम्।
मानोन्नतिं दिशति पापमपाकरोति।।
चेत: प्रसादयति दिक्षु तनोति कीर्तिम्।
सत्संगति: कथय किं न करोति पुंसाम्[365] ।।

नानक चन्द्रोदय महाकाव्य में भी यहाँ तक कह दिया है कि सज्जन-वृन्द परोपकार की भावना से कार्य करते-करते स्वशरीर त्याग देते हैं। परन्तु अपने में परिवर्तन नहीं आने देते हैं। दीनों के प्रति वे दयावान् होते हैं[366]। चाणक्य नीति में भी उल्लेख किया गया है कि सज्जनों के संग से दुर्जनों में श्रेष्ठता आ जाती है परन्तु दुर्जनों के साथ से सज्जनों में दुर्जनता नहीं आती है। जैसे पुष्प

---

360. ना॰चं॰ 1॰68
361. अवग्रहे वृष्टिरियं पृथीयसी, सुवर्णकुम्भाधिगतिर्दरिद्रत:।
उदीर्णदाहस्य सुधारसच्छटा, समाति दूनस्य तवाद्य संङ्गति:।।
- ना॰चं॰ 1॰112
362. जितेन्द्रिया दीनजने दयालवो: यशोर्थिनो.....।
वसन्ति यस्यां.....सहस्रश: सत्पुरुषा महाकुला:।।- ना॰चं॰ 2॰17
363. ना॰चं॰ 4॰27
364. वही, 5॰173
365. भर्तृ॰ शतकत्रयी, नी॰ श॰ 23
366. ना॰चं॰ 6॰40 एवं द्र॰ 6॰116

की सुगन्धि मिट्टी में अवश्य आ जाती है परन्तु मिट्टी की पुष्प में नहीं आती है[367]। नानकचन्द्रोदय महाकाव्य में सज्जनों को दरिद्र कहा है क्योंकि सत्संगति के प्रभाव से उन को किसी वस्तु की आवश्यकता नहीं रहती है तथा वे सर्वस्व त्याग कर परोपकार ही करते हैं[368]। ज्ञानी सज्जन लोग शान्त-मन रहते हैं उन के अन्दर थोड़ा भी विकार उत्पन्न नहीं होता है[369]। सत्संग के प्रभाव से कटु वचन सुन कर भी शान्त रहते हैं। गंगाम्बु और मलयाचल पर उत्पन्न चन्दन की तरह आश्रय धारण करने वाले को आत्मतुल्य कर देते हैं[370]। इस प्रकार सन्तों की गरिमा का निरूपण उपलब्ध होता है। सत्संगति से साधारण मनुष्य भी ज्ञान को प्राप्त कर मुक्त हो जाता है, इस को उद्धृत करते हुये "फेरू" नामक वीणावादक की "तत्त्वज्ञता" नानक के सङ्ग से दिखाई गई है[371]। सद्विचारों एवं महापुरुषों के आख्यानों का कथन सन्तों में होता है, जिसे श्रवण कर अल्पज्ञ अङ्गद जैसे सामान्य मनुष्य भी भक्ति में मग्न हो जाते हैं[372]। अर्थात् सत्संगति द्वारा आध्यात्मिकता का ज्ञान और सद्गुरु का उपदेश मिलता है। सत्संगति को विमलतीर्थ कहा है, जिस में स्नान कर मनुष्य पवित्र हो जाता है, इस से उन्नत दूसरा तीर्थ नहीं माना गया है -

सत्संङ्गतिं विमलतीर्थमुदीरयन्ति[373] ।।

मूर्खों के साथ सङ्गति करने से दुःख प्राप्त होते हैं, इसलिये मूर्खों के साथ सङ्ग होने का पश्चाताप किया गया है[374]। अपने अमूल्य जीवन को जड़बुद्धि व्यक्ति के संसर्ग द्वारा नष्ट करने से उस की सङ्गति का त्याग ही श्रेयस्कर होता है। सज्जनों के सङ्ग का अमृतपान करने से "विरोचनतात" जैसे विहंग भी मनुष्य वाणी उच्चारण करते हैं[375]। इस प्रकार सत्संगति अपनी शक्ति द्वारा

---

367. सत्संगाद् भवति हि साधुता खलानां·····।
आमोदं कुसुमसंभवं मृदेव धत्ते मृद्गन्धं नहि कुसुमानि धारयन्ति ।।
- चाण·नीति· 12·7

368. सत्सङ्गतस्ते परिणाम एषः, सन्तोदरिद्राः स्वसमंवरन्ति ।।-ना·चं·6·126

369. ना·चं· 6·130

370. वही, 6·139

371. वही, 7·87

372. वही, 8·109

373. वही, 11·16

374. वही, 9·4

{375} वही, 13·56

जड़बुद्धियों और पक्षियों के हृदयों में भी सद्भावना का संचार कर देती है ।

निकृष्ट कर्म करने वालों को तथा संसार सागर रूपी समुद्र को पार करने के लिये सज्जनों द्वारा निर्दिष्ट मार्ग का आश्रय-ग्रहण करने का उल्लेख मिलता है[376] । इस प्रकार सत्सङ्गति के गुणों का विश्लेषण करते हुये सज्जनों की उदारता, दयाशीलता एवं त्याग की भावना का वर्णन किया गया है । साधुजनों की सर्वोत्कृष्टता स्वीकार की गई है । परमेश्वर के साथ समीपता का उल्लेख करते हुये उद्धृत है कि सज्जनवृन्द शीघ्र प्रभु को जान लेते हैं तथा दीनों से वे प्रेम करते हैं । ईश्वर का साक्षात्कार कर उनके विभ्रम-रूपी अन्धकार का क्षय हो जाता है[377] । संगति के प्रभाव द्वारा मनुष्य उन्नतपद ग्रहण करता है । निरन्तर गुरू जी का संसर्ग एवं सेवा द्वारा अंगद गुरू पद पर आसीन होता है[378] । जिस से सत्संगति की श्रेष्ठता द्योतित होती है ।

अत: सत्संगति मनुष्य के लिये अत्यन्त आवश्यक तथा अमृततुल्य होती है । जिस का अनुकरण करने से राष्ट्र समृद्ध, सच्चरित्रवान् एवं श्रेष्ठ व्यक्तियों से युक्त हो सकता है ।

निषेधात्मक-कृत्य-वर्जन -

असत्य-भाषण, परद्रोह, अभक्ष्य-भक्षण, क्रोध और चरित्रहीनतादि निषिद्धाचरण हैं, जिन का त्याग करने से जीवन यापन में सुख-शान्ति रहती है। मनुस्मृति में कहा है कि दु:खकारक परिणाम वाले दस व्यसन काम से उत्पन्न होते हैं, और आठ क्रोध से पैदा होते हैं । इन सभी का प्रयत्नपूर्वक त्याग करना चाहिये -

---

376. ना•चं• 16•97 एवं द्र• 99, 133

377. ज्ञापयन्ति परमेश्वरं परं साधव: सपदि दीनवत्सला: ।
ईश्वरे त्वधिगते गतं तमो विभ्रमस्य सकलस्य कारणम् ।। -ना•चं•16•134

378. ना•चं• 19•195

दश कामसमुत्थानि तथाऽष्टौ क्रोधजानि च ।
व्यसनानि दुरन्तानि यत्नेन परिवर्जयेत्[379] ।।

शिकार करना, जुआ खेलना, दिन में सोना, दूसरे के दोषों का वर्णन करना, स्त्री चिंतन, मदिरापान, नृत्य, गाना, बजाना, तथा निरुद्देश्य भटकना ये काम से उत्पन्न होने वाले दोष हैं तथा चुगली करना, बिना विचारे कार्य करना, द्वेष, ईर्ष्या, दूसरे के गुणों में दोष देखना, दूसरे की वस्तु लेना, कटु वचन बोलना और मारपीट करना ये क्रोध से उत्पन्न होते हैं[380] । इनका वर्जन करना परमावश्यक कहा गया है ।

नानक चन्द्रोदय महाकाव्य में अनेक निषिद्धाचरणों का उल्लेख मिलता है । सर्वप्रथम यहाँ दान की महत्ता सभी शास्त्रों में कही गई है उसी के लिये कहा है कि दूसरे के धन का उदारता से दान नहीं करना चाहिये[381] । अत: स्वोपार्जित धन के दान की श्रेष्ठता की ओर ही संकेत किया गया है । बोलाराय कहते हैं कि द्यूतादि दुर्व्यसन होने पर भी पिता पुत्र पर दयालु होते हैं[382] । अभिप्राय यह है कि पिता पुत्र के साथ सहज स्नेह से उसे क्षमा करता है परन्तु जैसे जुआ खेलना आदि निषिद्धाचरणों की समाज में निन्दा की जाती है, आदि से यहाँ अन्य शराबपान, असत्य भाषणादि निन्दनीय व्यसनों की ओर भी संकेत दिखाई देता है । पाणिग्रहण संस्कार कर पत्नी के प्रति उदासीनता को भी समाज में निन्दा की दृष्टि से देखा जाता है[383] । चन्दोराज्ञी कहती हैं कि यदि नानक को सांसारिक सुखों से विरक्ति थी तो उसने पहले विवाह क्यों

---

379. मनु॰स्मृ॰ 7॰45

380. मृगयाऽक्षो दिवास्वप्न: परिवाद: स्त्रियो मद:.....।
पैशुन्यं साहसं.....क्रोधजोऽपि गणोऽष्टक: ।। -मनु॰स्मृ॰7॰47,48

381. उदारता केयमहो परस्य धनेषु दानव्यसनं किमेतत् ।। -ना॰चं॰4॰50

382. द्यूतादिकं दुर्व्यसनं यदि स्यात्तथापि वाले पितरौदयालू ।। वही, 3॰47

383. चन्दोराज्ञीव्याजहाराथ खिन्ना.....।
निर्विण्णश्चेज्जीवलोकस्य.....किं ते पूर्वं हन्त जगाद पाणिम् ।।
- वही, 6॰10

किया । इस प्रकार आज समाज में दृष्टिगोचर दहेज प्रथा के कारण पत्नी त्याग का जो प्रचलन अतीव हो रहा है, उन वैभव-लालसियों के लिये यह एक शिक्षा दी गई है कि दहेजादि लोभ से तो पत्नी त्याग निषिद्धाचरण है परन्तु वैरागी मनुष्य के लिये भी जाया त्याग निषेध होता है । क्योंकि स्त्री बिना आश्रय के नहीं रह सकती है[384] । अत: सांसारिक सुखों से विरक्त के लिये पूर्व विवाह न करने के लिये कहा है ।

म्लेच्छ अपने पूजनीय देवता की ओर पाँव कर शयन करने का निषेध करते हैं[385] । भले ही नानक प्रभु को सर्वव्यापक स्वीकार करते हैं परन्तु म्लेच्छों के मतानुसार देवता की ओर पैर करना अपराध होता है । इस प्रकार म्लेच्छ धर्म को उद्धृत कर उन की अपने देव के प्रति आस्था प्रतिपादित की गई है । निषिद्ध-कृत्यों द्वारा जिन नरकों को मनुष्य प्राप्त करता है, उन का विस्तृत उल्लेख उपलब्ध होता है । सर्वप्रथम तामिस्र कालसूत्र नामक नरक माने हैं -

तामिस्रश्चान्धतामिस्रो महारौरवसंज्ञक: ।
कुम्भीपाको रौरवश्च कालसूत्रमुदीरितम्[386] ।।

इन के अतिरिक्त असिपत्रवन, शूकरमुख, अन्धकूप, संदंश, कृमि भोजन, तप्तसूर्मि, वज्रकंटकशाल्मली, क्षारकर्दम, वैतरणी, प्राणरोध, विशासन, अवीचि, अप:पान, शूलप्रोत, दन्दशूक, वटतिरोधन, पर्यावर्तन और सूचीमुख[387] नरक कहे हैं, जिनको निषेधात्मककृत्यों को करने से मनुष्य प्राप्त कर, यातनाओं को प्राप्त करता है । भागवत पुराण में भी इक्कीस मुख्य नरकों का उल्लेख मिलता है -

तत्रैके नरकानेकविंशति गणयन्ति[388] ।

इन सभी में प्राप्त होने वाले दु:खों का वर्णन किया है, जिन्हें निषिद्धाचरणों द्वारा मनुष्य प्राप्त करते हैं[389] । नानकचन्द्रोदय महाकाव्य में भी इसी प्रकार

---

384. जानन्ति सन्तो वनिता लतेव, विनावलम्ब कथमेव तिष्ठेत् ।।-ना.चं.6.16
385. ना.चं. 10.24 त: 26 पर्यन्तं
386. वही, 14.273
387. वही, 14.274 त: 277 पर्यन्तं
388. भाग.पुरा. 5.26.7
389. वही, 5.26.8 त: 18 पर्यन्तं

निषिद्ध कर्मों का उल्लेख करते हुये कहा है कि जो स्त्रियों को संतप्त तथा पर स्त्री का हरण करता है वह तामिस्र नामक नरक को, पुरुष को कपट से ठग कर इसकी दारादि का उपभोग करता है वह अन्ध तामिस्र में, प्राणियों से द्रोह करने वाला रौरव में, क्रूर कर्मों द्वारा जो स्व देह पोषण करता है, वह महारौरव में, करुणाहीन हो कर हिंसा करने वाला कुम्भीपाक में जाता है। इस प्रकार देवता, द्विज और अपने पिता के प्रति द्वेष करने वाला भी कालसूत्र नामक इन नरकों को प्राप्त करता है[390]। इसी प्रकार सभी निषिद्ध कर्मों का उल्लेख करते हुये सभी से मिलने वाले कष्टों का वर्णन किया गया है[391]। इन कर्मों का वर्णन करते हुये नानक कहते हैं कि इन के सेवन द्वारा मनुष्य अधोगति को प्राप्त होते हैं। इसीलिये असत् कर्मों का त्याग कर "हरि" प्राप्ति के लिये सत्कर्मों के आचरण का विधान उल्लिखित किया गया है -

तस्मादसत्कर्म विहाय दूरे, सत्कर्म कुर्वन् हरितोषणाय।
निवृत्तिमार्गस्वरसः शरण्यं, श्रीशं प्रपन्नः समुपैति मुक्तिम्[392]॥

निषेधात्मक कर्मों के विपाक-विचार का भी उल्लेख मिलता है। विहित कर्मों का अनुष्ठान न करने पर, निन्दित कर्मों का सेवन करने पर तथा इन्द्रियों का निग्रह न करने पर मनुष्य पतित होता है[393]। ब्रह्म हत्या करने वाले, सुरापान करने वाले एवं सुवर्ण आदि का हरण करने वाले महापातकी कहे हैं। वे अपने-अपने क्षीण कर्मों के अनुसार मृग, श्व, सूकर, उष्ट्र, कृमि, कीट और पतङ्ग इत्यादि योनियों को प्राप्त करते हैं[394]। इस प्रकार निषेधात्मक-कृत्यों का उल्लेख कर उन से मिलने वाले दुःखों का वर्णन करते हुये उन को करने से रोका गया है तथा अनिन्दित-कर्मों का अनुष्ठान करने से मिलने वाले सुखों का निरूपण स्वर्ग-प्राप्ति बता कर किया गया है। जैसे वापी, कूप,

---

390. ना॰चं॰ 14·278 तः 283 पर्यन्तं
391. वही, 14·284 तः 290 पर्यन्तं एवं द्र॰ 291 तः 303 पर्यन्तं
392. वही, 14·306
393. वही, 14·308
394. वही, 14·309 तः 319 पर्यन्तं

तालाब बनवाने वाले, वृक्षारोपण करने वाले, गोग्रास देने वाले, तुलसी पूजक, विष्णु भक्त, शिवसेवक, धर्मशाला आदि निर्माण करने वाले स्वर्ग को प्राप्त करते हैं[395]। अर्थात् शुभ कर्मों का अनुष्ठान करने के लिये ही प्रेरणा दी गई है। साराँश रूप में नानक कहते हैं कि मन, वाणी और कर्म तीनों अवस्थाओं में जो किसी को पीड़ा नहीं देते हैं, वे यमालय को प्राप्त नहीं करते हैं -

कर्मणा मनसा वाचा सर्वविस्थासु सर्वदा ।
परपीडां न कुर्वन्ति न ते यान्ति यमालयम्[396] ।।

सज्जन नानक चोर को भी उपदेश देते हैं कि तुम मलिन कर्मों को मत करो[397]। इस प्रकार चोरी इत्यादि निषिद्ध कर्मों को न करने का उपदेश उन्होंने समाज को दिया है।

किसी भ्रमवश निषिद्ध-कर्म के हो जाने पर उस का पश्चाताप करना दिखाई देता है। जब गुरुदत्त मृग के भ्रम से विप्र गाय की हत्या करता है तो पिता उस की निन्दा करते हैं। गुरुदत्त को भी जब अपनी भूल का आभास होता है तो वह उस के प्रतिकार स्वरूप अपने प्राणों का त्याग कर देता है[398]। इस प्रकार निषिद्धाचरण हो जाने पर उस के पश्चाताप में प्राणों का बलिदान दे कर समाज को उन का आचरण न करने का उपदेश दिया गया है, ताकि जीवन सफल हो सके।

अत: स्वर्ग-नरक का निरूपण करते हुये सत्कर्मों के अनुष्ठान करने तथा निषेधात्मक कृत्यों का त्याग करने का प्रतिपादन किया गया है, जिस का ज्ञान होना प्रत्येक मनुष्य को परमावश्यक है।

= = = = = = =

---

395. ना॰चं॰ 14·326 त: 334 पर्यन्तं
396. वही, 14·324
397. वही, 16·94
398. वही, 20·125, 126, 129

षष्ठ अध्याय

दार्शनिक एवं नैतिक मान्यतायें

(क) दार्शनिक मान्यतायें

(ख) सम्मान प्रदर्शन

(ग) विनम्र व्यवहार

(घ) अतिथि सत्कार

(ङ) सामाजिक नैतिकता

= = = = = =

षष्ठ अध्याय

नैतिक एवं दार्शनिक मान्यतायें

दार्शनिक मान्यतायें -

"दृश्यते अनेन इति दर्शनम्" सत्य-स्वरूप तात्त्विक वस्तु की सम्यग् जानकारी जिस के द्वारा हो वह दर्शन कहलाता है । जिज्ञासु की इच्छा को दर्शन पूर्ण करता है । जब, हम कौन हैं ? कहाँ से और क्यों आये हैं ? विश्व का रचयिता कौन है ? उस का निवास कहाँ है ? इत्यादि प्रश्न चिन्ह मस्तिष्क में मण्डराते हैं तब दर्शन इन सभी का उत्तर प्रदान करता है । दर्शन के अन्तर्गत बाह्य संसार के क्रिया कलाप नहीं आते हैं, परन्तु आन्तरिक जीवन की रचना (सृष्टि) करने वाले कार्य आते हैं । इस लिये आत्म-ज्ञान को ही दर्शन कहा जाता है । दर्शन मनुष्य के नैतिक और आध्यात्मिक विचारों को देखता है । मनुष्य जिज्ञासा की प्रवृत्ति द्वारा निरन्तर नवीन वस्तुओं का अन्वेषण करता है तथा दर्शन उस के उद्देश्य की पूर्ति के लिये दिशा-निर्देश कर के सहायक सिद्ध होता है, स्वयं भी उस कार्य को सम्पन्न करने की आन्तरिक इच्छा रखता है । इस प्रकार मनुष्यों की आत्मायें, जो कि उच्चकोटि की जिज्ञासा ग्रहण कर अखिल-जगत् की समग्र वस्तुओं का ज्ञान रखना चाहती हैं, उस लक्ष्य की प्राप्ति को सम्भव करने हेतु भी, योजना का विचार करती हैं । डा॰ देवराज ने कहा है कि "दर्शन हमारे सामने अणु तथा विराट जगत् के असंख्य रूपों को उपस्थित करता है, जीवन की अनगिनत सम्भावनाओं एवं दृष्टियों की सद्भावना करता है और जीवन तथा जगत् के असंख्य सम्बन्धों की ओर हमारा ध्यान आकृष्ट करता है । इस प्रकार दर्शन हमें जीवन की क्षुद्र स्थितियों से ऊपर उठ कर विश्व ब्रह्माण्ड की हलचल के केन्द्र में स्थापित कर देता है । अत: दर्शन हम में जो चेतना उत्पन्न करता है, वह जीवन को उच्चतम कोटि की तृप्ति

देता है"[1]।

नानकचन्द्रोदय महाकाव्य में दर्शन सम्बन्धी मान्यताओं का विवेचन उपलब्ध होता है। दार्शनिक मान्यताओंमेंकर्मवाद, भाग्यवाद, देववाद और एकेश्वरवाद इत्यादि का निरूपण निम्नलिखित प्रकार से निर्दिष्ट मिलता है।

कर्मवाद -

मानव जीवन पर कर्मवाद का विशेष प्रभाव होता है, वास्तव में हमारा जीवन कर्म पर ही आधारित है। वैदिक और दार्शनिक साहित्य के ग्रन्थों में इस का विवेचन मिलता है। ऋग्वेद में कहा है कि "पूर्व जन्म के किये हुये नीच कर्मों का फल भोगने के लिये प्राणी लता, वृक्ष आदि के शरीर में प्रविष्ट होता है[2]। ऋग्वेद में ही, शुभकर्मों को करने वाले लोग मृत्यु के उपरान्त "देवयान" रास्ते से ब्रह्मलोक को जाते हैं तथा सामान्य कर्मों को करने वाले "पितृयान" मार्ग द्वारा चन्द्रलोक जाते हैं[3]। इस प्रकार कर्मवाद का निरूपण करते हुये शुभ, अशुभ एवं सामान्य तीनों कर्मों के फलों का चित्रण कर दिया है। बृहदारण्यक उपनिषद् में उल्लेख मिलता है कि जो जैसा आचरण करता है, कर्मानुसार वैसा ही फल प्राप्त करता है -

स वा अयमात्मा ब्रह्म विज्ञानमयो मनोमय.....इति।
यथा कारी यथाचारी तथा भवति। साधुकारी साधुर्भवति पापकारी पापो भवति, पुण्य: पुण्येन कर्मणा भवति पाप: पापेन[4]।।

इस प्रकार मनुष्य अपने कर्मों द्वारा स्व भविष्य निर्माण करता है। विवेकचूड़ामणि में कहा है कि मनुष्य अपने-अपने कर्मों का ही फल प्राप्त करते हैं; जैसे जो पथ्य और औषधी का सेवन करता है, उसी को आरोग्यता होती है, किसी और द्वारा सेवित औषधी से नीरोगता नहीं आती है। इसी प्रकार दूसरे के

---

1. संस्कृति का दार्शनिक विवेचन, डा. देवराज, पृ. 276
2. ऋग्वेद. 7.9.3
3. वही, 3.55.15
4. बृह.उप., 4.4.5 एवं द्र. 6,7

शुभकर्मों का फल अन्य को प्राप्त नहीं हो सकता है -

पथ्यमौषधसेवा च क्रियते येन रोगिणा ।
आरोग्यसिद्धिर्दृष्टास्य नान्यनुष्ठित कर्मणा[5] ।।

भागवत पुराण में मनुष्य को शुभकर्मों का अनुष्ठान करते रहने के लिये कहा है ताकि शुभफल मिलता रहे -

तावत्कर्माणि कुर्वीत न निर्विद्यते यावता ।
मत्कथाश्रवणादौ वा श्रद्धा यावन्न जायते[6] ।।

वेदान्त दर्शन में उल्लेख है कि शुभकर्म न करने वाले पापी यमलोक में पाप का फल भोग कर चन्द्रमार्ग से यहाँ लौट आते हैं[7]। पातंजल योग दर्शन में जिस कर्म को करने से दु:ख प्राप्त होगा, उस हेय कर्म को नहीं करने के लिये कहा गया है -

हेयं दु:खमनागतम्[8] ।

सांख्य दर्शन में शुभकर्मों का आचरण करना आवश्यक प्रतिपादित किया है[9]। इस प्रकार सभी शास्त्रों में कर्मवाद को स्वीकार करते हुये निषिद्ध कर्मों का त्याग तथा शुभ कर्मों का अनुशीलन करने का निरूपण किया गया है। रामायण में भी उल्लेख है कि "कौशल्या को पुत्र वियोग इस लिये हुआ होगा क्योंकि उस ने पूर्वजन्म में अन्य स्त्रियों को उन के पुत्रों से वियुक्त कराया होगा -

नूनं जात्यंतरे तात स्त्रिय: पुत्रैर्वियोजिता: ।
जनन्या मम सौमित्रे तदयैतदुपस्थितम्[10] ।।

मार्कण्डेय पुराण में उद्धृत है कि कर्म की शक्ति मानव की सब से बड़ी शक्ति है। यही उस की विजय है। कर्म में अत्यधिक शक्ति होती है, यदि मनुष्य कर्म से हीन होता है तो वह स्पर्श योग्य भी नहीं होता है अर्थात् कर्म का फल उसे अवश्य मिलता है[11]। अष्टाध्यायी में भी उल्लेख किया गया है कि सुकर्मों से

---

5. विवे॰चूड़ा॰ 55
6. भाग॰पुरा॰ ।।॰20॰9
7. संयमने त्वनुभूयेतरेषामारोहावरोहौ तद्गतिदर्शनात् ।।-वेदान्त॰दर्श॰3॰1॰13
8. पा॰यो॰ दर्श॰ 2॰16
9. मंगलाचरणं शिष्टाचारात् फल दर्शनाच्छ्रुतितश्चेति ।। - सांख्य॰दर्श॰5॰1
10. वाल्मी॰रामा॰ 2॰53॰19
11. पक्षेण कर्मणोहान्यात्प्रयात्यस्पृश्यतांनर: ।
किमत्र···नित्यकर्मण: ।। - मार्क॰पुरा॰61॰66, पृ॰72 एवं द्र॰54॰48,49 पृ॰22

पुण्य प्राप्त होता है[12]। योग-दर्शन में मनुष्य के कर्मों को तीन प्रकार का पुण्यमय, पापमय तथा पुण्यपापमिश्रित माना गया है -

कर्माशुक्लाकृष्णं योगिनस्त्रिविधमितरेषां[13] ।।

ब्रह्म-पुराण में पुण्य प्रदान करने वाले कर्मों को अनुष्ठित करने के लिये कहा गया है -

कर्मणा सर्वधान्यानि सेत्स्यन्ति नृपसत्तम ।
तस्मात्सर्वात्मना कर्म कर्तव्यं वैदिकं नृभिः ।।
तेन भुक्तिं च मुक्तिं प्राप्नुवन्तीह मानवाः ।
अकर्मणः कर्म पुण्यं कर्म चाप्याश्रमेषु च[14] ।।

इस प्रकार सभी लक्षण ग्रन्थों में कर्मवाद के महत्त्व का प्रतिपादन दृष्टिगोचर होता है ।

नानक चन्द्रोदय महाकाव्य के अध्ययन से ज्ञात होता है कि कर्मवाद के सिद्धान्तों को तत्कालीन समाज के लोग समझते थे । उन लोगों के लिये महाकाव्य में कर्मवाद का चित्रण किया गया है । "कर्माणि नाना-फलदायकानि"[15] । इस उल्लेख से ज्ञात होता है कि कर्म ही विभिन्न प्रकार के फलों को प्रदान करते हैं । सत्कर्म श्रेष्ठ-परिणाम को, तथा निषिद्ध-कर्म निन्दनीय फल देते हैं । सर्वज्ञ प्रभु मनुष्य के कर्मों को देखता है, जन्मान्तर में उन श्रेष्ठ-अश्रेष्ठ कार्यों का फल उन को ग्रहण होता है[16] । कर्मानुसार ही मनुष्य को सुख-दुःखानुभूति का आस्वादन बताया गया है ।मन, वाणी और कर्म द्वारा ईश्वर की प्रसन्नता कर जीवन में अतीव लाभ प्राप्त होता है । इस प्रकार ईश्वर को कर्मों का द्रष्टा तथा तदनुसार फलों को देने वाला माना गया है -

वृथा प्रलापैरपयाति पुंसः, क्षणं क्षणं स्रोत इवायुरङ्ग ।।
मनो वचः कर्मभिरीश्वरस्य, प्रसादनं जन्मनि भूरिलाभः[17] ।।

---

12. अष्टा. 6.2.152.
13. पा.यो.द. 4.7
14. ब्रह्म.पुरा. 88.12,13
15. ना.चं. 19.9
16. वही, 19.58
17. वही, 19.114

कर्मानुसार मनुष्य इस लोक और पर लोक में फल भोगते हैं । जो निकृष्ट कर्मों का आचरण करते हैं वे मरणोपरान्त दु:ख प्राप्त करते हैं । देवता, ब्राह्मण और पिता से द्वेष करने वालों के लिये कालसूत्र नामक नरक में संतप्त होने का उल्लेख दिखाई देता है[18] । पुण्य कर्मों द्वारा "हरि" की प्राप्ति सुलभ कही है, इसलिये मनुष्य जन्म को प्राप्त करने हेतु एवं "प्रभु" को पाने हेतु शुभ-कर्मों को करने का उल्लेख किया गया है[19] । अपने कर्मों को जानने वाले क्षत्रिय लोग समस्त धर्म के, कलियुग में नष्ट हो जाने पर भी वेदमार्ग से विचलित नहीं होते हैं[20] । क्योंकि वे कर्म को ही सर्वोपरि स्वीकार कर उस का पालन करते हैं । विश्वपालक को कर्मों का साक्षी कहा गया है[21] । वह शुभ-अशुभ कर्मों पर दृष्टि रखता है, उस की प्रसन्नता के लिये तपस्वी लोग कार्यशील रहते हैं । यात्री जिस प्रकार रात्रि-काल में धर्मशालादि का आश्रय ग्रहण कर प्रात:काल अपनी दिशा की ओर प्रस्थान करता है, उसी प्रकार मनुष्य अपने-अपने कर्मों का अनुसरण करता है[22] । अर्थात् शुभ कर्मों से शुभ तथा अशुभ कर्मों द्वारा अशुभ फल प्राप्त करना कहा है । इस जगत् में किये जाने वाले कर्मों के अनुसार फल को कहा है -

धर्माधर्मविदो तदस्य जगत: कर्मानुसारात्फलम् ।
केनेशेन विना प्रदीपत इदं जीवेन वा कर्मणा[23] ।।

श्री गुरू नानक देव ने नरकों का वर्णन करते हुये कर्मों के अनुसार नरक में मनुष्यों की यातनाओं का वर्णन किया है[=] तथा कर्मों के फल को अवश्यम्भावी बताया है । करुणा रहित हो कर जो पशु-पक्षियों की हत्या करता है वह नरक में जाता है

---

18. ना•चं• 14•283
19. वही, 19•115
20. वही, 2•19 एवं द्र• 2•22
21. वही, 3•15
22. पान्था यथा रात्रिषु•••••पुन: प्रभाते ।
स्वां स्वां दिशं यान्ति••••स्वकर्मानुसृत: स्थिरो न ।। - ना•चं•8•36
23. ना•चं• 12•16

तथा यमदूतों द्वारा उस का शरीर गर्म तेल में तपाया जाता है[24] । इस प्रकार नानक देव ने सभी नीच कर्मों तथा उन से मिलने वाले फलों का वर्णन किया है[25] । जिस से उन की कर्मवाद पर पूर्ण आस्था दिखाई देती है । भगवती सूत्र में भी इसी प्रकार उल्लेख मिलता है कि अपने पाप-कृत्यों के फल स्वरूप लोग दु:खों को प्राप्त करते हैं तथा पापपूर्ण कृत्यों का फल नष्ट होने पर सुखानुभूति होती है[26] । नानक-चन्द्रोदय महाकाव्य में भी शुभ कर्मों द्वारा शुभ फल प्राप्ति कही है । सत्कर्मों का सेवन करने वाला मनुष्य उन के परिणाम स्वरूप सुखों का उपभोग ही करता है । अर्थात् साधु-संन्यासियों के लिये मठ निर्माण करने वाला, विश्राम गृह तथा विपुल धर्मशालाओं को बनवाने वाला स्वर्ग में सुख प्राप्त करता है -

मठं यतीनां कुर्वन्ति ये च विश्राममन्दिरं ।
धर्मशालां च विपुलां ते चिरं स्वर्गवासिन:[27] ।।

इसी प्रकार वापी, कूप, तालाब, विष्णु-शिव उपासक, अतिथि सेवक, गंगा में स्नान करने वाले, सत्यवक्ता और गुरूसेवक इत्यादि शुभ कर्मों को करने वालों के लिये श्रेष्ठ फल स्वरूप स्वर्ग की प्राप्ति वर्णित की गई है[28] । नानक-देव कर्म को सत्य स्वीकार करते हुये कहते हैं कि इसीलिये बुद्धिमान लोग योगादि-शुभाचरणों को करते हैं ताकि सत्य स्वरूप फल प्राप्त हो सके -

तमब्रवीन्नानकयोगिवर्य:, प्रारब्धतो यद् दहति प्रबोध: ।
कर्मेति सत्यं खलु तज्जयाय, चरन्ति योगं कृतबुद्धयो ये[29] ।।

अत: निष्कर्ष रूप मे कह सकते हैं कि शुभ-अशुभ कर्मों तथा उन के फलों का निरूपण कर कर्मवाद के महत्त्व को स्वीकार किया गया है । असत् कर्मों का परित्याग कर सत्कर्मों को करने के लिये कहा गया है, जिन से निर्वाण-पद की प्राप्ति भी सम्भव प्रतिपादित कर दी गई है -

---

24. ना॰चं॰ 14॰[illegible]
25. वही, 14॰173 त: 303 पर्यन्तं
26. भग॰सूत्र॰ 10॰2॰396
27. ना॰चं॰ 14॰329
28. वही, 14॰326, 327, 328 एवं द्र॰ 329 त: 336 पर्यन्तं
29. वही, 7॰118

तस्मादसत्कर्म विहाय दूरे, सत्कर्म कुर्वन् हरितोषणाय ।
निवृतिमार्गस्वरसः शरण्यं, श्रीशं प्रपन्नः समुपैति मुक्तिम्[30] ।।

इस प्रकार कर्म द्वारा ही मनुष्य अपना भविष्य उज्ज्वल बना सकता है, इसलिये शुभकर्मों को करने की शिक्षा समाज को ग्रहण होती है तथा कर्मवाद में आस्था सुनिश्चित होती है ।

भाग्यवाद -

भाग्यवाद को मानने वालों के अनुसार जीवन में आने जाने वाले सुख-दुःख, धन-ऐश्वर्य, विवेक-अविवेक तथा सद्-असद् आचरण सभी भाग्य के अनुसार मिलते हैं । भाग्य के अनुरूप मनुष्य जीवन में आने वाले सुख-दुःखों का प्रत्यक्षीकरण करता हुआ जीवन यापन करता है । नीतिशतक में भाग्य के बारे में उल्लेख किया गया है कि विधाता ने जिस वस्तु की उपलब्धता का अंकन जिस मनुष्य के मस्तक पर कर दिया है, वह वस्तु जंगल, घर तथा अन्य किसी भी स्थान पर अवश्यमेव प्राप्त होती है[31] । इस प्रकार सर्वत्र भाग्य को फल देने वाला कहा है । विवेक चूड़ामणि में कहा है कि प्रारब्ध ही शरीर का भरण पोषण करता है -

प्रारब्धं पुष्यति वपुरिति निश्चित्य निश्चलः ।
धैर्यमालम्ब्य यत्नेन स्वाध्यासापनयं कुरु[32] ।।

भाग्यवाद में निष्ठा का प्रतिपादन करने के साथ कर्म में संलग्न रहने को भी कहा है । जब तक सुख-दुख का अनुभव मन में रहता है, तब तक ही भाग्य माना जाता है, क्योंकि फल का भोग क्रियापूर्वक स्वीकार किया है, अकर्म द्वारा भाग्य भी फल प्रदान नहीं करता है -

सुखाद्यनुभवो यावत्तावत्प्रारब्धमिष्यते ।
फलोदयः क्रियापूर्वो निष्क्रियो न हि कुत्रचित्[33] ।।

इस प्रकार भाग्य पर आस्था रखने वालों की कामनायें जब पूर्ण अथवा अपूर्ण होती

---

30. ना.चं. 14.306
31. भर्तृहरि नीतिशतकम्, 49
32. वि.चूड़ा. 280
33. वही, 447

हैं तो वे पूर्वजन्म तथा परजन्म के कर्मों का आश्रय ले कर धैर्य धारण करते हैं। भाग्य के फल की अवश्यम्भाविता के विषय में उल्लेख भी है कि भाग्य द्वारा रक्षित, आश्रय हीन जंगल में भी सुरक्षित रहता है, परन्तु भाग्यहीन प्रयत्नपूर्वक रक्षा किये जाने पर घर में ही विनष्ट हो जाता है[34]। इस प्रकार भाग्य को सर्वोपरि स्वीकार किया गया है।

नानक चन्द्रोदय महाकाव्य में कालवर्मा नानक देव के जन्म समय पर विद्वानों से शिशु के मस्तकादि चिह्नों द्वारा भविष्य के बारे में जानते हैं[35]। इस से प्रतीत होता है कि आयु पर्यन्त प्राप्य समग्र क्रिया कलापों का निर्धारण भाग्य द्वारा ही माना गया है। पूर्व पुण्य और भाग्य द्वारा महात्माओं तथा सज्जन पुरुषों के दर्शनों का होना उद्धृत किया है। बोलारराय अपने भाग्य को ही श्रेष्ठ समझते हैं, जब नानक देव के उन्हें दर्शन हो जाते हैं -

जगाद चेदं किल काल भाग्याद्दृन केवलं तात कृतावतार:।
अस्माकमश्नूर्जित पूर्वपुण्यैर्दृश: कृत्तार्था: कुरुषे महात्मन्[36]॥

यहाँ इस बात का उल्लेख दिखाई देता है कि जो भाग्यहीन मनुष्य होता है वह समीपस्थ वस्तु को भी प्राप्त नहीं कर सकता है। जिस प्रकार कालवर्मा घर में उत्पन्न हुये महात्मा तुल्य नानक देव के संग का लाभ न उठाते हुये उसे गौयें चराने आदि के कार्यों में नियोजित करते हैं। परन्तु भाग्यवान राजा बोलारराय दर्शन कर धन्य हो जाते हैं। मोक्ष को भी भाग्याधीन कहा गया है। अर्थात् प्रारब्ध से मनुष्य निर्वाण-पद को हस्तगत कर सकता है तथा शरीर को भी धारण करता है -

प्रारब्धभोगशेषोऽस्ति तत्राहारस्तवानघ।
मुक्तानामपि हेतुर्हि प्रारब्धं देहधारणे[37]॥

---

34. अरक्षितं तिष्ठति दैवरक्षितम्, सुरक्षितं दैव हतं विनश्यति।
जीवत्यनाथोऽपि वने विसर्जित:, कृत्तप्रयत्नोऽपि गृहे विनश्यति॥
- पंचतन्त्र, 5·45 पृ· 509

35. ना·चं· 2·59 एवं द्र· 2·60 त: 64 पर्यन्तं

36. वही, 2·118 एवं द्र· 3·52

37. वही, 16·11

भाग्य सम्पूर्ण क्रियाओं को सम्पादित करता है अर्थात् परोक्ष रूप से मार्गदर्शन कर, उनका अनुसरण करने के लिये बाध्य करता है । इस प्रकार भाग्य सर्वश्रेष्ठ सहयोगी के रूप में उल्लिखित किया गया है -

प्रारब्धं विदधाति नः परिजनः सर्वमनुक्तः क्रियाम्[38] ।।

भाग्यवान अपने सम्पूर्ण जीवन के आचरणों को स्वयमेव अनुष्ठित करते हैं, वे आश्रय की अपेक्षा नहीं करते हैं । उनके लिये निखिल पदार्थों की उपलब्धि सुकर होती है । भाग्य को सब कुछ सुरक्षित रखने वाला निरूपित किया है अन्यथा कौन किस की रक्षा करता है[39] । तुलसी कृत रामायण में भी उल्लेख मिलता है कि भाग्यशाली मनुष्य ही शुभ कर्मों का अवसर प्राप्त कर सकता है, जिस प्रकार श्रीरामचन्द्र जी के जन्म समय पर उन के दर्शन कर लोग अपने भाग्य की प्रशंसा करते हैं । देवताऔर मुनि लोग भी भाग्य का वर्णन करते हैं[40] । इस प्रकार नानक चन्द्रोदय में भी भाग्य की सर्वश्रेष्ठता ही स्वीकार की गई है । जब मर्दन वीणा के अन्वेषण में यवन के घर पर जाता है तब नानकदेव के गुणों की गरिमा श्रवण कर भाग्य की भूरि-भूरि श्लाघा करता है[41] । यहाँ यवनों की भी भाग्य पर आस्था द्योतित होती है । प्रारब्ध के अधीन मनुष्य का देह धारण करना बताया गया है । सर्वतः पूर्व मनुष्य जगदीश्वर को जपते हुये, सिद्धि प्राप्त कर पुनः संस्कार वश जाप करते हुये, उस प्रभु की कृपा से शरीर धारण करते हैं[42] । इस प्रकार भाग्य को ईश्वर के हाथ में कहा गया है । वह ही कर्मों को साक्षी रूप में अवलोकित करता है, तथा उन के कर्मों के अनुसार भाग्य निर्माण करता है ।

भाग्यवश ही मनुष्य की बुद्धि विपरीत आचरण करती है इस का उल्लेख

---

38. ना॰चं॰ 3॰16

39. प्रारब्धयोगेन निजेन सर्वः सुरक्षितो रक्षित, कः कमत्र ?
रक्षाक्षमश्चेदितरस्य कश्चित् स्वस्यैवरक्षां न कुतः करोति ?। - वही, 6॰140
एवं द्र॰ 6॰139

40. देखि महोत्सव सुर मुनि नागा । चले भवन बरनत निज भागा ।
- तुल॰रामा॰।॰195॰। एवं द्र॰ 5॰5॰4

41. ना॰चं॰ 7॰26

42. संस्कारतस्तं जपन्ति भूयः, प्रारब्धशेषेण तनुं दधानाः ।।-ना॰चं॰13॰12

करते हुये कहा है कि भाग्य-योग से अकृत्य कार्य को करना पड़ता है तथा निश्चित रूप से प्रारब्ध से ही विचार-शक्ति क्षीण होकर विपरीत दिशा में चलती है -

प्रारब्धयोगेन विमोहितस्य नूनं विपर्येति जनस्य बुद्धिः।
अकार्यकारी मतिमानतश्चेत्कस्मादुपालम्भमदं वराकः [43] ।।

गुरूनानक देव को जब बाबर सुन्दर गाँव तथा राज्य का भाग देने को कहता है तो नानक कहते हैं कि मेरे भालपट्ट पर विधाता ने पहले ही भोज्यपदार्थों को अंकित कर दिया है, उस से अधिक इच्छा राजन् मुझे नहीं है -

अये गुरूस्तं मम भालपट्टे, विलिख्य दत्ता विधिना पुरैव ।
वा भोज्य सम्पन्न ततोऽधिकस्य, लिप्साऽस्ति मे भूप भवादृशेभ्यः [44] ।।

यहाँ पर भाग्य पर विश्वास कर प्राप्त पदार्थों द्वारा ही सन्तुष्ट रहने के लिये कहा गया है । क्योंकि विधाता द्वारा प्रदत्त सुख-दुःख अवश्य प्राप्त होते हैं । अतः भाग्य का निर्माण पूर्वजन्म के संचित कृत्यों द्वारा निष्पादित होता है । पूर्वजन्म और भाग्य में अभिन्न सम्बन्ध प्रतीत होता है । जैसा कर्म किया जाता है, वैसा भाग्य वह ग्रहण करता है ।

पुनर्जन्मवाद -

भारतीय धर्मशास्त्रों, दर्शन-ग्रन्थों में पुनर्जन्मवाद का उल्लेख विस्तृत रूप से दिखाई देता है । उन के मतानुसार केवल मात्र अस्थि-मांस से निर्मित शरीर ही नाशवान् है परन्तु आत्मा नित्य और अन्तहीन है । गीता में कहा है कि आत्मा अजर, अमर एवं नित्य है । वह केवल शरीर परिवर्तन करता है, जैसे मनुष्य पुराने वस्त्र त्याग कर नवीन वस्त्र धारण करता है -

वासांसि जीर्णानि यथा विहाय, नवानि गृह्णाति नरो पराणि ।
तथा शरीराणि विहाय जीर्णा-, न्यन्यानि संयाति नवानि देही [45] ।।

---

43. ना॰चं॰ 8॰26
44. वही, 18॰68 एवं द्र॰ 67
45. गीता॰ 2॰22

इस प्रकार अन्य शरीर में आत्मा का पुनर्जन्म दृष्टिगोचर होता है । प्राचीन ऐतिहासिक समय में बहुत से देश पुनर्जन्म पर विश्वास रखते थे । हेरोडोटस्न का कथन है कि कुछ यूनानियों ने उस सिद्धान्त का प्रयोग किया, किन्तु सर्वप्रथम मिस्र देश के निवासियों ने ऐसा कहा और विश्वास किया कि "मानव आत्मा अमर है और शरीर की मृत्यु हो जाने पर यह किसी अन्य जीवित वस्तु में, जो जन्म लेने वाली होती है प्रवेश कर जाता है[46] । प्लेटो ने भी आत्मा के पुनर्जन्म एवं उत्तर जन्म में विश्वास किया है । वह उल्लेख करते हैं कि "ईसा मसीहा के काल में पुनर्जन्म का सिद्धान्त भारत में भली भाँति विख्यात था[47] । न्याय दर्शन में मरने के पश्चात् शरीर, इन्द्रिय, मन और बुद्धि के साथ जीवात्मा के पुन: सम्बन्ध को पुनर्जन्म माना गया है -

पुनरुत्पत्ति: प्रेत्यभाव:[48] ।

पूर्वजन्म में किये गये पाप-पुण्यरूप कर्मफल द्वारा शरीर का पुनर्जन्म होता है +

पूर्वकृतफलानुबन्धात्तदुत्पत्ति:[49] ।

वेदान्त दर्शन में उल्लेख उपलब्ध होता है कि जीव शुभ-अशुभ कर्मों के अनुसार पुनर्जन्म धारण करता है[50] । इस प्रकार दर्शन शास्त्रों के अध्ययन से प्रतीत होता है कि पुनर्जन्म को वे महत्त्व प्रदान करते हैं तथा इसे अवश्यम्भावी स्वीकार करते हैं ।

इस्लाम व कुरान को मानने वाले पुनर्जन्म को नहीं मानते हैं, उन के मतानुसार प्रत्येक व्यक्ति एक बार जन्म लेता है, तथा मरणोपरान्त कयामत के दिन की प्रतीक्षा करता है, तथा प्रलय वाले दिन कर्मानुसार स्वर्ग व नरक उसे प्राप्त हो जाता है । इस विचार को अमान्य स्वीकार करते हुये "वेदोद्धारिणी" पत्रिका में उल्लेख किया गया है कि जिस ग्रन्थ का अध्ययन मुस्लिम बन्धु करते हैं, उस में पुनर्जन्म का स्पष्ट वर्णन है । जैसे "बकर" में लिखित है

---

46. धर्मशास्त्र का इतिहास, अ•35, पृ•349
47. दि सर्मिल आव लाइफ, केनेथ वाकर, पृ•93
48. न्याय दर्शन, 1•1•19
49. वही, 3•2•62
50. कृतप्रयत्नापेक्षस्तु विहितप्रतिषिद्धावैयर्थ्यादिभ्य: ।। -वेदान्त दर्शन, 2•3•42

"कैफ तक फिरून बिल्लाहि व कुन्तुं अयावतनफ अहयाकुं सम्म युमी तुकुं सुम्म युह ईकुम सुम्म इलैहि तुर्जऊन" इस का अर्थ प्रतिपादित करते हुये पत्रिका में कहा गया है कि तुम अल्लाह के साथ कुफ्र की नीति कैसे अपनाते हो जबकि तुम निर्जीव थे, उस ने तुम्हें जीवित किया, फिर वही तुम्हें मारता है । फिर वही तुम्हें जीवित करेगा, फिर उसी की ओर तुम लौटाये जाओगे[51] । इस उल्लेख द्वारा लेखक ने इस्लाम धर्म के ग्रन्थों में पुनर्जन्म स्वीकार्य है, इसको प्रदर्शित किया है ।

ऋग्वेद में आत्मा को अनश्वर तथा संसार में पुन: पुन: आने जाने वाली कहा गया है[52] । भागवत पुराण में पूर्वजन्म के शुभ कर्मों के कारण ही जन्म धारण कर मनुष्य की ईश्वर में श्रद्धा का वर्णन किया गया है -

यदृच्छया मत्कथादौ जातश्रद्धस्तु य: पुमान् ।
न निर्विण्णो न चासक्तो भक्तियोगोऽस्यसिद्धिद:[53] ।।

इस प्रकार धर्मग्रन्थों के अध्ययन द्वारा पुनर्जन्म के सिद्धान्त की मान्यता स्वत: सिद्ध हो जाती है ।

नानक चन्द्रोदय महाकाव्य में फेरु-नानक, मीन-नानक, युद्धसेन-नानक, कमल-नयन-नानक, कल्याणशीलसेन-नानक, सुख वपत-नानक और विमलज्योति-नानक ये सात पूर्वजन्मों की स्मृति से युक्त पुनर्जन्म मुख्यतया वर्णित हैं । जिस से पुनर्जन्मवाद की दृष्टि से महाकाव्य की महत्ता दिखाई देती है । नानक देव पूर्वजन्म के संस्कारवश स्वयं को "निराकार" कहते हैं[54] । यहाँ स्पष्ट होता है कि यह निराकारता पूर्वजन्म की स्मरणशक्ति थी, जो कि पुनर्जन्म ग्रहण करने पर भी विस्मृत नहीं हुई । इसी प्रकार जब फेरु नामक वीणा वादक जब वीणा

---

51. वेदोद्धारिणी, पत्रिका; (बकर 28) विषय -"कुरआन में पुनर्जन्म"(तना सुख)
52. येना समुद्रमसृजो.....ते शव: ।
सद्य: सो अस्य महिमा न सन्नशे यक्षोणीरनुचक्रदे ।। -ऋ॰8॰3॰10;
एवं द्र॰8॰177॰3
53. भाग॰पुरा॰ ।।॰20॰8
54. द्वापरे निर्द्वापरोऽहं निराकारमचिन्त्यम् ।
कलौ जाता कारणेन तामेव प्रथितिं गत: ।। - ना॰च॰ 3॰37

सुनाता है तो भी "नानक निराकार" शब्द ध्वनित होता है[55]। इस प्रकार शिष्यों में भी पूर्व जन्म की स्मृति के कारण समुचित व्यवहार दिखाई देता है। नानक देव जी के सात पूर्वजन्मों का पृथक्-पृथक् निरूपण अधो निर्दिष्ट है जिस से महाकाव्य में वर्णित पुनर्जन्म के सिद्धान्त का अनुमोदन होता है।

फेरू-नानक पूर्व जन्म -

श्री नानकदेव की आज्ञानुसार मर्दन "आसिकपुर" नगर में निवास करने वाले फेरू नामक वैणिक से सप्तमुद्रा प्रदान कर "विपंची" नाम्नी वीणा लाता है। वीणा विक्रेता फेरु भी गुरू नानक देव के दर्शनार्थ आ जाता है[56]। नानक जी के प्रश्न करने पर, कि तुम कौन हो, कहाँ रहते हो, फेरु पूर्वजन्म के वृत्तान्त को स्मरण कर कहता है कि "ज्ञान पुर" नामक ग्राम में "प्राणनाथ" रहता था। उसके दो पुत्र और एक पुत्री थी। आप का नाम सुन्दर था तथा मेरा "प्रेम" था, मैं आप का अनुज था। हमारी भगिनी सुशील और सुन्दर थी। सांसारिक सुखों से हम दोनों की विमुखता देख कर पिता ने घर से निष्कासित कर दिया[57]। वन में रहते हुये हमारी गीति से एक तपस्वी सन्तुष्ट हुआ और एक विपंची प्रदान की[58]। वह वीणा मैंने आप को अर्पण कर दी है। सुन्दर नाम वाले भ्राता को तपस्वी ने उपदेशामृत दिया था कि वह कलियुग में मन्दबुद्धि वालों के लिये शास्त्रोक्त आचरणों, तथा भगवत् कीर्ति का भाषा प्रबन्ध निर्मित कर मोक्ष प्राप्त करेगा[59]। सुन्दर नामक मेरे ज्येष्ठ भ्राता आप ही हैं, जो मेरे समक्ष उपस्थित दिखाई दे रहे हैं। इस उल्लेख द्वारा सुन्दर नामक सहोदर का गुरू नानक देव के रूप में तथा प्रेम नाम वाले अनुज का फेरु रूप में पुनर्जन्म यहाँ दिखाई देता है। जो कि अपने पूर्व-जन्म की स्मृति से युक्त होते हैं।

---

55. वीणायां वाद्यमानायां फेरुणा नानकाज्ञा।
"नानकोऽयं निराकार" इति प्रादुरभूद् ध्वनिः ।। - ना॰चं॰7॰85
56. ना॰चं॰ 7॰53 एवं द्र॰ 7॰62 तः 64 पर्यन्तं
57. वही, 7॰66,67, 72-75
58. वही, 7॰76 तः 78 पर्यन्तं
59. अस्मिन्कलौ मन्दमतीनशक्तान, शास्त्रोक्तचर्यासु किलानुम्प्य।
भाषाप्रबन्धैर्भगवद्यशांसि, त्वं ग्राहयिष्यस्यथ मोक्ष मार्गम्।। -ना॰चं॰7॰83

मीन-नानक वृतान्त -

विषहर देश में नानक विशाल "मीन" से समुद्र में मिलते हैं। वह मच्छली नानक को पूर्व जन्म का वृत्तान्त कहती है कि त्रेता युग में नानक का एक सखा था, कारणवश नानक उस पर क्रोधित हो गये और शाप दे दिया, जिस के कारण वह मीन बन गया। वह आप का मित्र मैं हूँ, इस प्रकार नानक देव को पूर्व जन्म का वृतान्त स्मरण करा कर अपना उद्धार करने हेतु प्रार्थना करती है। गुरू नानक देव प्रसन्न हो कर उस का कल्याण कर देते हैं तथा मीन दिव्यगति को प्राप्त करती है[60]। इस प्रकार पूर्वजन्म की स्मृति को धारण किये हुये पुनर्जन्म का दूसरा वृतान्त वर्णित किया गया है।

शुद्धसेन-नानक पूर्वजन्म वृतान्त -

शुद्धसेन नानक के पूर्व जन्म वृत्तान्त के उल्लेख से भी पुनर्जन्म का प्रतिपादन दृष्टिगोचर होता है। विषहर देश में यति नानक राजा शुद्ध-सेन के पास पहुँचते हैं, तो वहाँ पर इन्द्रसेन नानक को अपना सखा कहता है[61]। उस समय यति शुद्धसेन से पूछते हैं कि यह मेरा पूर्व का भ्राता कैसे है, इसका प्रमाण क्या है, तब शुद्धसेन पूर्वजन्म की वार्ता सुनाता है[62] कि हम तीनों त्रेता युग में राजा जनक के पास निवास करते हुये मित्र रूप में थे -

आस्थाम पार्श्वे जनकस्य राज्ञ, स्त्रयो वयं तेषु बभूव मत्स्य: ।
एक: परौ द्वौ त्वमहं च तस्य, वहाम्यभिज्ञानमिदं गृहाण[63] ।।

इस प्रकार पूर्वजन्म का स्मरण कराता है तथा नानक मर्दन का आतिथ्य सत्कार करता है, जिस से पुनर्जन्मवाद का अवलोकन स्पष्ट हो जाता है।

---

60. तेनास्मि मीन: स्मृत पूर्वजन्मा, यन्मामपृच्छस्तदिदं मयोक्तम् ।
इहास्व मामुद्धर दीनबन्धो, बन्धो यमन्येन न यस्तु भेद्य: ।।
- ना॰चं॰ 9॰11 एवं द्र॰ 9॰6 त: 10 पर्यन्तं, 12, 13

61. ना॰चं॰ 9॰22 एवं द्र॰ 28, 29

62. किं प्रमाणमिति पृच्छति तस्मिन्, आह स स्म जनुरन्तवार्ताम् ।। -ना॰चं॰ 9॰30

63. ना॰चं॰ 9॰31

कमलनयन-नानक वृत्तान्त -

इस सम्वाद से यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि प्रत्येक मनुष्य देहत्याग कर पुनर्जन्म धारण करता है, परन्तु कलियुग के प्रभाव के कारण पूर्व-वृत्तान्त को स्मरण रखने की शक्ति प्रत्येक को नहीं रहती है, सिद्धयोगी पुरुष ही इसे स्मरण रख सकते हैं। नानक, कमलनयन को कहते हैं कि कलियुग के प्रभाववश आप की बुद्धि निरुद्ध हो चुकी है, इसलिये तुझे कुछ याद नहीं है[64]। यहाँ यही स्पष्ट होता है कि आजकल कलियुग में उत्पन्न जो हम लोग संसार के आवागमन के चक्कर में भ्रमण कर रहे हैं उस में पूर्वजन्म की घटनाओं को विस्मृत कर रहे हैं। नानक देव कहते हैं कि त्रेता युग में जनक के पास हम दोनों रहते थे, आप का सभाचन्द्र तथा मेरा गोबर्धन नाम था[65]। इस वृत्तान्त का श्रवण कर कमलनयन को भी पूर्वजन्म का सम्बन्ध स्मरण होता है। वह नानक-देव की सेवा करता है तथा सम्पूर्ण राज्य उन्हें समर्पित करता है। परन्तु नानक देव राज्य को पुनः उसे प्रदान करते हैं[66]। इस प्रकार भी पुनर्जन्म होना दृष्टिगोचर होता है।

कल्याणशीलसेन-नानक-वृत्तान्त -

कल्याण-शीलसेन नानक पूर्वजन्म वृत्तान्त भी पुनर्जन्म को पुष्ट करता है। सैन्यशैल पर्वत पर शीलसेन नामक गुरू का शिष्य "कल्याण" नाम वाला यति निवास करता है। वह नानक को देख कर अपना धर्मभ्राता कहता है। नानक देव के इस बारे में प्रमाण पूछने पर बताता है कि मेरे गुरू जी ने ही मुझे कहा है कि तेरा धर्म भ्राता आया है। त्रेता युग में नानक देव का नाम वह गोवर्धन बताता है[67]। इस प्रकार गुरू जी के आदेशानुसार नानक देव को वह उन के समीप ले जाता है, जो कि जप मुद्रा में स्थित "कर्ता-कर्ता इति" का जप कर रहे थे -

---

64. जानामि त्वां न मां त्वं कलयसि कदबुद्धिः स उवे। - ना॰चं॰9॰144
65. सभाचन्द्रेति ते नाम मम गोवर्धनेति च।
पूर्वमासीत्किमपरं शुश्रूषुरसि भूमिप १। - ना॰चं॰ 9॰146
66. ना॰चं॰ 9॰147
67. वही, 15॰20 तः 23 पर्यन्तं

तस्यादेशेन नीतोऽसौ कल्याणेन तदन्तिकम् ।
सत्कृत्य स्थापितस्तत्र कर्ता कर्तेति कीर्तयन् ।।[68]

शीलसेन के प्रश्न करने पर नानक गुरू को ईश्वर तथा उस के नाम को श्रेष्ठ मन्त्र उच्चारित करते हैं[69] । अत: यहाँ भी कल्याण द्वारा प्रतिपादित पूर्वजन्म के उल्लेख से पुनर्जन्म दिखाई देता है ।

सुखवपत-नानक वृत्तान्त -

मत्स्य नगर को गमन करते समय एक युवक को नानकदेव तालाब में स्नान करते हुये देखते हैं तथा उस का नाम जानना चाहते हैं । वह मुनि यति को कहता है कि क्या आप जनक के अवतार हैं । तब नानक अपना सम्पूर्ण परिचय उसे देते हैं[70] । मुनि अपना नाम सुखवपत बतलाता है तो नानक कहते हैं कि जो पहले जनक का भृत्य था । यह सुनकर पूर्वजन्म की स्मृति से युक्त हो कर मुनि यति को प्रणाम करता है[71] । तथा उस के पश्चात् नानक देव के साथ ही मत्स्य नगर, लहरी नगर और सुख नगर को जाता है[72] ।

विमल ज्योति-नानक वृत्तान्त -

गुरू नानकदेव सोलह वर्ष के युवक को तालाब में स्नान करते हुये देख कर प्रश्न करते हैं कि तुम कौन हो ? तब युवक कहता है कि मैं अपने भाई का अन्वेषण कर रहा हूँ[73] । तब नानक कहते हैं कि तेरा भाई त्रेता युग में था, लेकिन तुम अब उसे खोजने का असम्बद्ध कार्य क्यों कर रहे हो[74] । इस उल्लेख का

---

68. ना·चं· 15·24
69. वही, 15·25,26
70. वही, 15·43,44
71. सुखवपत नाम धेयं, मामवगच्छेति स जगाद ।
अभूत्पुरा यो जनकस्य भृत्य, इत्यब्रवीन्नानक योगिवर्य: ।।
सत्यं स एव·····पादौववन्दे स यतीश्वरस्य ।। - ना·चं·15·46,47
72. ना·चं· 15·48,49
73. वही, 16·114 त: 117 पर्यन्तं
74. वही, 16·120

अध्ययन करने से ज्ञात होता है कि प्रत्येक मनुष्य का पुनर्जन्म तो होता है परन्तु पूर्वजन्म के कार्यों तथा सम्बन्धों का विस्मरण हो जाता है । गुरू नानकदेव के पूर्वजन्मों के प्रतिपादन से प्रतीत होता है कि वह पुनर्जन्म ग्रहण करने पर भी पूर्वजन्म की स्मृति से युक्त होते हैं ।उस बालक को वह कहते हैं कि त्रेता युग में जो उसका गोवर्धन नामक भाई था, वह मैं ही हूँ, जिस को लोग आजकल "निराकार" रूप में जानते हैं -

भ्रात्रान्तरं च कुत्रास्ति ! नानकः पुनरभ्यधावत् ।
गोवर्द्धनाभिधः पूर्वं योऽहमासं शुभव्रत ।।
स नानकनिराकार इति गीयेऽधुना जनैः ।
दीनानाथ दयालुश्च भ्राता त्वमसि निश्चितम्[75] ।।

यहाँ पुनर्जन्म ग्रहण करने पर भी पूर्वजन्म की स्मृति का उल्लेख दिखाई देता है । इस प्रकार आत्मा के नित्य होने से मनुष्य अपने-अपने कर्मानुसार जन्मों को धारण करता है । गुरूनानकदेव जी ने अन्य लोगों के पूर्वजन्मों का वर्णन कर, अपने आप को निराकार रूप में प्रदर्शित किया है, जिस से पुनर्जन्म की महिमा का प्रतिपादन होता है । पुनर्जन्म को अस्वीकार करने वालों के लिये दृष्टांतों का उल्लेख कर नानकचन्द्रोदय महाकाव्य में पुनर्जन्म सिद्धान्त के प्रति आस्था प्रकटित की गई है ।

देववाद -

हिन्दु समाज के जीवन में आध्यात्मिकता मूल आधार है । प्रत्येक कार्य की पूर्ति के लिये आध्यात्मिक पथ को सर्वोपरि स्वीकार किया जाता है । विभिन्न देवी-देवताओं में आस्तिक भावना रख कर उन की अर्चना, वन्दना और शुश्रूषा करके स्वाभीष्ट-पूर्ति करना देववाद कहा जाता है । दैहिक-बन्धन से मुक्त होने के लिये भी देवताओं का आश्रय ग्रहण धारण किया जाता है । विभिन्न प्रकार के देवताओं में से एक को इष्ट मानकर भक्ति से स्वच्छ जल, अर्घ्यादि द्वारा अर्चना करने से इष्ट-सिद्धि सुलभ मानी जाती है ।

75· ना·चं· 16·123, 124

मत्स्य पुराण में उल्लेख है कि इष्ट देव के लिये दधि, दुग्ध, अक्षत, कुशा, मधु, जौ और सरसों इन आठ पदार्थों से अर्घ्य प्रदान करना चाहिये[76]। मीमांसा दर्शन में कहा है कि देवता का सम्बन्ध फल के साथ होता है अर्थात् देवता यज्ञ का अनुष्ठान करने वाले को फल प्रदान करता है[77]। पारस्कर गृह्यसूत्र में "माता रुद्राणां दुहिता वसूनां"[78] उल्लेख मिलता है जिस के द्वारा गौ माता का अन्य देवताओं के साथ सम्बन्ध प्रदर्शित किया गया है। इस लिये सभी देवताओं के प्रति श्रद्धा की दृष्टि रखने का ज्ञान उपलब्ध होता है। मीमांसा दर्शन में सभी देवताओं को सम्पूर्ण धर्मों का प्रयोजक माना गया है-

देवता वा प्रयोजयेदतिथिवद् भोजनस्य तदर्थत्वात्[79]।

महाभारत में विभिन्न प्रकार के देवताओं के नामों का उल्लेख मिलता है। जिन की पूजा आदि करने से अभीष्ट प्राप्ति होती है -

य एव देवा हन्तारस्तांल्लोकोऽर्चयते भृशम्।
हन्ता रुद्रस्तथा स्कन्दः शक्रोऽग्निर्वरुणो यमः॥
हन्ता कालस्तथा वायुर्मृत्युर्वैश्रवणो रविः।
वसवो मरुतः साध्या विश्वेदेवाश्च भारत[80]॥

नानक चन्द्रोदय महाकाव्य में सर्वव्यापक एवं सर्वाभीष्टपूरक विभिन्न देवताओं का उल्लेख मिलता है। शिव तथा राम का भक्त होने के कारण नानक जी के पिता का नामकरण ही शिव राम वर्मा उल्लिखित किया गया है[81]। यहाँ नानकदेव के पूर्वजों की देव भक्ति प्रतीत होती है। धार्मिक अनुष्ठानों का आयोजन कर विद्वानों द्वारा विधिपूर्वक गौरी, गणनायक आदि देवी-देवताओं की पूजा की जाती है[82]। सम्पूर्ण तलवण्डी निवासी लोग देवताओं का पूजन करते हैं -

---

76. मत्स्य पुराण. 267.2 पृ. 724
77. ततश्च तेन सम्बन्धः। - मी.द. 9.1.8
78. पा.गृ.सू. 1.3.4
79. मी.द. 9.1.6
80. महा.भा. क शान्तिपर्व, 15.16-17
81. ना.चं. 2.23
82. वही, 2.51

पूज्येत देवस्तलवंडिकायां, पश्येज्जनस्त्वां च चिरं दिदृक्षुः[83] ।

इस प्रकार देवपूजा का चित्रण देवराज शर्मा ने निरूपित किया है । यद्यपि गुरूनानकदेव उदासी सम्प्रदाय के प्रचारक थे परन्तु फिर भी अन्य धर्मों के प्रति उन की पूर्ण श्रद्धा द्योतित होती है । आर्य-म्लेच्छों के उपास्य देवताओं में भेद बुद्धि न रखने के कारण यवन उन की वन्दना करते हैं -

आर्यम्लेच्छोपास्यदेवे न भेदं ज्ञानी यस्मन्यन्यते नानक ! त्वम् ।।
वन्देथास्तं सार्धमस्माभिरद्य तस्माद्राजेत्याग्रहादेनमूचे[84] ।।

नानकदेव यवनों के साथ जा कर उन के देवता को नमस्कार करते हैं[85] । इस प्रकार सभी देवताओं के प्रति सम्मानजनक भावना तथा किसी के भी प्रति द्वेषभावना न रखने के लिये प्रेरित किया है ताकि विश्वबन्धुत्व की भावना समाज में जाग्रत रहे । प्रस्तुत महाकाव्य में श्री चन्द्रशेखर, सदाशिव, पार्वतीश, राम और कृष्ण आदि में से किसी एक का स्मरण करने के लिये मुमुक्षु को कहा गया है[86] । जिन से देवताओं को मोक्ष प्राप्ति का साधन माना गया है । सगुण स्वरूप श्रीकृष्ण के रूप का चित्रण करते हुये उन की माया तथा शक्ति का निरूपण भी किया गया है[87] ।

म्लेच्छ मन्दिरों का उल्लेख करते हुये वहाँ निवास कर रहे आचार्यों का वर्णन उपासक रूप में किया गया है । जो कि विविध प्रकार की धूप, दीप तथा सुगन्धित पदार्थों की सामग्री द्वारा देवता की पूजा करते हैं[88] । इस प्रकार म्लेच्छों में भी अपने इष्ट के प्रति जो आस्था होती है, उसे प्रकट किया गया है । यवनों की मूर्तिपूजा से विमुखता के बारे में मर्दन द्वारा प्रश्न किये जाने पर गुरूनानकदेव कहते हैं कि जो भेदबुद्धि हृदय में रख कर उपासना करते हैं, वे अन्धे हो जाते हैं, तथा "हुसेन" नाम म्लेच्छ का दृष्टान्त देते हैं कि

---

83. ना॰चं॰ 5॰159
84. वही, 6॰89
85. यवनदेवगृहे यवनैःसमं नतिमुरिकृतवानथ नानकः ।। - ना॰चं॰ 6॰90
86. ना॰चं॰ 8॰66, 67
87. वही, 8॰57 तः 61 पर्यन्तं
88. वही, 10॰6,7

"शिव लिङ्ग" की मूर्ति का अपसारण करना उस ने चाहा था तथा वह अन्धा हो गया था और अग्नि से उस का वर जल कर राख हो गया था। फिर विधि विधान से पूजा करने का संकल्प धारण करने पर यथावत् हुआ था[89]। इस का अभिप्राय यह है कि नानक ने सभी धर्मों तथा सम्प्रदायों के देवताओं को एक दृष्टि से देखने के लिये कहा है तथा देवताओं की विविधता होने पर भी उन सभी के एक स्वरूप की ओर संकेत किया है। देवशक्ति को प्राप्त करने के लिए शरीर के अन्दर विद्यमान शत्रुओं का नाश करना आवश्यक बताया है, इन के संयमित हो जाने पर देवता की सिद्धि स्वत: प्राप्य कही गई है। कामक्रोधादि पर विजय प्राप्त कर मनुष्य शिव-शक्ति को उपलब्ध कर सकता है तथा भवसागर से पार हो जाता है[90]। इस प्रकार देवशक्ति की गरिमा का गान यहाँ दिखाई देता है। ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र आदि देवताओं की भिन्नता माया शक्ति द्वारा ही स्वीकार की गई है, केवल मात्र इन में नाम भेद की भिन्नता मानी है, स्वरूप भेद का अभाव कहा है -

मायाशक्तिस्तावकी यद्गुणाढ्यो, ब्रह्मा विष्णुरुद्र इत्युच्यसे त्वम्।
जन्मस्थित्युन्माथकर्ता भवस्य, भासि ब्रह्मन्! निर्गुणो निष्क्रियश्च[91]॥

लक्ष्मी देवी[92], शेषनाग[93], शालीग्राम[94], रेवतीगङ्गा[95], इन्द्र[96] और हनुमान्[97] आदि देवी-देवताओं का उल्लेख नानक चन्द्रोदय महाकाव्य में मिलता है। खाद्य तथा अखाद्य पदार्थों को देवता एवं पितृ निमित्त कुछ भाग अर्पण करने पर दोष का निराकरण कहा गया है[98]। इस प्रकार सात्त्विक भोजन करने वालों

---

89. ना॰चं॰ 10॰10त: 12 पर्यन्त एवं द्र॰ 13,14,16
90. वही, 12॰98
91. वही, 13॰139
92. वही, 13॰154
93. वही, 13॰157
94. वही, 14॰336
95. वही, 14॰337
96. वही, 15॰9
97. वही, 15॰168
98. वही, 17॰129 त: 133 पर्यन्त

को जो देवता निमित्त भोजन अर्पण करने का उल्लेख किया है उस से सात्त्विक और तामसी दोनों प्रकार के देवताओं की विद्यमानता स्वीकार की गई है। सभी देवता अपने उपासक की रक्षा करते हैं, तथा सच्ची लग्न से अर्चना करने वाले के ही वशीभूत हो जाते हैं, उसे विस्मृत नहीं करते हैं -

न विस्मरन्ति ये विष्णुं क्षणमप्यगुरागिणः ।
क्षणार्धमपि तान् देवो वशीभूतो न विस्मरेत्[99] ।।

इस प्रकार देवता की भक्त के प्रति प्रीति तथा भक्त की देवता के प्रति वर्णित की गई है। कवि देवराजशर्मा प्रत्येक प्रस्ताव के प्रथम पद्य में सरस्वती देवी की उपासना करते हुये स्व-बुद्धि विकास के लिये तथा ग्रन्थ की निर्विघ्नतापूर्वक समाप्ति के लिये प्रार्थना करते हैं, जिस से देवी देवताओं के प्रति कवि की आस्था का अवलोकन होता है।

सा शारदा शरदिजेन्दुमरीचिगौरी
चित्ते मम स्फुरतु यत्कृपाप्रणाली ।
जाड्यं हरन्त्यपि विबोधसुधाच्छटाभिः
स्वेषां जड़ं वितनुते हृदयारविन्दम्[100] ।।

इस प्रकार प्रत्येक प्रस्ताव में सरस्वती देवी की वन्दना का उल्लेख दिखाई देता है। राम, कृष्ण, नृसिंह, श्रीशंकर तथा ब्रह्मा का भजन करने वालों के लिये सुखों की प्राप्ति सुकर नहीं है[101]। इस प्रकार विभिन्न प्रकार के देवताओं का उल्लेख करते हुये देववाद को स्वीकार किया गया है। जिस से धर्मग्रन्थों में प्रतिपादित देवताओं के प्रति आस्था अधिक सुस्थिर होती है। किसी भी धर्म एवं पूज्य देवता का अपमान करने वाला मनुष्य नास्तिक कहलाता है। धार्मिक ग्रन्थों एवं स्मृतियों ने उस की निन्दा की है। देवराजशर्मा ने भी महाकाव्य में ऐसे व्यक्ति को निन्दनीय ही माना है। देवताओं का अनादर करने से रोका गया है। मनुष्य का जीवन अनेक प्रकार के बन्धनों में आवृत है तथा

---

99. ना.चं. 18.189
100. वही, 9.1
101. वही, 19.184

सुख-दु:ख से भरपूर है।अत: अनिष्ट के निवारण हेतु देवी देवताओं का पूजन करना परमावश्यक है, जिस से वे समयानुसार उपस्थित हो कर मङ्गल प्रदान करते हैं।

एकेश्वरवाद -

सम्पूर्ण विश्व के क्रियाकलापों के द्रष्टा तथा उन का संचालन करने वाले सर्वव्यापक ईश्वर हैं। अपनी शक्त्यनुसार निखिल जगत् को चला रहे हैं। वह आदि देव, पुरातन पुरुष, विश्व का खज़ाना एवं सांसारिक देहधारियों के लिये सर्वोत्कृष्ट तीर्थस्थल हैं, तथा सम्पूर्ण विश्व उस में व्याप्त है[102]। इस प्रकार अनन्त स्वरूपों में विद्यमान एक शक्ति को ही स्वीकार किया गया है। एकेश्वरवाद में आस्था धारण करने वाले उस शक्ति को एकाकी मानते हैं। उन के मतानुसार वह ब्रह्माण्ड शक्ति एक है, परन्तु उस को प्राप्त करने के लिये स्व-स्व इष्ट पूजनादि जो पृथक्-पृथक् मार्ग अपनाये जाते हैं, उन सभी का गन्तव्य स्थान एक ही होता है, उस प्रभु का प्राप्त करना। धर्मशास्त्रों तथा दार्शनिक ग्रन्थों में उस अलौकिक सत्ता को एकाकी मानने के उल्लेख मिलते हैं। सांख्यदर्शन में परमात्मा को सर्वान्तर्यामी तथा सर्वजगत् कर्ता स्वीकार किया गया है-

स हि सर्ववित् सर्वकर्त्ता[103] ।।

पातंजल योग दर्शन में "ओम्" को ही ईश्वर बताया है। प्रभु का यथार्थ रूप "ओम्" ही है। "तस्य वाचक: प्रणव:"[104]। डा० राम नाथ शर्मा ने कहा है कि "ईश्वर में व्यक्तित्व है। वह एक है, लोक का स्वामी, स्रष्टा, पालक और संहारक है। वह घट-घटव्यापी और सर्वशक्तिमान् है। प्रकृति अथवा काल आदि उस के अनुचर हैं। वही एकमात्र ज्ञाता है। उस में सभी गुण हैं। वह भूत, वर्तमान और भविष्य से परे है, उस की शक्ति ज्ञान और क्रिया के रूप में अभिव्यक्त होती है[105]। श्वेताश्वतार उपनिषद् में लिखा है कि "ईश्वर

---

102. त्वमादि देव: पुरुष: पुराणस्त्वमस्य विश्वस्य परं निधानम्।
वेत्तासि वेद्यं च परं च धाम, त्वया ततम् विश्वमनन्तरूप ।।-गीता०।।,38

103. सां०द० 3०56

104. पा०यो०द० ।०27

105. भारतीय दर्शन के मूल तत्त्व - डा० रामनाथ शर्मा, पृ०35-36

स्वर्ग में एक वृक्ष के समान स्तब्ध स्थित है, परन्तु फिर भी उस से समस्त जगत् भरा पड़ा है -

यस्मात्परं नापरमस्ति किंचि, यस्मान्नाणीयो न ज्यायोऽस्ति कश्चित्।
वृक्ष इव स्तब्धो दिवि तिष्ठत्येक, स्नेवेदं पूर्णं पुरुषेण सर्वम् [106] ।।

ऋक् संहिता में उल्लेख है कि भारत में नैतिक एकेश्वरवाद के स्थान पर आध्यात्मिक एकेश्वरवाद का विकास हुआ । देवताओं में एक सर्वोच्च देवता ढूँढने के स्थान पर उन के पीछे काम करने वाली सामान्य शक्ति को खोजने का प्रयत्न किया गया [107] ।

नानक चन्द्रोदय महाकाव्य में ओम्, ब्रह्म तथा नाम का निरूपण किया गया है । इन को सर्वशक्ति सम्पन्न एकस्वरूप स्वीकार करते हुये एकेश्वरवाद को माना गया है । तीनों लोकों में व्याप्त सिद्ध पुरुष को जगदीश कहा है, जो कि एक ही है तथा अखिल सिद्धियों को जो प्रदान करता है [108] । वह ईश्वर सभी का पालन करता है तथा प्रत्येक के अभ्यन्तर आत्मभाव में निवास करता है [109] । विरक्ति को धारण कर अर्थात् विषयोपभोगों का त्याग कर उस ईश्वर की प्राप्ति सम्भव कही है, क्योंकि घर में रह कर शरीर के अन्दर विद्यमान छः शत्रुओं पर विजय प्राप्त नहीं की जा सकती है । उसके लिये कामक्रोधादि का परित्याग परमावश्यक कहा है [110] । गुरूनानकदेव सभी जगह व्याप्त एक शक्ति को स्वीकार करते हुये कहते हैं कि वह ईश्वर चारों दिशाओं में फैला हुआ है । अविनाशी ईश्वर मक्का मदीना इत्यादि अनेक स्थलों पर निवास करता है -

---

106. श्वेता॰उप॰ 3॰9

107. ऋ॰ 1॰164॰46

108. भृत्यस्य ते सूनुरहं न सिद्धः, सिद्धास्त्रिलोक्यां जगदीश एकः ।
तस्यैव भक्त्याखिलशक्तिभाजः, सिद्धिस्फुलिङ्गाःपरितः स्फुरन्ति ।।
- ना॰चं॰ 2॰122

109. ना॰चं॰ 2॰124 एवं द्र॰ 3॰35

110. वने न जय्याः षड़मी सपत्ना, गृहान्धकूपे सुतरां सुमेधः ।।
- ना॰चं॰ 6॰64

विभुं प्रभुं स्वं यदि मन्यसेऽङ्ग ! स दिक्षु सर्वासु तदा प्रसुप्तः ।
मक्कामदीनैकनिवासिनं चे-, तदा परिच्छिन्नतया विनाशी[111] ।।

यह उपदेश नानक देव यवनों को करते हैं, जब नानक जी यवनों के देवालय की ओर पाँव कर के शयन करते हैं तो म्लेच्छाचार्य क्रोधित होते हैं, नानकदेव कहते हैं कि जिस तरफ आप का ईश्वर नहीं है मेरे पाँव खींच कर उधर कर दो । परन्तु ऐसा करने पर मक्का का द्वार भी उसी ओर घूमता जाता है,[112] तब वह उन को कहते हैं कि ईश्वर एक है तथा सर्वव्यापक है । आत्मा को ही ईश्वर का स्वरूप कहते हुये उल्लेख किया है कि "ओंकार" द्वारा वाच्य, सर्वशक्ति-सम्पन्न तथा ज्ञान मात्र से जो अपना रूप प्रत्यक्ष भासित करता है वह नाथ स्वरूप (ईश्वर) आत्मा है -

ओंकार वाच्य श्रुतिमौलिमान्यः, सर्वेशिता कुण्ठितसर्वशक्तिः ।
यो ज्ञानमात्रो निजरूपदाता, नाथोऽथवा मे दयितः स आत्मा[113] ।।

विविध ईश्वर स्वरूपों को मिथ्या कहते हुये निरूपित किया है कि एकेश्वर ही नित्य भ्रमणशील है, जिसके सहयोग से वायु सूर्यादि देवता भी भ्रमण करते हैं -

आ पातालाद् आ च वैरंच्यलोकान्, मिथ्या नानारूपमैश्वर्यमाहुः ।
एको नित्यः सोऽयमीशो भ्रमन्ति, यस्य त्रासाद् वायुसूर्यादयोऽमी[114] ।।

हरि के बिना सिद्धि सम्भव नहीं है मानी है, ज़रामृतिव्याधि आदि सभी उसी द्वारा प्रदत्त हैं तथा ईश्वर को पा कर जीवन साफल्य कहा है[115] । एकेश्वर ही सर्वव्यापक एवं सर्वशक्तिमान् है, इस प्रकार का ज्ञान जो रखते हैं उन के लिये सकलान्तरात्मा भगवान् की प्रसन्नता सुकर कही गई है[116] । गुरू नानक देव वैकुण्ठ धाम से लौट कर ध्रुव को कहते हैं कि ब्रह्मादि देवता, सनकादि, सुर,

---

111. ना॰चं॰ 10॰31
112. वही, 10॰25 तः 27 पर्यन्तं, 30
113. वही, 11॰51
114. वही, 11॰86
115. वही, 11॰87
116. वही, 12॰40

मुनि और देवताओं के स्वामी भी जिस की स्तुति करते हैं, वह ईश्वर ही जगत्-कर्ता एवं रक्षिता है[117]। विवेक द्वारा ज्ञान प्राप्त करने वाले ईश्वर भक्त को वह भव सागर से पार करता है[118]। इस प्रकार सर्वशक्ति सम्पन्न एकेश्वर को दिव्यशक्ति युक्त माना गया है। बाबर को नानक देव कहते हैं कि सद्असद् का निरूपण कोरान् में भी वर्णित है[119]। जहाँ कोरान् में प्रतिपादित ज्ञान को भी वह ईश्वर द्वारा प्रदत्त समझते हुये सभी धर्मों तथा सम्प्रदायों में विद्यमान एकेश्वर की ओर ही संकेत करते हैं। आर्य लोग जिस ईश्वर को शिव, गणेश, गौरी, हरि और नृहरि इत्यादि विभिन्न नामों (कुरान) से जानते हैं, उसे ही तुर्क पृथक् नामों से मानते हैं[120]। इस प्रकार कोरान् तथा वेद में अभिन्नता का प्रतिपादन दिखाई देता है। अपने-अपने धर्म का अनुसरण कर अविरोध रूप से हरि की भक्ति को ही मुक्ति का कारण कहा गया है[121]। इस प्रकार निर्वाणपद प्राप्त करने वाला एक ही है। एकेश्वर को स्वीकार करते हुये कहा है कि इस में कोई संशय नहीं कि वह एक नहीं हैं, क्योंकि वह ही संसार वमन तथा संहार स्वशक्त्यानुसार करता है -

सत्यं मतं मम न कश्चन संशयोऽत्र। कर्ताऽखिलस्य जगतो जगदीश एकः।
स ह्यूर्णनाभ इव तं तु स्वयं स्वतन्त्रो, विश्वं वमत्यथ च संहरतीति स्वशक्त्या[122]।।

ईश्वर एक है उस को मानने वाले अनेक हैं, जो अपनी-अपनी बुद्धि अनुसार उसे प्राप्त करने की चेष्टा करते हैं -

एक एव जगत्स्वामी तस्यानेकोऽभिमानिनः[123]।।

---

117. योगीन्द्रोऽवददीश्वरः स जगतां कर्ता तथा रक्षिता।
संहर्ता रवि ..... सदा शीतलः।। - ना॰चं॰ 14·72
118. ना॰चं॰ 16·27
119. वही, 18·60
120. आर्य यथारुचितवेशेन शिवो गणेशो, गौरीहरिर्नृहरि.....।
ईशः श्रितः फलति हन्त। तथा तुरुष्कैः, संसेव्यते स हरिरेव विभिन्ननामा।।
- ना॰चं॰ 18·62
121. ना॰चं॰ 18·64
122. वही, 18·175
123. वही, 19·85

जो सर्वत्र एकेश्वर को मानते हैं तथा नमस्कार करते हैं, वे उसे प्रिय होते हैं। वह तीनों भेदों से परे, तीनों लोकों में गमन करने वाला तथा सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड का कारण स्वरूप होता है -

पश्यन्ति ये नमस्यन्ति सर्वत्र जगदीश्वरम् ।
ते प्रिया जगदीशस्य जगदीशश्च तत्प्रियः ।।
ईशो भेदत्रयातीतः परिच्छेदत्रयातिगः ।
सर्वस्यापि च सर्वत्र व्योमेवाऽखिलकारणम्[124] ।।

ईश्वर की शाश्वत का प्रतिपादन करते हुये कहा है कि जिस प्रकार अग्नि सर्दी को, जल गर्मी को दूर करता है तथा कल्पवृक्ष सर्वाभीष्ट पूर्ण करते हैं उसी प्रकार वह दुःखों को समाप्त कर कामनाओं को पूर्ण करता है -

अग्निर्यथा जाड्यरूजं निहन्ति, जलं यथा तापमपाकरोति ।
कल्पद्रुम एति यथेप्सितार्थं, सर्वस्य दुःखं स तथा छिनत्ति[125] ।।

एकेश्वर की परम सत्ता को स्वीकार करते हुये उल्लेख किया है कि देव, दैत्य, यवन और पशु इत्यादि सभी उस की उपासना द्वारा परम गति को प्राप्त करते हैं। वह सम्पूर्ण मनोकामनाओं को पूर्ण करने वाली मणि होती है[126]।

अतः उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट होता है कि ईश्वर को एक तथा सर्वोपरि स्वीकार किया गया है, जिस की सत्ता से कोई भी बहिर्मुख नहीं है। सभी देवी-देवताओं का उद्भव भी उस ईश्वर से ही स्वीकार किया गया है। इस प्रकार जन्म रहित, नित्य, अविनाशी निर्विकार तथा सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को निर्मित करने वाले ईश्वर की उपासना करने का प्रतिपादन दिखाई देता है।

सम्मान प्रदर्शन -

भारतीय सामाजिक जीवन में गुरूओं, अपने से ज्येष्ठों, माता-पिता तथा अन्य सम्बन्धियों के प्रति सम्मान-जनक भावना का विशेष महत्त्व है। यह

---

124. ना.चं. 18.180, 19.88
125. वही, 19.89
126. यवना यवनेतरे तथा, पशवो राक्षस दैत्य देवताः ।
तमुपास्य परां गतिं गताः, सकलस्यापि स कामदो मणिः।। - वही, 19.91

सम्मान उन सभी की आज्ञा का पालन करने, मधुर भाषण द्वारा एवं शुश्रूषा द्वारा होता है । समाज के प्रतिष्ठित लोगों के प्रति जन साधारण की सम्मान-जनक भावना द्वारा और उन के आदेशानुसार कर्तव्यपालन करने से समाज तथा राष्ट्र उन्नति प्राप्त करता है ।

नानक चन्द्रोदय महाकाव्य में सर्वप्रथम सज्जन जनों, गुरूजनों और बुद्धिमानों को प्रणाम करने तथा उन का स्मरण करने से उन के प्रति ग्रन्थकार की सम्मान जनक भावना प्रतीत होती है[127] । महात्मा लोगों का सम्मान भी दिखाई देता है, केवल मात्र लक्षणों द्वारा विलक्षणता युक्त पुरूष को देख कर उस के प्रति सम्मान-जनक भावना से हरिदयालु जैसे विद्वान भी नतमस्तक हो जाते हैं । विद्वानों का सम्मान वस्त्र, आभूषण आदि दे कर किया जाता है[128] । छोटों के प्रति सम्मानपूर्वक भावना तथा राजा के प्रति आदर की भावना का अवलोकन तब होता है जब बोलारराय को देख कर नानक उन्हें प्रणाम करते हैं तथा राजा वात्सल्य से अश्व से उतर कर उस का आलिङ्गन करते हैं -

सम्भ्रान्त उत्थाय नृपं निरीक्ष्य, ननाम तं नानकचन्द्रवर्मा ।
नृपोवरूढ़ सहसा तदाश्वा, दमुं हृदा सादरमालिलिङ्ग[129] ।।

पिता की आज्ञा का पालन करना प्रत्येक मनुष्य का कर्तव्य है क्योंकि पिता का स्थान पुत्र के लिये आकाश से भी उन्नत कहा है । नानक भी पिता के आदेशानुसार बालसिन्धु के साथ वर्तनों का व्यापार करने के लिये इच्छा न होने पर भी चल देते हैं,[130] जिस से पिता के प्रति सम्मान का अवलोकन होता है । रामायण में राम लङ्का के सम्पूर्ण सुखों को तुच्छ समझते हुये माता को स्वर्ग के सुख के समान समझते हुये उन के दर्शनों के लिये जाना चाहते हैं । यहाँ मातृस्नेह तथा सम्मान प्रदर्शित होता है -

---

127. ना॰चं॰ 1॰12
128. वही, 2॰79, 80
129. वही, 2॰117
130. वही, 3॰5;6

अपि स्वर्णमयी लङ्का न मे लक्ष्मण रोचते ।
जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी[131] ।।

नानक चन्द्रोदय महाकाव्य में भी नानक देव के माता के प्रति वात्सल्य एवं आदर को प्रदर्शित किया गया है । पाणिग्रहण के पश्चात् वह लौट कर सर्वप्रथम माता को सकलआभूषण अर्पित करते हैं तथा चरण कमलों में स्वमस्तक स्थापित कर प्रणाम करते हैं -

सर्वाङ्गरत्नाभरणानि मात्रे, निवेद्य चित्राणि वराम्बराणि ।
श्री नानकः पादयुगं स्वमूर्ध्ना, परस्पर्शी लोकैरभिनन्द्यमानः[132] ।।

भगिनीपति के प्रति आदर की भावना का वर्णन भी दिखाई देता है । नानक जयरामवर्मा के चरणों का स्पर्श करते हैं, परन्तु जयरामवर्मा नानक को देवता कह कर ऐसा करने से रोकते हैं, जिस से उन दोनों की परस्पर प्रेम की भावना द्योतित होती है[133] । इस प्रकार तत्कालीन समाज में भगिनीपति का भी विशेष महत्त्वपूर्ण स्थान दिखाई देता है । भ्राता की विचक्षणता एवं सर्वव्यापकता का अनुभव कर नानकी नारी स्वभाववश उक्त सद्-असद् को क्षमा करने के लिये कहती है[134] । यहाँ भ्राता के प्रति बहिन का स्नेह तथा महाजनों के अनुकूल वचनों का आदान प्रदान दिखाई देता है । जातिप्रथा के भेद-भाव को विस्मृत कर परस्पर गुणों के अनुसार सम्मान की भावना समाज में दिखाई देती है । मर्दन से नानक के बारे में जान कर वैणिक यवन वहाँ जाता है तथा आदरपूर्वक उन को प्रणाम करता है[135] । इस प्रकार यवन, हिन्दु आदि के विचार को उपेक्षा ही दृष्टिगोचर होती है । किसी के मन की इच्छा को पूर्ण करना भी उस का सम्मान ही होता है । बोलाराय जब वृद्धावस्था को प्राप्त हो कर नानकदेव के दर्शन करने की अभिलाषा प्रकट करते हैं तो वह उस बारे में जान

---

131. वाल्मीकि रामा.
132. ना.चं. 5.164
133. वही, 3.100 एवं द्र. 3.107, 108
134. वही, 6.11 एवं द्र. 6.14
135. ना.चं. 7.26

कर शीघ्रता से वहाँ पहुँचता है[136]। यहाँ नानक द्वारा राजा बोलाररराय का सम्मान ही किया गया है कि वह उन की इच्छानुसार वहाँ पहुँच जाते हैं।

मनुष्य जाति के अतिरिक्त समुद्र की भी नानक देव के प्रति सम्मान जनक भावना दिखाई देती है। जिस से निर्जीव वस्तुओं में भी शिष्टाचार प्रतीत होता है। समुद्र की तरङ्गों से निकल कर मुक्तामणि नानक देव की पूजा के लिये पुष्पांजलि के समान कार्य करते हैं। महान लोग ही महात्माओं के गुणों को जानते हैं, इस लिये समुद्र को महान कहा गया है जो कि नानक देव की महानता देख कर उन की अर्चनादि करता है। समुद्र में विद्यमान जल भी नानकदेव की संगति करने की इच्छा रखते हैं[137]। इस प्रकार जलादि में गुणशाली व्यक्ति के प्रति श्रद्धा, सङ्गति की भावना तथा सम्मान करने की आस्था दिखाई देती है।

राजा को तत्कालीन समाज में महात्माओं का अत्यन्त आदर-सम्मान करते हुये दिखाया गया है। अपना सम्पूर्ण राज्य "शुद्ध सेन" यति नानक को समर्पित कर नानोपचार द्वारा उन की पूजा करते हैं[138]। पूजनीय स्थान की गरिमा को यथावत् रखते हुये उन के द्वारा निषिद्ध कहे गये कार्य के क्रिया रूप में हो जाने पर उस का प्रायश्चित स्वदेहत्याग में किया जाता है। जिस प्रकार गुरुदत्त, गाय का वध हो जाने पर, पिता द्वारा अपमानित किये जाने पर स्व-देहत्याग करता है[139]। यहाँ प्रतीत होता है कि पिता के सम्मान में उन की आज्ञा तथा उपदेश शिरोधार्य थे। गाय के दूध को अमृत तुल्य प्रतिपादित कर गाय के सम्मान को भी दिखाया गया है[140]। अर्थात् गाय का आदर जिस प्रकार से भारतीय इतिहास में प्राचीन काल से चला आ रहा है, उसी के अनुरूप इसे उल्लिखित किया गया है तथा इसकी पवित्रता को स्थापित रखा गया है।

---

136. ना॰चं॰ 8॰3 एवं द्र॰ 8॰15,20
137. वही, 9॰2 एवं द्र॰ 3,4
138. वही, 9॰148, 149
139. वही, 20॰129
140. क्षीरच्छलादमृतमेव किरन्ति गावो। - ना॰चं॰ 2॰11

अत: नानक चन्द्रोदय महाकाव्य में माता, पिता, पुत्र, गुरू, शिष्य, भ्राता, भगिनी तथा अन्य समाज में रहने वाले प्रतिष्ठित लोगों के प्रति सम्मान की भावना का अवलोकन होता है । आज भी सामाजिक जीवन में परस्पर आदर की भावना की आवश्यकता है, जिस के द्वारा राष्ट्र में एकता, अखण्डता स्थापित हो कर विश्वबन्धुत्व की भावना जाग्रत हो सकती है । परस्पर भेद-भाव तथा हिंसा जैसी प्रचलित कुप्रवृत्तियों का दमन संभव हो सकता है ।

विनम्र व्यवहार -

भारतीय समाज में विभिन्न प्रकार के लोग निवास करते हैं, जो स्व स्व प्रकृत्यानुसार अन्य लोगों के साथ पृथक्-पृथक् व्यवहार का आचरण करते हैं । कटुता-वश कुछ का व्यवहार अन्यों को प्रिय नहीं लगता है, परन्तु विनम्रता एक ऐसा व्यवहार है जिस के द्वारा सम्पूर्ण प्राणियों को अपनत्व में संयोजित किया जा सकता है । विनम्र स्वभाव द्वारा विद्याओं तथा सिद्धियों की प्राप्ति सुकर कही गई है । विद्या-युक्त व्यक्ति के लिये सर्वप्रथम विनययुक्त होना परमावश्यक माना गया है । "विद्या सुन्दर होते हुये भी विनय रूपी सम्पत्ति से रहित होने पर दूषित हो जाती है"[141] । अर्थात् विनम्रता को ऐसा धन माना है जिस के अभाव में विद्या असम्भव होती है । भारवि ने कहा है कि सज्जन लोग विनय से ही प्रेम रखते हैं क्योंकि यह गुण तपस्वियों में पुण्य उत्पन्न करने वाला, सुख अभिलाषा रखने वालों की समृद्धि को बढ़ाने वाला तथा योगिजनों को मुक्त करने वाला होता है[142] । इस प्रकार निखिल सिद्धियों का दाता विनम्र-व्यवहार उल्लिखित किया है । कामन्दकीय नीति में उल्लेख है कि जो मनुष्य विनय सम्पन्न होता है उसे शास्त्रतत्त्व स्वयं ज्ञात हो जाता है, क्योंकि नीतिशास्त्र का मूल विनय होता है -

---

141. विद्या ह्यद्यापि सावद्या विना विनय संपद: ।। हमारे संस्कार सूत्र, पृ. 110. शब्द. विद्यमा/वेतमाबाप्ति सा-शेद विनमावह्-सुभाषित रत्न भाण्डागारम्, 551 पृ. 172 शब्द. पृ. 87, 47.

142. तिष्ठतां तपसि पुण्यमासृजन्, संपदोऽनुगुणयन्सुखैषिणाम् ।
योगिनां परिणामन्विमुक्तये, केन नास्तु विनय: सतां प्रिय:।।
- भा. किरात. 13.44

नयस्य विनयो मूलं विनय: शास्त्रनिश्चय: ।
विनयो हीन्द्रियजयस्तद्युक्त: शास्त्रमृच्छति ।।
तन्निष्ठस्य हि शास्त्रार्था: प्रसीदन्ति तत: परम्[143] ।।

इस प्रकार विनम्र-व्यवहार का महत्त्व प्रतिपादित कर उस को अपने दैनिक जीवन में अपनाने हेतु उल्लेख उपलब्ध होते हैं ।

नानकचन्द्रोदय महाकाव्य में विनम्रता से युक्त गुरू नानक देव का चित्रण प्रत्यक्ष दिखाई देता है । जिस का अध्ययन करने से विनम्र-व्यवहार की उपादेयता परमावश्यक प्रतीत होती है । चन्दोराणी द्वारा कटुवचन उच्चारित किये जाने पर भी नानक शान्त रहते हैं तथा विनय युक्त उत्तर देते हैं । यहाँ नानक देव को ज्ञानी कहते हुये उल्लेख किया गया है कि ऐसे व्यक्ति पत्थरों द्वारा ताड़ित किये जाने पर अथवा पुष्पों द्वारा आवृत होने पर, दोनों अवस्थाओं में विकृत नहीं होते हैं -

तां नानक: शान्तमना बभाषे, मोहेन रूक्षाणि समालपन्तीम् ।
लोष्टैर्हतो वा कुसुमैर्वृतो वा, ज्ञानी विकारं न मनागुपैति[144] ।।

इस प्रकार विनम्रता ज्ञानी पुरूषों का स्वभाव ही बन जाता है । वन में मर्दन के साथ नम्रता से वार्तालाप करते हुये नानक देव कहते हैं कि कठोर जीवन यापन करने वाले, मेरा अनुकरण तुम क्यों कर रहे हो[145] । अर्थात् नम्रता द्वारा उसे मार्ग में आने वाली कठिनाईयों के बारे में संकेत कर देते हैं । विनयशील स्वभाव द्वारा शुश्रूषा करने से गुरू भी सन्तुष्ट हो जाते हैं । जिस प्रकार मर्दन द्वारा विनम्रता से सेवा किये जाने पर गुरू नानक देव प्रसन्न हो जाते हैं[146] । अर्थात् नम्रता ऐसा गुण है जिस के वश में सभी हो जाते हैं । कालवर्मा के जीवन के बारे में उल्लेख करते हुये देवराजशर्मा ने लिखा है कि उस ने अपने विनम्र-स्वभाव द्वारा समस्त प्राणियों पर विजय प्राप्त कर अखिल जगत् में यश प्रसारित कर

---

143. कामन्दकीय नीतिसार. 1.1.2।
144. ना.चं. 6.130
145. वही, 7.11
146. वही, 1.96, 97

दिया था[147]। इस से प्रतीत होता है कि तत्कालीन समाज में श्रेष्ठ-नम्र व्यवहार अत्यन्त प्रशंसनीय था, क्योंकि ऐसे व्यक्ति की लोग श्लाघा करते थे। साधु, संन्यासियों के राज्य में आगमन करने पर राजा लोग उन का आदर सम्मान व अतीव नम्रता द्वारा करते हैं[148]। जिस के द्वारा योगी प्रसन्न होते हैं तथा राज्य के कल्याणहेतु कार्य करते हैं। गुरू नानक देव को देख कर राजा बोलारराय करबद्ध निवेदन करते हैं, यहाँ राजा का अत्यन्त नम्र सद्व्यवहार ही दृष्टिगोचर होता है।

विनम्रता से रहित हो कर यदि किसी सज्जन को कठोर वचनों का प्रयोग किया जाता है तो दूसरे लोग इस का विरोध करते हैं। जिस प्रकार कालवर्मा द्वारा नानकदेव को कटुवचन कहने पर बोलारराय कहते हैं कि साधुओं के समान पूजनीय नानक को तुम दुर्वचनों का प्रयोग मत करो। यदि बुरे व्यसन भी सन्तान को हों तो भी प्रेम से समझाने के लिये कहा गया है[149]। इस प्रकार क्रोध का त्याग कर नम्र-सुशील स्वभाव की प्रशंसा का ही अवलोकन होता है। नानकदेव का प्रत्येक के साथ व्यवहार विनयशील था :—

नानको निजशादेदं विनयावनतं नृपम्।
तवैवास्मि गृहे तस्मिंस्त्वद्बाहुपरिपालितः[150]॥

अपने पाणिग्रहण के समय भी नानक गुरूजनों को नम्रता से प्रणाम कर उन का आशीर्वाद प्राप्त कर अन्य कार्यों को करते हैं[151]। नानक जी का नम्र व्यवहार बाल्यकाल से ही था क्योंकि बचपन में ही उन के चिन्हों अर्थात् (ज्योतिष सम्बन्धी लक्षणों) को देख कर हरिदयालु कहते हैं कि वह एक महात्मा बनेगा[152]। इस प्रकार विनम्र-व्यवहार को सम्पूर्ण श्रेष्ठ गुणों का द्योतक माना गया है। पाणिग्रहण के समय जब वर पक्ष वाले वधू पक्ष वालों के घर आते हैं तो उन के

---

147. ~~कवि~~ ना॰चं॰ 2·24
148. ना॰चं॰ 3·53
149. वही, 3·47, 48
150. वही, 3·55
151. वही, 5·31
152. वही, 5·32

प्रति विनम्र व्यवहार दिखाई देता है । सुलक्षणी के पिता मूलचन्द्र वरयात्रा के आ जाने पर उन की पूजा कर विनय-पूर्वक विवाह का कार्य सम्पन्न करने के लिये कहते हैं[153] । नानक चन्द्रोदय महाकाव्य में शिष्य की विनम्र प्रार्थना को गुरू द्वारा आसानी से स्वीकार किया जाता है क्योंकि नम्रता के अधीन तो ईश्वर भी हो जाते हैं । जब वैणिक गुरू नानक देव को मक्का चलने के लिए विनम्र अनुरोध करता है तो वह सुमेरु की यात्रा को त्याग कर मक्का जाते हैं[154] । वहाँ यवनों द्वारा अपमानित किये जाने पर भी नानक जल रहित भूमि में वर्षा के समान, उन को उपदेशामृत ही प्रदान करते हैं[155] । जहाँ दूसरों के कठोर व्यवहार को सहन कर भी उन्हें नम्रता द्वारा अपने वश में किया जाता है । विपरीत आचरण करने वाले कुछ समय पश्चात् अधीन हो जाते हैं क्योंकि वास्तविक रूप में विनम्र-व्यवहार ही आकर्षक होता है ।

अत: विनम्र-व्यवहार से ओत-प्रोत नायक गुरू नानक देव का चित्रण देवराज शर्मा ने किया है जिस से सम्पूर्ण समाज की परस्पर विनम्रता द्वारा प्रणय भावना का अवलोकन होता है । इस प्रकार एक दूसरे के साथ विनयशील व्यवहार का आदान-प्रदान करने से सम्बन्धों में प्रगाढ़ता आती है । ऐसा व्यक्ति समग्र गुणों का निधि होता है, जिस प्रकार नानक देव का चित्रण प्रस्तुत किया गया है । वह समाज में प्रतिष्ठित पद प्राप्त कर सम्मान ग्रहण करता है, जिस से उस का यश चारों दिशाओं में प्रसृत हो जाता है ।

अतिथि-सत्कार -

धर्मसूत्रों, धर्मशास्त्रों तथा वैदिक ग्रन्थों में अतिथि-सत्कार का विवेचन उपलब्ध होता है । सामान्य रूप से भोजन के समय अपने वाले किसी भी जाति विशेष के व्यक्ति को अतिथि समझा जाता था । परन्तु वसिष्ठ धर्मसूत्र में

---

153. अथ मूलचन्द्र उपगम्य बन्धुभि, र्वरवस्त्र भूषणवरैर्वरं कृती ।
परिपूज्य बान्धवजनान्सभाजयन्, विनयादयाचत विवाहसज्जताम् ।।
- ना·चं· 5·108

154. ना·चं· 10·2,3,5 एवं द्र· 10·25 त: 29 पर्यन्तं

155. इत्युपालम्भमुखरे यवने तत्र नानक: ।
अमृतासारमकिरद् वारिवाह इवोषरे ।। - ना·चं· 10·30

"अतिथिर्ब्राह्मण: स्मृत:"[156] का उल्लेख कर ब्राह्मण को ही अतिथि स्वीकार किया गया है । पराशर स्मृति में अतिथि से गोत्र, चरण, श्रुत और स्वाध्याय पूछने का निषेध किया गया है -

न पृच्छेद्गोत्राचरणे न स्वाध्यायं श्रुतं तथा ।
हृदये कल्पयेद्देवं सर्वदेवमयो हि स: ।।[157]

इस प्रकार गृहागत अतिथि को सभी देवताओं का समन्वित स्वरूप माना गया है । याज्ञवल्क्य स्मृति में अतिथि को "अध्वनीन" उल्लिखित किया गया है[158] । अर्थात् मार्ग पर गमन करने वाले परदेसी पथिक को अतिथि कहा गया है । निरुक्त में भी यात्री को ही अतिथि प्रतिपादित किया है -

अतिथिरभ्यतितो गहान् भवति अभ्येति तिथिषु पर कुलानि वा[159] ।

ब्रह्म पुराण में उल्लेख मिलता है कि अतिथि सत्कार अवश्य करना चाहिये जो ऐसा अनुष्ठित नहीं करता है उस के घर से यदि अतिथि निराश हो कर चला जाता है तो वह अभ्यागत उसे दुष्कृत देकर पुण्य ग्रहण कर जाता है -

अतिर्थिर्यस्य भग्नाशो गृहत्प्रतिनिवर्तते ।
स दत्वा दुष्कृतं तस्मै पुण्यमादाय गच्छति[160] ।।

मनु स्मृति में आसन, भोजन, विस्तर और फल आदि द्वारा आतिथ्य-सत्कार करने के लिये कहा है -

आसनाशनशय्याभिरद्भिर्मूलफलेन वा ।
नास्य कश्चिद्वसेद् गेहे शक्तितोऽनार्चितोऽतिथि:[161] ।।

---

156. वासिष्ठ धर्म सूत्र, 8.7
157. पराशर स्मृति, 1.48
158. अध्वनीनोऽतिथिर्ज्ञेय: श्रोत्रियो वेदपारग: ।
मान्यावेतौ गृहस्थस्य ब्रह्मलोकमभीप्सत: ।। - याज्ञ.स्मृ. 1.111
159. निरुक्त. 4.5
160. ब्रह्म पुराण. 222.36
161. मनु स्मृति, 4.29

अतिथ को प्राप्त कर यथाशक्ति आसन, जल तथा अन्न देकर सत्कार करे[162]। ऋग्वेद में भी अतिथि सेवा का उपदेश दिया गया है, वहाँ उल्लिखित है कि उस की रक्षा करो तथा मित्र बनो जो विधिपूर्वक तुम्हारा आतिथ्य करता है[163]। मार्कण्डेय पुराण में उल्लेख है कि अश्विनी कुमारों से भी अधिक रूपवान्, शान्त स्वभाव वाले, चरित्रवान्, वेद वेदाङ्ग के ज्ञाता ब्राह्मण अतिथियों के आगमनपर अत्यन्त प्रसन्न होते हैं, रात्रि में आने वाले अभ्यागतों का वे आश्रय स्वरूप होते हैं। इस प्रकार जो गृहस्थी अतिथि के प्रति अपने कर्तव्यों का पालन करता है, उस का ही जीवन सफल समझा जाता है[164]। वायु पुराण में उल्लेख मिलता है कि सिद्ध लोग इस भूमि पर ब्राह्मण रूप से भ्रमण करते हैं, इसलिये आते हुये अतिथि के पास विनयभाव से करबद्ध हो कर जाना चाहिये[165]। यहाँ ब्राह्मण के आतिथ्य का ही अवलोकन होता है। इस प्रकार भारतीय इतिहास में अतिथि को यज्ञ का मूल स्वीकार किया गया है, क्योंकि भारत में प्राणियों के प्रति दया भावना, अतिथि रूप में घर पर, सिद्ध योगी महात्माओं का आगमन होने पर तथा समाज निमित्त श्रेष्ठ उपदेशों का प्रचार कर रहे विद्वानों का आतिथ्य सत्कार श्रद्धा से किया जाता रहा है। प्रत्येक प्राणी के प्रति दया तथा विनम्रता की भावना अतिथि सत्कार का प्रधान अंग मानी जाती है।

नानक-चन्द्रोदय महाकाव्य में भी "अतिथि देवो भव" की भावना को ही चरितार्थ किया गया है। अतिथि के लक्षण का निरूपण उपलब्ध नहीं होता है कि वह किस जाति आदि से होना चाहिये इस लिये प्रतीत होता है कि अभ्यागत रूप में आये हुये प्रत्येक व्यक्ति का आतिथ्य सत्कार तत्कालीन समाज में किया जाता है था। बालसिन्धु सर्वप्रथम अङ्गद का आतिथ्य सत्कार

---

162. संप्राप्ताय त्वतिथये प्रदद्यादासनोदके।
अन्नं चैव यथाशक्ति सत्कृत्य विधिपूर्वकम्॥ - मनु॰स्मृति॰3॰99

163. मार्जाल्यो मृज्यते स्वे दमूना:....अतिथि: शिवो न:।
सहस्रशृङ्गो वृषभ.....प्रास्यन्यान्॥ -ऋ॰ 5॰1॰8

164. कश्चिद्द्विजातिप्रवर:.....। वसन्नायस्तटेविप्रो रूपेणात्यश्विनावपि॥
मृदुस्वभाव: सद्वृत्तोवेदवेदांगपारग:। सदातिथिप्रियोरात्रावागता-
नांसमाश्रय:॥ - मार्क॰पु॰54॰5-6 पृ॰16;
एवं द्र॰ 61॰48-49, पृ॰69

165. वायु पुराण॰ 71॰74

विधिपूर्वक कर, कथा का व्याख्यान करते हैं[166]। विधिपूर्वक से यही अभिप्राय प्रतीत होता है कि अतिथि योग्य, आसन, भोजन और जल आदि जिन पदार्थों की नितान्त आवश्यकता होती है उन्हें प्रदान किया जाता है। प्रत्येक घर में अभ्यागतों की शुश्रूषा की जाती है जिस से पथिक लोग विदेश में उपलब्ध होने वाली विपत्तियों को प्राप्त नहीं करते हैं। इस प्रकार यात्री वर्ग को भी अतिथि माना गया है जिन का सत्कार "जय निवार" (जैतवार) गाँव के लोग करते हैं[167]। इस प्रकार पाराशर स्मृति में उल्लिखित गृहस्थ के छः कर्मों के अनुसार आतिथ्य करते हैं। वहाँ कहा गया है कि प्रतिदिन स्नान, संध्या, जप, होम, देवताओं का पूजन, अतिथि सत्कार और वैश्वदेव ये छः कर्म गृहस्थ के होते हैं[168]।

नानकचन्द्रोदय महाकाव्य में अतिथि का भोजनादि द्वारा सत्कार किये जाने का उल्लेख किया गया है। उस के पश्चात् इकट्ठे बैठ कर विभिन्न देशों की कथाओं का व्याख्यान किया जाता है[169]। अर्थात् अभ्यागत विभिन्न स्थानों का वर्णन करता है जहाँ से वह आया होता है तथा अन्य घर के लोग श्रवण करते हैं। जब बालसिन्धु लाल के घर पधारते हैं तो इसी प्रकार आचरण किया जाता है।

प्रजा वर्ग के लोग राजा का आतिथ्य सत्कार करते हुये प्रदर्शित किये गये हैं[170]। जिस से राजा से रंक तक सभी का अतिथि सत्कार दिखाई देता है। नानकी द्वारा भोजनासनादि द्वारा मर्दन का सत्कार करना आतिथ्य भाव को प्रकट करता है। लाल द्वारा नानक तथा मर्दन का सत्कार किया जाता है। घर में आये हुये अभ्यागत के चरणों का प्रक्षालन कर आसन तथा

---

166. ना॰चं॰ 1॰116
167. वही, 2॰3,4
168. स्नानं सन्ध्या जपो होमो देवतानां च पूजनम्।
आतिथ्यं वैश्वदेवं च षट् कर्माणि दिने दिने॥ - पाराशर स्मृति, 1॰39
169. ना॰चं॰ 2॰84
170. ना॰चं॰ 3॰58

यथाशक्ति भोजन प्रदान कर उसे प्रसन्न किया जाता है[171]। क्योंकि मनुस्मृति में कहा भी गया है कि बैठने के लिये आसन, भूमि, जल और मधुर वाणी इन का अभाव श्रेष्ठ लोगों के घर में नहीं होता -

तृणानि भूमिरुदकं वाक्चतुर्थी च सुनृता ।
एतान्यपि सतां गेहे नोच्छिद्यन्ते कदाचन[172] ।।

इस प्रकार अन्य पदार्थों का अभावा हो जाने पर इन के द्वारा ही आतिथ्य करने को कहा है । नानक चन्द्रोदय महाकाव्य में वैराग्य प्राप्त कर वनों में रहने वाले सिद्ध पुरुषों के द्वारा घर में पदार्पण करने पर पूर्वजों का पुण्य समझा जाता है, जिस के फलस्वरूप तीर्थ के समान पवित्र करने वाले ये लोग घर आते हैं[173]। उन का आतिथ्य सत्कार कर अपने को धन्य समझा जाता है । राजा लोग भी महात्माओं द्वारा घर में अतिथि रूप में पधारने पर अपना सौभाग्य मानते हैं, क्योंकि ऐसे सज्जन-वृन्द सम्पूर्ण इच्छाओं को पूर्ण करते हैं । राजयोग्य (Royal) पदार्थों द्वारा उन का सत्कार किया जाता है[174]। राजा शुद्ध सेन को इस प्रकार अतिथि सत्कार करते चित्रित किया गया है । अतिथि-सत्कार की सर्वोत्कृष्टता को स्वीकार करते हुये उल्लेख किया है कि जो लोग घर में आये अतिथियों की सेवा नहीं करते हैं तथा वक्र दृष्टि से अवलोकन करते हैं वे घोर दुःख को ग्रहण करते हैं -

अतिथीन् गृहागतान्यो, वक्रदृशा पश्यति क्रूरः ।
पर्यावर्तननरके तदक्षि गृध्रादिभिर्हियते[175] ।।

अतिथि-सत्कार से विमुख न होने वालों के लिये सुखों का निरूपण करते हुये नानक कहते हैं कि वे इस पुण्य के प्रभाव से स्वर्ग तुल्य सुखों को उपलब्ध करते हैं[176]। इस प्रकार अतिथि सेवा को सर्वोपरि स्वीकार करते हुये स्वर्ग-नरक की

---

171. ना॰चं॰ 7·9, 7·131,132 एवं द्र॰7·143
172. मनु स्मृ॰ 3·101
173. ना॰चं॰8·40 तः 42 पर्यन्तं
174. तेन राजोपचारेण पूजाकृता, पत्तनादागतेन प्रणम्योदितम् ।
ऐहिकामुष्मिकाणां शुभानां भवान्, शेवधिर्लभ्यते भाग्यतो मादृशाम् ।।
- ना॰चं॰ 9·40 एवं द्र॰39
175. ना॰चं॰ 14·302
176. वही, 14·330

प्राप्ति भी इस के द्वारा प्रतिपादित की गई है । जो लोग अतिथियों का सत्कार नहीं करते थे उनके लिये परिणाम स्वरूप भयानक-पक्ष का निरूपण किया गया है । गृहस्थ के लिये पंचमहायज्ञों (ब्रह्म, देव, पितृ, भूत, नृ) का पालन करना परमावश्यक माना गया है, जिन में नृयज्ञ के अन्तर्गत अतिथि सत्कार आता है । इस का पालन करना आवश्यक कहा गया है । गृहस्थाश्रम सामाजिक प्राणी का परम कर्तव्य होता है तथा यह एक पवित्र बन्धन है, जिस की उपेक्षा न करके पालन करने के लिये प्रेरित किया गया है ।

अत: नानक चन्द्रोदय महाकाव्य में राजा हो या साधारण मनुष्य सभी के लिये अतिथि-सत्कार अत्यन्तावश्यक कहा गया है, क्योंकि प्रत्येक गृहस्थ का धर्म अतिथि सत्कार माना गया है । मनुस्मृति में अतिथि-पूजन को सर्वोपरि स्वीकार करते हुये कहा भी गया है कि "अतिथि पूजन धन, आयु, यश तथा स्वर्ग का निमित्त होता है -

न वै स्वयं तदश्नीयादतिथिं यन्न भोजयेत् ।
धन्यं यशस्यमायुष्यं स्वर्ग्यं वाऽतिथिपूजनम् ।[177]

इसी प्रकार प्रस्तुत महाकाव्य में भी अतिथि सत्कार की श्रेष्ठता स्वर्ग प्राप्ति-तुल्य उल्लिखित की गई है ।

सामाजिक नैतिकता

मानवीय जीवन के प्रारम्भ से ही, मनुष्य ने जीवन में क्या उचित है और क्या अनुचित है इस का निष्कर्ष निकालकर आचरण करने के प्रयास किये हैं । नैतिक दृष्टि से समाज में विभिन्न प्रकार की विचार-धाराओं तथा आचरणों के लोग विद्यमान हैं । नैतिकता का वास्तविक सम्बन्ध आचरण से ही होता है । समाज में रहता हुआ व्यक्ति किस प्रकार का आचरण कर अन्य लोगों में स्थान प्राप्त करता है इस का अध्ययन कर उस के नैतिक जीवन के बारे में कहा जाता है कि समाज में रहने वाले लोगों का इस प्रकार का नैतिक जीवन है । दयाभावना,

---

177. मनु.स्मृ. 3.106

आतिथ्य सत्कार, जप, तप, सत्यपालन, और सात्त्विक विचार धारा इत्यादि सामाजिक नैतिकता के अंग रूप में माने जाते हैं। इनका पूर्ण निष्ठा के साथ परिपालन करना ही उन्नत नैतिक स्तर होता है अन्यथा पतित नैतिकता युक्त आचरण समझा जाता है। आचरण को समाज में रहकर व्यवहार द्वारा ही सीखा जाता है। नन्हा सा शिशु बचपन से लेकर समाज में उठना, बैठना खाना, पीना, रहना, बोलना और सत्कार करना आदि सभ्य गुणों की शिक्षा ग्रहण करता है तथा आजीवन उन का पालन भी करता है। अनैतिकता का उद्भाव भी समाज से होता है। स्वार्थपरायणता जैसी असह्य व्याधि प्राचीनकाल से चली आ रही है, जो कि नैतिक-जीवन के मूल्यों का उन्मूलन कर मनुष्यों को आचरण रहित करती है। भले ही आज नैतिक ग्रन्थों का ह्रास उत्तरोत्तर वृद्धि को प्राप्त कर रहा है परन्तु फिर भी जो समाज सुस्थिर दिखाई देता है इस का आधार स्तम्भ सामाजिक नैतिकता ही है।

नानक चन्द्रोदय महाकाव्य के अध्ययन से प्रतीत होता है कि तत्कालीन समाज में निवास करने वाले ब्राह्मण लोग श्रुति स्मृति के ज्ञाता और सन्तोषशील थे, राजा लोग प्रजा की रक्षा करना अपना परम कर्तव्य समझते थे, जिस से उनकी कीर्ति सर्वत्र प्रसृत थी[178]। क्षत्रिय वर्ग के लोग वेद मार्ग का अनुसरण कर, कलियुग में भी ख्याति प्राप्त करते हुये दिखाये गये हैं[179]। अतिथि-पूजन की सर्वश्रेष्ठता एवं उन के प्रति श्रद्धा का अवलोकन तत्कालीन समाज में होता है[180]।

वैराग्य-धारण करने वाले यतियों के मन में सांसारिक सुखों के उपभोग की लेशमात्र भी इच्छा दिखाई नहीं देती है, इन सभी से मुक्त हो कर वे स्वच्छन्द विचरण करते हैं। वे अखिल जगत् को तिनके के समान जानते हैं तथा अन्य लोगों द्वारा उन के साथ सङ्गति करना सुधापान समझा जाता है[181]। इस प्रकार श्रेष्ठ लोगों के जीवन को उन्नत नैतिकता से सम्पन्न प्रतिपादित किया है तथा अन्य लोगों की रुचि भी उन के संसर्ग करने में ही दिखाई देती है।

---

178. ना॰चं॰ 2॰15

179. वही, 2॰17, 19

180. वही, 1॰116, एवं द्र॰ 2॰4, 84, 3॰59

181. वही, 1॰98 एवं द्र॰ 105, 106, 112

गृहस्थ धर्म का पालन करना समाज में रहने वाले प्रत्येक प्राणी का कर्तव्य समझा जाता है, जिस के लिये विषयोपभोगों में अत्याधिक आसक्ति का अभाव परमावश्यक होता है[182]। नान्दीमुख आदि कार्य कर तथा पूर्वजों की तृप्ति करने का विधान प्रतिपादित किया गया है[183]। अर्थात् इन कार्यों को अनुष्ठित करना प्रत्येक गृहस्थ का कर्तव्य होता है, जिन का अनुसरण तत्कालीन समाज में किया जाता है।

पिता की गरिमा को मानते हुये उस की आज्ञा को शिरोधार्य माना जाता है, किन्तु पुत्र के द्वारा दुर्व्यसनों में संलिप्त हो जाने पर पिता द्वारा उस की ताड़ना का उल्लेख भी दिखाई देता है, परन्तु माता की ममता को दिखाते हुये कहा गया है कि वह पुत्र के अपराध करने पर भी उसे कठोर शब्द उच्चारित नहीं करती है[184]। पिता के क्रोध का अवलोकन कालवर्मा के निरूपण में दिखाया गया है, वह नानकदेव के विपरीत आचरणों को देख कर, उस पर कुपित होकर उसे चोर शब्द का भी उच्चारण कर देते हैं[185]। यहाँ प्रतीत होता है कि पिता-पुत्र को सत्कार्यों में नियोजित देखना चाहता है। भले ही नानक देव अनुचित कार्य नहीं कर रहे थे परन्तु पिता की दृष्टि में वे शोभनीय नहीं थे, क्योंकि तब तक नानक की अलौकिक-शक्ति का आभास उन्हें नहीं हुआ था। कालवर्मा द्वारा कठोर वचनों से पुत्र की भर्त्सना श्रवण कर बोलारराय कहते हैं कि पुत्र को यदि जुआ खेलने आदि के दुर्व्यसन हों तो भी उस पर क्रोधित नहीं होना चाहिये[186]। उन के मतानुसार पिता-पुत्र का सम्बन्ध ऐसा है जिस में असह्य बातों को भी सहन करना पड़ता है। परन्तु कालवर्मा विशुद्ध नैतिक-जीवन को यापन करना ही उत्कृष्ट मानते हैं।

सामाजिक जीवन में अर्थ का महत्त्व अत्यधिक दिखाई देता है। धन हीन व्यक्ति की सभी क्रियाओं को निष्फल कहा है[187]। यहाँ प्रतीत होता

---

182. ना॰चं॰ 2॰27
183. वही, 2॰45
184. वही, 2॰106, 107
185. वही, 2॰104
186. वही, 3॰46, 47
187. वही, 3॰22

है कि धनवान् लोगों का प्रभाव समाज में था तथा उन्हीं का सम्मान किया जाता था, गरीब मनुष्य का तिरस्कार दिखाई देता है, जिस से मानवीय मूल्यों का तिरस्कार भी कहीं-कहीं उल्लिखित दृष्टिगोचर होता है ।

स्वरूपवती, सुन्दर और गुणयुक्त युवती को देखकर उस के प्रति जयराम वर्मा के मन में प्रणय-भावना जाग्रत हो जाती है तथा निष्कपट प्रेम-भाव को प्रदर्शित करते हुये उस के साथ पाणिग्रहण करने का प्रयास किया जाता है[188] । जिस से आजकल के समाज में प्रचलित काम-पिपासा तक ही सीमित प्रेम का नाटक, दोषपूर्ण अवगुण रूप में हर रोज़ दैनिक समाचार पत्रों में पढ़ने को तथा व्यावहारिक रूप में क्रियाशील दिखाई दे रहा है, उस का अभाव तत्कालीन समाज में प्रतिपादित किया गया है ।

भगिनीपति के चरण स्पर्श करना, साथियों तथा पड़ोसियों की कुशल क्षेम जानने में उत्सुकता होना, माङ्गलिक कार्यों में सर्वप्रथम गुरूओं को प्रणाम करना, माता का आशीर्वाद ग्रहण करना, महान् व्यक्तियों का प्रार्थना द्वारा प्रसन्न होना, ज्ञानवान् लोगों का विकार रहित होना तथा स्वामी के प्रति शिष्य की सम्मानजनक भावना[189] का होना इन सभी के उल्लेख द्वारा सामाजिक जीवन में आचरणों का उन्नत नैतिक स्तर दिखाई देता है ।

समाज में विभिन्न प्रकार के लोग होते हैं जो कि शारीरिक एवं प्राकृतिक विपत्तियों के कारण अपना पेट नहीं भर सकते हैं, इनके लिये दान देना अन्य समाज में रहने वाले लोगों का कर्तव्य बनता है । नानक देव इस आचरण में उदार दिखाई देते हैं, उनके समीप से कोई भी याचक रिक्त-हस्त लौट कर नहीं जाता है[190] । इस प्रकार माँगने वाले की इच्छा को यथाशक्ति दान देकर पूर्ण किया जाता है । हिन्दु और मुसलमानों में उस समय ईर्ष्या, पारस्परिक द्वेष और एक दूसरे के धर्म को निकृष्ट सिद्ध करने की प्रबल प्रवृत्ति

---

188. ना·चं· 3·62, 63, 64, 68

189. वही, 3·100 एवं द्र· 4·32, 5·158, 5;164; 6·11, 139, 7·14

190. वही, 3·4

बलशाली हो रहे थे । गुरू नानक देव के दान-व्यसन को देख कर भी यवन अधिकारी ईर्ष्या करते हैं[191] । परन्तु नानक देव दोनों धर्मों के लोगों को परस्पर मित्रता से रहने, तथा एक दूसरे के धर्म एवं देवता का सत्कार करने का ही उपदेश देते हैं[192] । इस प्रकार समाज में फैल रही अनैतिक-विषमताओं का उन्मूलन करने का पूर्ण प्रयास करते हैं । राजा मालिक जैसे लोग भी उल्लिखित किये हैं जो श्रेष्ठ कार्य न कर के लोगों को दु:ख दे कर धन एकत्रित करते हैं । गुरू नानक देव राजा मालिक द्वारा प्रदत्त रोटी को हाथ में पकड़ कर उसे दबा कर उस में से रक्त प्रवाहित करते हैं[193] । यहाँ यह ज्ञात होता है कि अनैतिक ढंग से अर्जित अन्न में गरीबों का खून लिप्त होता है, जिस अन्न को ग्रहण करने से भी पाप लगता है । इस प्रकार श्रेष्ठ-आचरण युक्त जीवन यापन करने का उपदेश समाज को दिया गया है ।

महात्माओं एवं श्रेष्ठ लोगों के चरित्र को शंका की दृष्टि से देखने वाले "सिद्धमान्य क्षितिपाल" जैसे लोगों का उल्लेख भी मिलता है; जिस से उस की निकृष्ट एवं संदेहास्पद बुद्धि का ज्ञान होता है । क्षितिपाल योगियों को पथभ्रष्ट करने हेतु काम-युक्त युवतियों को उन के समक्ष प्रेषित करता है, परन्तु उच्च-चरित्र से युक्त योगियों की दृष्टि से वे कुलटायें उन के प्रभाव से स्तम्भ की तरह जड़ हो जाती हैं । उसे देख कर वह योगी के चरणों में गिरता है तथा क्षमा याचना करता है[194] । इस प्रकार उन्नत विचारों एवं निकृष्ट-भावनाओं से भरपूर दोनों प्रकार के लोगों का उल्लेख किया गया है ।

लोग अरण्यवासी तपस्वी लोगों का घर में आना तीर्थ तुल्य मानते हैं । इस के अतिरिक्त पुत्र के स्नेह-वश माता का विलाप करना, मर्दन जैसे सेवक द्वारा स्वामी को यथार्थ बात कहना, नानकी की जीवों के प्रति दया भावना, कन्या के पिता द्वारा उस से मिलने के लिये जाने पर यथाशक्ति सामग्री

---

191. ना.चं. 4.6

192. वही, 10.30, 31

193. वही, 7.148

194. वही, 8.103, त: 107 पर्यन्तं

एवं द्रव्य देना, दूसरे के घर किये गये भोजन को अमृत-तुल्य कह कर उस के स्वाद का वर्णन करना, महात्मा लोगों की महिमा को जान कर उन की पूजा करना तथा सज्जन लोगों की वाणी द्वारा अमृत-तुल्य स्वादिष्ट फल प्राप्त मानना[195] इत्यादि सामाजिक नैतिकताओं का उल्लेख मिलता है ।

अत: नानक-चन्द्रोदय महाकाव्य में गुरू नानक देव के जीवन का चित्रण कर सभी धर्मों के प्रति निष्ठा, श्रद्धा तथा सत्कार की भावना का निरूपण किया गया है । नानक देव ने मुसलमानों और हिन्दुओं के मध्य धार्मिक सहिष्णुता की ज्योति प्रज्वलित कर, धार्मिक असहिष्णुता तथा कट्टरता के विष को व्याप्त होने से रोका है । हिन्दुओं को संकीर्णता वाली प्रथाओं का त्याग करने का उपदेश दिया, एवं परस्पर सामन्वय स्थापित करने का पूर्ण प्रयास किया गया है । सामाजिक जीवन में उच्च-नैतिक जीवन स्थापित करने की दृष्टि से भ्रातृत्व-भावना का संचार किया गया है ।

= = = = = = =

---

195. ना॰चं॰ 8·42,27; 7·106, 108, 4·38, 8·73, 9·2, 7·54

सप्तम अध्याय

आर्थिक जीवन

(क) मानव जीवन में अर्थ का महत्त्व

(ख) विविध व्यवसाय, व्यवसायी

(ग) धनार्जन के अन्य साधन

= = = = = =

सप्तम अध्याय

आर्थिक जीवन

मानव जीवन में अर्थ का महत्त्व -

सम्पूर्ण विश्व में निवास करने वाले किसी भी प्राणी का जीवन अर्थ के अभाव में सुखमय नहीं होता है । प्रत्येक राष्ट्र की अर्थव्यवस्था में उत्तरोत्तर वृद्धि दिखाई देती है । कोई भी देश आर्थिक स्थिति में तथावत् दिखाई नहीं देता है इस का कारण यह है कि आर्थिक रूप से सम्पन्न होने पर ही वह राष्ट्र प्रगति करने में सक्षम होता है । तीन अक्षरों में संकलित अर्थ शब्द का अभाव ऐसा होता है कि इस से सम्पूर्ण राष्ट्र तथा विश्व की शासन व्यवस्था ही डगमगा सकती है । इसीलिये आर्थिक रूप में सुदृढ़ बनने के लिये प्रत्येक देश प्रयत्न-शील रहता है । मनुष्य का जीवन धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष के बिना संतुलित नहीं रह सकता है । पुरुषार्थ-चतुष्टय को भारतीय संस्कृति का मूल आधार स्वीकार किया गया है । मनुस्मृति में भी पुरुषार्थ-चतुष्टय की आवश्यकता पर बल दिया गया है -

एतच्चतुर्विधं विद्यात्पुरुषार्थप्रयोजनम् ।
अस्य नित्यमनुष्ठानं सम्यक्कुर्यादतन्द्रितः ।।[1]

इस प्रकार धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष को मानव जीवन के लिए उपयोगी कहा गया है । मोक्ष इन सभी में सर्वश्रेष्ठ है, परन्तु अर्थादि के अभाव में उस का प्राप्त होना भी दुर्लभ होता है । अग्नि पुराण में युवराज को शिक्षा ग्रहण करते समय धर्म, अर्थ एवं काम के बारे में जानना आवश्यक कहा है -

---

1. मनु॰स्मृ॰ 7॰100 एवं द्र॰ अमर कोश॰2,7,58

धर्मार्थ काम शास्त्राणि धनुर्वेदं च शिक्षयेत्[2] ।।

कौटिल्य अर्थ शास्त्र में धर्म तथा काम का मूल आधार अर्थ को ही बताया गया है[3]। सर्वदर्शन संग्रह में अर्थ और काम को जीवन का सर्वोपरि अंग स्वीकार किया गया है[4]। आदि पुराण में आर्थिक विचार के आधीन उल्लेख है कि धन कमाना जहाँ आवश्यक है वहाँ अर्जित धन की रक्षा, सुरक्षित धन का सम्वर्द्धन एवं योग्य पात्रों में दान करना भी अपेक्षित होता है -

अर्थ सम्मार्जनं, रक्षणं, वर्धनं, पात्रे च विनियोजनम्[5] ।।

इस प्रकार मानव जीवन में अर्थ का महत्त्व अत्यधिक स्वीकार किया गया है। आज भी अर्थहीन दरिद्र व्यक्ति का समाज में कोई सत्कार नहीं होता है। उसे सभी ओर से तिरस्कृत किया जाता है। वह दूसरे लोगों की ओर दया की आशा रखे हुये निहारता है परन्तु वैभव-सम्पन्न लोगों के पास इतना समय कहाँ होता है कि वह उन गरीब लोगों की ओर दृष्टिपात कर सकें। धनवान व्यक्ति का ही समाज में आज नाम है तथा भाई-बन्धु हैं। गरीबी तो आज कल के युग में मानव पर एक अभिशाप बन कर रह गई है।

नानकचन्द्रोदय महाकाव्य में भी अर्थ के बारे में प्रतिपादन मिलता है। धर्म तथा अर्थ को परस्पर आश्रित कहा गया है। नानकदेव कहते हैं कि मैं सद्गुरू के बिना अपने आप को भी नहीं देख रहा हूँ जैसे धर्म से हीन अर्थ शोभा नहीं देता है[6]। अर्थात अर्थ तभी सुन्दर लगता है जब उसे धर्म के मार्ग का अनुसरण कर अर्जित किया गया हो अन्यथा नहीं। इस प्रकार धर्म का सम्बन्ध अर्थ के साथ प्रदर्शित कर सत्पथ द्वारा धनार्जन करने पर बल दिया गया है। वस्तुतः पुरुषार्थचतुष्टय का सेवन सम्पूर्ण भौतिक भोगों का मूलाधार कहा गया है परन्तु धर्म के अभाव में अर्थ की सिद्धि सर्वथा असम्भव होती है, मोक्ष की प्राप्ति काम से सम्बन्धित भोगों का त्याग करने से ही सम्भव होती है। यदि

---

2. अग्नि पुरा. - राजधर्म 2, पृ. 406
3. अर्थमूलौ हि धर्मकामौ इति, अर्थ एव प्रधान इति कौटिल्यः ।। -कौ.अ.शा. 1.7
4. सर्व.दर्श.सं. पृ.2
5. अ.पुरा. 42.123
6. स्थितः सरोरोधसि.....सखे गृहं त्वम् ।
अहं विना तेन न शोभमानो धर्मेण हीनोऽर्थ इव प्रपोतः।। - ना.चं.3.40

भोगों की इच्छा मनुष्य को हो तो मोक्षेच्छा का त्याग पहले ही करने को कहा गया है[7]। इस प्रकार अर्थ के महत्त्व के साथ-साथ विषयोपभोगों में ही धन की अपव्ययता तथा उन में लिप्सा का परित्याग करने का भी उल्लेख दिखाई देता है। अर्थहीन मनुष्य की दयनीय स्थिति का उल्लेख करते हुये उद्धृत किया है कि ऐसा मानव अल्प तेज वाला हो जाता है, तथा जैसे गर्मी की ऋतु में जलहीन नदी की कोई विशेषता नहीं होती है, वैसे ही उस की सम्पूर्ण क्रिया-में धनाभाव में निष्फल हो जाती हैं -

अर्थेन हि वियुक्तस्य पुरुषस्याल्पतेजसः ।
विच्छिद्यन्ते क्रियाः सर्वाः ग्रीष्मे कुसरितो यथा[8] ।।

इस प्रकार धनहीन मनुष्य का प्रतिपादन कर अर्थयुक्त मनुष्य की समाज में सर्वोत्कृष्टता को स्वीकार करते हुये उल्लेख किया गया है कि जिस के पास धन होता है उसी के मित्र, बन्धु आदि होते हैं, वही संसार में मनुष्य माना जाता है तथा विद्वान भी उसे ही स्वीकार किया जाता है। बुद्धिसम्पन्न, पराक्रम युक्त एवं गुणाढ्य भी धनवान मनुष्य होता है अर्थात् समाज में धन की महत्ता स्वीकार की गई है, जिस के बिना जीवन यापन करना असम्भव प्रदर्शित किया गया है -

यस्यार्थास्तस्य मित्राणि यस्यार्थास्तस्य बान्धवाः ।
यस्यार्थः स पुमान् लोके यस्यार्थः स च पण्डितः ।।
यस्यार्थः स च विक्रान्तो यस्यार्थः स च बुद्धिमान् ।
यस्यार्थः स महाबाहुर्यस्यार्थः स गुणाधिकः[9] ।।

उपर्युक्त उल्लेख से यही ज्ञात होता है कि आजकल की तरह तत्कालीन समाज में भी मानव-सम्बन्धों से अधिक धन को उत्कृष्ट स्वीकार किया जाता था। जिस के पास धन होता था उस व्यक्ति का ही समाज में सम्मान होता था। अतः प्रत्येक मनुष्य धन के संचय में ही अपना कल्याण समझता हुआ उसे एकत्रित कर सुखों का आस्वादन तथा सामाजिक-जीवन में ससम्मान जीवन-यापन करता

---

7. यत्रास्ति भोगो नहि तत्र मोक्षः, यत्रास्ति मोक्षो नहि तत्र भोगः ।
श्री सुन्दरीतर्पणतत्पराणां भोगश्च मोक्षश्च करस्थ एव ।। - ना॰चं॰12॰77

8. ना॰चं॰ 3॰22

9. वही, 3॰23, 24

होगा । इसीलिये प्रस्तुत महाकाव्य में धनवान व्यक्ति में सभी गुणों का पाया जाना निरूपित किया गया है ।

कोश एकत्रित कर स्वसुख के लिये उस के उपभोग का वर्णन भी किया गया है । यदि वह संचित खज़ाना अपने कार्य में प्रयुक्त नहीं होता है तो उस का क्या लाभ होता है ? इस प्रकार कोश ज़मा करने वालों के लिये कहा गया है कि यदि वे उस का उपयोग नहीं करते हैं तो उस का संचय निरर्थक होता है क्योंकि बाद में उस का प्रयोग अन्य करते हैं जो कि बिना किसी मर्यादा में रह कर अपव्यय भी कर सकते हैं । इस लिये स्वसुख के लिये ही धन की उपयोगिता पर बल दिया गया है । अधिक मात्रा में कोश संचित करने को, अपने आप को बन्धन में ज़कड़ने के समान कहा है[10] क्योंकि फिर मनुष्य माया जाल में उलझ जाता है । अत: अधिक मात्रा में धन संचय का निषेध भी दिखाई देता है । परन्तु प्रस्तुत महाकाव्य में ही धन की अवज्ञा न करने का भी वर्णन मिलता है । कालधर्मा कहते हैं कि नानक तुम धन का तिरस्कार मत करो, क्योंकि अर्थहीन होने पर गुण, कुल और सज्जन विमुखता धारण कर लेते हैं तथा फिर धनवानों के अर्थहीन होने पर दोनों की तरह बातचीत करना शोभा नहीं देता है -

कालोऽयं कलिरवधेहि भो धनस्य, मावज्ञां कुरु किल सर्वसाधनस्य ।
यच्छून्यैर्गुणकुलसज्जनत्वपूर्णै—र्विक्षिप्तैरिव धनिनो न संलपन्ति[11] ।।

धनार्जन के समय समक्ष आने वाले कष्टों का निरूपण करते हुये कहा है कि जो धन संचित करता है, वही उस के वास्तविक स्वरूप को जानता है उस को व्यय करने वाला नहीं जानता है[12] । इस प्रकार बिना विचार के धन को व्यय नहीं करना चाहिए क्योंकि धन कमाने में कठिनाईयों का सामना करना पड़ता है इस का उल्लेख करते हुये तात्कालिक जीवन में मनुष्य के लिये धनार्जन में होने वाले अत्यधिक आयासों तथा असह्य वेदनाओं का वर्णन किया गया है ।

---

10. किं कोशकारस्य यथैव कोश:
स्वस्यैव बधनाय तथैव लीला ।। - ना·चं· 1·53
11. ना·चं· 3·21
12. वरातकोऽद्यावधि नार्जितस्ते, धनार्जनस्येति न वेत्सि कष्टम् ।।
- ना·चं· 3·43

धन के महत्त्व का प्रतिपादन करते हुये श्रेष्ठ कर्मों में धन को खर्च करना श्रेष्ठ माना गया है । कालवर्मा जब दानादि कर्मों से नानक से खिन्न होते हैं तथा ताड़ते हैं तो "बोलाराराय" कहते हैं कि जितना भी धन आज तक नानक ने व्यय किया है वह मेरे से ग्रहण कर लो, परन्तु महात्माओं द्वारा भी पूजनीय नानक के लिये दुर्वचनों का प्रयोग मत करो । इस प्रकार दानादि कार्यों में धन को देना श्रेष्ठ स्वीकार किया जाता है तथा जो इस का विरोध करता है उसे रोका जाता है -

क्रियन्ति जन्मावधिने धनानि, दत्तानि तान्यद्य गृहाण मत्त: ।
यत: क्रुधा साधुभिरीड़नीये, मा नानके दुर्वचनानि वाच: [13] ।।

इस प्रकार समाज में गरीबी से ग्रस्त दयनीय जीवन-यापन करने वालों के लिये भी धनावश्यकता होती है, इसीलिये उन्हें पात्र समझ कर दिया जाता है ताकि वे आवश्यक वस्तुओं को खरीद कर अपना पेट भर सकें तथा धन की सार्थकता भी इसी पुण्य से दृष्टिगोचर होती है । सज्जन लोगों का उल्लेख करते हुये कहा है कि वे धन से प्रेम नहीं करते हैं क्योंकि वे सत्सङ्ग को ही बड़ा धन स्वीकार करते हैं, इसीलिये वे दरिद्र होते हैं [14] । किन्तु यह दरिद्रता उन के मन को दु:ख नहीं देती है, क्योंकि ईश्वर-भक्ति उन का परम-लक्ष्य होता है उसी को वे सर्वोत्तम धन स्वीकार कर, वैभवादि को गौण रूप से मानते हैं । केवल-मात्र भोजन करने के लिये आवश्यक धन को वे ग्रहण करते हैं ।

राजा लोग धन के महत्त्व को स्वीकार करते हुये अपने किसी सेवक द्वारा उस का व्यय किये जाने पर हिसाब करते हैं ताकि उस का अपव्यय न हो सके । जैसे राजा धनखान अन्य मन्त्री-वर्ग के कथनानुसार नानक द्वारा प्रदत्त धन की छानबीन करता है, भले हि वहाँ त्रुटि नहीं पाई जाती है [15] । परन्तु राजा लोग अपने धन की रक्षा करना कर्तव्य समझते हुये पूर्ण जानकारी प्राप्त करते हैं । इस प्रकार राजा के लिये भी धन का महत्त्व दिखाई देता है । सांसारिक लोगों के

---

13. ना॰चं॰ 3॰48 एवं द्र॰ 49
14. सन्तो दरिद्रा: स्वसमाचरन्ति ।। - ना॰चं॰ 6॰126
15. ना॰चं॰ 4॰46

लिये धन के महत्त्व का प्रतिपादन करते हुये कहा है कि वे लोग धन, पुत्र तथा विषयोपभोगों को सर्वोत्तम मानते हैं -

धनं सुता: सद्विषयोपभोग: संसारिणस्तत्त्वमिदं विदन्ति[16] ।।

इस प्रकार नानक चन्द्रोदय महाकाव्य में मनुष्य के लिये अर्थ महत्त्व को बताते हुये, सामाजिक क्रिया कलापों, धार्मिक अनुष्ठानों, रहन-सहन, खान-पान एवं व्यवहारिक कार्यों के लिये धन का होना आवश्यक कहा है । भले ही धन के प्रति अत्यधिक आसक्ति की आलोचना की गई है, परन्तु लोक में रह कर जीवन-यापन हेतु धन की आवश्यकता पर ही बल दिया गया है । प्राचीनकाल से चले आ रहे पुरुषार्थ-चतुष्टय में अर्थ के महत्त्व को इस महाकाव्य में भी स्वीकार किया गया है, जिस के बिना अमूल्य जीवन निरर्थक हो जाता है ।

विविध व्यवसाय, व्यवसायी -

भारतीय समाज में हमेशा ही कृषि, वाणिज्य तथा पशुपालन आदि व्यवसाय के प्रमुख साधन रहे हैं । इस के अतिरिक्त भोजन बनाना, वस्त्र बनाना, आभूषण तैयार करना, अस्त्र-शस्त्रों का निर्माण करना, नूतन घर निर्माण करना, मिट्टी के वर्तन बनाना और लकड़ी के वर्तन एवं खिलौने आदि बनाना भी मुख्य उद्योग धन्धे के रूप में रहे हैं । संपूर्ण विश्व में ही इन व्यवसायों को किसी न किसी रूप में देखा गया है । सिन्धु-सभ्यता के अवशेषों से पता चलता है कि कताई, बुनाई तथा मिट्टी आदि के वर्तन बनाने का प्रचलन प्राय: सभी के घरों में था और सभी लोग इन का निर्माण करते होंगे, क्योंकि सभी के घरों में ये उपलब्ध हुये हैं । इन सभी उद्योगों का प्रचलन ही दृष्टिगोचर होता है[17] । गुप्त कालीन युग में शिल्प और कारु कर्म शूद्र वर्ग में मिलता है । इस के अन्तर्गत कुम्भकार, लेपक, तन्तुवाय (बुनने वाले) दर्जी, चित्रकार (रंगाई करने वाले) मालाकार, चर्मकार, लोहकार (लौहार), धोबी, नाई, बढ़ई तथा इस के साथ ही शराब बनाने एवं जुआ खेलने वालों के लिये उस की व्यवस्था करने आदि का कार्य भी शूद्र वर्ग ही किया करता था[18] । मध्यकालीन भारतीय संस्कृति

---

16. ना.चं. 6.18
17. प्राचीन भारतीय साहित्य की सांस्कृतिक भूमिका : डा. रामजी उपाध्याय, पृ.720
18. अमर कोश, मनुष्य वर्ग, 137-140

में उल्लेख है कि यद्यपि अधिकांश जनता के जीविकोपार्जन का साधन कृषि थी, किन्तु नगरों तथा ग्रामीण क्षेत्रों में अनेक महत्त्वपूर्ण उद्योग धन्धे भी चलते थे। तुर्कों के आगमन से शताब्दियों पूर्व औद्योगिक दृष्टि से हमारा देश सुसंगठित था। गाँवों तथा नगरों में अनेक शिल्प संघ थे, जो विस्तृत रूप से व्यापार किया करते थे। उद्योग दो प्रकार के थे - एक वे जिन्हें राज्याश्रय प्राप्त था, दूसरे वे जिन पर व्यक्तियों का निजी स्वामित्व था। निजी उद्योगों में सूती, ऊनी तथा रेशमी वस्त्रों की रंगाई, वस्त्रों की छपाई, शक्कर, धातु, कागज़ और पत्थर आदि के धन्धे महत्त्वपूर्ण थे। इन के अतिरिक्त जूते, अस्त्र-शस्त्र, शराब, पीतल तथा अन्य धातुओं की वस्तुओं के निर्माण के धन्धे थे, वस्त्र उद्योग तो सम्पूर्ण देश में प्रचलित था[19]। इस के अतिरिक्त अन्य प्राचीन ग्रन्थों में भी व्यवसायों के बारे में उल्लेख उपलब्ध होते हैं जिन से पुरातन उद्योग धन्धों के बारे में हमें ज्ञात होता है।

नानक चन्द्रोदय महाकाव्य में प्रमुख व्यवसायों तथा व्यवसायियों के विषय में विस्तृत उद्धृत नहीं मिलता है परन्तु संकेतों द्वारा अथवा समाज में निवास करने वाले लोगों के चित्रण द्वारा तत्कालीन समाज के लोगों के धनार्जन के साधनों तथा व्यवसायों का अवलोकन होता है। कृषि, व्यापार, नौकरी तथा हाथ के कार्य मुख्य व्यवसाय के रूप में उल्लिखित मिलते हैं।

कृषि -

भारत गाँवों का देश है, अतीत से ले कर कृषि प्रधान रहा है। मध्य युग में भी देश की सामान्य जनता गाँवों में कृषि करती थी। मुसलमान शासकों की दृष्टि भी कृषि की उन्नति, रक्षा तथा सिंचाई आदि के प्रबन्ध की ओर थी[20]। नानकचन्द्रोदय महाकाव्य में भी भूमि की अन्न-उत्पादकता का उल्लेख करते हुये उसे विविध प्रकार के अन्नों तथा फलों वाले वृक्षों से भरपूर सिद्ध स्थली कहा गया है -

---

19. मध्यकालीन भारतीय संस्कृति, डा. गौरीशंकर ओझा, पृ. 132
20. तुगलक कालीन भारत, डा. रिज़वी, पृ. 18

मध्ये तयोर्जनपदो बहुशस्यशाली
शालीक्षुमिष्टफलवृक्षवनैरनून: ।।
सौराज्ययुग "जयति वार" इति प्रसिद्ध:
सिद्धस्थलं वर तुरङ्गम जन्मभूमि: [21] ।।

इस प्रकार ज्ञात होता है कि लोग उस समय अधिक परिश्रम करते थे जिस से नाना प्रकार के अन्नों तथा फलों आदि को वे प्राप्त करते थे । जब नानक बालसिन्धु के साथ व्यापार करने हेतु भेजे जाते हैं तो वहाँ उल्लेख किया गया है कि वह मार्ग में निर्मल नदियों से युक्त गाँवों कोपार कर कृषि कार्य में संलग्न ग्रामवासियों को देखते हैं[22] । यहाँ किसानों के जीवन के बारे में पता चलता है कि वे अत्यधिक समय कृषि कार्य में व्यतीत करते थे जिस से वे समाज को अन्न के क्षेत्र में समृद्धशाली करते थे । कृषकों के जीवन की सम्पूर्ण आवश्यक इच्छाओं को खेती से उत्पन्न अन्न द्वारा ही पूर्ण होती थीं क्योंकि उन का मुख्य व्यवसाय कृषि ही था । लोग अधिकतर गाँवों में निवास करते थे तथा अपनी कामनाओं की पूर्ति के लिये कृषि कार्य कर सन्तुष्ट रहते थे, इस का आभास होता है । आजकल के कृषकों की तरह आधुनिक कृषि के उपायों का प्रयोग नहीं था क्योंकि यदि उन का उपयोग किया जाता होता तो उन के बारे में अवश्य उद्धृत दिखाई देता । अत: तत्कालीन समय में उपलब्ध सामान्य विधियों द्वारा ही कृषि करके अन्नोत्पादन वे करते होंगे । परिश्रम द्वारा ही वह खेती करते थे क्योंकि परिश्रम से ही किसान बहुशस्यशाली थे ।

वन सम्पदा वृक्ष -

पुरातन भारतवर्ष का अधिकतम भू भाग वनों से आवृत था । ये जंगल विभिन्न प्रकार की लताओं, औषधियों और पेड़ों से युक्त होते थे । हमारे राष्ट्र की समृद्धि में वन सम्पदा की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है । हमारी अनेक आवश्यकताओं को वृक्ष पूर्ण करते हैं । परन्तु आज समाज में रहने वाला मनुष्य

---

21. ना·चं· 2·3

22. नद्यस्तीर्णा विमलसलिलायनयात्रैरनेका
दृष्टा ग्रामा: कृषक बहुला: शस्यसम्पन्नमनोज्ञा: ।। - ना·चं· 3·7

ही इन का घोर शत्रु बन गया है । बढ़ती हुई जनसंख्या के फल स्वरूप जंगलों का कटान वैध अथवा अवैध रूप में हो रहा है जो कि हमारे जीवन के लिए हानिकारक है ।

नानकचन्द्रोदय महाकाव्य में भी वनों का उल्लेख मिलता है[23] तथा उन में उत्पन्न महाकाय पेड़ों जैसे वटादि का दिग्दर्शन होता है जो कि छाया प्रदान करते हैं[24] । इस प्रकार फल और लकड़ी प्रदान करने वाले वृक्षों के साथ-साथ वनों में मल्लिका, चम्पक, कुन्द और विल्व आदि सुगन्धयुक्त वृक्षों का भी वर्णन मिलता है[25] । वन्य पशुओं और पक्षियों का भी उल्लेख मिलता है जो कि मनुष्य जीवन में अतीव उपयोगी होते हैं[26] । मानव तथा राष्ट्र की सम्पत्ति रूप में आम्र, ताल, अशोक, पालाक्ष (यज्ञ में आहुति के समय समिधा रूप में उपयोगी), आम्लिका (आम्बल), पीपल, जम्बू (जामुन) और वट आदि वृक्षों का उल्लेख मिलता है[27] । जिस से अनुमान होता है कि मानव जीवन के लिये ये सभी व्यवसाय रूप में थे । जिन की लकड़ी काटने तथा बेचने का कार्य अवश्य किया जाता होगा । सम्पूर्ण इच्छाओं की पूर्ति करने वाले कल्पवृक्षों का भी उल्लेख मिलता है[28] । ताम्बूल की बेलें, पूग, रम्भा, एलालता और नारिकेर (नारियल)[29] आदि के उल्लेख से उन से युक्त वनों का पाया जाना दृष्टिगोचर होता है । पर्वतों के शिखरों पर फलों वाले पेड़ पाये जाते हैं, जैसे जलाल समुद्र को पार करते समय समीप स्थित पहाड़ों की चोटियों पर फलों से भरपूर वृक्षों को देखता है[30] । इस प्रकार इमारती लकड़ी वाले वन्य वृक्षों के साथ-साथ फलों वाले वृक्षों का जो उल्लेख किया गया है इस से उन के क्रय-विक्रय का भी निदर्शन होता है । जिस को समाज में रहने वाले लोग करते होंगे तथा अपनी आजीविका

---

23. ना॰चं॰ 2·3
24. वही, 1·20, 21
25. वही, 1·22
26. वही, 1·23 एवं द्र॰ 24,27
27. वही, 1·21
28. वही, 19·89
29. वही, 8·83
30. वही, 19·31

का साधन बनाते होंगे । क्योंकि प्रयोग द्वारा ही उन की उपयोगिता सिद्ध होती है ।

बाजार -

व्यापार का मुख्य उद्देश्य समाज में रहने वाले लोगों के लिये आवश्यकतानुसार उपयोगी सामग्री को उत्पादक से क्रय कर उपभोक्ता के पास पहुंचाना होता है । जिस कार्य को सुचारु रूप से चलाने के लिये बाजार एक मुख्य साधन होते हैं । देश की समृद्धता का मुख्य आधार व्यापार इन्हीं बाजारों के माध्यम से प्रचलित है ।

नानकचन्द्रोदय महाकाव्य में भी विभिन्न प्रकार के रंगों द्वारा सुसज्जित तलवण्डी नगरी में "आपण" दिखाई देते हैं, जो कि चार प्रकार के वर्णों द्वारा शोभित होते हैं[31] । आपण शब्द के प्रयोग द्वारा शहरों में बड़े-बड़े बाजारों का होना दृष्टिगोचर होता है क्योंकि "आपण" शब्द बाज़ार अर्थ को ही द्योतित करता है । अधिक मात्रा में यहाँ दुकानें आवश्यक वस्तुओं से भरी हों, उन्हीं का दूसरा नाम बाज़ार होता है । इस प्रकार "विपणि" शब्द का जो उल्लेख मिलता है उस से बाज़ारों में क्रय-विक्रय के लिये दुकानों का होना दिखाई देता है -

पश्यन्तौ विपणिमनुत्तमामुदारान्
प्रासादाननुपमशाल भंजिकाट्याम् ।।
सम्बाधं विविधजनैः प्रतोलिकासु
कालस्योपगृहमुपागतौ गजस्थौ[32] ।।

यहाँ तलवण्डी नगरी के बाज़ारों तथा दुकानों की चहल-पहल का वर्णन अवलोकित होता है । बाज़ारों में अन्य दैनिक जीवन में उपयुक्त पदार्थों के साथ मिठाईयों की दुकानों का भी उल्लेख किया गया है । जिन में हलवाई मोदक (लड्डू) तथा अन्य तली हुई वस्तुओं को तराजू द्वारा तोल कर ग्राहकों को देते हैं[33] । इस प्रकार

---

31. अनेकवर्णोज्वलसन्नशोभा, वर्णैश्चतुर्भिः परिशोभितापि ।
अष्टापदाकारसदापणापि, नानाप्रतिच्छम्यमहानिषद्या ।।- ना.चं.2.13

32. ना.चं. 3.60

33. वही, 9.127

अपनी आजीविका चलाने हेतु किसी भी वस्तु की दुकान को व्यवसाय रूप में लोग करते थे जैसा कि आजकल भी प्रचुर मात्रा में दिखाई दे रहा है कि अधिक लोग व्यापार को महत्त्व प्रदान करते हुये अधिक मात्रा में धनार्जन का साधन दुकानदारी को मान रहे हैं। नानकचन्द्रोदय महाकाव्य में व्यापारी की सम्पन्नता का चित्रण तब दिखाई देता है जब मर्दन भी दुकानदार के तराजू तथा तोल दोनों वस्तुओं को सुवर्ण से निर्मित देख कर स्तम्भित हो जाता है[34]। इस प्रकार उच्चवर्ग की दुकानदारी का अवलोकन होता है कि दैनिक उपयोगी पदार्थों का व्यापार करने वाले कितने अमीर थे कि उन के तराजू भी सोने के थे।

सिक्के -

किसी भी प्रकार का व्यवसाय करने के लिये मुद्रा का होना परमावश्यक होता है जिस के आदान-प्रदान से व्यापारिक कार्य-क्षेत्र में व्यापकता आती है। प्रत्येक राष्ट्र के अपने-अपने सिक्के मुद्रा रूप में होते हैं। भारतवर्ष में प्राचीनकाल से लेकर आज तक मुद्रा के स्वरूप में समय-समय पर परिवर्तन आते रहे हैं तथा कालानुसार नये स्वरूप में इनका प्रचलन व्यावहारिक कार्य-क्षेत्र में होता आ रहा है।

नानकचन्द्रोदय महाकाव्य में मुद्रा का उल्लेख मिलता है तथा परस्पर लेन-देन में सिक्कों आदि के रूप में उस का प्रयोग किया जाता है। राजतरंगिणी में सोने, चाँदी तथा ताँबे के सिक्कों का उल्लेख प्राप्त होता है[35]। गुप्तकाल में भी दो प्रकार के सिक्के प्रचलित थे। प्रथम रोमन दीनैरस के वज़न के बराबर तथा मनु का सुवर्ण था[36]। परन्तु देवराज शर्मा द्वारा लिखित, मुद्रा आदि से यह स्पष्ट नहीं होता है कि सिक्के सोने के थे अथवा चाँदी आदि के। "सातसराय पारिपार्श्वक" मणि का निरीक्षण कर सौ मुद्रा मूल्य निश्चित करता है -

---

34. तुलां तोलनपाषाणं सर्वं वीक्ष्य हिरण्मयम्।
विस्मितो मर्दनः स्माह किममीषां नु विक्रयात्॥ - ना.चं.9.128 एवं द्र.129

35. राजतरंगिणी, 87, 150

36. लेक्चर्स आन न्युमिस्मेटिक्स, पृ.183 एवं द्र. ब्राउन दी क्वायन्स आफ इण्डिया, पृ.45

गृह्णातु मा वा मणिमस्य पश्यो; मुद्राशतं यच्छतु नानकाय ।
इत्यत्र यस्मिल्लिखितं गृहाण, मुद्रा: शतं तेन ततोऽन्यवार्ता[37] ।।

इस प्रकार मूल्यादि निर्धारण में मुद्राओं का प्रयोग किया जाता है परन्तु किस वस्तु से वे निर्मित होती हैं इसका प्रतिपादन दिखाई नहीं देता है । केवल मात्र अनुमान किया जा सकता है कि ये सुवर्ण की होती होंगी क्योंकि बहुमूल्य मणि की कीमत वह केवल मात्र सौ मुद्रा कहता है । जिस से ज्ञात होता है कि मणि के समान अप्राप्य सुवर्ण मुद्रा ही कही गई है जो कि उस के मूल्य में समान होती हैं । "पणों" का प्रयोग भी लेन देन में दिखाई देता है, जो कि कम कीमत के सिक्के होते हैं, जिनका प्रयोग गरीब लोगों द्वारा किया जाता था[38] । अत: समाज में रहने वाले लोगों के पास स्व-स्व अवस्थानुसार ही सिक्के आदि थे । धन के लिये द्रव्य का उपयोग भी किया जाता था। जैसे नानक देव मर्दन को कहते हैं कि मेरी बहन के पास जाओ और वीणा खरीदने के लिये द्रव्य ले आओ[39] । यह द्रव्य किस स्वरूप में होता था इस का अवलोकन नहीं होता है, परन्तु यह सिक्कों के रूप में ही रहा होगा क्योंकि आजकल भी व्यवहार में "द्रविणम्" अथवा द्रव्य शब्द का प्रयोग किया जाता है । वस्त्र, आभूषण खरीदने हेतु धन राशि दी जाती है[40] । यह किस रूप में होती है इस का भी अधिक विवेचन उपलब्ध नहीं होता है । दीनारों का प्रयोग भी दिखाई देता है[41] जो कि सुवर्ण की रही होंगी । आजकल जैसे रुपयों का प्रयोग लेन-देन में दिखाई दे रहा है वैसे ही उस समय भी रुपये समाज में प्रचलित थे, क्योंकि उन के लिये "रूपक" शब्द का उल्लेख किया गया है -

---

37. ना·चं· 8·146

38. स मूढश्च दरिद्रश्च मूल्यमस्य पणत्रयम् ।
उवाच वाचस्तुच्छास्यान्महत्यो नि:सरन्तु किम् ।। - ना·चं· 8·140

39. ना·चं· 7·37 एवं द्र· 4·111

40. वही, 5·145

41. वही, 21·94

बालसिन्धुमनुगं सुमेधसं, रूपकाणि च गृहाण नानक ।
भाण्डमानय विशिष्टलोभदं, विक्रयं कुरु वृथा स्थितोऽसि किम् ।।[42]

इस प्रकार व्यवसाय के निमित्त विभिन्न प्रकार से सिक्कों आदि का प्रयोग किया जाता था । जिन को अपनी-अपनी समर्थता के अनुसार लोग अपने पास रखते थे । धनार्जन में भी इसी मुद्रा को व्यापार आदि में नियोजित कर प्रचुर मात्रा में धन एकत्रित किया जाता था ।

व्यापार -

सम्पूर्ण विश्व की आर्थिक व्यवस्था में व्यापार का महत्त्व पूर्ण स्थान होता है । व्यापारिक कार्य के अभाव में राष्ट्र उन्नति नहीं कर सकता है । अपनी-अपनी शक्त्यनुसार जैसे प्रत्येक राष्ट्र व्यापार करता है वैसे ही समाज में रहने वाला प्रत्येक प्राणी धन के अनुसार व्यापार करता है । समयनुसार उपलब्ध वस्तुओं अथवा अतीव मात्रा में उत्पन्न होने वाले पदार्थों का ही व्यवसाय किया जाता है । नानकचन्द्रोदय महाकाव्य में भी, व्यापारिक दृष्टि से अध्ययन करने पर विविध वस्तुओं के व्यापार का अवलोकन होता है । वर्तनों के व्यापार का प्रचलन अधिक मात्रा में दिखाई देता है । कालवर्मा गृहकार्य से विमुख नानकदेव को बालसिन्धु के साथ समये देकर वर्तनों का व्यापार करने के लिये भेज देते हैं[43] । जल के मार्ग द्वारा नौकाओं से वर्तनों का व्यापार करने वाले व्यापारी अधिक मात्रा में धन संचित करते हैं -

कश्चित् सायांत्रिकः पोते भाण्डभूरि धनं नयन् ।
निमज्जत्युदधौ तस्मिन् प्रति शुश्राव शोकितः[44] ।।

व्यापार द्वारा अधिक मात्रा में धनार्जन होने पर उस का हिसाब रखना अकेले व्यक्ति के लिये कठिन हो जाता है, तो वह सहायक रूप में मुनीम आदि को नियोजित कर लेता है । इसी प्रकार महाकाव्य में लेखकों को इस सुविधा के लिये रखा जाता है[45] । आजकल जैसे वाणिज्य कर्म करने वाले को "वनिया" कहते हैं

---

42. ना.चं. 3.5
43. वही, 3.5
44. वही, 21.93
45. वही, 4.19

अर्थात् ये लोग व्यापारादि कार्यों में दक्ष स्वीकार किये जाते हैं। वैसे ही यहाँ भी "वाणिज्य" शब्द का प्रयोग दिखाई देता है[46]। जिस से यह भासित होता है कि "वाणिज्य" कर्म के लिये उपयुक्त पदार्थों जैसे चावल, गेहूँ, तेल, वर्तन तथा वस्त्राभूषणों का व्यापार किया जाता होगा। क्योंकि उल्लेख तो पदार्थों का नहीं मिलता है परन्तु व्यापारोपयोगी यही पदार्थ होते हैं जिन का क्रय-विक्रय किया जाता है। रत्नों आदि का भी व्यापार होता है क्योंकि समाज में "रत्न परीक्षकों" की विद्यमानता उल्लिखित है[47], जो कि स्वकर्म निष्णात होते हुये अपना कार्य करते हैं। इस प्रकार व्यापार के बारे में विस्तृत विवेचन न करते हुये वर्तनों आदि के व्यापार को ही प्रमुखतया दर्शाया गया है। पशुओं आदि के लेन देन का उल्लेख नहीं मिलता है।

उपाध्याय कर्म -

प्राचीन काल में विभिन्न जातियों में उत्पन्न मनुष्य अपने वर्णानुसार कार्य कर व्यवसाय चलाते थे। आज भी समाज में यह परम्परा अधिक तो नहीं पर कहीं-कहीं दृष्टिगोचर होती है। कुछ ऐसे कर्म होते हैं जिन्हें जाति विशेष के लोग ही करते हैं। ब्राह्मणों का कार्य पुरातन समय से धार्मिक कर्मकाण्ड को निष्पन्न कराना रहा है, जिस के द्वारा उन की आजीविका भी चलती है तथा समाज में प्रतिष्ठित स्थान भी प्राप्त होता है। इसी प्रकार अन्य वर्णों के भी कार्य होते हैं जैसा कि वर्णव्यवस्था में इसी शोध प्रबन्ध में पूर्व वर्णित है। यहाँ पर उपाध्याय के कार्य पर व्यवसाय के रूप में दृष्टिपात करते हैं। हिन्दु समाज में संस्कारों का स्थान सर्वोपरि माना जाता है। इन को अनुष्ठित करने के लिये लोग द्विजवर श्रेष्ठ आचार्यों को घरों में आमन्त्रित करते हैं तथा उन से कार्य सम्पूर्ण करा कर दक्षिणा रूप में उन्हें द्रव्य देते हैं। प्राचीनकाल से आज तक यह प्रथा चली आ रही है तथा विद्वान ब्राह्मण आजीविका रूप में इसे अपनाते हैं।

नानकचन्द्रोदय महाकाव्य में कालवर्मा भी पुत्र जन्म के शुभावसर पर

---

46. ना॰चं॰ 8॰77

47. मर्दनस्तु तादादाय विश्वम्भरपुराभिधे।
नगरे दर्शयामास कंचिद्रत्नपरीक्षकम् ।। - ना॰चं॰ 8॰139

शास्त्रों के ज्ञाता "हरिदयालु" नामक विद्वान को आमन्त्रित करते हैं । शिशु के ग्रहों के अनुसार उस के भाग्य के बारे में पूछते हैं -

कालस्ततः कुलनमस्थितनात्मवन्तं, दैवज्ञशास्त्रपरपारगतं कृतज्ञम् ।
मिश्रं नतो हरिदयालुमुवाच विद्वन्, बालस्य वर्णय कथं ननु जन्म कालः ।।[48]

"सामुद्रिक (ज्योतिष) ज्ञान में निष्णात विद्वान् सम्पूर्ण लक्षणों को बताते हैं तथा ग्रहों की स्थिति का भी कालक्रम से फलादेश कहते हैं[49] । इस से प्रसन्न हो कर "कालधर्मा" पुरोहित को दक्षिणा रूप में आभूषण, वस्त्र और गौएं देते हैं[50] । जिस से उन की ससम्मान विदाई की जाती है । पाणिग्रहण के कार्य को भी वैदिक मन्त्रोच्चारण द्वारा विद्वान् पुरोहित सम्पन्न कराते हैं तथा दक्षिणा में द्रव्य प्राप्त करते हैं । नानकदेव के विवाह के अवसर पर आचार्य महाव्याहृति संज्ञक, प्रायश्चित और लिष्टकृद् होम करा कर विवाह संस्कार को सम्पूर्ण करते हैं । नानकी के विवाह पर भी सकल विधि-विधान से उपाध्याय द्वारा कराया जाता है[51] । इस प्रकार उपाध्याय कर्म को विधान पूर्वक अनुष्ठित करवाने वाले आचार्यों का दिग्दर्शन होता है जो कि उस से प्राप्त धन को स्व गृह कार्यों में प्रयोग करते हैं । अतः कह सकते हैं कि यह भी एक व्यवसाय विशेष है जिस के द्वारा द्रव्य ग्रहण कर अपनी दैनिक आवश्यकताओं को पूर्ण किया जाता है ।

धनार्जन के अन्य साधन -

व्यापार वाणिज्य आदि कार्यों के अतिरिक्त धनार्जन के अन्य साधन जैसे शिल्प कला एवं पशुओं आदि का पालन भी आता है । जिन के द्वारा मनुष्य अपनी आजीविका चलाता है । नानक चन्द्रोदय महाकाव्य में कुछ कलाओं अर्थात् हस्तकौशल के कर्मों तथा पशु-पक्षियों को उद्धृत किया गया है । जिन का विवरण अधो निर्दिष्ट है ।

---

48. ना॰चं॰ 2॰54 एवं द्र॰ 2॰51
49. वही, 2॰58 एवं द्र॰ 2॰55 तः 57 पर्यन्तं, 2॰59 तः 78 पर्यन्तं
50. अपूजयत्सोऽपि विचित्र-भूषाधनैश्च वस्त्रैश्च महार्घधेनुभिः ।। -ना॰चं॰2॰80
51. ना॰चं॰ 5॰109 तः 124 पर्यन्तं एवं द्र॰ 3॰73 तः 76 पर्यन्तं

शिल्प -

अपने हाथ की कुशलता से जब कोई अपना कार्य कर धनोपार्जन करता है तो उसे शिल्प कला कहा जाता है । आदि पुराण में "हस्त कौशलं" को शिल्प कर्म कहते हुये उल्लेख है कि हाथ की कुशलता द्वारा अपनी आजीविका का प्रबन्ध करना शिल्प है -

शिल्पं स्यात्करकौशलम्[52] ।।

शिल्प कला के अन्तर्गत लुहार, कुम्भकार, चमार, बढ़ई, सुवर्णकार तथा तन्तुवाय आदि मुख्यतया आते हैं । अर्थशास्त्र में सुगन्धित चूर्ण तैयार करना, चन्दन द्रव और उबटन तैयार करना, कुंकुम और कस्तूरी द्वारा भिन्न प्रकार के चूर्ण तैयार करना इन सभी को शिल्प कर्म कहा गया है[53] । इस प्रकार प्राचीन काल से आज तक शिल्प कार्य का समाज में महत्त्वपूर्ण स्थान रहा है ।

नानकचन्द्रोदय महाकाव्य में भी शिल्प कार्य करने वाले शिल्पियों का उल्लेख मिलता है । अस्त्र-शस्त्रों का निर्माण भी लोग करते हैं । गुरू गोबिन्द सिंह को कोई शिल्पी "कार्मुक" प्रदान करता है । जिस से शिल्प कला की श्रेष्ठता दिखाई देती है -

ददौ गोविन्दसिंहाय शिल्पी कश्चन कार्मुके ।
तदाकर्णान्तस्तस्य व्रणः पुनरभिद्यत[54] ।।

इस प्रकार अन्य शिल्पी जो तत्कालीन समाज में निवास कर अपने कर कौशल द्वारा धनार्जन करते हैं उन का विवरण अधोलिखित है ।

कुम्भकार -

मिट्टी के वर्तन निर्मित कर उन का विक्रय करने वालों को कुम्भकार कहा जाता है । "कुम्भं करोतीति कुम्भकारः" अर्थात् जो कुम्भ (घड़े) का निर्माण

---

52. आ.पुरा. 16.182
53. कौ.अ.शा. पृ.514
54. ना.चं. 21.226

करने वाला है, वह कुम्भकार है[55]। महाभाष्य में ही कुम्भकार को कुलाल भी कहा गया है, क्योंकि बड़े बड़े मटकों का निर्माण कुलाल ही कर सकता था, जिसे महाकुम्भकार कहा जाता था[56]।

नानक चन्द्रोदय महाकाव्य में भी कुम्भकार के कार्य का उल्लेख मिलता है। जो कि अपनी कार्य-दक्षता को घट निर्माण आदि कार्य कर प्रदर्शित करते हैं -

म्लेच्छस्य मृत्तिकां मृदून् कुम्भकार: करोति हा।
घटं भाण्डानीष्टकाश्च पचत्यग्नौ प्रदीपिते[57]।।

इस प्रकार अच्छी प्रकार से अग्नि पर तपा कर घट-निर्माण करना दिखाई देता है। मिट्टी से निर्मित थालियों का प्रयोग भी देखा जाता है, जिन्हें कुम्भकार ही बनाते होंगे। क्योंकि मिट्टी से बनने वाली सभी वस्तुओं को सुदृढ़ एवं साफ वही बना सकते हैं। गुरू नानक देव, बालसिन्धु को "मृत्स्थाली" आवृत कर लाने को कहते हैं[58]। इस प्रकार गृह की आवश्यकतानुसार प्रयुक्त होने वाले वर्तनों का निर्माण कर कुम्भकार अपनी आजीविका चलाते थे तथा धनार्जन करते थे, यह प्रतीत होता है।

चित्रकार -

चित्रकार भी अपनी अद्भुत बुद्धि द्वारा चित्र कार्य करते हैं जो दूसरे लोगों के मनों को आनन्दित करता है। नानक चन्द्रोदय महाकाव्य में भी चित्र कर्म करने वाले चित्रकार का उल्लेख दिखाई देता है। जिस से समाज में चित्रकारिता के प्रचलन का आभास होता है। गुरू नानक देव पहाड़ का वर्णन करते हुये कहते हैं कि मणियों द्वारा उज्ज्वल तथा मणियों की ही किरणों को धारण करता हुआ यह पर्वत ऐसा प्रकाशित हो रहा है जैसे कि विधाता ने "चित्रकर्म" रूप में उसे निर्मित किया है -

---

55. पा.महा.भा. 1.3. पृ.23
56. वही, 3.1.92 पृ.167
57. ना.चं. 21.46
58. मृत्स्थालिकामानय सापिधानम्।
- ना.चं. 17.121

नानको ब्रूत शैलेऽयं महामणिगणोज्वल: ।
मणीनां किरणैर्धात्रा चित्रकर्म विनिर्मितम्[59] ।।

इस उल्लेख से ज्ञात होता है कि चित्रकर्म को करने वाले शिल्पी अपनी इस कला का मनोहारी चित्रण बड़े-बड़े भवनों तथा वस्त्रों आदि पर किया करते थे । वे अपनी कला का सदुपयोग लोगों के घरों में भी करते होंगे तथा धनार्जन करते होंगे, इस का आभास होता है । क्योंकि जीवित रहने के लिये प्रत्येक कलाकार को धनावश्यकता होती है, जिसे वह अपनी कला का प्रदर्शन कर प्राप्त करता है । अधिक वर्णन उपलब्ध नहीं होता है ।

सुवर्णकार -

सोने चांदी आदि की धातुओं द्वारा आभूषण निर्माण करने वालों को सुवर्णकार कहा जाता है । ये भी अपने कर कौशल द्वारा ही धनार्जन करते हैं । शुद्ध सुवर्ण तथा रत्नों के परीक्षक भी ये होते हैं । पातंजल महाभाष्य में सोने को एक बार तपाने को "निष्टपति सुवर्णं सुवर्णकार:" कहा गया है तथा पुन: पुन: प्रतप्त करने के लिये "निस्तपति" का प्रयोग मिलता है[60] ।

नानकचन्द्रोदय महाकाव्य में सुवर्णकार के लिये "रत्न परीक्षक"[61] का उल्लेख मिलता है । नानक के कहने पर मर्दन "सालसराय" रत्नपरीक्षक का अन्वेषण कर लेता है[62] । मणियों का क्रय-विक्रय उन्हीं के पास किया जाता है[63] । सालसराय को मर्दन मणि दिखाता है, तथा जब वह सुवर्णकार उसे देखता है तो आश्चर्य चकित हो जाता है क्योंकि पहले ऐसा मणि उस ने देखा नहीं था । बाद में उस का मूल्य सौ मुद्रा वह देता है[64] । इस प्रकार समाज में ऐसी वस्तुयें भी थीं जिन को लोग बाज़ार में कम लाते थे, तभी बहुमूल्य मणि को देख कर "सालसराय" चकित होता है । इस प्रकार देवराजशर्मा ने इन्हीं रत्नपरीक्षकों

---

59. ना·चं· 12·22
60. पा·महा·भा· 8·3·102
61. ना·चं· 8·139
62. वही, 8·141
63. वही, 8·143
64. ना·चं· 8·144 त: 146 पर्यन्तं

तथा मणियों का व्यापार करने वाले ज़ोहरियों को सुवर्णकार के रूप में प्रदर्शित किया है, जो कि इसी लेन-देन द्वारा आजीविका उपार्जन करते हैं ।

तन्तुवाय -

कपड़ों की कताई बुनाई आदि का कार्य करने वालों को जुलाहा कहा जाता है । ये लोग विभिन्न प्रकार के सूती, ऊनी एवं रेशमी वस्त्र अपने घरों में तैयार करते हैं, जिस के लिये समयानुसार साधन विशेषों का प्रयोग करते आये हैं । उन कपड़ों को बेच कर धन कमाना इन का मुख्य उद्देश्य रहा है । नानकचन्द्रोदय महाकाव्य में भी "तन्तुवाय" का उल्लेख मिलता है, जिस से प्रतीत होता है कि वस्त्रों को बुनने आदि का कार्य लोग करते थे । नानक, उबारखान को कहते हैं कि तन्तुवाय (जुलाहा) को बुलाओ तथा कपड़े के दो भाग करवाओ -

तुन्नवायमितस्तूर्णं भ्रातर्बालं ! समाह्वय ।
अस्य वस्त्रस्यं कर्तव्यौ प्रवाररुचिरौ यत: ।।
ओमित्युक्त्वा गतोऽहंच तुन्नवायमुपानयम् ।
तस्मै प्रणमते वस्त्रं निरदिक्षादृशा गुरू: [65] ।।

इस प्रकार ज्ञात होता है कि मनोभिलषित वस्त्रों का कार्य तन्तु वाय ही कर सकते थे, तभी उन के पास जाया जाता है । वे कपड़े बुनने वाले ही बड़े कपड़े के अपनी बुद्धि अनुसार भाग करते थे क्योंकि बत्तीस हाथ लम्बे और दो हाथ चौड़े वस्त्र के दो प्रकार बनाने के लिये उसे कहा जाता है[66] । इस सूक्ष्म विवेचन से कपड़े का कार्य करने वालों का ज्ञान होता है जिस से प्रतीत होता है कि तत्कालीन समाज में कपड़ा बुन कर धनार्जन करने वाले "तन्तुवाय" समुदाय के लोग निवास करते थे ।

वैद्य-विद्या -

प्राचीन काल के इतिहास पर दृष्टि-पात करने से ज्ञात होता है कि

---

65. ना·चं· 18·148, 149

66. द्वात्रिंशत्करदीर्घं करद्वयीमेय विस्तारम् ।।
- ना·चं· 18·150 एवं द्र· 18·151

उस समय बिमारी के उपचार हेतु वैद्य लोग जंगली जड़ी-बूटियों द्वारा निर्मित औषधियों का प्रयोग करते थे, क्योंकि तत्कालीन समय में अंग्रेज़ी दवाईयों का आविष्यकार नहीं था । वैद्य-लोग अपनी बुद्धि द्वारा नाड़ी देख कर रोग का ज्ञान कर लेते थे तथा अपने हाथ द्वारा निर्मित औषधियों द्वारा उपचार करते थे, जिनके सेवन से लोग स्वस्थ हो जाते थे ।

नानक चन्द्रोदय महाकाव्य में वैद्य विद्या का उल्लेख मिलता है । जिस से प्रतीत होता है कि वैद्य लोग रोग से सम्बन्धित सभी ईलाज़ों के बारे में सर्वज्ञता को प्राप्त थे -

स्त्रीपुंसकान्तिपरिभूतरतिस्मरोद्य:
शश्वत्सभिक्ष इति दुर्लभभिक्षवर्ग: ।।
नीरोगता विफलवैद्यगणेऽपि यस्मिन्
सर्वज्ञतार्थमरिशीलितवैद्य विद्या: [67] ।।

यद्यपि वैद्य-विद्या का अधिक वर्णन उपलब्ध नहीं होता है किन्तु यह कहा जा सकता है कि वैद्य लोग समाज में विद्यमान थे तथा रुग्ण-व्यक्तियों का उपचार कर मिलने वाली धनराशि उन लोगों की आजीविका का साधन रही होगी । "नीरोगता" शब्द के प्रयोग से समाज में रहने वाले लोगों की अत्यधिक निरामयता परिलक्षित होती है जिस से वैद्यों की आवश्यकता लोगों को कम मात्रा में पड़ती थी, परन्तु फिर भी वैद्य लोग अपनी कला में पारंगत दिखाई देते हैं । इस प्रकार हस्तकलाओं द्वारा लोग धनार्जन करते हुये उल्लिखित किये गये हैं ।

पशु-पक्षी -

किसी भी राष्ट्र की आर्थिक-दशा के लिये द्विपद् अर्थात् पक्षी, चतुष्पद अर्थात् जानवरों का विशेष महत्त्व होता है । इन के अभाव का अर्थ-व्यवस्था पर अत्याधिक प्रभाव पड़ता है । पुरातन समय से ही पशु-पक्षियों को देश का धन माना गया है । ऋग्वेद में गाय के साथ-साथ अन्य पशुओं को भी धन माना

---

67. ना॰चं॰ 2॰6 एवं द्र॰ 21॰225

गया है । जिस की रक्षा करने के लिये राजा से प्रार्थना की गई है[68] । वैदिक काल में ही गाय, बकरी, भेड़, भैंस, अश्व, कुक्कर और सूअर आदि को यज्ञ पशु स्वीकार किया जाता था । श्रीचन्द्र ने प्रजापति से भी अधिक महत्त्व पशुओं को दिया है । पशु को ही यज्ञ कहा गया है । प्रजापति को ही वह यज्ञ मानते हैं[69] ।

कतमो प्रजापतिरिति, यज्ञरिति, कतमो ह यज्ञरिति पशुरिति ।।

इस का भाव बताते हुये पशु को प्रजापति और यज्ञ कहते हैं । महाभाष्य में पशुओं से युक्त मनुष्य को ऐश्वर्य सम्पन्न कहा गया है । देवदत्त धनवान् है क्योंकि उस के पास गाय, अश्व और हिरण हैं -

देवदत्तस्य गावोऽश्वा हिरण्यं च । आढ्योवैधव्यः[70] ।।

हजारों की संख्या में गौएं रखने का उल्लेख दिखाई देता है[71] । जिससे गाय के सर्वाधिक महत्त्व को प्रकाशित किया गया है ।

नानकचन्द्रोदय महाकाव्य में पशुओं द्वारा किस प्रकार व्यापार कर धनार्जन किया जाता था, इस का विवरण नहीं मिलता है परन्तु विभिन्न प्रकार के जंगली तथा पालतू पशुओं के नामोल्लेख से प्रतीत होता है कि पशुओं का आर्थिक-अवस्था में विशेष योगदान रहा होगा । क्योंकि उस समय कृषि पर लोग निर्भर रहते थे इसलिये कृषि के लिये बैलों आदि की परमावश्यकता होती है जिस के लिये गौयें घरों में रखी जाती होंगी । इस प्रकार प्रत्येक पशु का उपयोग अपने-अपने स्थान पर कर के लाभान्वित किया जाता होगा । गाय का पालन तथा रक्षण तब दिखाई देता है जब कालवर्मा नानक को भी गौओं की सेवा हेतु जंगल में उन्हें चराने के लिये भेजते हैं[72] । इस प्रकार गौओं के पालने के साथ-साथ उन की हत्या करने वाले का समाज में विशेष तिरस्कार होता है ।

---

68. सं नः शिशीहि भुरिजोरिव क्षुरं रास्व रायो विमोचन ।
त्वे तन्नः सुवेदमुस्त्रियं वसु यं त्वं हिनोषि मर्त्यम् ।। -ऋ॰ 8·4·16
एवं द्र॰ 8·4·13

69. हमारे पशु-पक्षी; जैन, श्रीचन्द्र, पृ॰41

70. पा॰महा॰भा॰ 1·3·9 पृ॰28

71. वही, 2·1·51 पृ॰305

72. ना॰चं॰ 2·107

जैसे गुरुदत्त द्वारा भ्रमवश ही गाय की हत्या हो जाने पर, पिता द्वारा भी उसे बहिष्कृत किया जाता है[73]। गोधन की पवित्रता एवं सर्वश्रेष्ठता यहाँ दिखाई देती है। गाय के अतिरिक्त हाथी, अश्व[74], मृग[75], व्याघ्र, वृक, व्याल[76], सिंह और शशक[77] आदि पशुओं का उल्लेख मिलता है। जिस से पशु-धन का अवलोकन हो जाता है तथा इन पशुओं से पूर्ण होने वाली आवश्यकताओं को समाज में रहने वाले लोग प्राप्त करते होंगे, इस का भी संकेत मिलता है।

पक्षी -

पक्षियों को भी समाज तथा राष्ट्र की संपत्ति माना जाता है। प्रत्येक पक्षी का अपना-अपना महत्त्व देश की उन्नति तथा समृद्धि के लिये होता है। जैसे "मयूर" हमारे भारत वर्ष का राष्ट्रीय पक्षी माना जाता है। मानवजीवन पक्षियों के अभाव में अधूरा होता है, इन की उपलब्धि से जीवन सुखमय बनता है। सम्पूर्ण वातावरण को अपनी चहचहाट से ये मुखरित रखते हैं। यजुर्वेद में पृथक्-पृथक् कार्यों हेतु भिन्न-भिन्न पक्षियों का प्रावधान उल्लिखित किया गया है। जैसे उद्धृत है कि अग्नि के प्रयोग के लिये मुर्गे का वनस्पतियों के ज्ञान हेतु उल्लू के जीवन का अनुकरण, अग्नि जल की परीक्षा के लिये चाषक नामक पक्षी का अनुसरण तथा प्रेमी और सुन्दर आलाप हेतु मयूर पक्षी को देखने के लिये कहा गया है[78]। वैदिक युग में जहाँ पक्षी प्रधान था, वहाँ मनोविनोद का भी प्रमुख साधन था। महाभाष्य में ह्रस्व, दीर्घ एवं प्लुत की सहायता के लिये कुक्कुट के स्वर का आश्रय लिया गया है[79]। मुर्गा पुरातन काल से ही प्रातः काल जागरण के लिये सहायता करता रहा है -

वरतनुसम्प्रवदन्ति कुक्कुटाः[80]।

---

73. ना॰वं॰ 20॰125, 126 एवं द्र॰ 20॰129
74. वही, 5॰20
75. वही, 3॰9
76. वही, 3॰10
77. वही, 1॰24
78. यजुर्वेद संहिता, पृ॰316
79. पा॰महा॰भा॰ 1॰2॰27
80. वही, 1॰3॰48 पृ॰67

महाभाष्य में भी मयूर और मयूरी साथ-साथ नृत्य करते हुये वर्णित किये गये हैं -

प्रियां मयूर: प्रतिनर्तती ति[81] ।।

आदि पुराण में भी मुर्गे और मयूर का उल्लेख दृष्टिगोचर होता है[82] । जिसे राष्ट्रीय पक्षी के रूप में स्वीकार किया गया है । इस प्रकार सर्वत्र पक्षियों का सर्वोत्तम स्थान वर्णित किया गया है । नानकचन्द्रोदय महाकाव्य में विविध पक्षियों का उल्लेख मिलता है । कपोत खंजन, कोकिल, शुक, बर्हि (मयूर), नीलकण्ठ और चंचरीक आदि पक्षियों से सुशोभित कानन का वर्णन दिखाई देता है -

कपोतैर्वृतं खंजनै: कोकिलाद्यै:
शुकै: कुत्रचिद्बर्हिभिर्नीलकण्ठै: ।।
क्वचिच्चंचरीकोल्लसत्पुष्पिताभि:
श्रितं शोभते काननं तत् तमालै:[83] ।।

कण्ठीरव[84] तथा भूङ्गों[85] का उल्लेख भी प्राप्त होता है । इस प्रकार अन्य ग्रन्थों में प्रतिपादित पक्षियों का वर्णन यहाँ भी किया गया है, जिस से उन की उपादेयता प्रतीत होती है । विस्तृत विवेचन तो पक्षियों के बारे में नहीं किया गया है परन्तु उन की विद्यमानता के उल्लेख से ज्ञात होता है कि पूर्वकाल से चली आ रही प्रथा के अनुरूप इन का विशेष लाभ समाज तथा राष्ट्र उठाता होगा ।

कर -

राज्य-व्यवस्था को सुचारू रूप से चलाने के लिये शासक-वर्ग प्रजा पर कर निश्चित करते हैं, जिन के द्वारा अर्जित धन को प्रशासन के सुधार हेतु व्यय किया जाता है । करों द्वारा केवल मात्र राज्य-कोश ही बढ़ता है क्योंकि

---

81. पा॰महा॰भा॰ 7॰3॰87 पृ॰212
82. आ॰पुरा॰ 4॰64, 3॰170
83. ना॰चं॰ 1॰23
84. वही, 1॰27
85. वही, 3॰10

इस का केवल मात्र अधिकार राजा को ही होता है । नानक चन्द्रोदय महाकाव्य में राजाओं द्वारा कर ग्रहण करना अवलोकित होता है । जो कि धनार्जन का एक साधन दिखाई देता है । "जयराम वर्मा" सेना के साथ जा कर किसानों से वार्षिक कर ग्रहण करते हैं -

वार्षिकं करमादातुं महाराजप्रयोजित: ।।
ससैन्यो जयरामोऽथ तलवंडीं समागमत् ।।[86]

राज्य में निवास करने वाले लोग सहर्ष कर भी देते थे तथा अतिथि सत्कार भी करते थे[87] । यहाँ यह प्रतीत होता है कि लोगों द्वारा एकत्रित धन का सदुपयोग राजा लोग करते थे, क्योंकि तभी बिना किसी आपत्ति तथा विरोध के लोग कर-देकर उन का सम्मान भी करते थे । इस प्रकार करों द्वारा राज्य-कोश का संचय किया जाना दिखाई देता है । उस का व्यय किन कार्यों पर किया जाता था, इसका उल्लेख उपलब्ध नहीं होता है । अत: स्पष्ट है कि सामान्य जनता व्यवसायों द्वारा तथा राजा लोग करों द्वारा धनार्जन करते थे ।

पूर्ववर्ती विश्लेषण से नानक चन्द्रोदय महाकाव्य में वर्णित लोगों का आर्थिक जीवन मुख्य रूप से कृषि, उद्योग धन्धों तथा हस्तकला पर निर्भर दिखाई देता है । ग्रामीण जनता व्यापार आदि द्वारा अपनी आजीविका स्वयं उपार्जित कर लेती थी तथा राजा लोग वार्षिक कर द्वारा कोश-संचय करते थे । मुद्रा का प्रचलन अधिक मात्रा में दिखाई नहीं देता है । इस प्रकार लोगों की आर्थिक दशा सामान्यत: समृद्ध ही वर्णित की गई है ।

= = = = = =

---

86. ना·चं· 3·58

87. वही, 3·59

अष्टम अध्याय

राजनैतिक जीवन

(क) शासन व्यवस्था

(ख) सैन्य व्यवस्था

(ग) सन्धि

= = = = = =

अष्टम अध्याय

राजनैतिक जीवन

शासन व्यवस्था - राजनैतिक जीवन में राज्य की शासन व्यवस्था को सुचारु रूप से संचालित करने के लिये निम्नलिखित बातों को आधार स्तम्भ माना जाता है ।

राजा तथा गुण -

वैदिक युग से ही राजतन्त्र का शासन दिखाई देता है । प्राचीन धार्मिक तथा अर्थशास्त्र के ग्रन्थों में राजा के गुणों का वर्णन मिलता है । अर्थशास्त्र में राजा को ही राज्य कहा गया है -

राजा राज्यमिति प्रकृति सक्षेप:[1] ।

इस प्रकार प्रजा का पालन करने के लिये राजा का होना परमावश्यक माना है । "तस्मात् स्वधर्मं भूतानां राजा नव्यभिचारयेत्"[2] राजतन्त्र में राजा को ही सर्वे-सर्वा स्वीकार किया जाता था । मनु स्मृति में उल्लेख किया गया है कि दण्डव्यवस्था के कार्य का निरीक्षण करने के साथ-साथ राजा को सत्यवादी, विवेकी, बुद्धिमान्, धर्म तथा अर्थ का ज्ञाता होना चाहिये[3] । राजा की उत्पत्ति ब्रह्मा द्वारा उल्लिखित की गई है -

वर्णानामाश्रमाणां च राजा सृष्टोऽभिरक्षिता[4] ।।

---

1. कौ॰ अर्थ॰शा॰ 8॰2
2. वही, 1॰13
3. तस्याहु: संप्रणेतारं राजानं सत्यवादिनम् ।
   समीक्ष्यकारिणं प्राज्ञं धर्मकामार्थकोविदम् ।। - मनु॰स्मृ॰7॰26
4. मनु॰स्मृ॰ 7॰35

याज्ञवल्क्य स्मृति में राजा को उत्साही, स्थूल लक्ष्य, कृतज्ञ, वृद्धसेवी, विनयशील, एकरस, कुलीन, सत्यवक्ता, शुचि, अदीर्घसूत्री, स्मृतिमान्, कटु वाक्यरहित, धार्मिक, अव्यसनी, बुद्धिमान्, शूरवीर और रहस्यज्ञाता इत्यादि गुणों से युक्त होना कहा गया है[5]। कौटिल्य ने शौर्य (निर्भीकता), अमर्ष, शीघ्रता एवं दाक्ष्य (सभी कार्यों में नैपुण्य) गुणों से सम्पन्न होना राजा के लिये अनिवार्य कहा है -

शौर्यममर्षः शीघ्रता दाक्ष्यं चोत्साहगुणाः[6]।

इस प्रकार राजा को सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक तथा राजनैतिक से सम्बन्धित समस्त व्यवस्थाओं का संचालन करने तथा उन में परिवर्द्धन करने वाला माना गया है।

नानक चन्द्रोदय महाकाव्य में भी राज्य तथा शासन व्यवस्था की देखभाल हेतु राजाओं का प्रभुत्व दिखाई देता है। तीन द्वीपों में सुखवयन, कमलनयन, सुखसागर, शुद्धसेन, अस्पर्शनाथ आदि अठ्ठारह राजाओं का उल्लेख मिलता है[7]। मुसलमान शासकों को दयाहीन क्रूरता को त्याग कर शेष तत्कालीन समाज के राजाओं में अतिथि सत्कार, नम्रता, सत्पुरुषों का सत्कार अरण्यचारी तपस्वियों के आगमन को तीर्थतुल्य समझना,[8] न्यायप्रियता,[9] श्रेष्ठ कार्यों के अनुष्ठान से समाज में यश का प्रसार, प्रजा रक्षण[10] और दया से परिपूर्ण सहृदयता[11] का प्रतिपादन मिलता है, जिस से तत्कालीन राजाओं की लोकप्रियता का अनुमान होता है। मुसलमान शासकों द्वारा हिन्दुओं पर किये जाने वाले अत्याचारों का उल्लेख भी प्रस्तुत महाकाव्य के अन्त में मिलता है। राजसभा में क्रूर वाणी का बोलना तथा गुरुओं के प्रति द्वेष भावना का वर्णन किया गया है[12]।

---

5. महोत्साहः स्थूललक्षः कृतज्ञो वृद्धसेवकः।
विनीतः सत्त्वसम्पन्नः कुलीनः सत्यवाक् शुचिः॥ -याज्ञ॰स्मृ॰रा॰ध॰प्र॰ 1.309,310-311
6. कौ॰ अर्थ॰शा॰, 6.1.4
7. ना॰चं॰ 9.66 तः 70 पर्यन्तं
8. वही, 8.40,42
9. मूलचन्द्र स्ततोऽवादीद्राजानो न्यायवादिनः॥ - ना॰च॰ 6.73
10. राजन्या बहुजन्यजन्ययशसा ख्याताः प्रजारक्षणः॥ - ना॰चं॰2.15
11. ना॰चं॰ 2.114 एवं द्र॰ 115
12. वही, 21.78

जेलों में हिन्दुओं को क्रूर शब्दों द्वारा अपमानित तथा अत्याचारों से पीड़ित किया जाता था[13]। राजाओं की तरह सिख धर्म में एक गुरू के पश्चात् शिष्य को राज्याभिषेक की तरह, पद ग्रहण कराने का उल्लेख मिलता है -

ततः शिष्याः साधवश्च ब्राह्मणाश्च तपस्विनः ।
गुरुत्वतिलकं तस्य चक्रुरुत्सवपूर्वकम्[14] ।।

इस प्रकार प्रस्तुत महाकाव्य में जहाँ हिन्दुशासक करुणामयी मूर्ति के रूप में प्रदर्शित किये गये हैं, वहीं मुगल शासकों की कठोरता का भी वर्णन किया गया है।

मंत्री और राजसभा -

राज्य की शासन व्यवस्था के बारे में निर्णय लेने के लिये सभाओं का आयोजन किया जाना प्राचीन काल से ही प्रचलित है। इन राजसभाओं में राजा के सहायक रूप में मन्त्री तथा मन्त्रीपरिषद् होती थी। आजकल के प्रजातन्त्र शासन में भी सम्पूर्ण न्याय व्यवस्था को चलाने के लिये लोगों द्वारा मनोनीत प्रतिनिधियों द्वारा लोकसभा, राज्यसभा तथा विधानसभा का आयोजन किया जाता है। जिन की बैठकों में निखिल शासन-सम्बन्धी निर्णय लिये जाते हैं।

राजा के लिये मन्त्रियों का चयन करना प्राचीन ग्रन्थों ने महत्त्वपूर्ण बताया है। रामायण में उल्लेख मिलता है कि राजा मन्त्रियों पर निर्भर करता है। श्री रामचन्द्र जी ने मन्त्रियों के परामर्श को परमावश्यक माना है -

कच्चिन्मंत्रयसे नैकः[15] ।

कौटिल्य ने अपने देश में उत्पन्न, कुलीन, प्रगल्भ, पवित्र-हृदय आदि गुणों की अनिवार्यता मंत्री में होनी कही है -

जानपदेऽभिजातः स्वव्यग्रहः कृतशिल्पश्चक्षुष्मान्प्राज्ञो.....[16] ।।

मंत्रियों की राजा के लिये परमावश्यकता का उल्लेख करते हुये कहा है कि जिस प्रकार रथ एक पहिये से नहीं चलता वैसे राजा को राज्यव्यवस्था को चलाने के

---

13. ना॰चं॰ 21॰115
14. वही, 20॰37
15. वा॰रा॰ 2॰100॰18
16. कौ॰ अर्थ॰शा॰ 9॰1

लिये मंत्री की उपादेयता होती है[17]। मनु स्मृति में राज्य को सुचारुरूप से चलाने के लिये मन्त्रियों की अनिवार्यता पर बल दिया है -

अपि यत्सूकरं कर्म तदप्येकेन दुष्करम् ।
विशेषतोऽसहायेन किनु राज्यं महोदयम्[18] ।।

कथा सरित्सागर में मंत्री के लिये उल्लेख किया है कि उसे राजभक्त तथा प्रजा का कल्याणकारक होना चाहिये -

सा मन्त्रिता च यद्राज्यकार्यभारैकचिन्तनम् ।
चित्तानुवर्तनं यत्तदुपजीवकलक्षणम्[19] ।।

महाभारत में भी राजा के लिये मंत्रियों के परामर्श का निर्देश दिखाई देता है[20]। मनुस्मृति में सात अथवा आठ मंत्रियों की संख्या बताई है[21]। कौटिल्य ने कहा है कि राज्य की व्यवस्था को ध्यान में रखते हुये जितने मंत्रियों की आवश्यकता अनुभव की जाये उतने ही राजा को रखने चाहियें -

यथा सामर्थ्यमिति कौटिल्य:[22] ।

रामायण में मंत्रियों में शूरवीरता, जितेन्द्रियता, अनुभवशीलता तथा विद्वता जैसे गुणों का होना अनिवार्य कहा गया है -

कच्चिदात्मसमा: शूरा: श्रुतवन्तो जितेन्द्रिया: ।
कुलीनाश्चेङ्गितज्ञाश्च कृतास्ते तात मन्त्रिण:[23] ।।

याज्ञवल्क्य स्मृति में मंत्रियों की पवित्रता, विद्वत्ता एवं कुलीनता पर ज़ोर दिया गया है[24]। ऋग्वेद में भी अमात्य शब्द का प्रयोग मंत्री के लिये किया गया है-

कृणुष्व प्राज: प्रसितिं न पृथ्वीं याहि राजेवामवाँ इभेन[25] ।

यास्क ने भी अमात्य का उल्लेख किया है -

---

17. सहायसाध्यं राजत्वं चक्रमेकं न वर्तते ।
कुर्वीत सचिवांस्तस्मात्तेषां च शृणुयान्मतम् ।। - कौ॰अर्थ॰शा॰1॰7॰15
18. मनु॰स्मृ॰ 7॰53
19. कथा सरित् सागर, 17॰46
20. विजयो मंत्रमूलो हि राजा भवति भारत ।। - महा॰भा॰सभा पर्व, 5॰28
21. सचिवान् सप्त चाष्टौ वा कुर्वीत सुपरीक्षितान् ।। - मनु॰स्मृ॰7॰54
22. कौ॰अर्थ॰शा॰ 1॰15॰53 पृ॰44
23. वा॰रा॰ 2॰100॰15
24. समन्त्रिण: प्रकुर्वीत प्रज्ञान्मौलान् स्थिराञ्छुचीन् ।। - याज्ञ॰स्मृ॰1॰312
25. ऋ॰ 4॰4॰1

यादृ राजा इव अमात्यवान् स्ववान् वा[26] ।

मनु ने भी प्रधान मंत्री को अमात्य कहा है -

अमात्ये दण्ड आयत्तोदण्डे वैनयिकी क्रिया[27] ।

इस प्रकार प्राचीन धर्मशास्त्रों का अध्ययन करने से मन्त्रियों के बारे में भिन्न-भिन्न प्रतिपादन दृष्टिगोचर होता है । मंत्रियों द्वारा निर्मित राजसभा के परामर्श से कार्य करके शासन व्यवस्था चलाती है ।

नानक चन्द्रोदय महाकाव्य में भी राजाओं की शासन व्यवस्था का उल्लेख उपलब्ध होता है । मंत्री राजा को राजकार्य संचालन में सहयोग देते हैं । राजा द्वारा निर्दिष्ट कार्य को मन्त्री करता है अर्थात् जिस काम को करने के लिये राजा आज्ञा देता है, मन्त्री उसे पूर्ण श्रद्धा से करता है[28] । मन्त्री के लिये "सचिव" का उल्लेख भी मिलता है[29] । अमात्य का उल्लेख करते हुये राजा को मन्त्री के अधीन वर्णित किया है –

अमात्यवश्यो राजेव, स्त्रीवश्यश्च पुमानिव ।
अन्तः करणतादात्म्याज्जीवो याति विडम्बनाम्[30] ।।

यवन शासकों की राज्य व्यवस्था का वर्णन भी दिखाई देता है, जो कि एक से अधिक श्रेष्ठ-मन्त्रियों को नियुक्त कर उन के साथ विचार विमर्श करते हैं[31] । राजा की मन्त्रिपरिषत् में मन्त्रियों की संख्या का उल्लेख नहीं मिलता है, परन्तु शासन सम्बन्धी कार्यों का निर्णय करने हेतु एक से अधिक मन्त्री नियुक्त होते थे, यह स्पष्ट हो जाता है ।

मन्त्रियों के अतिरिक्त राज्य के क्रिया-कलापों की देखभाल के लिये अन्य अधिकारी भी नियुक्त होते हैं । आय-व्यय का हिसाब रखने के लिये

---

26. निरुक्त. 6.12
27. मनु.स्मृ. 7.65
28. तमान्येद्यु योगिनं, नृपो जगाद मन्त्रिणम् ।। - ना.चं. 8.102, 103
29. चरणे पतितः सचिवेन समं, नृपतिर्यातिमेतदुवाच वचः ।। - वही, 8.107
30. ना.चं. 1.87
31. मन्त्रिश्रेष्ठैः सममकबरस्यात्मजोऽमन्त्रयद् यत् ।। - ना.चं. 20.62
एवं द्र. 63

"लेखकों" को मनोनीत किया जाता है[32]। जैसे आज कल सरकारी कार्यों के लिये "लिपिकों", तथा व्यवसायी वर्ग में "मुनीमों" का चयन किया जाता है, जो कि धन सम्बन्धी हिसाब रखते हैं तथा सरकार और मालिक को सूचित करते हैं। नानक चन्द्रोदय महाकाव्य में लेखक वर्ग की पूर्ण ईमानदारी दृष्टिगोचर होती है[33]। जब नानकदेव के आय व्यय का विवरण राजा धनखान द्वारा मांगा जाता है तो वे अधिकारी वास्तविक सूची प्रस्तुत करते हुये नानक देव की बकाया राशि राजा के पास निकालते हैं, जबकिकुछ लोगों द्वारा गुरू नानकदेव के कार्यों की निन्दा की जा रही थी। भूमि सम्बन्धी हिसाब रखने के लिये आजकल की तरह भक्ताधिकारियों (पटवारियों) की नियुक्ति का उल्लेख मिलता है[34]। खज़ाने के पूर्ण उत्तरदायित्व के लिये "कोषाध्यक्ष" नियुक्त किया जाता है[35], जो कि सम्पूर्ण धन के लेन देन का अधिकारी होता है। इस प्रकार मन्त्रियों के साथ-साथ अन्य अधिकारियों को नियुक्त कर राजा लोग शासन-व्यवस्था चलाते हैं।

राज-सभा -

जिस स्थान पर राजा अपने मन्त्रिपरिषद् सहित शासन सम्बन्धी निर्णय लेता है, उसे राज-सभा अथवा सभा-मण्डप कहा जाता था। यशस्तिलक में सभा-मण्डप के लिये आस्थान-मण्डप का उल्लेख उपलब्ध होता है -

सर्वेषामाश्रमिणामितरव्यवहारविश्रामिणां च कार्याणामश्रयम्[36] ।।

कादम्बरी में चन्द्रापीड़ की दिग्विजय के समय "आस्थान मंडप" का उल्लेख मिलता है - "

"तमाकर्ण्य च समासन्नस्नानसमयो विसर्जित राजलोकः क्षितिपति-रास्थान मण्डपादुत्तस्थौ"[37]।

---

32. ना·चं· 3·15 एवं द्र· 19, 24
33. वही, 3·46
34. भक्ताधिकारे लाभः कः किं ददाति च नानकः ।
अनालोच्येति·····जानीथ तत्तथा ।। - ना·चं· 4·55
35. ततो भवानीदासेन कोशाध्यक्षेण तत्क्षणम् ।
·····।। - ना·चं· 4·111
36. यशस्तिलक, पृ· 373
37. कादम्बरी, पृ· 49

नानक चन्द्रोदय महाकाव्य में राज-सभा का विभिन्न प्रकार से उल्लेख वर्णित मिलता है । म्लेच्छ भूपति की राजसभा को "संसद्" नाम से कहा गया है । जिस स्थान पर बैठकर वे दूसरे स्थानों से आये लोगों का सम्मान करते हैं तथा बात सुनते हैं -

रामरायो जगामाथ संसदं म्लेच्छ-भूपतेः ।
स उत्थाय ननामामुं दत्वाऽऽसनमिदं जगौ[38] ।।

औरंगज़ेब की सभा का उल्लेख भी मिलता है । यहाँ बैठकर वह विभिन्न विषयों पर अन्य लोगों के साथ वार्तालाप करता है[39] । सिक्ख गुरू भी सभा में बैठकर विभिन्न प्रकार के प्रसंगों पर बातचीत करते हैं[40] । जिस से पता चलता है कि गुरू सभा में बैठ कर शिष्यों को उपदेशामृत प्रदान करते थे तथा उन के साथ मन्त्रणा करते थे ।

यवन शासकों को राजसभा में ही सारे कार्यों की सूचना मिलती है । गुरूनानक देव के पकड़ लिये जाने के बारे में, जब यवनाधिराज को ज्ञात होता है तो वह राजसभा में पूर्ण जानकारी प्राप्त करता है[41] । मुगलशासक राज-सभा में "पीठासीन" उल्लिखित मिलते हैं । इस प्रकार राजसभा में स्थित बाबर गुरूनानक देव के साथ बातचीत करते हैं,[42] ताकि मन्त्रियों को वार्तालाप का ज्ञान हो सके । राजाओं द्वारा मनोनीति अधिकारी और मन्त्री कुशल होते हैं, जो कि समय समय पर राजनीति से सम्बन्धित नीतियों का वर्णन कर शासक वर्ग को सचेत करते हैं[43] । प्रस्तुत महाकाव्य में आय से व्यय की अधिकता को लोकतन्त्र के लिये घातक बताया गया है ।

इस प्रकार राज-सभा, संसद् और सभा का उल्लेख मिलता है, यहाँ

---

38. ना·चं· 21·37
39. अमुं सभायामबरङ्गज़ेवो, विस्तम्भवार्तां स्विदमाबभाषे ।। -वही, 21·45
40. ना·चं· 20·99
41. वही, 18·39 तः 41 पर्यन्तं
42. वही, 18·43, 52, 59
43. आयाद् व्ययो यस्य महाननीतेः
स सत्वरं सीदति लोकतन्त्रे ।। - ना·चं· 4·6

बैठ कर शासन सम्बन्धी निर्णय राजा लोग करते थे। मुसलमान शासकों की अत्याचारपूर्ण शासन व्यवस्था का वर्णन अधिकतर मिलता है, क्योंकि उस समय भारतवर्ष में अधिकांश मुगल राजाओं का राज्य था। जो कि भारतीय संस्कृति में परिवर्तन करने के लिये प्रयत्नशील थे परन्तु हिन्दुओं के धार्मिक गुरूओं तथा उपदेशकों के सतत प्रयास द्वारा उन ताकतों का हिन्दु-संस्कृति पर कोई असर न पड़ा।

राज्य के आदर्श -

राजा चराचर समस्त प्रजा वर्ग का स्वामी होता है। राज्य में रहने वाले प्रत्येक प्राणी का भरण-पोषण उस का कर्त्तव्य होता है। महाभारत में कहा गया है कि राजा को प्रजा का पालन नीति के अनुसार लोक-सम्मत भाषा में प्रजा रंजन के लिये करना चाहिये -

लोकरंजनमेवात्र राज्ञां धर्मः सनातनः।
सत्यस्य रक्षणं चैव व्यवहारस्य चार्जवम्[44] ।।

अग्नि-पुराण में कहा है कि जिस प्रकार गर्भिणी स्त्री अपने सुखों का त्याग कर गर्भ के निमित्त उस के अनुकूल कार्य करती है, राजा को भी प्रजा को सन्तान समान समझ कर पालन करना चाहिये[45]। महाभारत में न्याय पूर्ण कार्य करने वाले राजा को राजाओं में उत्तम राजसत्तम कहा गया है[46]। मनु-स्मृति में उल्लेख मिलता है कि राजा को राज्य में घूस लेने वालों तथा अन्य निषिद्ध कर्मों का आचरण करने वालों से प्रजा की रक्षा कर आदर्श राज्य स्थापित करना चाहिये-

राज्ञो हि रक्षाधिकृताः परस्वादायिनः शठाः।
भृत्या भवन्ति प्रायेण तेभ्यो रक्षेदिमाः प्रजाः[47] ।।

---

44. महा॰भा; शान्ति पर्व; 57॰11
45. नित्यं राज्ञा तथा भाव्यं गर्भिणी सह धर्मिणी।
यथा स्वं सुखमुत्सृज्य गर्भस्य सुखमावहेत् ।। - अग्नि॰पुरा॰223॰8
46. अगूढविभवा यस्य पौरा राष्ट्रनिवासिनः।
नयापनयवेत्तारः स राजा राजसत्तमः ।। - महा॰भा॰, शान्तिपर्व; 57॰34 एवं द्र॰33
47. मनु॰ स्मृ॰ 7॰123

नानक चन्द्रोदय महाकाव्य में उल्लेख मिलता है कि जो राजा क्रोध लोभ आदि के द्वारा मूर्खता पूर्ण, धर्म का हनन कर राज्य करता है, वह राज्य के समाप्त होने पर नरक में निवास करता है[48]। इस प्रकार धर्मानुसार राज्य व्यवस्था को सुचारु रूप से चलाने का निर्देश किया गया है। राज्य में महात्माओं की आवश्यकता अपेक्षित थी और उन की शुश्रूषा राजा लोग करते हैं थे, इस का अवलोकन राजा जनक तथा गुरू नानकदेव के संवाद से होता है जब जनक गुरू जी से आध्यात्मिकता से सम्बन्धित ज्ञान अर्जित करते हैं[49]। राजा विभीषण राज्य में गुरू नानक देव के पहुँचने पर राजोपयोगी सामग्री द्वारा, रत्नों से रचित सिंहासन पर बैठा कर उनकी पूजा करते हैं तथा परस्पर सुशील स्वभाव से प्रेमपूर्ण बातचीत करते हैं[50]। यहाँ राजा की विनम्रता, सेवाभावना और आतिथ्य सत्कार की भावना का ज्ञान होता है। रघुकुल में उत्पन्न राजा दशरथ का उल्लेख करते हुये वर्णन किया है कि "साकेत" नाम नगर में "सरयु" नदी के तट पर स्थित राजा दशरथ सकल पृथ्वी पर शासन करते थे[51]। इस प्रकार सम्पूर्ण राज्य में शान्ति स्थापित थी, जिस से आदर्श नियमों द्वारा आदर्श राज्य के संचालन का ज्ञान होता है।

राजा लोग न्याय प्रिय होते थे, जो कि अनुचित बात को सहन नहीं करते थे[52]। जिस से प्रजावर्ग को मिलने वाले न्याय का ज्ञान हो जाता है। सम्पूर्ण राज्य में सुख समृद्धि के लिये कार्य करते रहने का संकेत देते हुये समस्त राज्यादि सुखों को नश्वर कहा गया है[53] अर्थात् इसे नश्वर मान कर धर्मानुसार आदर्श राज्य व्यवस्था दिखाई गई है। कमलनयन राजा के राज्य "सुवर्णपुर" को सोने से

---

48. यः क्रोधलोभादिविमूढबुद्धिः....नृपतिर्विदध्यात्।
उद्घोष्यते तस्य फलं....नरकेषु वासः ।। - ना.चं. 20.53
49. ना.चं. 15.31 तः 33 पर्यन्तं एवं द्र. 41
50. राजोपचारैर्विभवैर्विभीषणकरार्पितैः।
रत्नासनारूढो नानकः पूजितोऽभवत् ।। - ना.चं.15.61,62
51. ना.चं. 15.64
52. न्यायवर्ती नरपतिर्न प्रसन्नः स उक्तवान् ।। - ना.चं. 9.33
53. दृश्यं नश्वरमाकल्प्य सकलं राज्यादिमोहास्पदं। - ना.चं. 9.78

सुसज्जित वर्णित किया गया है,[54] जिस से राज्य में सुख समृद्धि का अवलोकन होता है । राजा को देख कर प्रजा द्वारा उस को नमस्कार करना और राजा की भी प्रजा के प्रति सम्मानजनक भावना[55] आदर्श राज्य को दिखाती है । गुरू नानक देव जैसे तपस्वी राजा बोलाररराय को देखकर प्रणाम करते हैं तथा राजा उन का सम्मान करते हैं।इस प्रकार उन का सम्पूर्ण राज्य सुखमय प्रतीत होता है,जहाँ प्रजावर्ग का सम्मान होता है ।

प्रस्तुत महाकाव्य में हिन्दुशासकों की लोकप्रियता और सेवा भावना के साथ-साथ यवन शासकों तथा उन के अधिकारियों के ईर्ष्यालु स्वभाव का भी उल्लेख मिलता है । जिस से यवनों के आदर्शहीन राज्य का अवलोकन होता है -

गिरोगुरोश्चन: श्रुत्वा नि:स्पृहस्येति भूपति: ।
कर्मठा यवना: सभ्या: सर्वे मत्सरिणोऽभवन्[56] ।।

अत: आदर्श राज्य व्यवस्था के चित्रण को प्रस्तुत करते समय तत्कालीन मुगल शासकों की आदर्शहीनता का निरूपण भी किया गया उपलब्ध होता है ।

पुरोहित -

राजा के लिये अमात्य की तरह पुरोहित का होना भी परमावश्यक होता था । राज सभाओं में पुरोहित का पद सम्मानजनक होता था । ऋग्वेद में उल्लेख मिलता है कि पुरोहित विश्वामित्र द्वारा भारत जाति की रक्षा हुई -

विश्वामित्रस्य रक्षति ब्रह्मेदं भारतं जनम्[57] ।।

ऐतरेय ब्राह्मण में "राष्ट्रगोप्ता" अर्थात् राष्ट्र का पालनकर्ता एवं राष्ट्र को गुप्त रखने वाला पुरोहित कहा गया है[58] । स्मृतियाँ भी राज्य रक्षा के लिये पुरोहित की अनिवार्यता पर बल देती हैं । मनुस्मृति में गृह्यकर्म और कल्याण आदि के लिये पुरोहित का वरण करने को कहा है[59] । याज्ञवल्क्य ने अर्थशास्त्र में निपुण

---

54. नगरं हिरण्मयमुदीक्ष्य विचित्रं.....। - ना.चं. 9.122, 123
55. ना.चं. 2.117
56. वही, 4.103
57. ऋ.~~वेद~~, 3.53.12
58. ऐतरेय ब्रा. 40.2
59. पुरोहितं च कुर्वीत वृणुयादेव चर्त्विजम् ।
तेऽस्य गृह्याणि कर्माणि कुर्युर्वेतानिकानि च ।। - मनु.स्मृ.7.78

और सम्पूर्ण शास्त्रों में पारंगत पुरोहित को नियुक्त करने के लिये राजा को कहा है[60]। कौटिल्य अर्थशास्त्र में "सामर्ग्यजुर्वेदास्त्रयस्त्रयी"[61] कह कर ब्राह्मण को इन तीनों में कुशल होना कहा गया है। "श्रेष्ठ कुलोत्पन्न, शीलवान्, सदाचारी, वेद के षट्अंगों, दैवी-विपत्ति, शकुनशास्त्र एवं दण्डनीति आदि में पारंगत पुरुष को राजा पुरोहित पद पर नियुक्त करे[62]। प्राचीन भारतीय शासन पद्धति में उल्लेख मिलता है कि पुरोहित धार्मिक विषयों, राजधर्म और नीति का संरक्षक होता है[63]। आपस्तम्ब धर्म सूत्र में उद्धृत है कि पुरोहित राजा के लम्बे समय तक यज्ञ आदि अनुष्ठानों में लगे रहने के कारण उत्तराधिकारीके रूप में राज्यकार्य को देखता था[64]।

आने वाले समय में जैसे जैसे समय बीतता गया, पुरोहित का महत्त्व कम होता गया और उस का कार्य धार्मिक अनुष्ठान कराना ही रह गया। राजा के महत्त्वपूर्ण सहयोगी के रूप में जो उस का स्थान था, वह समाप्त हो गया। राजा को जब धार्मिक कृत्य को निष्पन्न करने में पुरोहित की आवश्यकता होती थी, तभी उसे आमन्त्रित करता था।

नानक चन्द्रोदय महाकाव्य में राज्य के संरक्षक, राजा के दाहिने हाथ के रूप में जो पुरोहित का स्थान था, वह दिखाई नहीं देता है। विवाह और अन्य धार्मिक कर्मों के समय पर ही विद्वान् पुरोहितों से परामर्श किया जाता है[65]। पुरोहित से पुत्र और कन्या के विवाह के समय वर्ण, वंश और ग्रहों आदि के बारे में पूछ कर विवाह निश्चित किया जाता है[66]। ज्योतिषशास्त्र में पारंगत कुल-पुरोहित रूप में "हरिदयालु" जी का उल्लेख मिलता है[67]। जिस से धार्मिक कार्यों में ही इन की अनिवार्यता प्रतीत होती है। सामुद्रिक विद्या के अनुसार ग्रह

---

60. पुरोहितं प्रकुर्वीत दैवज्ञमुदितोदितम्।
दंडनीत्यां च कुशलमथर्वांगिरसे तथा॥ - याज्ञ॰स्मृ॰ 1·313
61. कौ॰ अर्थ॰शा॰ 1·3·1
62. पुरोहितमुदितोदितकुलशीलं षडंगे वेदे दैवे निमित्ते···। -वही, 1·9·15
63. प्राचीन भारतीय शासन पद्धति; ए॰एस॰ उल्तेकर, पृ॰152
64. आप॰धर्म॰सू॰, 20·2·12; 3·1·3
65. ना॰चं॰ 3·73
66. वही, 4·67
67. वही, 2·54

स्थिति तथा लक्षणों को देख कर पुरोहित सम्पूर्ण भावी जीवन का वर्णन करते थे[68] ।

इस प्रकार तत्कालीन समाज में पुरोहितों का कार्य कर्मकाण्ड ही दिखाई देता है । राजाओं के पास भी उन की महत्ता धार्मिक कार्यों में ही अवलोकित होती है । पूर्वकाल की तरह राज्यशासन में उनका महत्त्वपूर्ण स्थान प्रतीत नहीं होता है । लेकिन फिर भी समाज में विद्वान् ब्राह्मणों को प्रतिष्ठित स्थान प्राप्त हुआ दिखाई देता है ।

लोक कल्याणकारी राज्य -

राज्य का संचालन लोक कल्याण हेतु होना चाहिये ताकि प्रजा वर्ग भी राजा का सम्मान करे । नानक चन्द्रोदय महाकाव्य में स्वामी के प्रति अतीव सुन्दर भावना से सेवाभाव को प्रदर्शित करते हुये उल्लेख किया गया है कि स्वामी को सभी अवस्थाओं में सेवा करनी चाहिये -

स्वामी सर्वास्ववस्थासु पत्न्या परिजनेन च ।
सम्माननीय: सततमेष: धर्म: सनातन:[69] ।।

इस प्रकार जब सेवक (अर्थात् प्रजावर्ग) राजा की सेवा करता है, तो स्वामी का भी कर्तव्य प्रजा का कल्याण करने का बनता है । प्रजावर्ग की मनःकामना लोक-कल्याणकारी राज्य की थी क्योंकि जो युगलशासक क्रूरतापूर्ण राज्य करते थे उन की लोगों द्वारा भर्त्सना की गई है -

स्वार्थप्रवणतां राज्ञां निस्नेहत्वं निरास्पदम् ।
विनिनिन्द तत: सर्वो लोक: शोकसमाकुल:[70] ।।

प्रस्तुत महाकाव्य में लोककल्याण की भावना से राज्य करने का निर्देश देते हुये तत्कालीन राजनैतिक जीवन में विद्यमान आर्यों के धर्म को नष्ट करने वाले प्रकृति से दारुण मुगल नृपों का उल्लेख भी मिलता है[71] । जिस से उन शासकों में राज्य में निवास करने वाली प्रजा के प्रति कल्याण की भावना का अभाव और सभी धर्मों के प्रति समदृष्टि का न होना दिखाई देता है ।

---

68. ना॰चं॰ 2॰58 एवं द्र॰ 65 त: 67 पर्यन्तं, 78
69. वही, 7॰14
70. वही, 6॰38
71. आर्याणां धर्महन्ता स प्रकृत्या दारुणो नृप: ।। - वही॰21॰114

सिक्खों के दस गुरूओं के वर्णन के साथ प्रस्तुत महाकाव्य में जहाँगीर, अकबर, शाहजहाँ और औरंगजेब इत्यादि मुगल शासकों का वर्णन किया गया है, जिस से प्रतीत होता है कि तत्कालीन समाज में रहने वाले लोगों को कुछ हिन्दु शासकों वाले राज्यों को छोड़ कर शेष भारत वर्ष में कल्याणकारी शासनव्यवस्था प्राप्त न थी, क्योंकि मुसलमान तो सदैव हिन्दुओं पर अत्याचार करते थे। गुरू नानक देव सहित अन्य उत्तरोत्तर पदग्रहण करने वाले गुरूओं ने भी धर्म का प्रचार करते हुए अनेक यातनाओं को सहन किया, परन्तु वे अपने रास्ते पर निरन्तर आगे बढ़ते रहे हैं।

न्याय व्यवस्था -

प्रशासन का कार्य सुचारू रूप से चलाने के लिये न्याय व्यवस्था का होना परमावश्यक होता है। प्राचीन ग्रन्थों और स्मृतियों में न्याय व्यवस्था के बारे में उल्लेख उपलब्ध होते हैं। मनु ने राजा की आज्ञा की अवहेलना करने वाले और चोरी करने वाले को समान अपराधी मान कर न्याय में दण्डव्यवस्था का उल्लेख किया है[72]। याज्ञवल्क्य स्मृति में निषिद्धाचरणों द्वारा अन्य लोगों को दु:खी करने वाली, पुरुषों को मारने वाली और गर्भपातकी स्त्रियों को न्यायरूप में मृत्युदण्ड की व्यवस्था बताई है[73]। मनु ने राजा को व्यवस्थित धर्म और कानून से विचलित न होने का उल्लेख किया है -

अनिष्टं चाप्यनिष्टेषु तं धर्मं न विचालयेत्[74] ।।

हरिहर त्रिपाठी ने उल्लेख किया है कि "वादी तथा उस की सूचना के बिना ही चरों से प्राप्त सूचना के आधार पर राजा अपराधी को दण्ड देता था[75]। महाभारत में उल्लेख मिलता है कि राजा को क्षमाशील नहीं होना चाहिये[76]। अपितु अपराध के अनुसार न्याय व्यवस्था का परिपालन करते हुये प्रत्येक को दण्ड

---

72. राज्ञ: कोशापहर्तृंश्च प्रतिकूलेषु च स्थितान्।
घातयेद्विविधै.....चोपजापकान् ।। - मनु.स्मृ.9.275 एवं द्र.9.276

73. विप्र दुष्टां स्त्रियं चैव.....।
सेतुभेदकरीं.....बध्वा प्रवेशयेत् ।। - याज्ञ.स्मृ.2.278

74. मनु.स्मृ. 7.13

75. प्राचीन भारत में राज्य और न्याय पालिका, पृ.215

76. न च क्षान्तेन ते भाव्यं नित्यं पुरुषसत्तम।
अधर्म्यो हि मृदु राजा क्षमावानिव कुञ्जर: ।। - महा.भा.शान्ति पर्व, 56.37

का प्रावधान करना चाहिये, ताकि अपराध न बढ़ सकें ।

नानक चन्द्रोदय महाकाव्य में मुगल शासकों की राज्यव्यवस्था का ही अधिकतर वर्णन मिलता है । तत्कालीन समाज में रहने वाले लोग न्यायप्रिय शासक को ही पसन्द करते हैं । हरिगोविन्द राजा के समीप पहुँच कर कुशलता पूर्वक न्याय से युक्त वचन बोलते हैं[77] । जब प्रजा पर शासन करने वाले न्याय प्रेमी होते हैं, तो प्रजा स्वयं उपयुक्त कार्य करने वाली होती है । मुसलमान राजा धनादि के लोभ से प्रजा को दुःखी करते हैं, इस का ज्ञान तक होता है जब हरि गोविन्द सपरिवार चन्द्रपाल को छुड़ानेके लिये राजा जहांगीर को अधिक मात्रा में धन ग्रहण करने के लिये कहते हैं[78] । यहाँ यह प्रतीत होता है कि अन्याय के रास्ते से धन दे कर पकड़े गये लोगों को छुड़ाया जा सकता था, तभी वह ऐसा कहते हैं । परन्तु न्यायप्रिय शासक जब कभी अन्याय की घटना को देखते थे तो वे अप्रसन्न हो जाते थे । इस का भी उल्लेख मिलता है[79] । राजा दशरथ की त्याग-भावना तथा न्यायप्रियता का उल्लेख करते हुये निरूपण किया है कि जब दैत्य लोग ऋषि-मुनियों तथा सामान्य जनता को दुःख देते हैं तो दैत्यों के संहार हेतु अनिच्छा होने पर भी प्रिय पुत्र राम को प्रेषित करते हैं[80], जो कि राक्षसों का संहार कर प्रजा को न्याय प्रदान कर उन के कार्यों को निर्विघ्न करते हैं ।

ईश्वर द्वारा भी अन्यायपूर्ण कार्यों की सज़ा दी जाती है जो कि ईश्वर-स्वरूप महात्माओं को दुःख देने से प्राप्त होती है । जब देवदूत राक्षसों के स्वामी के अनुचर नानकदेव के समक्ष आते हैं तो "मर्दन" भयभीत हो जाता है, तो गुरू कहते हैं कि "कर्ता" (करतार) की क्रिया को देखा । ऐसा उच्चारण करते ही राक्षस अन्धे हो जाते हैं[81] । इस प्रकार सिद्धपुरुषों का संरक्षण अन्याय

---

77. जहांगीरं प्राप्य जगाद धृष्टो, न्यायोपपन्नं वचनं प्रवीणः । -ना॰चं॰20॰5।

78. ना॰चं॰ 20॰63

79. वही, 9॰33

80. वही, 15॰14

81. वही, 9॰91, 92,93

के कार्यों में संलिप्त दुष्टों को नेत्रहीन करके स्वयं उपलब्ध होता है । म्लेच्छाधिपति की रोटी तथा साधारण मनुष्य की रोटी को हाथ में पकड़ कर गरीब की रोटी में से दूध की धारा और दूसरी में से रक्त प्रवाहित कर नानकदेव ने बताया है कि अन्याय से उपार्जित ऐश्वर्य आराम तथा स्वादिष्ट भोजन खून से लिप्त होता है, जो कि गरीबों का शोषण कर प्राप्त किया जाता है[82] । इस प्रकार तत्कालीन समाज में विद्यमान अन्याय का उन्मूलन करने के लिये नानकदेव प्रयास करते रहते हैं । अन्याय के आगे वह नतमस्तक नहीं होते हैं तथा अपने धर्म और संस्कृति का प्रचार कर लोगों को भी उस की रक्षा करने के लिये प्रेरित करते हैं ।

दण्ड-व्यवस्था -

राजनैतिक शासन व्यवस्था में दण्ड का निर्धारण प्राचीन काल से ही चला आ रहा है । नन्हें से बच्चे को माता-पिता सज़ा देते हैं, ताकि वह जीवन में अनुचित और निन्दनीय कार्यों के प्रति प्रेरित न हो तथा समाज में आदर्श रूप में रह सके । परन्तु राजाओं के शासन काल से लेकर आजकल की लोकतांत्रिक सरकारों का गठन होने तक समाज में अपराधों की वृद्धि होती आ रही है, उन असामाजिक तत्त्वों को अपराध के अनुसार सज़ा मिल सके, इसीलिये दण्ड-व्यवस्था का प्रावधान आधुनिक समय तक दृष्टिगोचर हो रहा है । समय परिवर्तन के साथ-साथ इन दण्ड नियमों में भी परिवर्तन होते रहे हैं ।

प्राचीन भारतीय शासन व्यवस्था के अन्तर्गत दण्डों की व्यवस्था कठोर होती थी । सामान्य अपराध पर भी कठोर से कठोर सज़ा दी जाती थी । मौर्यकाल में दण्ड-व्यवस्था कठोर रूप में थी[83] । मनु ने उल्लेख किया है कि यदि साम, भेद और दान से शत्रु वश में न हो तो दण्ड उपाय का प्रयोग करना चाहिये[84] ।

---

82. ना.चं. 7.148

83. वैदिक इंडेक्स वाल्यूम I, पृ.55

84. यदि ते तु न तिष्ठेयुरुपायैः प्रथमैस्त्रिभिः ।
दण्डेनैव प्रसह्यैतांश्छनकैर्वशमानयेत् ।। - मनु.स्मृ.7.108

राष्ट्र की अभिवृद्धि का कारण दण्ड को ही माना गया है[85]। किन्तु बिना विचार कर दिये गये दण्ड को राजा के लिये अकल्याणकारी प्रतिपादित किया है[86]। दण्ड की आवश्यकता बतलाते हुये उद्धृत किया गया है कि इस के भय से प्रजा अपने-अपने कर्मों में लीन रहती है। चोरी आदि निषिद्ध कृत्यों का आचरण करने वालों के लिये मृत्युदण्ड की व्यवस्था का उल्लेख किया गया है[87]। याज्ञवल्क्य ने भी उल्लेख किया है कि अन्य कोई उपाय समझाने का न रहने पर दण्डव्यवस्था निश्चित करनी चाहिये -

सम्यक्प्रयुक्ता: सिद्धयेयुर्दण्डस्त्वगतिका गति:[88] ।।

चोरी करने वाले के साथ उस की सहायता करने वाले को भी समान दण्ड की व्यवस्था बतायी गई है[89]। धर्मसूत्रों में भी राजा के लिये दण्ड-व्यवस्था को निश्चित करने का निरूपण मिलता है। गौतम-धर्मसूत्र में राजा को कहा गया है कि वह उच्छृङ्खल व्यक्तियों का विचार कर उन्हें दण्ड प्रदान करे -

"दण्डो दमनादित्याहुस्तेनादान्तान्दमयेत्"[90]।

ऋग्वेद में उल्लेख मिलता है कि जो चोरी आदि कर्मों को करते थे उन्हें राजा के समक्ष प्रस्तुत कर उन पर चोरी के चिह्न अंकित किये जाते थे[91]। रामधारी सिंह दिनकर उल्लेख करते हैं कि "गुरू अर्जुन देव रावी स्नान के बहाने कैद से बाहर आये और रावी के तट पर जीवन लीला समाप्त कर दी[92]। यहाँ मुगल शासकों की हिन्दुओं के प्रति कठोर दण्ड-व्यवस्था का अवलोकन होता है, जिन्को न सहनकरते हुये उन्होंने जल प्रवाह को श्रेयस्कर स्वीकार किया। इस प्रकार प्रत्येक शासक वर्ग के लिये दण्ड-व्यवस्था का आयोजन सभी ग्रन्थों में प्रतिपादित मिलता है।

---

85. सामादीनामुपायानां चतुर्णामपि पण्डिता: ।
सामदण्डौ प्रशंसन्ति नित्यं राष्ट्राभिवृद्धये ।। - मनु॰स्मृ॰7॰109
86. मनु॰स्मृ॰ 7॰19
87. मनु॰स्मृ॰7॰17, 8॰323 एवं द्र॰ 7॰15
88. याज्ञ॰स्मृ॰ 1॰346
89. वही, 2॰276
90. गौ॰धर्म॰सू॰ 2॰2॰28 एवं द्र॰ 29 त: 31 पर्यन्तं
91. व्युच्छा दुहितार्दिवो·····अप: ।
तेत्त्वास्तेनं यथा रिपुं तपाति····अवसूनृते ।। -ऋ॰ 5॰79॰9;7॰86॰5
92. संस्कृति के चार अध्याय, पृ॰405

नानक चन्द्रोदय महाकाव्य में भी मुगल शासकों की कठोर दण्ड-व्यवस्था को उद्धृत किया गया है । अपराध न करने वालों को भी विभिन्न प्रकार की यातनायें दी जाती थीं, केवल मात्र धर्म परिवर्तन न करने पर ही जहांगीर गुरू अर्जुन-देव को असह्य दु:ख देता है[93] । दुष्टता के कार्य करने वालों को तत्कालीन समाज में दण्ड योग्य समझा जाता है तथा उन के साथ सम्बन्ध रखने से तपस्या में क्षीणता का उल्लेख मिलता है[94] । अर्थात् प्रशंसनीय कर्मों को न करने वालों को दण्ड देना तो कहा है परन्तु साथ में दूसरे लोगों के लिये संकेत किया है कि वे उस से सम्बन्ध विच्छेद करें, क्योंकि उस के संसर्ग से शुभ कर्मों की हानि होती है । अपराधियों को सज़ा देने के लिये जब गुरूनानक देव के पश्चात् होने वाले गुरूओं ने मुगलशासकों को कहा तो उन पर कोई प्रभाव न पड़ा, क्योंकि वे तो स्वयं ही प्रजा वर्ग पर अत्याचार करते थे, तो फिर गुरूओं ने स्वयं अन्याय के विरुद्ध आवाज़ उठाई[95] । जब मुसलमान सैनिकों को गुरूनानक मानते हैं तो कुछ भाग कर शासक बाबर को कहते हैं कि योगियों द्वारा रक्ष-बलों को मार दिया गया है । तब बाबर बन्दी लोगों की जेल में रक्षा करने के लिये कहता है[96] । इस प्रकार बाबर को भी उपदेश मिलता है कि सैनिकों द्वारा बन्दी बनाये गये सभी दोषी नहीं होते हैं, दण्ड उन्हीं को दिया जाता है जो उस के अधिकारी होते हैं । जेलों में लोगों को रख कर मुगलों द्वारा अनेक प्रकार की यातनायें उन्हें दी जाती थीं । नानक देव को भी म्लेच्छों द्वारा बान्ध कर ज़ेल में रखा गया[97] । इस प्रकार निर्दोष धर्म उपदेशकों के प्रति दण्ड-व्यवस्था को देख कर प्रतीत होता है कि वे शासक केवल मात्र स्वार्थ परायणता तथा धर्मकट्टरता के आधार पर दूसरे धर्मों के लोगों को अन्याय पूर्ण दण्ड देते थे । नगरों के सारे प्रशासन को देखने के लिये उस समय अधिकारी रूप में

---

93. ना·चं· 20·52

94. स मृत्युतो दुष्टजनेषु दण्डदाता·····।
विनिग्रहादस्य खलस्य····नाभिमतो यतो मे ।। - ना·चं·20·46

95. ना·चं· 20·100

96. वही, 18·28

97. वही, 17·147

"नगराध्यक्षों" का उल्लेख मिलता है, जो कि सम्पूर्ण व्यवस्था को देखते हैं[98]। इस प्रकार वही अपराध करने वालों को सज़ा भी देते होंगे। परन्तु अधिकतर वे लोग निर्दोष हिन्दुओं को दण्ड देते थे।

हिन्दु शासकों में प्रजा के प्रति पूर्ण दया की भावना दिखाई देती है, बोलाराय नानक तपस्वी को देखकर अपने आप को भाग्यशाली समझते हैं[99]। यहाँ प्रतीत होता है कि मुगलशासकों को छोड़ कर अन्य राजा लोग दया से पूर्ण होते थे तथा वे अपराध को देख कर समुचित दण्ड व्यवस्था ही उस अपराधी के लिये करते थे। चोरी आदि कुत्सित कर्मों को करने वालों के लिये क्या-क्या दण्ड दिये जाते थे इन का उल्लेख नहीं मिलता है, परन्तु नरक का वर्णन करते समय स्वयं गुरूनानक देव ने इन समस्त कुकर्मों का निरूपण कर घोर यातनाओं को दिखाया है। ताकि लोग भयभीत हो कर अनुचित कार्य स्वयं ही न करें। राजा और राजपुरुष के लिये भी मरणोपरान्त नरक में वास कहा है जिस से प्रतीत होता है कि जो निषिद्ध कर्मों को करता है उसे अपने किये हुये कर्मों के अनुसार ही फल भोगने देना चाहिये। दण्ड व्यवस्था कर्मों के अनुसार स्वत: निश्चित प्रतिपादित की है -

राजा वा राजपुरुषो दण्ड्ये दण्डं दधाति य: ।
स शूकरमुखे गाढ़निक्षुप्तत्परिपीड्यते[100] ।।

आधुनिक काल से भिन्न दण्डों का उल्लेख उपलब्ध होता है। आजकल की तरह न्यायालयों और न्यायाधीशों की नियुक्ति उस समय समाज में दिखाई नहीं देती है। राजा लोग ही स्वेच्छा से उचित अनुचित दण्ड व्यवस्था करते थे, विशेष कानून का उल्लेख उपलब्ध नहीं होता है। मुगलशासकों द्वारा दिये जाने वाले निर्दोष लोगों के दण्डों से लोग दु:खी थे, क्योंकि वे केवल मात्र धर्मपरिवर्तन करने आदि के रूप में हिन्दुओं को ही दिये जाते थे तथा तत्कालीन समाज पर राज्य भी अधिकतर इन्हीं लोगों का था।

---

98. ततस्तु नगराध्यक्षो विचार्यैकत्र संगतान् ।
कुरुदेवे....पदातिभि: ।। - ना.चं. 17.142

99. ना.चं. 2.118

100. वही, 14.285

सैन्य-व्यवस्था -

आंतरिक विद्रोह की शान्ति एवं बाह्य शक्तियों के आक्रमणों से राज्य की सुरक्षा के लिये सैन्य-व्यवस्था प्राचीन काल से चली आ रही है। अर्थशास्त्र में वास्तु विशेषज्ञों द्वारा निश्चित की गई भूमि पर सेनापति सहित समस्त सेना के निवास के लिये सैन्य-शिविर बनाने का उल्लेख मिलता है -

"वास्तुक प्रशस्ते वास्तुनि नायक वर्धकि मौहूर्तिका....नव संस्थान-मापयेयु:"[101]। स्वामी, अमात्य, जनपद, दुर्ग, कोष, सेना और मित्र सातों को राज्य की प्रकृति का कारण समझ कर दण्ड नाम से कहा है -

"स्वाम्यमात्य जनपददुर्ग कोशदण्डमित्राणि प्रकृतय:"[102]।

रघुवंश में छ: अंगों वाली सेना का उल्लेख मिलता है -

सगुप्तमूलप्रत्यन्त: शुद्धपार्ष्णिरयान्वित:।
षड्विधं बलमादाय प्रतस्थे दिग्विजगीषया[103] ।।

महाभारत में अक्षौहिणी सेना का वर्णन मिलता है, जो कि युद्ध में राजा की सहायता करती है -

अक्षौहिणीतु[illegible]सेना सा तदा यौधिष्ठरं बलम्[104] ।।

भूरिश्रवा और राजा शल्य पृथक्-पृथक् अक्षौहिणी सेना ले कर दुर्योधन के पास जाते हैं,[105] जिस से सैन्य-व्यवस्था में इस का अधिक अचलन प्रतीत होता है।

नानक चन्द्रोदय महाकाव्य में कर आदि ग्रहण करने के लिये राजा सेना के साथ जाते हुये वर्णित दिखाई देते हैं। राजा बोलाराय सेना के साथ जाते हुये मार्ग में सोये हुये नानक को देखते हैं[106]। इस प्रकार सैन्य-व्यवस्था का होना दृष्टिगोचर होता है। चतुरंगिणी सेना का उल्लेख भी उपलब्ध होता है[107]।

---

101. कौ.अर्थ.शा. 10.1.1
102. वही, 6.1.1
103. रघुवंश, 4.26
104. महा.भा. उद्योगपर्व, 19.6
105. वही, 19.17.18
106. ना.चं. 3.58; 2.116
107. सेनया चतुरङ्गिण्या परितस्त्वरितं गता: ।।
- ना.चं. 20.67, 75

जिस से तत्कालीन शासक वर्ग में चार अंगों वाली अर्थात् पदाति, गज, रथ और अश्वसेना की व्यवस्था दृष्टिगोचर होती है । सेना में प्रमुख सेना अधिकारियों को "सामन्त" कहा गया है[108] । जिन को मार कर शेष सेना को जीतना आसान हो जाता था, इसीलिये सर्वप्रथम उन्हीं को निशाना बनाया जाता है । सेना का प्रधान सेनापति होता है, जिस का उल्लेख जहाँगीर के सेनापति "मीरपद" को उद्धृत करते हुये दिखाया गया है[109] । इस प्रकार सेना के मुख्य अधिकारी सेनापति होते थे, जो कि सेना का संचालन और दिशा-निर्देश करते थे, ताकि युद्ध की नीतियों का उपयोग कर शत्रु को जीता जा सके । अत: राज्य की सुरक्षा के लिये सैन्यव्यवस्था तत्कालीन राजनैतिक जीवन में दिखाई देती है ।

सेना के अंग - सेना के चार अंग माने गए हैं - पदाति, अश्व, रथ और हस्तिसेना।

पदाति सेना -

पदाति सेना में सिपाही अपने अस्त्र-शस्त्रों द्वारा पैदल भूमि पर ही युद्ध करते हैं । कौटिल्य अर्थशास्त्र में कम्बोज और सौराष्ट्र संघ समूह के रहने वाले क्षत्रिय-वैश्यों को जो शस्त्र आदि के द्वारा अपनी आजीविका चलाते हैं, उन को पदाति सेना के अन्तर्गत माना गया है[110] । रामायण में भी शस्त्रोपजीवी का उल्लेख मिलता है -

मणिकाराश्च ये केचित्कुम्भकाराश्च शोभना: ।
सूत्रकर्मा विशेषज्ञा ये च शस्त्रोपजीविन:[111] ।।

कौटिल्य ने मौल, भृतक, श्रेणी, मित्र, अमित्र और अटवी के भेद से छ: भागों में सेना को विभक्त किया है[112] । नायक विहीन विभिन्न जातियों के मेल से स्वयं बनी सेना को "औत्साहिक" नाम से कहा है[113] जो कि सैन्यकार्य स्वयं

---

108. निहता: सप्त सामन्ता गुरुणा सप्तभि: शरै: । - ना·चं· 21·172
109. ना·चं· 20·73, एवं द्र· 21·195
110. कम्बोजसुराष्ट्रक्षत्रिय····वार्ताशस्त्रोपजीविन: । - कौ·अर्थ·शा·11·1·5
111. वा·रा· 2·83·12
112. मौलभृतकश्रेणीमित्रामित्राटवीबलानां····काला: ।। - कौ·अर्थ·शा·9·2·1
113. सैन्यमनेकमनेकजातीयस्थमुक्तमनुक्तं वा·····तदौत्साहिकम् ।। - कौ·अर्थ·9·2·19

करती है । रामायण में मौल, भृत्य, मित्र और अटवी इन चार नामों वाली सेना का उल्लेख मिलता है,[114] जो कि राष्ट्र तथा राज्य की रक्षा करती है।

नानक चन्द्रोदय महाकाव्य में पदाति सैनिकों के सम्पूर्ण अनुशासन सम्बन्धी क्रिया-कलापों को देखने के लिये और उपयुक्त दिशा निर्देश देने के लिये और युद्ध सम्बन्धी पूर्वाभ्यास आदि कराने के लिये सेनापति का उल्लेख दिखाई देता है[115]। सेनापति सहित यह पदाति सेना गुप्त रूप से शत्रु के साथ युद्ध करती है तथा विरोधियों को मार्ग में छिप कर बन्धनों में बान्ध लेती है[116]। इस सेना में विद्यमान सैनिक बहादुर और "मल्ल" (पहलवान) रूप में प्रतिपादित दृष्टिगोचर होते हैं[117]। ये सैनिक शस्त्र रहित होने पर भी कुछ समय के लिये शत्रु के साथ युद्ध कर सकते थे, इसलिये स्वास्थ्य की दृष्टि से बलशाली युवकों को ही इस में लिया जाता होगा । सेनापति को "नायक" भी कहा गया है, जिस के मर जाने के पश्चात् शेष सेना शीघ्र नष्ट हो जाती है[118]। इस प्रकार यहाँ प्रतीत होता है कि "नायक" के अभाव में अवशिष्ट सेना दिशा विहीन हो जाती थी और नष्ट हो जाती थी । पदाति युद्ध में मारे गये सैनिकों का चित्रण करते हुये, भुजाओं, पैरों से हीन और जल के लिये चिल्लाते हुये सिपाही दिखाई देते हैं -

छिन्नबाहुचरणाः क्षतोरसो भिन्नकुक्षिगलितांत्रावल्लयः ।
देहि मे जलमिति प्रजल्पतो वीक्षितो गलवलत्कृशासवः[119] ।।

पदाति सेना की अधिकता और युद्ध के समय भागदौड़ का ज्ञान इस से होता है कि एक बार गिर कर नीचे पड़े हुये सैनिक पिसते जाते हैं, जैसे हाथी वन में फूलों और वृक्षों को मसल देता है[120]। इस प्रकार युद्ध की भयंकरता का अवलोकन

---

114. मित्राटविबलं चैव मौल भृत्य बलं तथा ।
सर्वमेतद्बलं ग्राह्यं वर्जयित्वा द्विषद्बलम् ।। - वा॰रा॰युद्ध काण्ड 6॰17॰24

115. ना॰चं॰ 21॰21

116. वही, 21॰159

117. वही, 20॰69

118. तव चमूर्निहता हतनायका, मतु निशाम्य न किञ्चिदभाषत ।।-ना॰चं॰2॰86

119. ना॰चं॰ 18॰18

120. पादैः पादातसैन्यं नलिनवनमिवापिंष्टतां भीतिपाति ।।
-ना॰चं॰18॰।।

होता है । प्रस्तुत महाकाव्य में अन्य ग्रन्थों की तरह पदाति सेना के भेदों का उल्लेख नहीं मिलता है, परन्तु पैदल चल कर किये जाने वाले युद्ध के लक्षणों द्वारा यह प्रतीत होता है कि उस समय पदाति सेना होती थी, जो कि युद्ध की कलाओं में पर्याप्त निपुण होती थी ।

अश्व-सेना -

चार अंगों वाली सेना में अश्वसेना का भी महत्त्वपूर्ण स्थान है । प्राचीनकाल में अधिकमात्रा में वायु की गति के समान तीव्रगामी अश्वों पर आरूढ़ हो कर योद्धा लोग युद्ध किया करते थे । आधुनिक सेनाओं में अश्व सेना विभिन्न प्रकार की रण-कलाओं में दक्ष दिखाई देती है । अश्व की उपयोगिता युद्ध में अत्यधिक इसलिये अपेक्षित होती हैं कि यह पशु द्रुतगामी, समझदार और प्रतिभा सम्पन्न होता है । महाराणा प्रताप के "चेतक" नामक घोड़े की दक्षता द्वारा युद्धों में इन की उपादेयता स्वत: सिद्ध होती है । आदिपुराण में कम्बोज, सैन्धव, आरट्टज, वनायुज, बाह्यीक, तैतिल, गांधार और वाप्य आदि अश्वों को युद्ध में लाभदायक उल्लिखित किया गया है[121] । कौटिल्य अर्थशास्त्र में अश्वाध्यक्ष के लिये उल्लेख मिलता है कि वह राजकीय निबन्ध पुस्तिका पर बाजार में विक्रय हेतु प्रस्तुत घोड़ों, क्रीत, शत्रु से छीने गये, अश्वशाला में उत्पन्न और सहायता आदि के बदले में प्राप्त अश्वों के साथ ही उन की जाति, आयु, वर्ण, उत्पत्ति के अनुसार वर्ग एवं प्राप्ति स्थान लिखे । इस प्रकार अश्वपति के लिये अश्वों की नस्ल आदि का ज्ञान होना अनिवार्य दिखाई देता है, ताकि गुणों के अनुरूप घोड़ों को ही युद्ध में प्रयुक्त किया जा सके :-

"अश्वाध्यक्ष: पण्यागारिकं क्रयोपागतमाहवलब्धमाजातं साहाय्यागतं पणस्थं यावत्कालिकं वाश्वपर्यग्रंकुलवयोवर्णचिह्नकर्मवर्गगमेलेखयेत्[122] ।

महाभारत में युद्धस्थल में अश्वों को तीव्रगति वाला करने के लिये उन्हें "सुरापान"

---

121. आ.पुरा. 30.107

122. कौ.अर्थ.शा. 2.30.1

कराने का उल्लेख मिलता है[123] ।

नानकचन्द्रोदय महाकाव्य में भी अश्वों की श्रेष्ठ जातियों का उल्लेख मिलता है, जिस से प्रतीत होता है कि घोड़ों द्वारा युद्ध किया जाता था । आरट्ट, वनायुज, बाह्यीक, सैन्धव, सामुद्र और ताजिक अश्वों का उल्लेख मिलता है, जो कि घुड़सवारों से युक्त हो कर विभिन्न कलाओं का प्रदर्शन करते हैं[124] । अश्वसेना में "सादिवर" भी निपुण होते हैं, जो कि रणभूमि में युद्ध करते हुये रक्त की नदियां वहा देते हैं[125] । इस प्रकार कुशल अश्वारोहियों का प्रतिपादन मिलता है । युद्ध में कुशल हज़ारों "अश्ववार" युद्ध करते हुये उद्धृत किये गये हैं -

अश्ववार सहस्राभ्यां निर्जगाम समन्वित: ।
हरिरायो न मांसाशी पुपोष हरिणान् धृतान्[126] ।।

योद्धा {भट} लम्बे ताम्र भुजों वाले, विशाल उदर वाले, युद्ध भूमि में प्रदर्शित पौरुष वाले उन्नततुरगों पर आरूढ़ हो कर पृथ्वी पर भ्रमण करते हैं[127] । इस से प्रतीत होता है कि युद्ध में अश्व सेना विशेष महत्त्वपूर्ण होती थी तथा उस में श्रेष्ठ अश्वों का प्रयोग किया जाता था । अश्व के लिये "घोटक" शब्द का प्रयोग किया गया है, जो कि युद्ध में उग्र रूप धारण कर शत्रुओं का संहार करते हैं[128] ।

इस प्रकार प्रस्तुत महाकाव्य में चतुरंगिणी सेना की अंगभूत अश्वसेना के बारे अधिक निरूपण उपलब्ध नहीं होता है, परन्तु अश्वों के उल्लेख और युद्धस्थल में अश्वों पर आरूढ़ हो कर युद्ध करने के चित्रण से ज्ञात होता है कि उस समय अश्व-सेना का प्रयोग होता था ।

---

123. रसवत्पाययामासु: पानं मदसमीरणम् ।
पीतोपवृत्तान्स्नातांश्च जग्धान्नाङ्गसमलंकृतान् ।। - महा॰भा॰द्रोण पर्व, 112·55
124. ना॰चं॰ 5·79
125. वही, 18·21, 22
126. वही, 20·137 एवं द्र॰ 82
127. वही, 18·5
128. धावद्भिर्घोटकै: स्वैर्नरपतिसुरगान्निन्दयन्मर्दयन्तो: ।
- ना॰चं॰ 18·13

रथ-सेना -

पुरातन काल से ही सेना के अंगों में रथ-सेना का महत्त्व रहा है। ऋग्वेद में रथ के सारथी को सम्बोधित करते हुये कुछ मन्त्र कहे गये हैं -

युजानो हरिता रथे भूरि त्वष्टेह राजति।
को विश्वाहा द्विषत: पक्ष आसत उतासीनेषु सूरिषु[129] ।।

रथ को दो अश्वों द्वारा खींचा जाता था तथा वह दो पहियों से युक्त होता था-

यद्वा युक्ताभ्यां मघवन्हरिभ्यां बिभृद्वज्रं बाह्वोरिन्द्रयासि[130] ।

तीन पहियों वाले रथ का उल्लेख भी ऋग्वेद में ही मिलता है। अश्विन् के रथ के तीन पहियों का वर्णन दिखाई देता है[131]। श्रीमद्भागवत पुराण में रथ को खींचने के लिये पाँच अश्वों का उल्लेख भी उपलब्ध होता है -

स एकदा महेष्वासो रथं पंचाश्वमाशुगम्।
द्विषं द्विचक्रमेकाक्षं त्रिवेणुं पंचबन्धुरम्[132] ।।

इस प्रकार पाँच अश्वों और दो पहियों का उल्लेख किया गया है। महाभारत में कवच, तलवार, बाण, शरासन और सूर्य के वर्ण की ध्वजा से युक्त रथ का प्रयोग दिखाई देता है, जिस रथ से ध्वज वाली सेना को ध्वजिनी कहा गया है-

तत: स कवची खड्गी शरी धन्वी तली रथी।
ध्वजेनादित्यवर्णेन प्रविवेश महाचमूम्[133] ।।

कौटिल्य अर्थशास्त्र में अश्वाध्यक्ष और रथाध्यक्ष के कर्तव्यों की समानता का प्रतिपादन करते हुये, रथाध्यक्ष के अतिरिक्त कर्तव्यों में रथ निर्माण, उन की मुरम्मत, अस्त्र-शस्त्र की देखभाल, रथों के आवरण, लगाम आदि उपकरण, रथिक-सारथी की कार्य में नियुक्ति और कार्य करने वाले शिल्पियों के वेतन भत्ते का

---

129. ऋ. 6.47.19
130. वही, 6.23.1 एवं द्र. 5.30.1
131. अर्वाङ् त्रिचक्रो मधुवाहनो रथो जीराश्वो आश्विनोर्यातु सुष्टुत:।
त्रिबन्धुरो.....द्विपदे चतुष्पदे ।। - ऋ. 1.157.3 एवं द्र. 1.118.2; 10.41.1
132. भाग.पुरा. 4.26.1
133. महा.भा.उद्योग पर्व. 155.18

प्रबन्ध इत्यादि का उल्लेख किया गया है[134]। रामायण में भी युद्ध के समय रथ के प्रयोग को उद्धृत किया गया है -

ववर्ष रुधिरं देवो रावणस्य रथोपरि ।
वाता मण्डलिनस्तीव्रा ह्यपसव्यं प्रचक्रमु:[135] ।।

इस प्रकार युद्धों में रथों की आवश्यकता के बारे में ज्ञान होता है, जिन से कुशल सारथियों और रथों द्वारा युद्धों में विजय प्राप्त की जाती थी ।

नानक चन्द्रोदय महाकाव्य में रथाध्यक्ष एवं उस के पद तथा योग्यताओं का उल्लेख उपलब्ध नहीं होता है, परन्तु एक स्थान पर चतुरंगिणी सेना के बारे में प्रतिपादन करते हुये पदाति, अश्व, रथ और गज सेना की युद्ध कुशलता से रथ-सेना की उपयोगिता स्वत: दिखाई देती है -

पादातैश्चवारैरथिभिरथाजैच्छद्यमाना क्षणेन ।
क्षोणी धूलीच्छलादित्थं शरणमभिययौ सृष्टिकर्तारमद्धा[136] ।।

द्रोण और अर्जुन की तरह धनुषधारी और शस्त्र-अस्त्र चलाने में कुशल वीर योद्धाओं का वर्णन उपलब्ध होता है[137]। जिस से रथों पर बैठ कर युद्ध करने वालों की कुशलता महाभारत के युद्ध के समान प्रतीत होती है, क्योंकि अर्जुन, द्रोण रथ द्वारा ही युद्ध करते थे। रथों को अश्वों द्वारा ही खींचा जाता था। यद्यपि अश्वों की निश्चित संख्या का उल्लेख नहीं मिलता है परन्तु बहुवचन के प्रयोग से एक से अधिक अश्वों की नियुक्ति प्रतीत होती है। युद्ध भूमि में जब भयंकर युद्ध होने पर वीर मरते हैं तो रथों की नेमियां उन मरे हुये सैनिकों और अश्वों आदि में फंस जाती हैं, तो रथ का कर्षण करने वाले अश्वों की रथ को अन्यत्र ले जाने में असमर्थता दिखाई देती है[138]।

---

134. अश्वाध्यक्षेण रथाध्यक्षो व्याख्यात: । स रथकर्मान्तान् कारयेत् ।....।।
- कौ.अर्थ.शा. 2.33.1 त: 7 पर्यन्त

135. वा.रा.युद्ध काण्ड 106.10,20

136. ना.चं. 18.8

137. द्रोणार्जुनाविव धनुर्धरता धुरीणौ शस्त्रास्त्र वर्षतुमुलं....।
छित्वा शरानथ गुरु: करवालमातात्....द्विधा तम् ।। - ना.चं.20.81

138. आवृते प्रतिपदं रणाङ्गणे...परासुभि: ।
.....निन्यिरे न तुरगै: रथा: क्वचित् ।। - ना.चं. 18.15

पताकाओं का उल्लेख भी मिलता है परन्तु ये ध्वजायें रथों पर सुसज्जित होती थीं अथवा सैनिकों के हाथों में होती थीं, इसका उल्लेख नहीं मिलता है । वीरगति को प्राप्त वीर सैनिकों के हृदयों पर "दयिता" की तरह कम्पायमान गिरी हुई पताकाओं का उल्लेख मिलता है[139] । जिस से यह स्पष्ट होता है कि विशेषत: ये पताकायें रथों पर होती थीं तथा जब लड़ाई में रथ नष्ट हो जाते थे तो ये ध्वजायें भी नीचे गिर कर बहादुर रथियों की शोभा बढ़ाती थीं ।

हस्ति-सेना -

सैन्य-व्यवस्था में हस्ति-सेना का भी प्रमुख स्थान रहा है । युद्ध-प्रयाण काल पर हाथियों को प्राचीन काल में ध्वज चामर आदि द्वारा सजाया जाता था । कौटिल्य अर्थशास्त्र में विभिन्न स्थानों पर उत्पन्न गजों को उत्तम, मध्यम और निम्नकोटि के अन्तर्गत स्वीकार किया गया है -

कालिङ्गाङ्गगजा: श्रेष्ठा: प्राच्याश्चेति कस्राजा: ।
दशार्णश्चापरान्ताश्च द्विपानां मध्यमा: मता: ।।
सौराष्ट्रिका: पंचनदा: तेषां प्रत्यवरा: स्मृता: ।
सर्वेषां कर्मणा वीर्यं जवस्तेजश्च वर्धते[140] ।।

इस प्रकार हाथियों को भली प्रकार अभ्यास देने से बल, वेग और तेज में वृद्धि होती है । गजों को प्रशिक्षित करने के लिये हाथियों के अध्यक्ष को "हस्त्यध्यक्ष" कहा गया है । हस्ति-वन की सुरक्षा, सुशिक्षित हाथियों, हथिनी एवं गज शिशुओं के लिये हस्तिशाला, शयनस्थान, बन्धन स्थान, साज़सामग्री, भोज्य सामग्री और हस्तिचोर से रक्षा आदि की व्यवस्था स्वयं हस्त्यध्यक्ष को करने का उल्लेख किया है[141] । दशरथ शर्मा ने उल्लेख किया है कि राजा महाराजा तथा योद्धा

---

139. पताकिन: संपरिष्वज्य शिशिरे
मृता: पताकादयिता इवोरसा ।। - ना.चं. 18.20

140. कौ. अर्थ.शा. 2.2.1-2

141. हस्त्यध्यक्षो हस्तिवनरक्षां दभ्यकर्मक्षान्तानां हस्तिहस्तिनीकलभानां शाला स्थान शय्या कर्म.... चिकित्सकानीकस्थोपस्थायुकवर्ग चातुतिष्ठेत् ।।
-कौ. अर्थ. 2.31.1, पृ.247

लोग हाथी की पीठ पर सवार हो कर युद्ध करते थे और मौर्यकाल तथा मुगलकाल में हाथियों का उपयोग किले के फाटक को तोड़ने के लिये किया जाता था[142]। इस प्रकार हाथियों की युद्ध में उपयोगिता दृष्टिगोचर होती है।

नानक चन्द्रोदय महाकाव्य में मुगलों के युद्ध का वर्णन मिलता है तथा दो-दो हज़ार की संख्या में हाथियों का रणभूमि में जाना दिखाई देता है[143]। अन्य स्थलों पर भी युद्धों में हाथियों का प्रयोग दृष्टिगोचर होता है। जिन को करिण[144], वारणकुम्भ[145], नागा[146], गज[147] इत्यादि विभिन्न नामों से उल्लिखित किया गया है। हाथियों से सुशोभित सेना, उन की गर्जन, वेग और मदमस्ती से सभी ओर हाहाकार उत्पन्न करती है -

दन्तैर्दन्तावलानां प्रतिगजहननाहुङ्कृति प्रौद्धुराणां
पौदैः पादातसैन्यं नलिनवनमिवापिष्टिां भीतिपाति ।।
हस्त्यारोहानुदस्य स्वयमलजवं धावतामुन्मदानां
संग्रामे वेतनानां ठनठनिनदैः कर्णरन्ध्रान्यरुन्ध[148] ।।

प्रस्तुत महाकाव्य में इस प्रकार हस्त्यारोहण का उल्लेख मिलता है, परन्तु पूर्ववर्णित हस्त्यध्यक्ष और उस के कार्यों का उल्लेख नहीं उपलब्ध होता है। हाथियों के विशाल-काय स्वरूप का वर्णन करते हुये उद्धृत किया है कि वाहिनी(सेना) में पर्वतों के आकार के समान अटल हाथियों को रखा जाता था, जो कि युद्ध भूमि में शत्रुओं की बाण वर्षा के द्वारा पृथ्वी पर गिरते थे[149]। इस प्रकार तत्कालीन युद्ध की भयंकरता भी दिखाई देती है, जिस में अत्यन्त बलशाली हाथी भी तीरों के आघात से मृत्यु ग्रहण करते थे। अतः तत्कालीन युद्धों में हस्तिसेना का प्रयोग प्रचुरमात्रा में होता था, इसका आभास हो जाता है।

---

142. अर्ली चौहान डायनेस्टीज़, दशरथशर्मा, पृ.214
143. आग्नेययन्त्रै पृतना संहाणी स्थितः सहस्रद्वयवाजिवारैः ।-ना.चं.21.14
144. ना.चं. 21.59
145. वही, 20.141 एवं द्र. 18.16
146. वही, 18.25
147. वही, 18.8
148. वही, 18.11
149. चतुर्भिर्दिवसैस्तेन वाहिनी सापि सातिता
पतिता भूधराकारा करिणो बाणवृष्टिभिः ।। - ना.चं. 20.76

अस्त्र-शस्त्र -

युद्धों में शत्रुओं से लड़ाई करते समय विभिन्न प्रकार के आयुधों का प्रयोग प्राचीन काल से ही होता रहा है । प्राचीनकाल में जब पैदल युद्ध किये जाते थे तो उसी प्रकार के शस्त्र बाण, खड्ग आदि होते थे । युद्ध के समय शत्रु पर आक्रमण करने के लिये अथवा आत्म सुरक्षा के लिये प्रयुक्त हथियार कलानुसार अस्त्र-शस्त्र कहलाते हैं । नानक चन्द्रोदय महाकाव्य में भी अस्त्र-शस्त्रों का उल्लेख उपलब्ध होता है, जिन से तत्कालीन सेना के आयुधों का पता चलता है ।

खड्ग[150] - यह तलवार का ही दूसरा नाम है, जिस के साथ शत्रुओं को सुगमता से काटा जा सकता है । भागवत पुराण में खड्ग को "असि" कहा गया है; जिस के साथ युद्ध में परस्पर प्रहार किये जाते हैं ।

तत्रोन्योन्य.... रणे । समासाद्यासिभिर्बाणैर्निजघ्नुर्विविधायुधैः[151] ।।

इस प्रकार प्रस्तुत महाकाव्य के उल्लेख से भी युद्ध में इस की नितान्त आवश्यकता ही दृष्टिगोचर होती है ।

चक्र[152] - यह तीव्र प्रकार के लोहे से निर्मित गोलाकार चक्र की भान्ति होता है, जिस को घुमाने से शत्रुओं का संहार किया जाता है । भगवान् विष्णु और भगवती दुर्गा भी हाथ में चक्र धारण कर शत्रुओं का संहार करते हुए वर्णित हैं । माली एवं सुमाली नामक दोनों दैत्यों के सिरों को भगवान् चक्र द्वारा छिन्न करते हैं[153] । इस प्रकार भागवत पुराण की तरह ही चक्र का उल्लेख प्रस्तुत महाकाव्य में मिलता है ।

शर - भागवत पुराण में बाण को निशित कहा गया है । इन्द्र भल्ल नामक

---

150. खड्गेन त्वं छिन्धि तूर्णं शिरो मे । - ना.चं. 21.125 एवं द्र.21.186, 20.82, 18.19, 22

151. भाग.पुरा. 8.10.6 एवं द्र. 8.10.10, 10.44.36

152. ना.चं. 20.151 एवं द्र. 21.146, 20.138

153. माली सुमाल्यतिबलौ युधि पेततुर्यच्चक्रेण कृत्तशिरा.....।।
भाग.पुरा. 8.10.57 एवं द्र.10.59.4,25

तीक्ष्ण बाण का प्रयोग करता है , जिस से शत्रुओं का संहार किया जाता है-

"चिच्छेद निशितैर्भल्लैरसम्प्राप्तान् हसन्निव"[154]

बाण के लिये ही "शर" का उल्लेख भी अनेक स्थलों पर मिलता है -

"शरैरवाकिरन् मेघा धारा भिरिव पर्वताम्"[155] ।

नानक चन्द्रोदय महाकाव्य में गोविन्द सिंह द्वारा छोड़ा गया बाण दो कोस तक दिखाई देने वाले शत्रुओं के सिरों को काट देता है[156] । इस उल्लेख से तत्कालीन युद्धों में "शर" के प्रयोग का पता चलता है । बाणों की भेदनशक्ति का भी अवलोकन होता है । धनुष से छोड़े गये बाण कठोरतम धातुओं से निर्मित सात-सात पटों को एक साथ ही बेंध देते है -

सधृष्ट धातुरचितान् दृढ़सप्तपट्टनेकेन विध्यति शरेण धनुर्धरोद्धः[157] ।।

इस प्रकार शरों के प्रयोग से रणभूमि में धनुषधारियों की कुशलता एवं विद्यमानता का आभास हो जाता है ।

करवाल[158] - इसे आज कल करौली (कृपाण) कहा जाता है । यह तलवार से छोटी होती है, जिस का प्रयोग लड़ाई में किया जाता है । आजकल भी गुरू द्वारा प्रदत्त पाँच चिह्नों में प्रमुख कृपाण को सिक्ख सम्प्रदाय के लोग धारण करते हैं । यशस्तिलक में करवाल को "कौक्षेयक" नाम से उल्लिखित किया गया है[159] ।

आग्नेय-यन्त्र - युद्ध स्थल में आग्नेय यन्त्रों के प्रयोग का उल्लेख भी उपलब्ध होता है[160] । इस से प्रतीत होता है कि आजकल के युग में प्रयुक्त होने वाले अणु बमों की तरह ही यह आग्नेय-अस्त्र होते होंगे, जिन को युद्धभूमि में प्रमुख

---

154. भाग॰पुरा॰ 8॰10॰42

155. वही, 8॰11॰20 एवं द्र॰ 8॰11॰21, 8॰10॰41

156. गोविन्द सिंहस्य शरो बिभेद, क्रोशद्वये लक्ष्यमलक्ष्यमाणम् ।।
-ना॰चं॰21॰171 एवं 21॰172, 20॰64

157. ना॰चं॰ 20॰72 एवं द्र॰ 21॰192, 215, 20॰76, 18॰9

158. छित्वा शरानथ गुरू करवालमातात्
पारीन्द्रखानयवनं विदधे द्विधातम् ।। - ना॰चं॰ 20॰81

159. यशस्तिलक; पृ॰44, 557 विपक्षपक्षक्षयदक्षदीक्षः कौक्षेयको मानक उपतस्थे ..... ।।

160. आग्नेय यन्त्रे पृतना महाणी, स्थितः सहस्रद्वयवाजिवारैः ।
नीत्वा.....जित्वा ससेनां स्वयमप्यासीत् ।। - ना॰चं॰ 21॰14

प्रयुक्त किया जाता था । विवाह के शुभ अवसर पर भी आजकल की तरह विस्फोटक पटाखों के रूप में "आग्नेय गोलों" का प्रयोग होता था[161] । जिस से तत्कालीन समय में आग्नेय अस्त्र-शस्त्रों के निर्माण का पता चलता है । तथा इनका युद्ध में प्रयोग किया जाता होगा ।

युद्धों में शारीरिक सुरक्षा हेतु "कवच" पहनने से चलाये गये शस्त्रों का प्रभाव कम हो जाता है । इसीलिये भागवत पुराण में भी युद्ध में वर्म (कवच) पहनने का उल्लेख मिलता है -

वातोद्धतोत्तरोष्णीषैरर्चिर्भिर्वर्म भूषणैः[162] ।

प्रस्तुत महाकाव्य में भी आत्म सुरक्षा के लिये युद्ध में कवचों के धारण करने का उल्लेख मिलता है, जो कवच तीक्ष्ण खड्ग के प्रहार से टूट जाते हैं । ये वर्म लोहे से निर्मित होते थे[163] । इस प्रकार मुसलमान शासकों के साथ गुरू तेग बहादुर, अर्जुन सिंह और गुरूगोविन्दसिंह आदि के युद्ध का उल्लेख किया गया है तथा उस में प्रयुक्त उपरिलिखित शस्त्रों का प्रतिपादन उपलब्ध होता है, जिस से तत्कालीन अस्त्र-शस्त्रों का ज्ञान होता है ।

दुर्ग -

राज्य की सुरक्षा के लिये दुर्गों का होना अनिवार्य होता है । राज्य के सप्तांगों में इस को प्रधानतया स्वीकार किया गया है । राष्ट्र से भी महत्त्वपूर्ण दुर्ग को स्वीकार करते हुये मनु ने इस की महत्ता राष्ट्र से पहले पुर (दुर्ग) का उल्लेख करके की है[164] । कौटिल्य ने भी राज्य के सात प्रमुख अंगों में दुर्ग को स्वीकार किया है[165] । राजा द्वारा आपात्कालीन स्थिति में भाग

---

161. आग्नेयगोलानलमुत्सृजन्तः, सुवर्ण पुष्पाणि.... किरन्तः ।। -ना.चं.5.86

162. भाग.पुरा. 8.10.14

163. चीनखड्गविनिपातपातिते, लोहवर्मणि धरां प्रसर्पति ।।
- ना.चं. 18.19 एवं द्र. 18.17

164. स्वाम्यमात्यो पुरं राष्ट्रं कोशदण्डौ सुहृत्तथा ।
सप्त प्रकृतयो ह्येताः सप्तांग राज्यमुच्यते ।। - मनु.स्मृ.9.294

165. स्वाम्यमात्यजनपददुर्गकोशदण्डमित्राणि प्रकृतयः ।
- कौ.अर्थ.शा. 6.1.1

कर आत्मरक्षा के लिये प्रयोग में लाये जाने वाले धान्वन दुर्ग तथा वन दुर्ग के साथ औदक दुर्ग, पार्वत दुर्ग भी कहे गये हैं[166]। याज्ञवल्क्य ने भी जन, कोश और आत्म सुरक्षा के लिये दुर्ग निर्माण करने का उल्लेख किया है[167]। ऋग्वेद में नबे, नव नवति (९९) और शतम् (सौ) दुर्गों का उल्लेख मिलता है -

भिनत्पुरो नवतिमिन्द्र पूरवे दिवोदासाय महि·····।
स रन्धयत्सदिव·····कुयवं कुत्साय ।
दिवोदासाय नवतिं च नवेन्द्रः पुरो व्यैरच्छम्बरस्य ।।
अध्वर्यवो यः शतं शम्बरस्य पुरो बिभेदाश्मनेव पूर्वीः ।
यो वर्चिनः शतमिन्द्रः सहस्रमपावपद्भरता सोममस्मै[168] ।।

महाभारत में छः दुर्ग स्वीकार कर नर दुर्ग पर विजय प्राप्त करना अत्यन्त दुःसाध्य कहा गया है -

दुर्गेषु महाराज षट्सु ये शास्त्र निश्चिताः ।
सर्वदुर्गेषु मन्यन्ते नर दुर्गं सुदुस्तरम्[169] ।।

मत्स्य पुराण में भी छः दुर्गों का उल्लेख मिलता है, तथा वहाँ गिरिदुर्ग की महत्ता को सर्वश्रेष्ठ स्वीकार किया गया है -

तत्र दुर्गं नृपः कुर्यात् षण्णामेकतमं बुधः ।
धनुर्दुर्गं महीदुर्गं नरदुर्गं तथैव च ।।
वार्क्षश्चैवाम्बुदुर्गश्च गिरिदुर्गश्च पार्थिव ।
सर्वेषामेव दुर्गाणां गिरिदुर्गं प्रशस्यते[170] ।।

वायु पुराण में चार प्रकार के दुर्गों का वर्णन मिलता है[171]। अग्निपुराण में

---

166. अन्तर्द्वीपं स्थलं वा निम्नावरुद्धमौदकं प्रास्तरं गुहां वा पार्वतं····।।
- कौ·अर्थ·2·3·2-3

167. रम्यं पशव्यमाजीव्यं जांगलं देशमावसेत् ।
तत्र दुर्गाणि कुर्वीत जन कोशात्मगुप्तये ।। - याज्ञ·स्मृ· ।·321

168. ऋ· ।·130·7, 2·19·6, 2·14·6

169. महा·भा·शान्ति पर्व, 56·35 एवं द्र· 86·4-5

170. मत्स्य पुरा· 217·6-7

171. चतुर्णामिव दुर्गाणां स्वसमुत्थानि त्रीणि तु ।
चतुर्थं कृत्रिमं दुर्गं तस्य वक्ष्याम्यहं विधिम् ।। - वायु·पुरा·8·103

छः प्रकार के दुर्गों का उल्लेख उपलब्ध होता है[172]। मनु ने उल्लेख किया है कि युद्ध में दुर्ग के बीच स्थित होकर एक सैनिक सौ शत्रुओं का, और सौ सैनिक दस हज़ार शत्रुओं का वध कर सकते हैं तथा दुर्गों की संख्या छः ही स्वीकार की है[173]। भागवत पुराण में भी दुर्गों का उल्लेख मिलता है, जहां स्थित हो कर सैनिक शत्रुओं से युद्ध किया करते थे। इन दुर्गों से आवृत नगर अत्यन्त दुर्गम होते थे -

गिरिदुर्गैः शस्त्रदुर्गैर्जलाग्न्यनिलदुर्गमम् ।
मुरपाशायुतैर्घोरैर्दृढैः सर्वत आवृतम्[174] ।।

इस प्रकार सभी ग्रन्थों के अध्ययन से ज्ञात होता है कि शत्रुओं के साथ युद्ध करने के लिये सभी शासक-वर्ग आत्मसुरक्षा एवं राज्य-सुरक्षा के लिये दुर्गों का निर्माण करते थे।

नानकचन्द्रोदय महाकाव्य में भी दुर्गों का उल्लेख मिलता है। लाहौर दुर्ग में हरिगोविन्द सिंह के अश्व को म्लेच्छाधिपति गुप्त रखता है, जहां से विधिचन्द्र उसे कपट से निकाल कर लाता है[175]। इस प्रकार दुर्गों से किसी वस्तु को लाने के लिये अत्यधिक परिश्रम एवं जीवन को जोखिम में डालना पड़ता था। मुसलमानों के आक्रमण के समय भारतवर्ष में कई दुर्ग विद्यमान थे, जिन में ग्वालियर, चित्तौड़ दुर्ग, कालिंजर, कांगड़ा, नगरकोट और मंदौर आदि प्रमुख थे। आज भी इन स्थानों पर बड़े-बड़े खण्डहर दिखाई देते हैं। प्रस्तुत महाकाव्य में भी रात-दिन सैनिकों द्वारा सुरक्षित ग्वालियर दुर्ग का उल्लेख मिलता है[176]। दुर्गों के प्रवेश द्वार लोहे से निर्मित दिखाई देते हैं[177]।

---

172. त्रयाणामेकतमं दुर्गं तच्च कृत्वा वसेद् बली । धनुर्दुर्गं महीदुर्गं नरदुर्गं तथैव च ।।
वार्क्षचैवाम्बुदुर्गश्च गिरिदुर्गश्च भार्गव । सर्वोत्तमं शैलदुर्गमेभ्यं चान्यं भवेत् ।।
-अग्नि पुरा॰ 222॰4-5

173. एकः शतं योधयति प्राकारस्थो धनुर्धरः ।
शतं दश सहस्राणि तस्माद् दुर्गं विधीयते ।। - मनु॰स्मृ॰ 7॰74 एवं द्र॰ 7॰70

174. भाग॰पुरा॰ 10॰59॰3

175. ना॰चं॰ 20॰92, 93 एवं द्र॰ 20॰90, 97

176. निश्चित्य मन्त्रिभिर्नीतो दुर्गं ग्वालियराभिधम् ।
ररक्षू रक्षिणो दक्षास्तत्र रात्रिदिवं च तम् ।। - ना॰चं॰ 20॰63

177. दुर्गद्वारं लोहमयं.....नृपोऽभृणोत् ।। - ना॰चं॰ 20॰65

पर्वतों पर स्थित हो युद्ध करने से प्रतीत होता है कि पर्वतों की कन्दराओं का उपयोग दुर्गों के रूप में किया जाता था, जो कि पर्वत दुर्ग माने जाते हैं। गुरू गोबिन्द सिंह पर्वतों में स्थित हो मुगल सेनाओं के साथ युद्ध करते हैं और शत्रुओं का विनाश करते हैं[178]। "चमकोर दुर्ग" में गुरूगोविन्द सिंह घेर लिये जाते हैं परन्तु वहाँ से बच कर भागने में वह सफल होते हैं[179]। तलवंडी नगर का वर्णन करते हुये भी उसे अनेक दुर्गों से युक्त उल्लिखित किया गया है -

दुर्गैर्युतो बहुविधैर्नितरां निरीतिः[180] ।।

इस प्रकार मुसलमान शासकों के साथ युद्ध करने के लिये गुप्त किलों का निर्माण दुर्गों के रूप में किया जाता था, जिन में स्थित हो शत्रु की शक्तिशाली और अधिक-मात्रा में विद्यमान सेना से मुकाबला किया जाता था। दुर्गों की संख्या तथा निर्माण करने के ढंग का उल्लेख नहीं मिलता है। परन्तु इतिहासकारों और अन्य धर्म-ग्रन्थों में प्रतिपादित दुर्गों के स्वरूप एवं उपयोग की तरह ही आत्म-रक्षा और राज्यसुरक्षा के लिये ही इन का सदुपयोग किया जाता था।

सन्धि -

प्राचीन काल में राजाओं में परस्पर युद्ध हुआ करते थे और समझौते भी होते थे, जो कि विशेष शर्तों पर आधारित होते थे। जैसे एक दूसरे के जीते हुये क्षेत्र को वापिस लौटाना तथा धनादि दे कर सन्धि करना। निर्बल बलशाली के साथ स्वयं भी उसे अजेय मान कर सन्धि कर लेता था। इस प्रकार पुरातन समय से ही युद्ध होते रहे हैं तथा सन्धियाँ होती रही हैं तथा टूटती रही हैं।

आधुनिक युग में भी देशों में परस्पर युद्ध होते दिखाई देते हैं और

---

178. सेना पर्वतमारूढ़ा गूढ़ाः सिंहाः स्थितास्तु ये।
देवा इव त्रयस्त्रिंशत् ते निहत्य बहून् मृताः ।। - ना.चं.21.178

179. चमकोरदुर्गमस्कन्द योद्धुं क्रुधा महाम्लेच्छाः।
द्वौ सिंहौ.....गुरूर्निरगात् ।। - ना.चं. 21.183 एवं द्र.21.181

180. ना.चं. 2.5

फिर समझौते भी दृष्टिगोचर होते हैं । जैसे भारत और पाकिस्तान के मध्य ताशकन्द और शिमला समझौते उल्लेखनीय हैं ।

कौटिल्य अर्थशास्त्र में दो राजाओं की परस्पर मित्रता हो जाने को सन्धि कहा गया है -

"तत्र पणबन्धः सन्धिः "[181]

इस प्रकार जब दो शासकों के बीच पृथ्वी, कोश और सेना आदि के लेन देन में निश्चय हो जाये तो वह सन्धि कहलाती है । अर्थशास्त्र में प्रतिपादित किया गया है कि अपने आप को जब शत्रु से निर्बल समझे तो सन्धि कर लेनी चाहिये[182] । शक्तिशाली राजा के लिये उल्लेख किया है कि जब शक्तिहीन राजा झुकता हुआ उपस्थित होता है तो उस से सन्धि कर लेनी चाहिये क्योंकि ऐसा न करने पर दावानल के समान दुःख और क्रोध के द्वारा वह शक्तिहीन राजा भी विजयी पर अपना बल प्रकट करने में सफल हो सकता है[183] । मनु ने निर्बल राजा को कहा है कि जब तक विजय के आसार दृष्टिगोचर न हो जायें तब तक सन्धि कर लेनी चाहिये -

यदावगच्छेदायत्यामाधिक्यं ध्रुवमात्मनः ।
तदात्वे चाल्पिकां पीडां संधिं समाश्रयेत्[184] ।।

अग्नि पुराण में सोलह प्रकार की सन्धि का उल्लेख उपलब्ध होता है[185] । इस प्रकार विभिन्न प्रकार की सन्धियों का वर्णन ग्रन्थों में मिलता है ।

नानक चन्द्रोदय महाकाव्य में सन्धि के प्रकार और समय के बारे में

---

181. कौ॰अर्थ॰शा॰ 7॰1॰5

182. परस्माद्धीयमानः सन्दधीत् । - कौ॰अर्थ॰शा॰ 7॰1॰6

183. हीनश्चेत्सर्वत्रानुप्रणतस्तिष्ठेत्, सन्धिमुपेयात् ।
.....तेजो विक्रमयति ।। - वही, 7॰3॰10-11

184. मनु॰स्मृ॰ 7॰169

185. बलवद्विगृहीतेन सन्धिं कुर्यात्समेन च । कपाल उपहारश्च सन्तानः सन्ततस्तथा ।
उपन्यासः प्रतिकारः संयोगः पुरुषान्तरः ।
अदृष्टन आदिष्ट आत्मापि स उपग्रहः ।
परिक्रमस्तथा छिन्नस्तथा च परदूषणम् ।
स्कन्धोपनेयः सन्धिश्च सन्धयः षोडशोरिताः ।। - अग्नि॰पुरा॰240॰6-8

ल्लेख नहीं मिलता है । मुसलमान शासकों के साथ गुरूओं के युद्धों का वर्णन किया गया है । जब मुगल शासक गुरूओं की शक्ति से प्रभावित होते हैं तो उन से मित्रता कर लेते हैं, जो कि सन्धि की भावना को द्योतित करती है। जैसे रामराय को औरंगज़ेब वध की इच्छा से आमन्त्रित करता है और विभिन्न प्रकार के उपायों द्वारा मारना चाहता है,[186] परन्तु उन पर इन का प्रभाव न होने पर "राम राय" की दिव्य शक्ति से प्रभावित हो कर उन की प्रशंसा करता है तथा गुरूमान कर उन्हें अपने राज्य में ही रख लेता है[187] । इस प्रकार यहाँ शत्रु को बलशाली जान कर उस के साथ मित्रता करनी प्रतीत होती है । रामराय के बारे में जब उन के पिता हरिराय को ज्ञात होता है कि उस ने मुसलमानों के साथ मित्रता कर ली है, तो वह कुपित होते हैं, जिस से गुरू हरिराय की स्वाभिमानता और शत्रु के साथ कभी भी सन्धि न करने की भावना भी दिखाई देती है[188] । दूसरे व्यक्ति के मध्यस्थ होने पर अथवा उसके कथनानुसार भी मित्रता का उल्लेख मिलता है । जब दारासकूह (दारशिकोह) अपने गुरू मीरशाह से "हरिराय" के गुणों का व्याख्यान श्रवण करता है तो वह "गुरू हरिराय" जी का शिष्य बन जाता है[189] ।

गुरू गोविन्द सिंह जी के युद्ध से प्रभावित हो कर "बहादुरशाह" गुरू की भक्ति करता है तथा गुरू जी उसे "सर्वभौम" राज्य प्रदान करते हैं -

भक्तिं गुरोर्बहु बहादुरशाहनामा, चक्रे ततो गुरूरगाद् तमिदं जगाद ।
त्वां सार्वभौममधुना कलयामि सौम्य, क्रूरस्य तस्य विगमो मनसामवेष्टः[190] ।।

बाबर की भी गुरूनानक देव के प्रति श्रद्धा उन के गुणों को देख कर होती है, वह नानक देव के समान अन्य किसी को स्वीकार नहीं करता है तथा उन्हें रम्यगाँव में एक आश्रम में निवास हेतु प्रार्थना करता है, जिसे गुरू भोगविलास के प्रति

---

186. ना·चं· 21·26, 27, 28

187. वही, 21·37, 38

188. हरिरायेण लिखितं त्वं पश्चादेव गच्छ भोः ।
सिद्धयो दर्शिताः कस्माद् वाणी किं परिवर्तिता ।। -ना·चं·21·66
एवं द्र·67

189. ना·चं· 21·2 एवं द्र· 21·5,6

190. वही, 21·204 एवं द्र· 21·205

उदासीनता, के कारण अस्वीकार करते हैं[191]। इस प्रकार जहाँ मुसलमान शासकों के युद्धों का वर्णन मिलता है, वहीं उन की गुरूओं के प्रति श्रद्धा और मित्रता का भी अवलोकन होता है। इस प्रकार प्रस्तुत महाकाव्य में सन्धि के विषय में विस्तृत विवेचन उपलब्ध नहीं होता है। मुगल शासकों द्वारा हिन्दुओं के धार्मिक गुरूओं के साथ किये गये युद्धों का वर्णन मिलता है, इसीलिये उन के साथ की गई मित्रता का भी अवलोकन होता है, जो कि गुरूओं की विलक्षण-शक्ति के वशीभूत हो कर उनके प्रति श्रद्धा-भक्ति के रूप में परिलक्षित होती है। गुरूओं द्वारा स्वयं म्लेच्छों के साथ मित्रता करनी दिखाई नहीं देती है जिस से उन में राष्ट्र एवं अपनी संस्कृति की सुरक्षा के लिये बलिदान की भावना दिखाई देती है। वे मुगलशासकों को ही अपनी शक्ति से प्रभावित कर अपनी ओर आकर्षित कर मित्रता करने के लिये बाध्य करते हैं।

कूटनीतिकेकारण सन्धि -

प्राचीन काल से ही राजनैतिक जीवन में छल कपट की नीति चली आ रही है। किसी विषय में सन्धि कर लेना तथा फिर स्वार्थ-परायणता के वशीभूत हो उसे तोड़ देना कूटनीति कहलाती है। इस सन्धि के अन्तर्गत समझौता कर लेने पर भी अवसर प्राप्त होते ही शत्रु पर आक्रमण कर दिया जाता है तथा सन्धि की शर्तों का अतिक्रमण कर दिया जाता है। भारत वर्ष के साथ पाकिस्तान के दो युद्ध 1965 ईस्वी और 1971 ईस्वी में हुये, दोनों आक्रमणों के पश्चात् क्रमशः "ताशकन्द" समझौता रूस में तथा शिमला समझौता भारत के ही भाग हिमाचल प्रदेश में हुआ। परन्तु भारत के द्वारा इस सन्धि को कार्यरूप में लाने के प्रयत्नों पर भी पाकिस्तान के नेताओं ने इन सन्धियों के प्रति पूर्ण ईमानदारी प्रदर्शित नहीं की तथा आज भी शत्रु रूप में हमारे राष्ट्र के लिये खतरा बना हुआ है, जिस से उन की कूटनीति भासित होती है।

---

191. ततस्तमूचे यवनाधिराज, आर्येषु न त्वत्सदृशोऽस्ति कश्चित्।
.....समस्ततत्त्वाधिगमात्कृतार्थः ।। - ना.चं. 18.66 एवं द्र. 67, 68

मनुस्मृति में कपटनीति से सावधान रहने का उल्लेख करते हुये कहा है कि निष्कपट भावना से शत्रु से व्यवहार करना चाहिये परन्तु शत्रु की कपटनीति का ध्यान अवश्य रखना चाहिये -

अमाययैव वर्तेत न कथंचन मायया ।
बुद्धयेतारिप्रयुक्तां च मायां नित्यं स्वसंवृत: [192] ।।

नानक चन्द्रोदय महाकाव्य में कूटनीति सन्धि का आभास औरंगज़ेब की कपटपूर्ण नीति से प्रतीत होता है । वह गुरू हरिराय को आमन्त्रित करता है परन्तु गुरू जी स्वयं वहाँ नहीं जाते हैं और रामराय को भेजते हैं, जहाँ औरंगज़ेब रामराय को विषवस्त्र पहना कर तथा वस्त्र से आच्छादित कूयें पर खड़ा कर मारना चाहता है । परन्तु रामराय की अलौकिक प्रतिभा के कारण वह उन को मारने में सफल नहीं होता है [193] । इस प्रकार प्रतीत होता है कि कपट से औरंगजेब उन्हें बुलाकर मारना चाहता है, जिस से मुगल शासकों की कपटपूर्ण सन्धि का पता चलता है । अन्यत्र कहीं भी सन्धि का उल्लेख नहीं मिलता है । गुरूओं के युद्ध आदि का उल्लेख करते समय भी उन के द्वारा किसी प्रयुक्त कूटनीति पूर्ण सन्धि का वर्णन नहीं मिलता है । वे सिद्धान्तों के अनुसार भारतीय संस्कृति की गरिमा को बनाये रखने हेतु तटस्थ सन्धि पर ही विश्वास रखते थे । ~~अन्यस्य=से~~ किसी शत्रु के साथ भी कपटतापूर्ण व्यवहार नहीं करते थे । अन्याय से पूर्ण शासन की निन्दा स्वयं गुरू नानक देव ही करते हैं [194] । इस प्रकार उनकी न्यायप्रियता ही दृष्टिगोचर होती है ।

अन्ततोगत्वा कहा जा सकता है कि नानक चन्द्रोदय-महाकाव्य में तत्कालीन राजनैतिक जीवन का सम्यक् उल्लेख करते हुये राजा, मन्त्री, चतुरंगिणी

---

192. मनु·स्मृ· 7·104

193. पत्रं लिलेख कपटाबरङ्गज़ेबो,
नम्रत्वगर्भमथ दर्शनलालसात्वम् ।।
तप्तस्य वीक्ष्य बहुधा हरिरायनामा
पुत्रं निजं प्रहितवान् सविधे तदीये ।। - ना·चं·21·22 एवं द्र· 24,26 त: 29 पर्यन्तं

194. शास्ति दुर्न्यमालोक्य पिता नास्ति क्रमो मम ।।
- ना·चं· 3·56

सेना, रणयुद्धों, अस्त्रशस्त्रों तथा सन्धि का अवलोकन कराया गया है। मुगलशासकों के अत्याचारों का वर्णन करने के साथ-साथ हिन्दुशासकों की न्यायप्रियता और गुरूओं की बलिदान की भावना का भी प्रतिपादन किया गया है। पंजाब प्रान्त जिस की पावन भूमि पर गुरूओं ने जन्मग्रहण कर उपदेशामृत प्रदान किया, उस को आज कुछ असामाजिक तत्त्वों द्वारा जिन को विदेशी अनुदान एवं प्रशिक्षण प्राप्त है आतंकित और उद्वेलित किया जा रहा है। पथभ्रष्ट उन लोगों को गुरूओं के उपदेशों का अध्ययन करना चाहिये, जिस से उन के मस्तिष्क में जो हिन्दु-सिक्ख के भेदभाव आरोपित कर दिये गये हैं, वे अपसृत हों, और समृद्ध पंजाब प्रान्त अपनी उन्नति की ओर पुनः अग्रसर हो सके। गुरू नानक देव सहित अन्य गुरूओं ने सम्पूर्ण राष्ट्र को एकसूत्र में बांध कर अखण्ड रखने का ही प्रण लिया था, और लड़ाई झगड़े के मार्ग का तिरस्कार किया था। अतः उन के पदचिह्नों का अनुसरण कर देश की एकता को सुस्थिर रखना शिष्यों का परम कर्तव्य है।

= = = = = =

नवम अध्याय

ज्ञान-विज्ञान

(क)	भू-लोक
(ख)	खगोल विज्ञान
(ग)	ज्योतिष ज्ञान
(घ)	षड् ऋतु
(ङ)	बारह मास
(च)	वायुयान
(छ)	पाताल
(ज)	जलयान
(झ)	खनिज पदार्थ तथा धातुज्ञान
( )	कला

= = = = = =

नवम अध्याय

ज्ञान-विज्ञान

भूलोक -

भौगोलिकता की दृष्टि से नानक चन्द्रोदय महाकाव्य में भूगोल, तथा खगोल का वर्णन उपलब्ध होता है । मेघदूत आदि काव्यों में भी प्राकृतिक भौगोलिक वर्णन प्रतिपादित मिलता है । महाकाव्यों में जिन कवियों ने भौगोलिकता का निरूपण किया है, वह प्राकृतिक ही उल्लिखित है । इस प्रकार प्रस्तुत महाकाव्य में भी प्राकृतिक भौगोलिक वर्णन किया गया है । मुख्यत: भूखण्ड, वन, पर्वत, द्वीप और नदियों आदि का उल्लेख उद्धृत मिलता है । तीनों लोकों का उल्लेख करते हुये नानक कहते हैं कि "सम्पूर्ण विश्व भगवान् के शरीर में मन को स्थिर कर, सूक्ष्मतर पदार्थ को ग्रहण कर सकता है जिस प्रकार धनुर्धारी द्वारा स्थिर किया गया स्थूल बाण सूक्ष्म से सूक्ष्म वस्तु का भी भेदन कर देता है[1] । इस प्रकार भूलोक भुव:लोक और स्व:लोक स्वीकार कर उन का निर्माता एकेश्वर माना गया है । भूलोक का उल्लेख करते हुये द्वीपों का वर्णन करने के साथ-साथ देवता, वर्ष, पर्वत, नदी, फल और वृक्षों आदि का चित्रण भी किया गया है ।

द्वीप

जम्बूद्वीप - भू खण्ड का उल्लेख करते हुये सर्वप्रथम जम्बूद्वीप का वर्णन मिलता है जो कि एक लाख योजन विस्तार वाला है, यहाँ का धरातल कमल के

---

1. मायामये भगवतो वपुषि त्रिलोक्यां.....ग्रहीतुम् ।
   स्थूले क्वचित्स्थिरकर: प्रशमं.....विध्यति साम्प्रतेन ।। - ना.च.14.93

आकार का है और लाख योजन उन्नत पर्वत श्रृङ्ग विद्यमान है[2]। हरिवंश पुराण में भी जम्बूद्वीप का विस्तार 100000 योजन ही कहा गया है[3]। इलावृत धरातल का वर्णन करते हुये प्रस्तुत महाकाव्य में उस के अन्दर 32000 योजन ऊंचा और 16000 योजन भूमि के अन्दर विस्तार वाले "कनक गिरि" का उल्लेख किया गया है[4]। इलावृत के उत्तर में 87000 योजन बाहर स्थित नीलपर्वत का निरूपण मिलता है[5]। पूर्व में श्वेत गिरि, श्रृङ्गवान् और कुरुवर्ष पर्वत हैं जो कि दस हज़ार योजन उन्नत और दो हज़ार योजन विस्तारयुक्त दिखाई देते हैं[6]। इलावृत्त के दक्षिण में "हिमशैल" पश्चिम में "माल्यवान्" तथा आगे "गन्धमादन" स्थित हैं। दो हज़ार योजन विस्तृत मेरु पर्वत का उल्लेख किया गया है और उस के साथ ही "मन्दर" पर्वत प्रतिपादित मिलता है[7]। इस प्रकार जम्बूद्वीप के अन्तर्गत विभिन्न शिखरों का वर्णन किया गया है।

जम्बूद्वीप में विद्यमान वनों में नन्दन, चैत्ररथ, वैभ्राज और सर्वतोभद्र का उल्लेख मिलता है, जिन में माकन्द, चूत, कमुद, जम्बू, कदम्ब और अन्य विभिन्न प्रकार के वृक्ष दृष्टिगोचर होते हैं[8]। ये पेड़ मधुर फल प्रदान करते हैं, जिन का आस्वादन प्राणी करते हैं।

इलावृत के पूर्व में अरुणोदा नदी मन्दर पर्वत के साथ वहती है, गिरिजा नदी और जम्बू फलों के रस से युक्त दक्षिण में जम्बूनदी उल्लिखित की गई है[9]। इस प्रकार जम्बू द्वीप में वहने वाली नदियों का वर्णन मिलता है। मधुधाराओं के बहने का भी उल्लेख मिलता है, जो कि निरन्तर मन को प्रसन्न करती हुई बहती है[10]।

---

2. लक्षयोजनविस्तारो जम्बूद्वीपोऽयमुच्यते।
   वर्तुलो नववर्षाणि तस्मिन् भिन्नानि पर्वतैः ।। - ना॰चं॰ 14॰94 एवं द्र॰97
3. हरिवंश पुराण 5॰4-5
4. ना॰चं॰ 14॰98
5. सहस्रैर्वेदवसुभिर्योजनानां बहिः स्थितः।
   इलावृतस्योत्तरेण रम्यते नीलपर्वतः ।। - ना॰चं॰ 14॰99
6. ना॰चं॰ 14॰100, 101
7. ना॰चं॰ 14॰102, 103, 105
8. वही, 14॰106, 108, 109
9. वही, 14॰110, 111, 112 [10] ना॰चं॰ 14॰114, 115

मेरुपर्वत को अन्य पर्वतों जठर, देवकूट, पवन, पारियात्र, कैलाश, करवीर, त्रिशृङ्ग और मकर द्वारा आवृत प्रतिपादित किया गया है अर्थात् ये पर्वत उस के चारों ओर स्थित कहे गये हैं[11]। मनोवली, अमरावती, तेजोवती, संयमती, कृशाङ्गना, श्रद्धावती, गन्धवती, महोदया और यशोवती ये नव पुर भी मेरुपर्वत के निरूपित किये गये हैं -

मेरौ नव पुराणि स्युर्मनोवत्यमरावती ।
तेजोवती संयमनी तथा कृष्णाङ्गना परा ।।
श्रद्धावती गन्धवती तथा चान्या महोदया ।
यशोवतीं च ब्रह्मेन्द्र ब्रह्मादीनां यथाक्रमम्[12] ।।

मेरुस्थित ब्रह्म सदन से जाह्नवी की गति चार प्रकार की दृष्टिगोचर होती है। सीता गन्धमादन को जाती है, भद्राक्षार सागर को, महाजवा माल्यवन्त को तथा केतुमाला पश्चिम सागर को गमन करती है। अल्का, नन्दा, और हेमकूटा भारतवर्ष में बहती हैं और दक्षिण सागर में गिरती हैं[13]। इन नदियों की प्राप्ति अर्थात् दर्शन और स्नान पूर्वपुण्यों द्वारा सुलभ कहे गये हैं, जिन के सेवन से मनुष्य राजसूय और अश्वमेध यज्ञों के समान पुण्य को प्राप्त करता है[14]। इस प्रकार जम्बूद्वीप का निरूपण करते हुये उस के अन्तर्गत आने वाले पर्वतों, नदियों और वृक्षों का उल्लेख उद्धृत उपलब्ध होता है।

प्लक्षद्वीप - जम्बूद्वीप के उपरान्त प्लक्षद्वीप का प्रतिपादन मिलता है, जो कि जम्बूद्वीप से दो-गुना है और इस में सप्तजिह्वा देवता का उल्लेख किया गया है[15]। वहाँ शिव, यवस, सुभद्र, शान्त, क्षेम, अमृत और अभय नाम के सात वर्ण कहे हैं और मणिकूट, वज्रकूट, इन्द्रसेन, ज्योतिष्मान्, सुपर्ण, मेघाल्य तथा हिरण्यष्ठि इत्यादि पर्वतों का उल्लेख किया गया है[16]। अरुणा, नृमणा,

---

11. ना॰चं॰ 14॰118 तः 121 पर्यन्तं
12. वही, 14॰122, 123
13. वही, 14॰124 तः 128 पर्यन्तं
14. वही, 14॰129, 130
15. वही, 14॰146, 147
16. वही, 14॰149, 150

सावित्री, सुप्रभाता, ऋतम्भरा और सत्यम्भरा नामक नदियों को उद्धृत किया गया है[17]। श्रीमद्भागवत पुराण में भी प्लक्षद्वीप का उल्लेख करते हुये सप्त जिह्वा वाले अग्नि देव, सातवर्षों के नाम वाले सात पुत्रों और अरुणा आदि नदियों को उद्धृत किया गया उपलब्ध होता है[18]। इस प्रकार नानक चन्द्रोदय महाकाव्य में भी प्लक्षद्वीप का वर्णन भागवतपुराण की तरह ही दृष्टिगोचर होता है, जिस में देवता, सात पर्वतों और नदियों का वर्णन दिखाई देता है।

शाल्मली द्वीप - भागवतपुराण में शाल्मली वृक्ष होने के कारण इस का नामकरण शाल्मली द्वीप, सप्तवर्षों, नदियों, और सप्त पर्वतों का उल्लेख उपलब्ध होता है[19]। जिस से इस द्वीप की प्रमाणिकता प्रतीत होती है। नानक चन्द्रोदय महाकाव्य में प्लक्षद्वीप से द्विगुण शाल्मली द्वीप कहा गया है, यहाँ पर गरुड़ का वर है और वह केशव की स्तुति करता है[20]। सात पुत्रों के समान सुरोचन, सौमनस, रमणक, देववर्ष, पारिभद्र, अप्यापन तथा अविज्ञान सात वर्षों का उल्लेख मिलता है[21]। वामदेव, कुन्द, कुमुद, पुष्पवर्षक, स्वरस, शतशृङ्ग और सहस्रश्रुति नामक सात पर्वतों का एवं कुहू, रजनी, नान्दा, राका, अनुमति, सिनीवाली और सरस्वती सात नदियों का वर्णन उपलब्ध होता है[22]। वेदों में पारंगत विद्वान् इस द्वीप में देवताओं की प्रसन्नता के लिये यज्ञ अनुष्ठान करते हैं[23]। इस प्रकार शाल्मलीद्वीप का वर्णन भी भागवत पुराण के अनुसार प्रतिपादित दिखाई देता है।

कुशद्वीप - कुशद्वीप का उल्लेख करते हुये प्रस्तुत महाकाव्य में इसे शाल्मली

---

17. ना॰चं॰ 14॰152
18. भाग॰पुरा॰ 5॰20॰2 तः ऽ 4 पर्यन्तं
19. भाग॰पुरा॰ 5॰20॰8 तः 10 पर्यन्तं
20. ना॰चं॰ 14॰154, 155
21. वही, 14॰156, 157
22. वही, 14॰158, 159
23. वही, 14॰160

से दोगुना कहा गया है, प्रियव्रत के पुत्र हिरण्यरेता ने सप्तवर्षों को विभाजित कर सात पुत्रों में बाँट दिया है,[24] यह उद्धृत मिलता है। वसु, वसुदान, दृढरुचि, सत्यव्रत, नाभिगुप्त, विविक्त और नामदेव नामक सात पुत्रों का उल्लेख मिलता है। चक्र, चतुश्शृङ्ग, कपिल, चित्र, कूटक, देवानीक, उर्ध्वरोमा और द्रविण सात पर्वतों तथा रस कुल्या, मधुकुल्या, मित्रविन्दा, श्रुतविन्दा, देवगर्भा, घृतच्युता और मन्त्रमाला सात नदियों का निरूपण मिलता है[25]। कुशल, कोविद, अभियुक्त और कुलक चार वर्णों के लोग वैश्वानर देवता की वहाँ उपासना करते हैं[26]। इस प्रकार वैश्वानर का देवता के रूप माना जाना प्रतीत होता है। भागवत पुराण में भी इसी प्रकार कुशद्वीप के सप्त-वर्षों, पर्वतों और नदियों का उल्लेख उपलब्ध होता है[27]। जिस से भागवतपुराण के अनुसार द्वीपों का वर्णन किया जाना दिखाई देता है।

क्रौंच द्वीप - क्रौंचद्वीप का वर्णन करते हुये गुरूनानक देव मर्दन को कहते हैं कि कुशद्वीप से द्विगुण ही क्रौंचद्वीप है, जिस का नामकरण क्रौंचनामक महान् पर्वत के कारण किया गया है[28]। घृत पृष्ठ के सप्त पुत्रों और सप्तवर्षों का उल्लेख किया गया है, जो आम, मधुरुह, मेघपृष्ठ, भ्राजिष्ठ, सुधामा, लोहितार्ण और वनस्पति नाम वाले उल्लिखित किये गये हैं[29]। शुक्र वर्द्धमान, भोजन, उपबर्हि, नन्द, नन्दन और सर्वतोभद्र सात पर्वतों एवं अभया, अमृतौधा, आर्यका, तीर्थवती, वृत्तिरूपवती, पवित्रवती तथा शुक्ला नाम की सात नदियों का उल्लेख मिलता है[30]। वहाँ निवास करने वाले मनुष्य माया देवी की उपासना करते हैं[31]। इस प्रकार प्रतीत होता है कि माया देवी इस द्वीप के देवता रूप में वर्णित की गई है।

---

24. ना॰चं॰ 14॰161, 162
25. वही, 14॰163 तः 165 पर्यन्तं
26. वही, 14॰166, 167
27. भाग॰पुरा॰ 5॰20॰14 तः 16 पर्यन्तं
28. ना॰चं॰ 14॰168, 169
29. वही, 14॰171, 172
30. वही, 14॰173, 174
31. वही, 14॰175

भागवत पुराण में लगभग इसी प्रकार क्रौंचद्वीप का उल्लेख किया गया है। वहाँ भी सात पर्वतों नदियों वर्षों आदि का वर्णन मिलता है[32]। जिस से गुरू नानक देव द्वारा किया गया द्वीपों का चित्रण पुराण परम्परा के अनुसार भासित होता है।

शाकद्वीप - भागवत पुराण में उल्लेख मिलता है कि क्षीर समुद्र से आगे सर्वत्र बतीस लाख योजन विस्तृत और अतिशय सुगन्धि द्वारा सारे द्वीप को सुवासित करने वाले शाकवृक्ष के कारण जिस का नामकरण हुआ है, उसे शाकद्वीप कहा है[33]। इसके स्वामी राजा प्रियव्रत के पुत्र मेधातिथि कहे हैं, जो द्वीप को पुत्रों के सदृश नाम वाले वर्षों में विभक्त कर स्वयं तपोवन को चले जाते हैं, जिन के नाम पुरोजव, मनोजव आदि प्रतिपादित किये हैं। मर्यादा पर्वत ईशान, उरुश्रृङ्ग आदि सात पर्वत तथा अनघा, आयुर्दा इत्यादि सप्तनदियाँ उद्धृत की गई हैं। यहाँ चार वर्णों के पुरुषों-ऋतव्रत, सत्यव्रत, दानव्रत और अनुव्रत का समाधि द्वारा वायुरूप में "श्री हरि" की आराधना करने का उल्लेख किया गया है[34]।

नानक चन्द्रोदय महाकाव्य में भी इसी प्रकार शाकद्वीप का विस्तार और शाक वृक्ष के कारण नामकरण एवं मेधातिथि का उल्लेख उपलब्ध होता है -

ततः परस्ताद् क्षीरोदाच्छाक द्वीपोऽस्ति मर्दन।
द्वात्रिंशल्लक्षणैर्योजनायाम एष तु ।।
शाकस्तस्तं द्वीपं तु सुरभीकुरुतेऽभितः।
प्रियव्रतसुतो मेधातिथिस्तत्र विभज्य तु[35] ।।

---

32. भाग॰पुरा॰ 5॰20॰18 तः 21 पर्यन्तं

33. एवं पुरस्तात्क्षीरोदात्परित उपवेशितः शाक द्वीपो····। -भाग॰पुरा॰ 5॰20॰24

34. तस्यापि प्रैयव्रत एवाधिपतिर्नाम्ना मेधातिथि·····।
सोऽपि विभज्य सप्त वर्षाणि·····।।
एतेषां वर्षमर्यादागिरयो नद्यश्च सप्त·····।
तद्वर्षपुरुषा ऋतव्रतसत्यव्रत इत्यादयः·····।। - वही, 5॰20॰25 तः 27 पर्यन्तं

35. ना॰चं॰ 14॰176, 177

पुरोजव, मनोजव, पवमान, धूम्रनीक, चित्ररेफ, बहुरूप और विश्वधार नाम वाले सात वर्ष रूप पुत्रों में द्वीप का विभाजन मेधातिथि द्वारा कथित है। ईशान, उरुशृङ्ग, बलभद्र, शतकेसर, सहस्रस्त्रोत्, देवपाल तथा महानस सात पर्वतों एवं आयुर्दा, अनघा, उभयस्पृष्टि, पराजिता, पंचपदी, सहस्रस्तुति और निजधृति सप्त नदियों का उल्लेख किया गया है[36]। चारों वर्णों के पुरुष प्राणायाम द्वारा वायुरूप देवता की उपासना करते हैं -

वर्णा ऋतव्रतः सत्यव्रतो दानव्रतस्तथा।
अनुव्रतोऽनिलं देवं प्राणायामैरुपासते[37]॥

इस प्रकार शाकद्वीप का प्रतिपादन नानक देव ने भागवतपुराण की तरह ही किया है, जिस के अन्तर्गत आने वाले पर्वतों, नदियों और वर्णों का निरूपण किया गया है।

पुष्कर द्वीप -

भागवत पुराण में मट्ठे के समुद्र से उस के चारों ओर उस से दूना विस्तृत पुष्कर-द्वीप कहा है। हज़ारों पंखुड़ियों वाला कमल वहाँ उगा है, जिसके ऊपर ब्रह्मा का आसन है। अर्वाचीन तथा प्राचीन नाम के दो वर्षों की सीमा निर्धारित करने वाला "मानसोत्तर" पर्वत मध्य में विराजमान है, जिस की ऊंचाई तथा विस्तृतटा सहस्रयोजन कही गई है[38]। नानक चन्द्रोदय महाकाव्य में दधिद्वीप से दूना, ब्रह्मा का निवास स्थान पुष्कर द्वीप उद्धृत किया है, जिस का अधिपति प्रियव्रत का पुत्र वीतिहोत्र अपने रमणक और धातकि दो पुत्रों को स्वामी बनाता है तथा स्वयं भगवत्सेवा में मग्न हो जाता है। मानसोत्तर पर्वत का उल्लेख कर उस की विस्तृतता का भी प्रतिपादन किया है -

---

36. ना॰चं॰ 14॰178 तः 182 पर्यन्तं
37. वही, 14॰183
38. एवमेव दधिमण्डोदात्परतः पुष्करद्वीपस्ततो द्विगुणायाम॰॰॰॰॰।
तद्द्वीप मध्ये मानसोत्तर नामैक एवार्वाचीनपराचीन ॰॰॰॰॰॥
- भाग॰पुरा॰ 5॰20॰29,30

दण्डिभण्डोदधिर्दीपं समस्तमुपगूहते ।
परस्तात्पुष्करद्वीपो द्विगुणस्तत्र पुष्करम् ।।
कनकायुतपत्राणि चासनं परमेष्ठिनः ।
प्रियव्रतसुतौ वीतिहोत्रः स्वात्मजयोरदात् ।।
वर्षं रमणकं चैव धातकि..... [39] ।।

वहाँ के लोग अपने विशुद्ध कर्मों द्वारा देवों के प्रपितामह विश्वकर्ता ब्रह्मा की आराधना करते हैं[40] । भागवत पुराण में भी ब्रह्मा की स्तुति का उल्लेख उपलब्ध होता है -

तद्वर्षपुरुषा भावन्तं ब्रह्मरूपिणं सकर्मकेन कर्मणा आराधयन्तम्.... [41] ।।

इस प्रकार प्रस्तुत महाकाव्य में भागवतपुराण की ही तरह पुष्करद्वीप का भी चित्रण दर्शाया गया है । पुराणों के अनुसार द्वीपों के निरूपण से नानक चन्द्रोदय महाकाव्य में पौराणिक परम्परा का प्रभाव दृष्टिगोचर होता है ।

वन -

प्राचीनकाल से ही द्वीपों, पर्वतों और नदियों आदि की भौगोलिक महत्ता के साथ वनों की भी भौगोलिकता अनिवार्य रूप से चली आ रही है । इन जंगलों में विभिन्न प्रकार की मिट्टी तथा जलवायु होने के कारण अनेक प्रकार की जड़ी-बूटियाँ आदि प्राप्त होती हैं । इन वनस्पतियों का आर्थिक दृष्टि से विशेष महत्त्व होता है । आजकल भी भारतवर्ष में अनेक प्रकार के अरण्यों की विद्यमानता है, परन्तु नगरों आदि के विकास एवं बढ़ रही जनसंख्या के कारण इन का कटाव हो रहा है जिस से वनों की संख्या निरन्तर कम हो रही है । पुराणों तथा अन्य ग्रन्थों में वनवैभव और विभिन्न प्रकार

---

39. ना.चं. 14.184 तः 187 पर्यन्तं
40. वही, 14.189
41. भाग.पुरा. 5.20.32

के अरण्यों का वर्णन उपलब्ध होता है । महाभारत में विन्ध्यपर्वत के समीप स्थित घने वृक्षों से आवृत अटवी को विन्ध्याचल-वन कहा गया है[42] । आदि पुराण में भी विन्ध्याचल वन का उल्लेख प्राप्त होता है[43] । हरिवंश पुराण में पुरुष-स्त्रियों के वन विहार को उद्धृत किया गया है,[44] जिस से एकान्त स्थान में घर से दूर रम्यस्थान पर प्रेम वार्तालाप करने का अवलोकन होता है ।

नानक चन्द्रोदय महाकाव्य में घने वृक्षों से आच्छादित, हिंसक जीवों से युक्त और फल-फूलों से भरपूर वनों का उल्लेख मिलता है । वनों के बारे में विभिन्न नामोल्लेख उपलब्ध नहीं होते हैं, परन्तु वन वैभव का प्रतिपादन कर इनको प्रचुर मात्रा में उद्धृत किया गया है । समुन्नतस्कन्ध वृक्ष, पलाश, आम्र, पनस, लकुच, कदम्ब, अशोक, ताल, तमालताल, निम्ब, प्लक्ष, आमलक, पिप्पल, जम्बू और वट आदि वृक्षों से युक्त वन का उल्लेख किया गया है[45] । मल्लिका, चम्पक, कुन्द, बिल्व, बकुल और संरम्भ इत्यादि सुगन्धि से युक्त पादपों से निसृत वायु से सुशोभित विपिन का उल्लेख मिलता है[46] । कपोत, खंजन, कोकिल, शुक, बर्हि आदि पक्षियों से शोभायमान वन का निरूपण दिखाई देता है[47] । हिंसक जीवों - गज, खड्ग, मृग, सिंह, क्रोड़, मर्कट आदि की विद्यमानता से जंगलों की गहनता का उल्लेख दृष्टिगोचर होता है-

---

42. ततो देवा: सहिता: सर्व एव विन्ध्यं समागत्य·····।
- महा·भा·वन पर्व·,104·7 एवं द्र. सभा पर्व 10·31, आदि पर्व 208·7

43. आदि पुराण; 30·92

44. हरिवंश पुराण, 41·21

45. ना·चं· 1·20,21

46. सन्मल्लिकाचम्पककुन्दबिल्वै:·····।
सशोभते तद्विपिनं युतं तै: शीतोल्लसन्मन्दसुगन्धवातै: ।।-ना·चं·1·22

47. कपोतैर्वृतं खञ्जनै: कोकिलाद्यै:
शुकै: कुत्रचिद्बर्हिभिर्नीलकण्ठै: ।
क्वचिच्चरीकोल्लसत्पुष्पिताभि:
श्रितं शोभते काननं तत्तमालै: ।। - ना·चं· 1·23

राजते परिवृतं मृगसंघैः, क्वापि खड्गगजसिंहशार्दूलैः ।
क्रोड़मर्कटगणैर्महिषोघैः, संयुतं क्वचिदलं गहनं तत् [48] ।।

वनों में ऋषि-मुनि लोग तपस्या करते हैं, जिन के प्रभाव से वे वन भी पवित्र वायु से युक्त होकर निर्द्वन्द्व और निर्वैद रूप में मनों को आनन्दित करते हैं [49] । इस प्रकार जंगलों में निवास करने वाले प्राणियों की परस्पर प्रेम-भावना का अवलोकन होता है, जो कि तपस्या करने वाले तपस्वियों के कार्य में कोई विघ्न उपस्थित नहीं होने देते हैं । विभिन्न प्रकार के व्याघ्र, व्याल और वृक आदि जीवों के निवास से युक्त होने पर भी, भृङ्ग आदि के मंजुल गीतों से गुंजित सुगन्धित वायु से भरपूर वनों को शान्ति का स्थान कहा गया है [50] । यहाँ तपस्वी समाधिस्थ हो कर तपश्चरण करते हैं । इस प्रकार फलों से युक्त वृक्षों वाले वनों, पुष्पयुक्त वृक्षों से आवृत उपवनों तथा चक्रवाक आदि जीवों के निवास स्थान, कोकिल, भ्रमरों आदि के स्वरों से मुखरित सुन्दर काननों का उल्लेख उपलब्ध होता है [51] । इस प्रकार नानक चन्द्रोदय महाकाव्य में विविध प्रकार की वनस्पतियों, जीवों और पक्षियों का उल्लेख किया गया है, जिस से प्रस्तुत महाकाव्य की वनों से सम्बन्धित भौगोलिकता प्रतीत होती है ।

पर्वत -

भौगोलिक दृष्टि से पर्वतों का महत्त्वपूर्ण स्थान होता है, क्योंकि इन के द्वारा ही देश की सीमाओं का निर्धारण किया गया है । सम्पूर्ण विश्व में छोटे-बड़े रूप में पर्वतों की स्थिति दिखाई देती है, जो कि अपने-अपने राष्ट्र की सुरक्षा, जलवायु एवं भौगोलिकता की दृष्टि को दिखाते हैं । भारत के उत्तर में नगाधिराज हिमालय पर्वत और दक्षिण सीमा पर शैलश्रृङ्खला फैली हुई है, जो कि राष्ट्र की रक्षा करते हैं । अन्य छोटी-छोटी पर्वतमालायें भी हैं, जो कि भारतवर्ष के भौगोलिक स्वरूप का आलोक प्रदर्शित करती हैं ।

---

48. ना॰चं॰ 1॰24
49. वही, 1॰26, 27
50. वही, 3॰10 एवं द्र॰ 3॰13
51. वही, 13॰120

नानक चन्द्रोदय महाकाव्य में विभिन्न प्रकार के पर्वतों और पर्वतश्रृङ्खलाओं का उल्लेख मिलता है, जिन पर गुरूनानकदेव भ्रमण करते हुये जाते हैं । उन पर्वतों के नामोल्लेख से उन की विद्यमानता के बारे में ज्ञात होता है । निम्नलिखित पर्वतों का उल्लेख प्रस्तुत महाकाव्य में किया गया है ।

मेरूपर्वत - मेरु पर्वत के बारे में उल्लेख पुराणों में उपलब्ध होता है । कूर्म पुराण में मेरु पर्वत की स्थिति जम्बूद्वीप के मध्य में कही गई है[52] । मार्कण्डेय पुराण में मेरु के पश्चिम में निषाध और परिपत्र, दक्षिण में कैलाश और हेमवत तथा उत्तर में श्रृंगवन तथा जरुधि स्थित कहे गये हैं[53] । भागवत पुराण में इसे पर्वतों का राजा कहा गया है, जिस के शिखर का विस्तार बत्तीस हज़ार योजन तथा मूल का विस्तार सोलह हज़ार योजन प्रतिपादित है -

"एषां मध्ये इलावृतं नामाभ्यन्तर वर्षं यस्य नाभ्यावस्थितः सर्वतः सौवर्णः कुलगिरिराजो मेरूर्द्वीपायामसमुन्नाहः कर्णिकाभूतः कुवलयकमलस्य मूर्धनि द्वात्रिंशत्सहस्रयोजन विततो मूले षोडशसहस्रं तावतान्तर्भूम्यां प्रविष्टः[54] "।

नानक चन्द्रोदय महाकाव्य में जम्बूद्वीप का उल्लेख करते हुये मेरु पर्वत के नव पुरों तथा इस की स्थिति को उद्धृत किया गया है । जठर और देवकूट शिखर इस के पूर्व में, पवन, पारियात्र पश्चिम में, कैलाश करवीर दक्षिण में तथा त्रिश्रृङ्ग और मकर उत्तर में स्थित निरूपित किये हैं[55] । गुरूनानकदेव मर्दन और बालसिन्धु के साथ उड़ कर मेरुगिरि पर जाते हैं । इस प्रकार वहाँ से अन्य पर्वतों, नगरों तथा नदियों को देखते हैं[56] । मेरु पर्वत पर तपस्वियों को तृप्ति

---

52. कूर्म पुरा. पृ. 478 श्लोक 14
53. मार्क.पुरा., पृ. 240
54. भाग.पुरा., स्क. 5.16.7
55. ना.चं. 14.118 तः 123 पर्यन्तं
56. वही, 10.64 तः 66 पर्यन्तं

देने वाले रस का पान कर मर्दन मदमस्त हो जाता है तथा वह भी तपस्या करने लगता है[57]। सुमेरु नाम से भी इस का उल्लेख मिलता है[58]।

हिमालय - भारत वर्ष में ही नहीं अपितु सम्पूर्ण विश्व में विख्यात हिमालय पर्वत का उल्लेख भी प्रस्तुत महाकाव्य में उपलब्ध होता है। इसे "हिमाद्रि" नाम से उद्धृत किया गया है, जो कि ऋषिमुनियों के निवास योग्य है तथा जिस के शिखर गंगाजल से पावन हो गये हैं, गौरी के गुरु शिवजी का संसर्ग जिस ने किया है, एवं गन्धर्व, सिद्धपुरुषों द्वारा जो सेवित किया जाता है -

गङ्गातरङ्गैः परिपूतशृङ्गो, गौरीगुरुस्तापसमङ्गसेव्यः ।
प्रालेयजालामलमूर्तिरेष, गन्धर्वसिद्धाध्युषितो हिमाद्रिः[59] ।।

इस प्रकार हिमालय पर्वत की पवित्रता का वर्णन कर उसे भारतीय संस्कृति के प्रतीक रूप में वर्णित किया गया है।

मणि पर्वत - मणि पर्वत का उल्लेख भी प्रस्तुत महाकाव्य में मिलता है[60]। जिस की स्थिति और विस्तार आदि के विषय में प्रतिपादन उपलब्ध नहीं होता है। केवलमात्र मणियों के द्वारा रचित उस की सुन्दरता को दिखाते हुये स्वयं विधाता ने चित्रकर्म रूप में निर्मित किया है -

नानकोऽब्रूत शैलोऽयं महामणिगणोज्वलः ।
मणीनां किरणैर्धात्रा चित्रकर्म विनिर्मितम्[61] ।।

मेरु पर्वत के पास ही इस पर्वत का होना प्रतीत होता है क्योंकि वहीं पर मर्दन, नानक को सुमेरु पर्वत पर चलने के लिये कहता है[62]। अतः सुमेरु पर्वत से इसकी समीपता दृष्टिगोचर होती है।

व्यारगिरि - प्रस्तुत महाकाव्य में सात हज़ार योजन अर्थात् चौदह हज़ार कोश

---

57. ना॰चं॰ 10॰68 तः70 पर्यन्तं
58. अव्याहत गतिर्योगी सुमेरुं स व्रजन् पथि ।
वैणिकेनेति विज्ञप्तो विनयात्परमादरात् ।। - ना॰चं॰ 10॰2 एवं द्र॰9॰149
59. ना॰चं॰ 10॰74 एवं द्र॰ 15॰2,4,9,12
60. वही, 12॰21
61. वही, 12॰22
62. वही, 12॰23

परिमित व्यारपर्वत का उल्लेख मिलता है,[63] जिस को सर्वसिद्धियों का शिरोमणि कहा गया है तथा दत्तात्रेय मुनि उस पर्वत पर अजगर के समान समाधिस्थ हो तप करते हुये दृष्टिगोचर होते हैं[64]। गुरू नानकदेव, मर्दन और बालसिन्धु जब उस पर्वत पर पहुँचते हैं तो मर्दन उस को देख कर आश्चर्यचकित होते हैं जिस से पर्वत की अत्यधिक उन्नतता प्रतीत होती है[65]। इस प्रकार भौगोलिक महत्त्व के साथ-साथ धार्मिक कार्यों के लिये भी इस पर्वत की उपयोगिता को वर्णित किया गया है।

अनलाचित पर्वत - मणियुक्त किरणों से सुशोभित शिखरों वाले और भूमि पर उन्नत भित्ति के समान "अनलाचित" नाम के पर्वत काउल्लेख भी मिलता है, जिस पर पक्षियों के स्वामी विरोचनतात निवास करते हैं[66]। पृथ्वी पर पहले कभी न देखी गई उस पर्वत की विशालता और उत्तुङ्गता को देख कर मर्दन तथा बाल सिन्धु भयभीत होते हैं[67]। उस पर्वत पर निवास करने वाले पक्षियों के स्वामी विरोचनतात मनुष्य की वाणी में गुरूनानकदेव जी से वार्तालाप करते हैं -

पक्षिणां प्रभुरवोचदथैषां, मानुषीं गिरमुदारशरीरः[68] ।।

इस प्रकार पर्वत पर रहने वाले पक्षियों की सद्भावना, नम्रता और उदारता का अवलोकन भी होता है।

एकशृङ्ग पर्वत - उन्नत "एकशृङ्ग" पर्वत का उल्लेख करते हुये वहाँ पर प्रह्लाद को समाहित हो कर ईश्वर भक्ति करते हुये दर्शाया गया है -

---

63. ना॰चं॰ 13·3

64. व्यारो गिरिरयं सौम्य। सर्वसिद्धशिरोमणिः।
दत्तात्रेयोऽवधूतोऽत्र स्वापित्यजगरोपमः।। - ना॰चं॰ 13·4

65. ना॰चं॰ 13·2

66. पर्वतोऽयमनलाचितनामा, साधुरत्र च विरोचनतातः।
नानके कथयतीति गिरं नः, पक्षिणोऽपरिमिताः परिबबुः।।
- ना॰चं॰ 13·54 एवं द्र॰ 53

67. ना॰चं॰ 13·55

68. वही, 13·56

ततस्त्रयः सर्वत उन्नतं तं, गता वयं पर्वतमेकशृङ्गम् ।
समाहितस्तत्र विलोकितोऽभूत्, प्रह्लाद आह्लादकरो जनानाम् [69] ।।

प्रह्लाद के उल्लेख से इस पर्वत की स्थिति "हस्तिनापुर" के समीप प्रतीत होती है । नामोल्लेख से अधिक वर्णन उक्त पर्वत का उपलब्ध नहीं होता है ।

ईक्षण पर्वत - गुरु नानक देव के पूर्व जन्म के गुरु "जनक" का निवास "ईक्षण शैल" पर उद्धृत किया गया है -

जनुरन्तरस्य गुरुमीक्षणशैले,
जनकं वसन्तमवलोक्य सौम्य ।।
जनकः कुतोऽत्र दिहेति स योगी
कृत विस्मयः शिशरिणं तम गच्छत् [70] ।।

इस पर्वत के नामोल्लेख से अधिक विवेचन यहाँ उपलब्ध नहीं होता है ।

लोकालोक पर्वत - भागवत पुराण में भूगोल का चतुर्थ भाग अकेले लोकालोक पर्वत को कहा गया है, जो कि पच्चास करोड़ योजन विस्तृत दिखाई देता है, लोकों की स्थिति के लिये ब्रह्मा ने उस पर सभी दिशाओं में ऋषभ, पुष्करचूड़, वामन तथा अपराजित नाम चार गजराज नियुक्त किये हुये हैं -

पंचाशत्कोटिगणितस्य भूगोलस्य तुरीयभागोऽयं लोकालोकाचलः ।
ऋषभः पुष्करचूडो वामनोऽपराजित इति सकललोकस्थिति हेतवः [71] ।।

नानक चन्द्रोदय महाकाव्य में भी द्वीपों के आगे सूर्य के द्वारा प्रकाशित तथा अप्रकाशित लोकों के मध्य में स्थित "लोकालोकपर्वत" का उल्लेख उपलब्ध होता है [72] । सुमेरु पर्वत से मानसोत्तर तक जितनी भूमि है, उतनी ही विस्तृत भूमि इस पर्वत की शुद्धोदक पर्वतके दूसरी ओर भी विद्यमान है [73] । जहाँ प्राणियों का निवास है परन्तु उस से आगे सुवर्णमयी भूमि उल्लिखित की गई है [74] । जहाँ

---

69. ना·चं· 13·69
70. वही, 15·28
71. भाग·पुरा· 5·20·38, 39
72. ना·चं· 14·190, 191
73. वही, 14·192
74. तत्र तु प्राणिनः सन्ति ततः काञ्चनमेदिनी ।
एकोनचत्वारिंशदिभः लक्षैः कोट्यष्टकं युतम् ।। - ना·चं· 14·193

देवता लोग ही निवास करते हैं, दूसरे लोग नहीं[75]। लोकालोक पर्वत से ध्रुव और सूर्य आदि ज्योति गणों की किरणें दूसरी ओर नहीं जाती हैं, जिस से इस की अत्युन्नतता दिखाई देती है -

ततस्तं नातिवर्तन्ते सूर्यादीनां गभस्तय: ।
अन्धकारो योजनानां सार्द्धद्वादशकोटय:[76] ।।

भागवतपुराण में सुवर्णमयी भूमि पर प्राणियों के निवास का अभाव निरूपित किया है, क्योंकि वहाँ पर गिरी हुई वस्तु पुन: नहीं मिलती है[77]। इसलिये ही प्रस्तुत महाकाव्य में भी सुवर्णमयी भूमि पर देवताओं का वास ही प्रतिपादित किया है, जिस से साधारण मनुष्यों का अभाव दिखाई देता है। भागवतपुराण की तरह ही यहाँ भी चार गजराजों का क्रमश: ऋषभ, पुष्करचूड़, वामन और अपराजित नामों से उल्लेख किया गया है, जिन्हें ब्रह्मा ने ही नियुक्त किया है -

ऋषभ: पुष्करचूडो वामनसंज्ञोपराजितो दिक्षु ।
शिरसा भुवं दधाना दिग्गजायोजिता विधिना[78] ।।

इस प्रकार सर्वोन्नत लोकालोक पर्वत की अलौकिकता का निरूपण भागवत पुराण की तरह ही यहाँ भी उद्धृत मिलता है।

इस प्रकार नानक चन्द्रोदय महाकाव्य में अन्य ग्रन्थों की तरह विभिन्न पर्वतों का उल्लेख किया गया है, जिन की भौगोलिकता की दृष्टि से अत्यन्त आवश्यकता दिखाई देती है। पद्मपुराण में भी अनेक पर्वतों में महेन्द्र, मलय, सह्य, शक्तिमान्, ऋक्षवान्, विन्ध्य एवं पारियात्र सात को कुल पर्वत कहा

---

75. ना॰चं॰ 14॰194

76. वही, 14॰196 एवं द्र॰ 195

77. भाग॰पुरा॰ 5॰20॰34, 35

78. ना॰चं॰ 14॰198

गया है और हज़ारों अन्य पर्वत उन के समीप स्थित कहे गये हैं[79]। भागवत पुराण में भी भिन्न-भिन्न पर्वतों का उल्लेख मिलता है, जिन में मलय, मङ्गलप्रस्थ, मैनाक, त्रिकूट, ऋषभ, कूटक, कोल्लक, सह्य, देवगिरि, पारियात्र, द्रोण, चित्रकूट और गोवर्धन इत्यादि पर्वतों को मुख्य रूप से उल्लिखित कर हज़ारों अन्य पर्वतों को उद्धृत किया गया है -

भारतेऽप्यस्मिन् वर्षे सरिच्छैला: सन्ति बहवो मलयो मङ्गलनाथो····[80] ।।

इस प्रकार प्रस्तुत महाकाव्य में भी पूर्ववर्णित विभिन्न प्रमुख पर्वतों की स्थिति आदि का निरूपण किया गया है, जिस से नानक चन्द्रोदय महाकाव्य की भौगोलिकता प्रतीत होती है ।

जल स्त्रोत -

प्राणिमात्र के लिये जल का महत्त्व सर्वोपरि है । मनुष्य, पशु और पक्षी पानी के अभाव में जीवन यापन नहीं कर सकते हैं । प्राचीन काल में जल के प्राकृतिक-स्त्रोतों नदियों, तालाबों, कुओं और झरनों का प्रयोग दैनिक जीवन में किया जाता था, परन्तु आधुनिक समाज में विज्ञान के चरमोत्कर्ष के कारण अन्य सुगम उपायों द्वारा जल की प्राप्ति प्राणियों के लिये सुगम बन गई है । भूमि के 75% भाग पर जल है, जो कि अधिकतर समुद्रों के रूप में है । दूर-दूर गाँवों में निवास करने वाले लोगों के लिये अन्य छोटे-छोटे जल-स्रोत प्रयोग में लाये जाते हैं, जिन के द्वारा वे दैनिक-जीवन में जल-सम्बन्धी आवश्यकताओं को पूर्ण करते हैं । नदियाँ जल के सब से बड़े स्रोत हैं जिन की सहायता से आज बड़े-बड़े बान्धों का निर्माण कर जल की उपलब्धि का नहरों आदि के द्वारा प्राणिमात्र के लिये सुगम बना दी गई हैं । नानक चन्द्रोदय महाकाव्य में भी अनेक नदियों का उल्लेख मिलता है, जिनका निरूपण निम्नलिखित प्रकार से दिखाई देता है ।

79· ततो वर्षं प्रवक्ष्यामि यथाश्रुतमहो द्विजा: ।
महेन्द्रो मलय: सह्य: शक्तिमानृक्षवानपि ।।
विन्ध्यश्च पारियात्रश्च सप्तैते कुलपर्वता: ।
तेषां सहस्रशो विप्रा: पर्वतास्ते समीपत: ।। - पद्म पुरा·5,7,8 पृ·49

80· भाग·पुरा· 5·19·16

गंगा - वैदिक ग्रन्थों तथा पुराणों आदि में गंगा का विभिन्न नामों से उल्लेख मिलता है । भागवत पुराण में इसे "अलकनन्दा" कहा गया है[81] । द्युनदी नाम से भी इस का उल्लेख प्राप्त होता है, विदुर द्युनदी (गंगा) के द्वार पर विराजमान अगाध ज्ञान वाले महर्षि मैत्रेय के पास जा कर भगवान् का ध्यान कर सुशीलता युक्त वार्तालाप करते हैं -

द्वारि द्युनद्या ऋषभः कुरूणां मैत्रेयमासीनमगाधबोधम् ।
क्षत्तोपसृत्याच्युत भावशुद्धः पप्रच्छ सौशील्यगुणाभितृप्तः[82] ।।

महाभारत में भी गंगा का "अलकनन्दा" नाम से उल्लेख मिलता है -

देवेषु गङ्गा गन्धर्व प्राप्नोत्यलकनन्दाताम् ।
तथा पितृन्वैतरणी दुस्तरा पाप कर्मभिः[83] ।।

महाकवि कालिदास ने रघुवंश में भागीरथी और जाह्नवी के रूप में इसका उल्लेख किया है -

प्रत्यग्रहीत पार्थिव वाहिनीं तां शोण इवोतरङ्ग भागीरथीम् ।
बहुधाप्यागमैर्भिन्नाः पन्थानः सिद्धहेतवः ।
त्वय्येव निपतन्त्योघा जाह्नवीया इवार्णवे[84] ।।

ऋग्वेद में भी नदियों की स्तुति में गंगा का उल्लेख मिलता है -

इमं मे गङ्गे यमुने सरस्वती शुतुद्रिस्तोमं सचता परुष्ण्या[85] ।

पद्म पुराण में गंगा की वितोदका, नलिनी, सरस्वती, जम्बूनदी, सीता, गंगा और सिन्धु सात शाखायें कही गई हैं, जो इस से निकल कर बहती हैं[86] । भागवत पुराण में उल्लेख मिलता है कि भगीरथ नामक राजा तपस्या के बल से

---

81. नन्दा चालकनन्दा च सरितौ बाह्यतः पुरः ।
तीर्थपादपदाम्भोजरजसातीव पावने ।। - भाग॰पुरा॰ 4॰6॰24 एवं द्र॰ 11॰29॰42

82. भाग॰पुरा॰ 3॰5॰1 एवं द्र॰ 10॰75॰8

83. महा॰भा॰; आदि पर्व 170॰22

84. रघुवंश, 7॰36, 10॰26

85. ऋ॰ 10॰75॰5-6

86. नदी पिबन्ति विमलां गङ्गां सिन्धुं सरस्वतीम् । - पद्म पुराण, 5॰10 पृ॰ 49

गंगा को स्वर्ग से भूमि पर लाया था, जो हिमालय के गंगोत्री नामक स्थान से निकलती है[87]। तैत्तरीय आरण्यक में गंगा यमुना के तटों पर निवास करने वाले लोगों को सम्माननीय कहा गया है[88]।

नानक चन्द्रोदय महाकाव्य में इस पवित्र नदी को - गंगा, जाह्नवी और मन्दाकिनी - नामों से उल्लिखित किया गया है[89]। कैलाश पर्वत का वर्णन करते समय मन्दाकिनी का उल्लेख किया गया है,[90] जिस से प्रतीत होता है कि हिमालय की उत्तरमाला में स्थित कैलाश पर्वत को ही इस का उद्गम स्थान माना गया है। भागवतपुराण में शिवजी की जटाओं द्वारा स्वर्गलोक से इस का आगमन वर्णित उपलब्ध होता है, जिस से शिव के साथ गंगा का विशेष सम्बन्ध दिखाई देता है -

तथेति राज्ञाभिहितं सर्वलोक: हित: शिव: ।
धारावहितो गङ्गां पादपूत जलां हरे: [91] ।।

प्रस्तुत महाकाव्य में भी गंगा के जल द्वारा शंकर की जटाओं का सिंचन उद्धृत किया गया है[92]। इस प्रकार प्राचीन काल से चली आ रही गंगा की पावनता के अनुसार ही इस की पवित्रता का वर्णन किया गया है।

गंगा के अतिरिक्त अन्य प्रमुख अनेक नदियों का उल्लेख पुराणों में उपलब्ध होता है। पद्म पुराण में गोदावरी, नर्मदा, शतद्रु, चन्द्रभागा, यमुना आदि प्रमुख महानदियों के साथ दृषद्वती, वितस्ता, विपाशा आदि विभिन्न नदियों का उल्लेख किया गया है[93]। भागवतपुराण में मुख्यतया चन्द्रवसा,

---

87. भाग॰पुरा॰ 9॰9॰2-4
88. एतस्या प्रति वसन्त्योताभ्यश्च नमो नमो गङ्गा यमुनयोर्मध्ये ये वसन्ति·····।। - तैत्तरीय आरण्यक, 2॰20
89. कदाचिदपि गङ्गायां कथंचित् स्नाति य: पुमान् ।।
- ना॰चं॰ 14॰332, 336, 10॰74 एवं द्र॰ 10॰19, 15॰4
90. ना॰चं॰ 15॰2,4
91. भाग॰पुरा॰ 9॰9॰9
92. मन्दाकिनीसलिलसिक्तजटाटवीक: ।
सूर्येन्दुबर्हिनयन: शरदभ्रभ: ।। - ना॰चं॰ 15॰4
93. गोदावरीं नर्मदां च बहूदां च महानदीम् ।
शतद्रु चन्द्रभागां च यमुनां च महानदीम् ।। - पद्म पुराण, 5॰11-14, पृ॰49

ताम्रपर्णी, अवटोदा, कृतमाला, वैहायसी, काबेरी, वेणी, पयस्विनी, शर्करावर्ता, तुङ्गभद्रा, कृष्णा, वेण्मा, भीमरथी, गोदावरी, शतद्रु, चन्द्रभागा, यमुना और सरस्वती इत्यादि नदियाँ उल्लिखित की गई हैं,[94] जिनमें भारतीय जनता स्नान कर पवित्र होती है ।

नानक चन्द्रोदय महाकाव्य में भी अनेक नदियों का उल्लेख उद्धृत किया गया है । जल द्वारा तटों को पवित्र करने वाली "एरावती" नदी का उल्लेख मिलता है[95] । स्वादिष्ट जल से युक्त और श्रेष्ठ तीर्थ के रूप में प्रख्यात "सरस्वती" नदी को उद्धृत किया गया है[96] । आजकल "व्यास" और "सतलुज" नाम से प्रसिद्ध "विपाशा" तथा "शतद्रु" नदियों का उल्लेख भी मिलता है, जो कि "हिमाचल प्रदेश" के दुर्गम पर्वतीय क्षेत्रों से होती हुई "पंजाब" प्रान्त में प्रवेश करती हैं । इन दोनों नदियों पर क्रमशः तलवाड़ा नामक स्थान पर और भाखड़ा (नंगल) में बांध बना कर विद्युत् उत्पादन किया जा रहा है । प्रस्तुत महाकाव्य मे इन दोनों के साथ ही चन्द्रभागा, वितस्ता और इरावती का उल्लेख कर पाँच नदियों से युक्त "पंचनद" (पंजाब) की गरिमा को उद्धृत किया गया है -

इरावत्यथो चन्द्रभागा प्रसिद्धा, विपाशा वितस्ता शतद्रुश्च नद्यः ।
तदन्तर्गतो भाति वाहीक देश-,स्तमस्मद्गतेर्विन्ध्यपादानभूतम्[97] ।।

"साकेत" नामक नगर के राजा दशरथ का वर्णन करते हुये "सरयु" नदी का उल्लेख भी किया गया है[98] । सरयु के तट पर स्थित अयोध्या को ही साकेत नाम से वर्णित किया गया है ।

इस प्रकार भौगोलिक दृष्टि से इन नदियों की महत्ता के साथ-साथ

---

94. चन्द्रवसा ताम्रपर्णी अवटोदा कृतमाला वैहायसी.....।
- भाग.पुरा. 5.19.17-18

95. एरावती विमल वारितरङ्गतीरा
स्वच्छोल्लसत्सुरभिभूष्ययुता गभीरा ।। - ना.चं. 1.25

96. सरांसि सम्फुल्लसरोरुहाणि, सरस्वती स्वादुजलाः सुतीर्थाः।
वनानि पुष्पैरधिवासितानि, विलोक्यन्तो मुदिता ययुस्ते ।।-ना.चं.5.64

97. ना.चं. 9.60 एवं द्र. 19.77

98. वही, 15.64

धार्मिक और आर्थिक रूप से भी इनकी अनिवार्यता दिखाई देती है । आज भी इन नदियों के द्वारा जल सिंचन आदि कार्यों से पंजाब प्रदेश ने सम्पूर्ण भारत वर्ष के अन्न क्षेत्र में हरित-क्रान्ति को जन्म दिया है ।

अन्य जल-स्रोत - प्राचीन काल से ही नदियों के साथ-साथ अन्य जलस्त्रोतों का दर्शन भी होता है । इन में बावली, कुयें, तालाब, झरने और चश्में इत्यादि मुख्यतया प्रयोग में लाये जाते रहे हैं । परन्तु आजकल वैज्ञानिक युग होने के कारण विद्युत्शक्ति की सहायता से अन्य सुगम साधन जल के दिखाई देते हैं, जिन का प्राचीन काल में अभाव था ।

नानक चन्द्रोदय महाकाव्य में नदियों के साथ अन्य जल स्त्रोतों का वर्णन करते हुये बावली का उल्लेख किया गया है, जो कि मूँगे के छोटे-छोटे खण्डों द्वारा विभूषित और बड़ी-बड़ी सीढ़ियों से युक्त थीं । इस प्रकार जल पीने के लिये सुन्दर बावलियों के निर्माण का पता चलता है -

"वाप्यो विद्रुमखण्डमण्डिततरा: सोपानवत्यो महा"[99] ।

तालावों का उल्लेख करते हुये उन्हें कमलों से पूर्ण उद्धृत किया गया है[100] । इन से अधिक जलस्त्रोतों का उल्लेख नहीं मिलता है । आजकल के विद्यमान साधनों का तो अभाव ही दिखाई देता है, जिस से प्रतीत होता है कि तत्कालीन समाज में जल के सामान्य प्राकृतिक साधन ही उपयोग में लाये जाते थे और उन की सहायता से लोग अपनी जल-सम्बन्धी आवश्यकताओं को पूर्ण करते थे ।

खगोल विज्ञान -

खगोल विद्या के ज्ञान से भारतीय संस्कृति की असीम ज्ञान-विधा का अवलोकन होता है । पृथ्वी लोक, आकाश लोक तथा पाताल लोक ये तीन लोक हैं, जिन में आकाश लोक के - भू, भुव:, स्व:, मह:, जन:, तप: और सत्यम् - सात भाग हैं । आकाश में विद्यमान सूर्य, नक्षत्र, वीथि, ग्रहों की स्थिति इत्यादि के बारे में जानकारी ही खगोल विज्ञान का विषय है ।

---

99. ना·चं· 13·120

100. वही, 5·64

भागवत पुराण में उल्लेख मिलता है कि सूर्य त्रिलोकी सहित स्वयं तपता है तथा प्रकाश द्वारा सभी पदार्थों को प्रकाशित करता है । उत्तरायण, दक्षिणायन तथा विषुवत् मार्गों से मन्द, शीघ्र और समान गति से चलता हुआ मकरादिराशियों में जाकर दिन रात को छोटा, बड़ा तथा समान बनाता है[101] । अन्तरिक्ष की स्थिति भूमण्डल तथा स्वर्गमण्डल के मध्य कही गई है[102] । दिशा, आकाश, द्युलोक, भूलोक, स्वर्ग, अपवर्ग, नरक तथा पातालादि सब का विभाग सूर्य के द्वारा ही होता है -

सूर्येण हि विभज्यन्ते दिशः खं द्यौर्महिभिदा ।
स्वर्गापवर्गौ नरका रसौकांसि च सर्वशः[103] ।।

मानसोत्तर पर्वत पर सूर्य के तीव्र, मन्द और समान गति से परिक्रमा करने का परिमाण नौ करोड़ इक्यावन लाख योजन कहा है । इस पर्वत पर सुमेरु से चारों दिशाओं में चार पुरियों की विद्यमानता का उल्लेख किया गया है[104] ।

नानक चन्द्रोदय महाकाव्य में खगोल विज्ञान का उल्लेख भागवत पुराण की तरह ही उद्धृत मिलता है । मनुष्यों की आयु तथा शुभ, अशुभ कर्मों का साक्षी सूर्य भगवान् को कहा गया है, जो कि मानसोत्तर पर्वत पर मन्द, शीघ्र और सम गति से नौ करोड़ इक्यावन लाख परिमाण से परिक्रमा करता है[105] । सभी ग्रहों के तीन स्थान - जरद्गव, मध्य और उत्तम कहे गये हैं, तीन तीन वीथियों द्वारा प्रत्येक का तीन प्रकार का मार्ग कहा है । अश्विनी, कृतिका नक्षत्रों से नागवीथी, रोहिणी, आर्द्रा और मृगशिरा में गजवीथी, पुष्य,

---

101. यन्मध्यगतो भगवांस्तपतांपतिस्तपेन आतपेन त्रिलोकी.....।।
- भाग.पुरा. 5.21.3

102. भाग.पुरा. 5.21.2

103. वही, 5.20.45

104. एवं नवकोटय एक पंचाशल्लक्षाणि योजनानां मानसोत्तरगिरि.....।
- भाग.पुरा. 5.21.7-9

105. ना.चं. 14.200, 207

आश्लेषा में आदित्य वीथी, ये तीन वीथियाँ उत्तर मार्ग कही गई हैं[106]। दोनों फाल्गुनी और मघा में आर्षभीमता, हस्त, चित्रा तथा स्वाति नक्षत्रों में गोवीथी और ज्येष्ठा तथा विशाखा में जरद्गवी वीथी ये तीनों मध्यमार्ग नाम से उल्लिखित की गई हैं[107]। मूला, पूर्वाषाढ़ा और उत्तराषाढ़ा में अजवीथी, श्रवण, धनिष्ठा और शतभिषा में मार्गीवीथी तथा भाद्रपद और रेवती में वैश्वानरीवीथी - ये तीनों दक्षिण मार्ग कही गई हैं[108]। इस प्रकार नक्षत्रों का उल्लेख करते हुये तीन मार्गों का प्रतिपादन किया गया है।

आकाश में मानसोत्तर पर्वत से सुमेरु के पूर्व में इन्द्र की देवधानीपुरी, दक्षिण में यमराज की संयमनी, पश्चिम में वरुण की निम्लोचनी तथा उत्तर में सोम देवता की विभावरीपुरी[109] का वर्णन किया गया है, जो कि पूर्ववर्णित भागवतपुराण की तरह ही निरूपित की गई हैं। इन पुरियों में रहने वालों के लिये चार प्रकार के समय सूर्योदय, मध्याह्न सायंकाल और निशीथक (अर्द्धरात्रि) कहे गये हैं, मेरुस्थ प्राणियों को, सूर्यदेव दोपहर को तपाते हैं तथा अस्त होते समय प्राणियों को दक्षिण में दिखाई देते हैं। अर्थात् मेरु के बाईं ओर होने पर भी दाईं ओर दिखाई देते हैं[110]। भागवत पुराण में भी इसी प्रकार उद्धृत मिलता है -

तत्रत्यानां दिवसमध्यङ्गत एव सदाऽऽदित्यस्तपति सव्येनाचलं दक्षिणेन करोति[111] ।।

---

106. वैश्वानरं दक्षिणतो निर्दिष्टमिह तत्त्वतः ।
वीथीत्रयेण प्रत्येकं त्रिधामार्गं प्रचक्षते ।।
आश्विनीकृतिकायाम्वा नागवीथीति शब्दिता ।
.....।। - ना.चं.14.208 तः 211 पर्यन्तं

107. ना.चं. 14.212-213

108. वही, 14.214-215

109. वही, 14.216-217

110. वही, 14.218-221

111. भाग.पुरा. 5.21.8

नानकचन्द्रोदय महाकाव्य में सूर्य की निरन्तर गतिशीलता का उल्लेख करते हुये सूर्य के दिखाई देने पर सूर्योदय और न दिखाई देने पर सूर्य का अस्त होना कहा गया है[112]। इन्द्र, यम, वरुण और सोम की पुरियों में भ्रमण करता हुआ सूर्य तीनों भुवनों का स्पर्श करता है। दिव्य रथ द्वारा सूर्य एक मुहूर्त में चौंतीस लाख आठ सौ योजन की गति से पुरियों में भ्रमण करता हुआ चलता है[113]। सूर्य के संवत्सर नामक एक चक्र में बारह मास, षट् ऋतुयें नेमियाँ और तीन चतुर्मास उस की नाभि कहे गये हैं -

एकोचक्रो द्वादशार: षण्णेमिश्च त्रिनाभिक:।
संवत्सरात्मको भानोर्भ्रमित्याकाशगो रथ:[114] ।।

सूर्य के इस रथ में बैठने का स्थान छत्तीस लाख योजन विस्तृत तथा चौड़ाई चतुर्थ भाग अर्थात् नौ लाख योजन विस्तृत उद्धृत की गई है[115]। सूर्य के अरुण नामक सारथि का उल्लेख किया है, जो रथ में सात घोड़े लगा कर उसे चलाता है। इस प्रकार मेरु की धुरी पर अन्य धुरी मानसोत्तर पर्वत पर वायु में स्थित आकाश मण्डल में सूर्य की गतिशीलता कही गई है[116]। इस प्रकार सूर्य की स्थिति, तथा नक्षत्रों का वर्णन भागवत पुराण में उपलब्ध होता है। सूर्य की गति एक मुहूर्त में चौंतीस लाख आठ सौ योजन परिमाण की ही कही गई है तथा रथ और सारथी का वर्णन भी उपर्युक्त प्रकार से ही मिलता है[117]।

नानक चन्द्रोदय महाकाव्य में शतयोजन तक पक्षियों की गति, बादलों से ऊपर अनिल, उस के ऊपर भूत प्रेतादि, ऊपर सिद्ध आदि तथा उन से ऊपर राहु की स्थिति कही गई है[118]। भुव: लोक में सूर्य की स्थिति स्वीकार कर सहस्राक्षपुरी में निशानाथ (चन्द्रमा) तथा लोकपालों की विद्यमानता का उल्लेख किया गया है[119]। सूर्य की स्थिति भुव: लोक से दो लाख योजन ऊपर उल्लिखित मिलती है तथा उस से ऊपर एक लाख योजन की दूरी पर चन्द्रमा

---

112. ना॰चं॰ 14॰222 त: 225 पर्यन्तं
113. वही, 14॰226, 228
114. वही, 14॰229
115. वही, 14॰230
116. वही, 14॰231
117. भाग॰पुरा॰ 5॰21॰12 एवं द्र॰ 13 त: 18 पर्यन्तं
118. ना॰चं॰ 14॰237-238
119. वही, 14॰240-241

कहा गया है -

लक्षद्वये योजनानामूर्ध्वं भानुर्भुवो मतः ।
ततो लक्षे योजनानामुपरिष्टान्निशाकरः[120] ।।

भागवत पुराण में सूर्य से एक लाख योजन दूरी पर ही चन्द्रमा की स्थिति स्वीकार की गई है[121] । चन्द्रमा से तीन लाख योजन ऊपर अभिजित सहित अठाईस नक्षत्र कहे गये हैं, जो मेरु को दाहिने कर घूमते हैं -

"तत उपरिष्टात्त्रिलक्षयोजनतो नक्षत्राणि मेरुं दक्षिणेनैव कालयन
ईश्वरयोजितानि सहाभिजिताष्टाविंशतिः[122] ।।

नक्षत्रों से दो लाख योजन ऊपर शुक्र कहा है, जो सूर्य की शीघ्र, मन्द तथा सम गति के साथ चलता हुआ कभी पीछे कभी साथ-साथ चलता है और गति के कारण वर्षा प्रदान करता है[123] । शुक्र से दो लाख योजन ऊपर सोमपुत्र बुध, उस के ऊपर दो लाख योजन की दूरी पर मंगल, मंगल से दो लाख योजन की दूरी पर बृहस्पति, गुरू से दो लाख योजन की ही दूरी पर शनि की स्थिति कही गई है । शनि से ग्यारह लाख योजन दूर कश्यपादि सप्तऋषियों का निवास स्थान उल्लिखित किया गया है । ये सभी मंगल कामना करते हुये "ध्रुवलोक" की प्रदक्षिणा करते हैं[124] । इस प्रकार भागवत पुराण में ग्रहों की स्थिति का वर्णन उपलब्ध होता है ।

नानक चन्द्रोदय महाकाव्य के अध्ययन से ग्रहों, नक्षत्रों तथा ऋषियों आदि की स्थिति भागवत पुराण की तरह ही वर्णित मिलती है । जिस से उस की खगोल-विज्ञान सम्बन्धी प्रमाणिकता सिद्ध होती है । प्रस्तुत महाकाव्य में चन्द्रमा से तीन लाख योजन ऊपर नक्षत्रों की विद्यमानता प्रतिपादित की गई है,

---

120. ना·चं· 14·242

121. भाग·पुरा· 5·22·8

122. वही, 1·22·11

123. तत उपरिष्टादुशना द्विलक्षयोजनत उपलभ्यते पुरतः ।
- भाग·पुरा· 5·22·12

124. भाग·पुरा· 5·22·13 तः 17 पर्यन्तं

परन्तु उन की संख्या के बारे में उल्लेख नहीं किया गया है । नक्षत्रों से दो लाख योजन की दूरी पर उशन (शुक्र) को कहा है, जो कि सूर्य के आगे पीछे तथा साथ-साथ समान गति से भ्रमण करता है[125] । शुक्र से दो लाख योजन की दूरी पर बुध है वह भी शुक्र की तरह भास्कर के साथ-साथ चलता है[126] । बुध से दो लाख योजन की दूरी पर मंगल तथा मंगल से दो लाख योजन की दूरी पर देव गुरू (बृहस्पति) का उल्लेख किया गया है, उस से दो लाख योजन के अन्तर पर सूर्य पुत्र (शनि) स्थित कहा गया है तथा शनि से ऊपर ग्यारह लाख योजन की ऊंचाई पर "सप्त ऋषियों" का निवास उल्लिखित किया गया है[127] ।

ध्रुव का वर्णन करते हुये उद्धृत किया गया है कि सप्त ऋषियों से तेरह लाख योजन की दूरी पर ध्रुव स्थित है जिस की ऋषियों सहित अन्य खेचर (आकाश में चलने वाले प्राणी) प्रदक्षिणा करते हैं -

सत्रयोदशलक्षाणि योजनानां स्थितो ध्रुवः ।
ऋषिभ्यउर्ध्वं खचरैः क्रियते यः प्रदक्षिणः[128] ।।

इस प्रकार प्रस्तुत महाकाव्य में खगोल का वर्णन करते हुये आकाश के सात भाग स्वीकार किये गये हैं, जो कि भू, भुवः, स्वः, महः, जनः, तपः तथा सत्य के नामों से उल्लिखित मिलते हैं[129] ।

इस प्रकार नानक चन्द्रोदय महाकाव्य में खगोल विज्ञान का प्रतिपादन करते समय आकाश सम्बन्धी प्रत्येक वस्तु का चित्रण प्रस्तुत किया गया है, जिस से खगोल विद्या के ज्ञान से इसकी परिपूर्णता दिखाई देती है ।

---

125. लक्षत्रये योजनानां नक्षत्राणां स्थितिस्ततः ।
द्विलक्ष्यमुशना भानोः पुरः पश्चात्सह व्रजन् ।। - ना॰चं॰ 14॰243

126. ना॰चं॰ 14॰244

127. लक्षद्वये योजनानां बुधादूर्ध्वे कुजस्थितिः ।
द्विलक्षयोजने तस्मादूर्ध्वे देवगुरोः स्थितिः ।।
द्विलक्षयोजने तस्मादूर्ध्वे सूर्यसुतः स्थितः ।
तथैकादशलक्षोर्ध्वे स्थिताः सप्तर्षयस्ततः ।। - ना॰चं॰ 14॰245-246

128. ना॰चं॰ 14॰247

129. वही, 14॰251-253

ज्योतिष ज्ञान -

प्राचीन काल से ज्योतिष ज्ञान भारतीय संस्कृति का मूल तत्त्व है। आज भी समाज में ज्योतिष का प्रचार सभी ओर दृष्टिगोचर होता है तथा अनेक ज्योतिर्विदों ने ज्योतिषज्ञान से सम्बन्धित ग्रन्थों की रचना कर दी है। दिन रात की समता, विषमता, ग्रहों का फलादेश तथा ग्रहणादि के बारे में ज्योतिर्विज्ञान मार्गदर्शन करता है।

नानक चन्द्रोदय महाकाव्य में ज्योतिष ज्ञान का अत्यधिक निरूपण नहीं किया गया है परन्तु जो थोड़ा उल्लेख उपलब्ध होता है, वह नितान्त परिपुष्ट और तर्कसंगत दिखाई देता है। उत्तरायण सूर्य का तथा दक्षिणायन का वर्णन करते हुये उल्लेख किया गया है कि वायु के कर्षण द्वारा सूर्य ध्रुव के ऊपर से होता हुआ उत्तर मण्डल में जाता है तथा दक्षिणायन में सूर्य के जाने पर रात बढ़ती है और दिन कम होता है। इस प्रकार मर्दन को नानक उत्तरायण तथा दक्षिणायन में दिन रात की न्यूनता और अधिकता के बारे में बताते हैं -

युगाक्षकोटिबद्धस्य वायुपाशस्य कर्षणात्।
ध्रुवेणारोहणं भानोः प्रवेशोत्तरमण्डले।।
बाह्यं तु मण्डलं याति शीघ्रस्तद्दक्षिणायने।
रात्रिवृद्धिर्दिनह्रासस्ततो भवति मर्दन[130] ।।

श्रीमद्भागवतपुराण में भी दक्षिणायन के आरम्भ होने से दिन तथा उत्तरायण के आने तक रात की वृद्धि कही गई है[131]।

मुहूर्त-पारिजात में उत्तरायण को सौम्यायन कहा है तथा "मकरे भानुः" अर्थात् मकर से धन के सूर्य तक उत्तरायण तथा "कर्के भानुः" कर्क से धन राशि के सूर्य तक दक्षिणायन को स्वीकार किया गया है[132]। प्रस्तुत महाकाव्य में सूर्य की समाति द्वारा रात दिन की भी समानता उल्लिखित की गई है[133]। अर्थात्

---

130. ना॰चं॰ 14॰201-202
131. यावद्दक्षिणायनमहा निवर्धन्ते यावदुदगयनं रात्रयः। -भाग॰पुरा॰5॰21॰6
132. मुहूर्त-पारिजात, पृ॰3-4
133. ना॰चं॰ 14॰203

मेष तुला राशि में सूर्य होने पर दिन रात की असमानता होने पर भी समता कही गई है -

मेषतुलायामेकस्मिन्नहोरात्रे समानता ।
तथापि सूक्ष्मवैषम्यात्साम्यमित्येव कीर्त्यते[134] ।।

वृष, मिथुन राशि में सूर्य के जाने पर प्रतिमास रात्रि में एक-एक घड़ी की न्यूनता तथा दिन में वृद्धि प्रतिपादित की गई है और कर्क आदि राशियों में दिनों का ह्रास कहा गया है[135] । इस प्रकार भागवत पुराण की तरह ही मेष, वृष आदि राशियों में सूर्य के जाने पर दिन रात की स्थिति का उल्लेख किया गया है क्योंकि भागवत में मेष, तुला में दिन रात की समानता, वृषादि में दिनों की वृद्धि तथा वृश्चिकादि में रात्रियों का बढ़ना उद्धृत किया गया है[136] ।

ग्रहों की अपनी अपनी राशि में स्थिति तथा गति का वर्णन करते हुये उल्लेख मिलता है कि सूर्य, बुध और शुक्र एक-एक मास एक राशि में रहते हैं अर्थात् ये तीनों ग्रह वैसे भी इकट्ठे अथवा एक राशि आगे पीछे रहते हैं । भौम की डेढ़ मास एक राशि में विद्यमानता, चन्द्रमा सवा दो दिन, शनि दो वर्ष छः मास, जीव एक वर्ष तथा राहु की अठारह मास एक राशि में स्थिति उल्लिखित की गई है, जिस के अनुसार ये ग्रह शुभ अशुभ प्रभाव का फलादेश देते हैं -

राशौ राशौ रविबुधसिता आसते मासमेकम् ।
भौमः सार्द्धं शिशिरकिरणो द्वे दिने पादयुक्ते ।।
त्रिंशन्मासास्तपनतनयो वर्षमेकं च जीवो ।
वैलक्षण्यान्निजनिजगतेरा हुरष्टादशेव[137] ।।

---

134. ना·चं· 14·204

135. वही, 14·205-206

136. यदा मेषतुल्योर्वर्तते तदाहोरात्राणि समानानि भवन्ति ।
यदा वृषभादिषु पञ्चसु च राशिषु चरति तदाहन्येव ।।
- भाग·पुरा· 5·21·4-5

137. ना·चं· 14·232

ज्योतिष सर्वसंग्रह: में भी ग्रहों की स्थिति का उल्लेख प्रस्तुत महाकाव्य की तरह उपलब्ध होता है, जिस से ज्योतिर्विज्ञान सम्बन्धी प्रमाणिकता सिद्ध होती है -

मासं शुक्रबुधादित्याश्चन्द्र: सपाददिनद्वयम् ।
भौमस्त्रिपक्षं जीवोऽब्दं सार्द्ध-वर्षद्वयं शनि: ।।
राहु: केतु: सदाभुक्ते सार्द्धमेकन्तु वत्सरम् [138] ।।

गुरु नानक देव की जन्म कुण्डली भी प्रस्तुत महाकाव्य में उद्धृत की गई है, जिस से देवराज शर्मा की ज्योतिर्विज्ञान की ओर रुचि का आभास होता है । नानक के जन्म ग्रहों को देख कर विद्वान् ज्योतिषी हरिदयालु ग्रहों का शुभाशुभ फलादेश उच्चारित करते हैं -

मूर्तौ भूमि सुत: सित: शनियुतो दृश्चिक्यगो मित्रगो
मित्र: शीतमयूखसूनुसहित: प्रत्यर्थिभावे शिखी ।।
देवेज्योदपिताऽनिकेत निलयो मेषूरणे चन्द्रमा ।
राहूरि: फलतो ग्रहस्थितिरियं श्रीनानकस्योदिता [139] ।।

ग्रहण का उल्लेख करते हुये ज्योतिष चक्र द्वारा सूर्य के ग्रस्त होने का भी उल्लेख किया गया है [140] । इस प्रकार ज्योतिष से सम्बन्धित सभी बातों का उल्लेख मिलने के कारण ज्योतिर्विज्ञान में प्रस्तुत महाकाव्य की प्रामाणिकता स्वत: सिद्ध हो जाती है ।

षड् ऋतु -

भारतवर्ष में छ: ऋतुयें क्रमश: आती हैं । "सुरथ चरित महाकाव्य" में वसन्त, ग्रीष्म, वर्षा, शरद्, हेमन्त और शिशिर के क्रम से ऋतुओं को स्वीकार

---

138. ज्योतिष सर्व संग्रह:, पृ. 39

139. ना.चं. 2.67 एवं द्र. 2.73-74

140. ज्योतिश्चक्रमिदं प्राहु: शिशुमारप्रतिष्ठितम् ।
धूतमीशच्छयैवैतत् तत्र वा वायुमण्डले ।।
रवेरधस्तात्स्वर्भानुस्तिष्ठत्ययुतयोजने ।
पिदधाति रविं यत्तु ग्रहणं तत्प्रचक्षते ।।
- ना.चं. 14.248-249

किया गया है[141]। महाकवि कालिदास ने ऋतु संहार में ग्रीष्म ऋतु से आरम्भ कर ग्रीष्म, प्रावृष, शरद्, हेमन्त, शिशिर और वसन्त के क्रम से छः ऋतुयें उल्लिखित की हैं[142]। मुहूर्त-पारिजात में चैत्र, वैशाख, ज्येष्ठ, आषाढ़, श्रावण, भाद्रपद, आश्विन कार्तिक, मार्गशीर्ष, पौष, माघ और फाल्गुण बारह मासों में क्रमशः दो दो मासों में वसन्त, ग्रीष्म, वर्षा, शरद्, हेमन्त और शिशिर छः ऋतुओं को स्वीकार किया गया है[143]। इस प्रकार एक वर्ष में दो-दो मास में क्रमशः एक ऋतु आती जाती है।

नानक चन्द्रोदय महाकाव्य में ऋतुओं के क्रम का तथा संख्या का उल्लेख उपलब्ध नहीं होता है, परन्तु शरद्, वसन्त, ग्रीष्म और वर्षा ऋतुओं के सौन्दर्य का प्राकृतिक चित्रण किया गया मिलता है।

शरद् ऋतु - वसन्त ऋतु के आने से पूर्व और सूर्य के उत्तर दिशा में चले जाने पर शीत बाहुल्य में न्यूनता का प्रतिपादन किया गया है अर्थात् सूर्य के उत्तरायण में प्रवेश करने पर शरद् ऋतु की समाप्ति दिखाई देती है[144]। शरद् ऋतु के चन्द्रमा की कान्ति भगवान् विष्णु के मुख के समान सुन्दर कही गई है[145]। इस प्रकार शरद् ऋतु के चन्द्रमा की ~~कान्ति=भगवान्=विष्णु=के=मुख=के=समान=सुन्दर=कही गई है~~ अन्धकार को दूर करने वाली अद्भुत शोभा का वर्णन किया गया भी मिलता है।

वसन्त ऋतु - प्रस्तुत महाकाव्य में शरद ऋतु के पश्चात् वसन्त ऋतु का उल्लेख करते हुये उद्धृत किया गया है कि चारों तरफ पुष्पों के पराग से रंजित, कुसुम्भ (राग विशेष से) रंजित और कोकिलों और भ्रमरों के गीतों से गुंजित वसन्त ऋतु शोभायमान होती है -

---

141. सुरथ चरितम् महाकाव्यम्;

142. ऋतु संहार, कालिदास

143. मुहूर्त-पारिजात, पृ.2.

144. कन्यां तुलादि चतुरः प्रविहाय कृष्णां, भीमादिकानिव निरीक्ष्य हतं प्रतापम्।
पूषोत्तरां दिशमुपेत्य चिरायशीतं, श्वानं युधिष्ठिर इवानुगतं निनाय ।।
- ना.चं. 5.2

145. शरदिजशशिसुन्दराननश्री-
मुकुटमणिप्रभया हृतान्धकारः ।। - ना.चं. 13.3।

परागपिष्टातभरेण रंजयन् दिग्वारनारीमुखमुन्मुखः परम् ।
पिकालिगीतौ सुरभिः समाययौ कुसुम्भकौसुम्भपटो विटो यथा[146] ।।

वसन्त ऋतु की चंचलता तथा सुन्दरता का वर्णन करते हुये उद्धृत किया है कि इस ऋतु में तपस्या करने वाले तपस्वियों के मन भी चंचल हो जाते हैं[147] । वनों की शोभा भी पथिकों के मनों को अपनी ओर आकर्षित करती है तथा अपनी रमणीयता की छवि को प्रकट करती है -

कुसुमावचये मृगीदृशो निचितास्याः श्रमवारिविन्दुभिः ।
विपिने विपिने विलोकिताः पथिकानां हृदयान्यपाहरन्[148] ।।

चारों तरफ विभिन्न प्रकार के पुष्पों वाले वृक्षों से सुशोभित वसन्त का उल्लेख करते हुये प्रेमिकाओं से वियुक्तों के लिये वसन्त ऋतु को संतप्त करने वाला प्रतिपादित किया गया है[149] । इस प्रकार प्रस्तुत महाकाव्य में वसन्त-ऋतु के प्राकृतिक सौन्दर्य का निरूपण उपलब्ध होता है ।

ग्रीष्म ऋतु - ग्रीष्म कालीन दिनों में सूर्य की गर्मी का उल्लेख करते हुये उसे दुष्ट आदमी की तरह संतप्त करने वाला उद्धृत किया गया है, जिसकी गर्मी में भूमि पर पाँव रखते ही मनुष्य खिन्न हो जाता है । ग्रीष्म ऋतु के दिनों में सन्ताप होने पर सायंकाल के समय की शीतलता का उल्लेख करते हुये संतप्त दिन का परिणाम रम्य कहा गया है[150] । ग्रीष्म ऋतु में अमृत की वर्षा को ताप हरने वाली कहा गया है अर्थात् जैसे सद्वाणी मन के दुःख को हरती है वैसे ही अमृत की वर्षा ग्रीष्मऋतु की गर्मी को हरती है -

तव तापहरी वाणी यथा ग्रीष्मेऽमृतच्छटा[151] ।

---

146. ना॰चं॰ 5॰3
147. स्वान्तं हन्त तपस्यतामपि तदा लोलं वसन्तो व्यधात् । - ना॰चं॰5॰4 एवं द्र॰ 5॰5
148. ना॰चं॰ 5॰8
149. वही, 5॰6 एवं द्र॰7
150. नवं देशमुपादाय राजेव सुदुरासदः ।
क्रमेण कर्मशकरः प्रततापप्रभाकरः ।। - ना॰चं॰ 5॰11-12
151. ना॰चं॰ 19॰112

इस प्रकार गर्मी के दिनों में अत्यधिक मात्रा में पड़ने वाली धूप का वर्णन कर सूर्य की प्रचण्डता का वर्णन भी दिखाई देता है ।

वर्षा ऋतु - ग्रीष्म ऋतु के पश्चात् वर्षा ऋतु का वर्णन किया गया है, जिस में गर्मी से दु:खी मेंढक, केंकड़े आदि जीवन भूमि से बाहर आ जाते हैं तथा सुखानुभूति प्राप्त करते हैं । आषाढ़ मास के आगमन का उल्लेख करते हुये उद्धृत मिलता है कि नीले काले बादलों द्वारा आकाश को आच्छादित कर, अर्जुन, सर्ज (साल), नीम और कुटजों के फूलों की सुगन्धि से दिशाओं को सुवासित करता हुआ, चातक, केंकड़ों और मेंढकों की ध्वनि से वातावरण को गुंजित करता हुआ तथा लोगों के संताप को हरण करने वाला वर्षा ऋतु का शुभागमन करता हुआ आषाढ़ मास आता है[152] । कामासक्त स्त्रियों की अवस्था का उल्लेख करते हुये वर्षा ऋतु में उन्नत स्तनों से युक्त उन कामिनियों की विद्यमानता पुरुषों की भुजाओं में उद्धृत की गई है[153] । इस प्रकार गर्मी के ताप को नष्ट करने वाली वर्षा ऋतु को माना गया है तथा आषाढ़ मास में इस ऋतु का शुभारम्भ स्वीकार किया गया प्रतीत होता है । अन्य ऋतुओं के बारे में यहाँ वर्णन उपलब्ध नहीं होता है ।

बारह मास -

प्राचीन विद्वानों ने समय का निर्धारण करते समय एक वर्ष को बारह मासों में विभक्त किया है । इन बारहमासों की सीमायें निश्चित करने के लिये सूर्य से 30-30 अंश के बारह कोण निकाले हैं । इस प्रकार पृथ्वी, सूर्य की परिक्रमा करने में कोण के छोटे भाग तथा अधिक अन्तर वाले भाग का चक्कर लगाने में 30 के स्थान पर क्रमश: 28 दिन और 32 दिन लेती है, इसीलिये कई मास 28 दिन के, कई 30 के तथा बत्तीस के भी होते हैं । ज्योतिष शास्त्र के विद्वानों ने आकाश को 30-30 अंश के बारह भागों में विभक्त किया है । ये

---

152. ना.चं. 5.15

153. अस्त्वौतत्सकलं निदाघशमनं तत्कालतापापहा: ।
कान्ता: किन्तु समुन्नतस्तनभरा नीता भुजाभ्यन्तरम् ।।
- ना.चं. 5.13

बाराह मास वैशाख से लेकर चैत्र तक मेष-मीनादि राशियों द्वारा बारपह नामों से स्वीकार किये जाते हैं । जैसे वैशाख मास को मेषमास, ज्येष्ठ को वृष मास, आषाढ़ को मिथुन, श्रावण को कर्क, भाद्रपद को सिंह, आश्विन कन्या, कार्तिक तुला, मार्गशीर्ष वृश्चिक, पौष धनु, माघ को मकर, फाल्गुन कुम्भ तथा चैत्र मास को मीन राशि के नामों से जाना जाता है । इन बारह मासों के भ्रमण द्वारा वर्षों का क्रम चलना है ।

ऋग्वेद में बारह मास के साथ तेरहवें मल मास (पुरुषोत्तममास) का भी उल्लेख मिलता है । वसग व्रतावलम्बन कर अपने-अपने फलोत्पादक बारह मासों को जानते हैं तथा उत्पन्न होने वाले तेरहवें मास मल मास को भी जानते हैं[154] । प्राय: बत्तीसमास के बाद पुन: मलमास (अर्धमास) आता है, जिस के कारण वर्षभर में एक चान्द्र मास की वृद्धि हो जाती है । ज्योतिर्विद चैत्र मास से नूतन वर्ष का शुभारम्भ मानते हैं ।

नानक चन्द्रोदय महाकाव्य में मासक्रम तथा बाराह मासों का उल्लेख उद्धृत नहीं मिलता है परन्तु वैशाख, आषाढ़ आदि के उल्लेख से ज्ञात होता है कि ज्योतिर्विदों द्वारा मान्य वैशाख, ज्येष्ठ आदि मासों के क्रम को स्वीकार किया गया है । वैशाख मास में गर्मी की बढ़ अधिकता का उल्लेख करते हुये नींद की भी अधिकता बताई गई है -

वैशाखे विकसित वन्य पुष्पगन्धै-
रामन्दे वहति समीरणे सुगन्धौ ।
धावित्वा मृदुलतनुर्निताम्ततान्त:
सुष्वाप क्वचिदयमाप्तगाढ़निद्र:[155] ।।

वर्षा ऋतु के आगमन पर आषाढ़ मास का उल्लेख किया गया है -

आषाढ़ समुपेत्य सो धुरिवनं तापं जनस्याहरत्[156] ।।

---

154. ऋ. 1.25.8

155. ना.चं. 2.110

156. वही, 5.15

इस प्रकार प्रतीत होता है कि अन्य मास वैशाख, ज्येष्ठ आदि ही तात्कालीन समाज में प्रचलित थे, जिनका नामोल्लेख प्रस्तुत महाकाव्य में उपलब्ध नहीं होता है। परन्तु बारहमासों और छः ऋतुओं से युक्त संवत्सर का उल्लेख किया गया है,[157] जिस से उपर्युक्त बारह मासों की पुष्टि होती है।

वायुयान -

आकाश मार्ग द्वारा यात्रा करने का प्रचलन प्राचीन काल में ही दिखाई देता है। ऋग्वेद में अन्तरिक्ष की यात्रा करने के लिये मन के समान वेगवान् विमान का उल्लेख मिलता है[158]। वाल्मीकि रामायण में पुष्पक विमान का उल्लेख किया गया है -

स तु दत्तवरः प्रीत्या वानरैश्च समागतः।
पुष्पकेण विमानेन किष्किन्धामभ्युपागमत्[159] ॥

आजकल वैज्ञानिक युग के कारण तीव्र गति से आकाश मार्ग में उड़ने वाले हवाई-जहाज़ों का निर्माण हो चुका है, जिन के द्वारा दूरी को समीपता में परिवर्तित कर दिया गया है।

नानक चन्द्रोदय महाकाव्य में वायुयान के रूप में "विमान" शब्द का प्रयोग दिखाई देता है,[160] जिस से वायुमार्ग में आवागमन के लिये यानों की विद्यमानता का पता चलता है।

हनुमान् की तरह नानकदेव मर्दन और बालसिन्धु के साथ सौ योजन विस्तृत समुद्र को उड़ कर पार करते हैं[161]। इस प्रकार मनुष्य देहधारियों में

---

157. ना.चं. 14.229

158. ऋ. 1.119.1; 3.58.8; 2.40.3; 4.36.1

159. वा.रा. 6.126.54

160. विमानैस्तेजसान् लोकानेष याति प्रशान्तधीः।
शास्त्राभ्यास-प्रभावेण मच्छ्रमरणेन च ॥ - ना.चं. 20.140

161. उडीनो हनुमानिव नानकयोगी ततः परे।
शतयोजनस्य सिन्धोः खातस्तेन सह चावाम् ॥ - ना.चं. 15.52

भी उन की विवक्षणता के फलस्वरूप आकाश मार्ग में उड़ने की दिव्य शक्ति दिखाई देती है । योगी नानकदेव के प्रभाव से मर्दन और बालसिन्धु भी आकाश मार्ग द्वारा जाते हैं, तथा विभिन्न प्रकार के नगरों, गाँवों और पर्वतों को ऊपर से देखते हैं[162] । नानक को आकाश मार्ग में उड़ते हुये देख कर पक्षियों का स्वामी "विरोचन तात" कुपित होता है और नानक से ऐसा कार्य करने की समर्थता के बारे में प्रश्न करता है[163] । यहाँ प्रतीत होता है कि उस समय आकाश मार्ग में मनुष्य नहीं उड़ते थे अथवा वायुयान कम मात्रा में थे, अन्यथा वह पक्षी आश्चर्यचकित नहीं होता । इस प्रकार प्रस्तुत महाकाव्य में वायुयान के बारे विस्तृत विवेचन उपलब्ध नहीं होता है, जिस से वायुयानों के अभाव का पता चलता है ।

पाताल -

पाताल लोक को भागवत पुराण में सात भागों में विभाजित किया गया है । भूमि के नीचे एक-एक कर के सात बिल हैं जो कि परस्पर दस-दस हज़ार के अन्तर पर स्थित है, जिन की लम्बाई चौड़ाई ब्रह्माण्ड कटाह के सदृश है वे अतल, वितल, सुतल, तलातल, महातल, रसातलऔर पाताल नामों से उल्लिखित किये गये हैं[164] । इन बिलों में स्वर्ग से भी अधिक सुखों का वर्णन किया गया है[165] । वहाँ निवास करने वाले महापुरुषों को मृत्यु भगवान् के सुदर्शन चक्र से बताई गई है -

"न हि तेषां कल्याणानां प्रभवति कुतश्चन मृत्युर्विना भगवतेजसश्चक्रापदेशात्।[166]

इन बिलों में बल नाम के असुर, शिवजी और विरोचन पुत्र राजा बलि आदि का

---

162. ना·चं· 10·65-66

163. आकाशमक्षिण इमे तव मानुषस्य
दृष्टवाऽन्तरिक्षगमनं कुपिता: प्रकामम् ।
त्वामर्दयन्ति कथमाशशरीरधारी
भ्राम्यस्यगम्यमितरैर्गगनं प्रपन्न: ।। - ना·चं· 13·57

164. भाग·पुरा· 5·24·7

165. वही, 5·24·8-13

166. वही, 5·24·14

निवास कहा गया है[167] । अमर कोश में अधोभुवनं, पाताल, बलिसद्म, रसातल और नागलोक ये पाँच नाम पाताललोक के उल्लिखित किये गये हैं -

अधोभुवनपातालं बलिसद्म रसातलम् ।
नागलोकोऽथ । कुहरं शुषिरं विवरं बिलम्[168] ।।

नानक चन्द्रोदय महाकाव्य में पाताललोक का उल्लेख भागवत पुराण की तरह ही प्रतिपादित मिलता है । भूमि के नीचे सात भुवन कहे गये हैं जो कि एक दूसरे से दस-दस हज़ार के अन्तर पर ही स्थित हैं, जहाँ की पुरियाँ सुवर्ण रत्नों से सुशोभित वर्णित की गई हैं -

अतलं वितलं चैव सुतलं च तलातलम् ।
महातलमिति प्रोक्तं रसातलमतः परम् ।।
पातालमुच्यते तेषु स्वर्गादप्यधिकं सुखम् ।
दैत्यनागा जरामृत्युरोगदुःखविवर्जिताः[169] ।।

अतल, वितल, सुतल, तलातल, महातल, रसातल और पाताल इन सातों भुवनों में स्वर्ग से अधिक सुख का उल्लेख किया गया है, जिन में दैत्य, नाग आदि जन्य, मृत्यु, व्याधि आदि रोगों से विमुक्त हो कर निवास करते हैं । उन में विभिन्न प्रकार की बावलियाँ, विमल जल से पूर्ण तथा नाग कन्यायें हृदय को मर्दन करने वाली निवास करती हैं[170] । बिल रूपी सात लोकों का विस्तृत विवेचन प्रस्तुत महाकाव्य में अधोनिर्दिष्ट किया गया है जो कि भागवत पुराण में वर्णित सात लोकों के अनुसार है ।

अतल - अतल लोक में "मय" दानव का पुत्र "बल" नामक असुर निवास करता है, जिस ने छियानबे प्रकार की मायाओं की रचना की । उस दानव के जम्भाई लेने पर स्वैरिणी, कामिनी और पुंश्चली तीन स्त्रियाँ उत्पन्न हुई

---

167. भाग॰पुरा॰ 5॰24॰16-18
168. अमर कोश: - 1॰8॰1
169. ना॰चं॰ 14॰254-256
170. वही, 14॰257

प्रस्तुत महाकाव्य में उल्लिखित की गई हैं[171]। भागवत पुराण में अतल लोक का उल्लेख करते हुये इन स्त्रियों द्वारा पुरुषों को "हाटक" नाम का रस पिला कर सम्भोग आदि कराने का प्रतिपादन किया गया है। जिस रस का पान करने से मनुष्य दस हज़ार गजराजों के बल के सदृश शक्तिशाली हो जाता है[172]। इस का उल्लेख प्रस्तुत महाकाव्य में उपलब्ध नहीं होता है।

वितल लोक - भागवत पुराण में उल्लेख है कि अतल के नीचे भूविवरों में अपने पार्षदों तथा भूतगणों से आवृत भगवान् हाटकेश्वर शिवजी निवास करते हैं, जो कि सृष्टि को बढ़ाने के लिये भवानी के साथ रमण करते हैं। हाटकी नाम की नदी के जल को वायु से प्रज्वलित अग्नि बड़े उत्साह के साथ पान करती है तथा हाटकेश्वर के छोड़े हुये सुवर्ण को दैत्य राजाओं के अन्तःपुरों में पुरुष और स्त्रियाँ आभूषण रूप में धारण करते हैं[173]।

नानक चन्द्रोदय महाकाव्य में भी उल्लेख मिलता है कि सृष्टि में वृद्धि करने की इच्छा से हाटकेश्वर भवानी के साथ आसक्त हो वितल लोक में निवास करते हैं। हाटकेश्वर के तेज से निःसृत नदी का नाम हाटकी प्रतिपादित किया गया है -

वितले सुरतासक्तो भवान्यां हाटकेश्वरः।
हाटकान्तस्य वीर्येण नदी तस्यास्तु हाटकम्[174]॥

इस प्रकार भागवत पुराण की तरह वितललोक का वर्णन किया गया मिलता है।

सुतल लोक - वितल लोक के नीचे सुतल लोक कहा गया है जहाँ पर दैत्यपति "बलि" रहता है। दिग्विजय के प्रसङ्ग में अपने पादाङ्गुष्ठ का प्रहार कर के जिस ने रावण को हज़ारों योजन दूर फेंक दिया था। उस के द्वार पर सारे

---

171. मयपुत्रो बलो नाम निवसत्यतले सुरः।
येन षण्णवतिर्मायाः कृता मायाविभूषिताः॥ - ना.चं.14.258 एवं द्र.259

172. अथातले मय पुत्रोऽसुरो बलो निवसति येन ह वा इह सृष्टाः षण्णवतिर्मायाः... ... । - भाग.पुरा. 5.24.16

173. ततोऽधस्तादितले हरो भगवान् हाटकेश्वरः स्वपार्षदभूतगणावृतः.....।
- भाग.पुरा. 5.24.17

174. ना.चं. 14.260

संसार के गुरू भगवान् विष्णु भक्त के वश में हो कर, हाथ में गदा लिये हुए खड़े रहते हैं[175]। भागवतपुराण में सुतल लोक का वर्णन प्रस्तुत महाकाव्य की तरह करते हुये मनुष्य को कर्मबन्धन से नामोच्चारण करने मात्र से छुड़ाने वाला सुतललोक कहा गया है[176]। अर्थात् इस की श्रेष्ठता का अवलोकन कराया गया है।

तलातल लोक - सुतल लोक के नीचे तलातल उल्लिखित है, जहाँ दानवराज "मय" रहता है, वह महादेव द्वारा रक्षित होकर वहाँ निर्भय निवास करता है -

तलातले ततोऽस्तान्मयो नाम महासुरः ।
त्रिपुरारातिना विष्णोश्चक्रात् त्रातोऽतितिष्ठते[177] ।।

भागवत पुराण में उल्लेख मिलता है कि पूर्वकाल में त्रिलोकी के कल्याण की कामना से महादेव ने इस दानव के तीनों पुरों को जला दिया था, परन्तु फिर उन्हीं की कृपा से इस को तलातल लोक प्राप्त हुआ था, जहाँ अन्य प्राणियों से आवृत निर्भय हो कर वह निवास करता है[178]।

महातललोक - नानकचन्द्रोदय महाकाव्य में महातल लोक का उल्लेख करते हुये इस की स्थिति तलातल के नीचे भूविवर में प्रतिपादित की गई है, जिस में अनेक सिरों वाले कुहक, तक्षक आदि सर्पों के गण निवास करते हैं। वे विष्णु के वाहन गरूड़ से भयभीत होकर निवास करते हुए प्रतिपादित किये गये हैं[179]। भागवत पुराण में भी महातल का निरूपण इसी प्रकार उद्धृत मिलता है[180]।

रसातल लोक - नानक चन्द्रोदय महाकाव्य में रसातल लोक को महातल से नीचे उल्लिखित करते हुये वहाँ निवात कवच, पणि, कालेय और देवद्रोही दैत्यों की

---

175. सुतले तु ततोऽस्तादास्ते दैत्यपतिर्बलिः ।
यस्य भक्त्यावशो विष्णुर्गदावान् द्वारि तिष्ठति ।। - ना॰चं॰ 14·161-162

176. भाग॰पुरा॰ 5·24·18-27

177. ना॰चं॰ 14·263

178. भाग॰पुरा॰ 5·24·28

179. महातले काद्रवेयागणाः क्रोधवशाभिधः ।
तक्षकाद्या वैनतेयाद्भिभ्यतो नित्यमासते ।। - ना॰चं॰ 14·264

180. भाग॰पुरा॰ 5·24·29

विद्यमानता कही है, जो कि "सरमा" से उच्चारण किये गये कटु वाक्य से सदा भयभीत होते हुये निवास करते हैं -

रसातले ततोधस्तादृदैतेया दानवास्तथा ।
निवातकवचा नाम कालेया: पणयोऽपि च ।।
वसन्ति देवदोग्धारो हिरण्यपुरवासिन: ।
शुन्या समरया प्रोक्त: परुषं ते च बिभ्यति[181] ।।

भागवत पुराण में सरमा के बारे में एक आख्यायिका उद्धृत की है जिस से दैत्यों के भय का कारण ज्ञात होता है - जब पणि नामक दैत्यों ने पृथ्वी को रसातल में छिपा लिया था, तो इन्द्र ने उसे खोजने के लिये "सरमा" नाम की दूती भेजी । जब वह रसातल में पहुँची तो दैत्यों ने उस से सन्धि की इच्छा से पूछा कि तू क्या चाहती है । परन्तु सरमा ने समझौता करना नहीं चाहा, तथा इन्द्र की स्तुति करते हुये कहा कि "हता इन्द्रेण पणय: शयध्वम्" अर्थात् हे पणिगण तुम इन्द्र के हाथ से मर कर पृथ्वी पर लेट जाओ । इसीलिये उन पणि गणों को इन्द्र का सदा भय रहता है[182] । इस प्रकार प्रस्तुत महाकाव्य में भी इस आख्यायिका की ओर संकेत किया गया है, परन्तु पाठ भेद से "सरमा" के स्थान पर "समरया" का उल्लेख दिखाई देता है ।

पाताल लोक - भागवत पुराण में पाताल का निरूपण करते हुये वासुकि प्रधान के साथ बलि, शंख, कुलिक, महाशंख, श्वेत, धनंजय, धृतराष्ट्र, शंखचूड़, कम्बल, अश्वतर और देवदत्तादि महाक्रोधी एवं बड़े-बड़े शरीर वाले नागों के स्वामियों का उल्लेख किया गया है[183] । नानक चन्द्रोदय महाकाव्य में भी पाताल का उल्लेख करते हुये वहाँ वासुकिप्रधान सहित अन्य नागलोकाधिपतियों की विद्यमानता कही है, जिन के फणों की अतिशय दीप्तिशालिनी मणियाँ अपनी कान्ति से उस पाताल-विवर के अन्धकार को नष्ट कर देती हैं -

---

181. ना·चं· 14·265-266

182. भाग·पुरा· 5·24·30

183. ततोऽधस्तात्पाताले नागलोकपतयो वासुकि प्रमुखा: ·····।।
- भाग·पुरा· 5·24·31

पाताले च ततोऽधस्ताद्वासुकिप्रमुखा भृशम् ।
फणामणिकृतोद्योतास्तिष्ठन्ति बहुमस्तकाः [184] ।।

इस प्रकार प्रस्तुत महाकाव्य में सातों भूविवरों का उल्लेख भागवत पुराण की तरह उद्धृत किया गया है जिस से इन की प्रामाणिकता सिद्ध होती है ।

संकर्षण देव - भागवत पुराण में पाताल के पश्चात् उस के मूल प्रदेश में रहने वाली तामसी कला का उल्लेख किया गया है जो कि पाताललोक से तीन हज़ार की दूरी पर "अनन्त" नाम से प्रसिद्ध है तथा जिसे "संकर्षण" देव भी कहा जाता है [185] । उन भगवान् "अनन्त" के मस्तक पर रखा हुआ भूमण्डल सरसों के दाने की तरह दिखाई देता है [186] । इस प्रकार संकर्षण देव का निरूपण किया गया है । नानक चन्द्रोदय महाकाव्य में भी पाताललोक से तीन हज़ार योजन नीचे हज़ार वदन वाले "श्रीमान्सङ्कर्षण" नाम से प्रसिद्ध शेष नाग" का उल्लेख मिलता है । उस शेष नाग के मस्तक पर स्थित पर्वतों सहित भूमि सरसों के दाने के समान प्रतिभासित होती है [187] । इस प्रकार नानक चन्द्रोदय महाकाव्य में भागवत पुराण की तरह ही संकर्षण देव का उल्लेख भूविवरों का प्रतिपादन करते हुये किया है, जिस से इसकी भौगोलिकता सिद्ध होती है ।

जलयान - स्थल तथा वायुयोनों की तरह जलयानों का प्रचलन भी प्राचीन काल से चला आ रहा है । समयानुसार जल में चलने वाले छोटे बड़े साधनों का प्रयोग किया जाता रहा है । प्राचीन काल में आजकल की तरह समुद्री जहाज़ों, पनडुब्बियों आदि का आविष्कार नहीं था, छोटी छोटी नाकाओं द्वारा जलमार्गों को पार किया जाता था । वैदिक ग्रन्थों में जलयान का उल्लेख

---

184. ना·चं· 14·267

185. भाग·पुरा· 5·25·1

186. यस्येदं क्षितिमण्डलं भगवतोऽनन्तमूर्तेः·····ध्रियमाणं सिद्धार्थ इव लक्ष्यते ।
- भाग·पुरा· 5·25·2

187. योजनानां सहस्राणि त्रिदशस्तस्याप्यधो विभुः ।
श्रीमान्सङ्कर्षणः शेष सहस्रवदनः स्थितः ।।
क्वचिन्मूर्धनि यस्येयं फणामणिगणोज्वले ।
भूमिः सिद्धार्थवद्भाति सपर्वतवनार्णवा ।। - ना·चं· 14·268-269

उपलब्ध होता है । यजुर्वेद में राज्य कर्म करने योग्य शिष्य को गुरू कहते हैं कि "त यानो द्वारो समुद्र की सुखपूर्वक यात्रा कर और अन्तरिक्ष की यात्रा कर[188] अर्थात् यहाँ पर जलयान तथा वायुयान दोनों का पता चलता है ।

नानक चन्द्रोदय महाकाव्यमें जलयान के रूप में पोतों का उल्लेख दिखाई देता है । जलाल पोत पर चढ़ कर समुद्र को पार करता है[189] । यहाँ पोत के बारे अधिक उल्लेख उपलब्ध नहीं है, परन्तु कुछ दिनों में समुद्र को पार करने से प्रतीत होता है कि ये पोत छोटे आकार की नौका जैसे ही होते होंगे, तभी उसे अधिक दिन पार जाने में लगे, आजकल की तरह वैज्ञानिक समुद्री यानों का अभाव ही दृष्टिगोचर होता है । इन पोतों का जल में डूबने का भय भी रहता था, क्योंकि इसी भय से जलाल विलाप करता है[190] । इस प्रकार छोटी नौकाओं का प्रचलन ही सिद्ध होता है ।

समुद्री मार्ग द्वारा व्यापार करने का भी उल्लेख किया गया है । जब वाणिज्य कर्म करने वाले सांयात्रिक का पोत जल में डामगाने लगता है तो वह गुरू से प्रार्थना करता है कि मेरा पोत समुद्र से पार हो जायेगा तो मैं पाँच सौ दीनारों से गुरू जी की अर्चना करूँगा[191] । इस प्रकार प्रतीत होता है कि तत्कालीन समाज में लकड़ी से निर्मित नौकाओं का ही प्रयोगजलयान के रूप में किया जाता था तथा उन्हीं से व्यापार भी किया जाता था । आधुनिक युग की तरह समुद्री ज़हाजों तथा अन्य सुगम जलयानों का प्रयोग नहीं होता था । जल के अर चलने वाले पोत ही होते थे, आजकल की तरह जल के

---

188. समुद्रं गच्छ स्वाहाऽन्तरिक्षं गच्छ स्वाहा देव सवितारं गच्छ स्वाहा ।
- यजुर्वेद भाष्यम्, 6·21

189. आरूह्य पोतं जलधौ जलालः पारं गतस्तस्य दिनैः कियद्भिः ।
ददर्श शैले फलिनः सुवृक्षान् हर्म्याणि रम्याणि शुभाश्च शालान् ।।
- ना·चं· 19·31

190. दोलाधिरूढ़ इव लोलति तत्र पोते, वात्सल्यतः स विललाप जलाल इत्थम् ।
- ना·चं· 19·41, 42

191. कश्चित् सांयात्रिकः पोते भाण्ड भूरिधनं नयन् ।
निमज्जत्युदधौ तस्मिन् प्रति शुश्राव शङ्कितः ।।
गुरोत्वदीयमाहात्म्यात् पोतस्तरति चेन्मम ।
पञ्चशत्या तु दीनारैः पूजां कर्तास्म्यसंशयम् ।। -ना·चं·21·93-94

अन्दर ही अन्दर कोसों मील दूर चलने वाले यानों का प्रतिपादन भी दिखाई नहीं देता है ।

खनिजपदार्थ तथा धातुज्ञान - जिन वस्तुओं को भूमि के धरातल में से खोद कर निकाला जाता है । उन्हें खनिज कहा जाता है । जिन स्थानों में से इन पदार्थों को निकाला जाता है उन्हें खानें (Mines) कहते हैं । इतिहास के शुरू से ही अनेक वस्तुओं की खोज प्रारम्भ हुई, तथा धातुओं और खनिज पदार्थों का पता चलाया गया, समय का अभ्युदय होने पर इन की कीमत बड़ी तथा जिन के पास ये धातुयें थीं, वे लोग धनाढ़य हो गये । सिकन्दर की विजय का भी महान् कारण यही था कि उस की सेना ने पर्याप्त मात्रा में सोने की धातु उपलब्ध कर रखी थी । खनिजसम्पत्ति के कारण संयुक्त राज्य अमेरिका, रूस, जर्मनी, फ्रांस और जापान आदि राष्ट्रों ने अन्य देशों की अपेक्षा अधिक प्रगति की है ।

वर्तमान समय में खनिज पदार्थों का राष्ट्र की समृद्धि के लिये महत्त्व अत्यधिक है । दैनिक जीवन में प्रयोग आने वाली वस्तुयें जैसे सिक्के, आभूषण, गृह, यातायात और अस्त्र-शस्त्र आदि खनिज पदार्थों से निर्मित होते हैं । खनिज पदार्थों की ओर पहले अधिक ध्यान नहीं दिया जाता था, परन्तु जैसे-जैसे मनुष्य की बुद्धि का विकास हुआ, वैसे ही उन के उपयोग को महत्त्वपूर्ण समझते हुये अधिक अन्वेषण किया जाने लगा ।

खनिजपदार्थ अधिकतर पर्वतीय क्षेत्रों में तथा जहाँ पर पृथ्वी के अभ्यन्तर वाले भाग में अधिक उथल-पुथल होती रही है, वहाँ मिलते हैं । खनिज शुद्ध रूप में प्राप्त न होकर, मिट्टी, रेत, चूना आदि में मिश्रित मिलते हैं, जिन्हें रासायनिक प्रयोगों द्वारा शोधित किया जाता है । भारतवर्ष में आज कल ताँबा, लोहा, मैगनीज़, एलुमीनियम धातु, कोबाल्ट, सोना, सुरमा, कोयला, फासफेट, मैगनेसाइट तथा अभ्रक आदि पदार्थ अधिक मात्रा में प्राप्त होते हैं । ये खनिज पदार्थ अधिकतर कच्ची धातुओं के रूप में पर्याप्तमात्रा में मिलते हैं, जहाँ उत्तम प्रकार की शुद्ध धातु उपलब्ध होती है तथा वह भूमि के गर्भ में अधिक नीचे नहीं होती है, ऐसे खनिज क्षेत्र आर्थिक एवं व्यापारिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण होते हैं ।

नानक चन्द्रोदय महाकाव्य में खनिज पदार्थों के प्राप्य स्थानों (खानों) तथा विभिन्न प्रकार के पदार्थों का उल्लेख उपलब्ध नहीं होता है, परन्तु खनिज पदार्थों से निर्मित दैनिक प्रयोग की वस्तुयें दिखाई देती हैं, जिन से खनिज पदार्थों की प्राप्ति का आभास होता है। चाँदी, सुवर्ण और लोहे से निर्मित विभिन्न प्रकार के आभूषणों तथा शस्त्रों का उल्लेख किया गया है[192]। तत्कालीन समाज में रत्न परीक्षकों की विद्यमानता से[193] सुवर्ण तथा रत्नों का बाहुल्य प्रतीत होता है।

खनिज पदार्थों की प्राप्ति के स्थान का भी उल्लेख किया गया जिस से खानों में ही धातुओं की अधिकता का पता चलता है। खानें धातुओं द्वारा जिस प्रकार शोभा देती हैं वैसे मार्ग पर सुसज्जित हाथियों के समूह शोभायमान उल्लिखित किये गये हैं[194]। खानों धातुओं तथा खनिज पदार्थों से भरपूर होती होंगी, तभी प्रस्तुत महाकाव्य में धातुओं द्वारा खानों की शोभा को कहा गया है। इस से अधिक खनिज पदार्थों का प्रतिपादन उपलब्ध नहीं होता।

कला

चित्रकला - प्राचीन ग्रन्थों में विभिन्न प्रकार की कलाओं का उल्लेख किया गया है। मनुष्य जिस किसी वस्तु की रचना करता है वह उसकी कला कहलाती है। वात्सायन कामसूत्र में चौंसठ कलाओं का उल्लेख किया गया है, जिन में "आलेख्य" को चित्रकला माना गया है[195]। जिस देश की जैसी सभ्यता एवं संस्कृति होती है, वैसी ही वहाँ की कलायें होती हैं। कुछ कलाओं को जैसे संगीत, नृत्य, काव्य और चित्रकला आदि को - सर्वोत्कृष्ट स्वीकार किया जाता है।

---

192. रजतकनकदण्डान्धारयन्तः सुवाचो, नवपुरटपिशङ्गैः क चुकोष्णीषकाद्यैः। - ना॰चं॰ 5·87 एवं द्र॰ 5·41-42

193. ना॰चं॰ 8·138, 141

194. मृगा मंदा भद्राः पथिमथि च मिश्राः करिवरा-
श्चलन्तः शैलेन्द्रा इव रुरुचिरे धातुखनिभिः॥ - ना॰चं॰ 5·78

195. "गीतम्, वाद्यम्, नृत्यम्, आलेख्यम्, विशेषक.....बालक्रीडनकानि, वैनयिकीनाम्, वैजयिकीनाम्, व्यायामिकीनां च विद्यानां ज्ञानम्, इति चतुः षष्टिरङ्गविद्या"। - वात्सायन कामसूत्र, 1·3·15

समराङ्गण सूत्रधार में चित्रकला का निरूपण करते हुये उद्धृत है कि दो हज़ार वर्ष से भी अधिक पुरानी बात है कि प्रत्येक नागरिक के घर में रंग का प्याला और रंगने का लेखा (Bowl and Brush) दोनों गृहस्थी के अनिवार्य अंग थे[196]। रामचन्द्र शुक्ल ने चित्र बनाने के विभिन्न साधनों का उल्लेख करते हुये उद्धृत किया है कि "ईश्वर ने प्रकृति की जो कल्पना की है वह उसकी अपनी कल्पना है किसी का अनुकरण नहीं। मनुष्य भी ईश्वर बनने का प्रयास करता है और इसीलिये चित्रकार भी अपनी कला को ही प्रधानता देता है और उसी को चित्रित करना चाहता है। चित्रकार जब अपने रंग और तूलिका से अपनी कल्पना को किसी भित्ति, कागज़ अथवा कण्टान पर उतारता है, तो वह चित्र कहलाता है। चित्र बनाने के अनेकों माध्यम हैं और हो सकते हैं। जैसे - कोयला, खड़िया, मिट्टी, पैंसिल, जल रंग, तेल रंग इत्यादि"[197]। इस प्रकार चित्रकला की प्रधानता तथा सामग्री उल्लिखित की गई है। समराङ्गण सूत्रधार में प्रथम चित्र से सम्बन्धित कथा उद्धृत की गई है कि "एक भयजित् नाम का धर्मात्मा तथा पूतात्मा राजा था। अकस्मात् एक दिन एक ब्राह्मण चिल्लाता हुआ उस के दरवार में पहुँचा और बोला, आप के राज्य में पाप है क्योंकि मेरे पुत्र को मृत्युरूपी गाल ने कवलित कर लिया है। राजा ने यमराज से प्रार्थना की परन्तु न मानने पर दोनों में युद्ध हुआ तथा यमराज हार गया। उसी समय ब्रह्मा वहाँ प्रकट हुये तथा बालक का चित्र बनाने के लिये राजा को कहा, उस के चित्र बनाने पर ब्रह्मा ने उस में प्राणों का संचार कर दिया तथा राजा को कहा कि तुम ने प्रेतों (नग्नों) को भी जीत लिया है इसलिये तुम्हारा नाम "नग्नजित्" हो गया है, जो ब्राह्मण बालक का मेरी कृपा से चित्र बनाया है, वह संसार में प्रथम चित्र है। तुम दिव्यशिल्पी विश्वकर्मा के पास जाओ, वे वास्तु, शिल्प और चित्रकला के आचार्य हैं, वे तुम्हें चित्रशास्त्र एवं चित्र विद्या का अध्ययन करायेंगे"[198]। इस प्रकार चित्रकला के प्रथम चित्र से ले कर आज तक

---

196. समराङ्गण सूत्रधार पृ.39

197. कला और आधुनिक प्रवृत्तियाँ; राम चन्द्र शुक्ल, पृ.69

198. समराङ्गण सूत्रधार, पृ. 39-40

मनुष्य उत्तरोत्तर चित्रकला को उन्नत करता आ रहा है ।

नानक चन्द्रोदय महाकाव्य चित्रकला का चित्रण प्रस्तुत करते हुये विभिन्न प्रकार के रंगों से चित्रित तलवण्डी नगरी का उल्लेख किया गया है, जो कि अष्टापद आकार के मार्गों तथा आकर्षणीय चित्रकला से अद्भुत दिखाई देती है[199] । गुरु नानकदेव की वरयात्रा के समय मार्ग में लोग पंक्तियों में सुन्दर ढंग से चली हुई बारात को चित्रकार द्वारा सुसज्जित देखते हैं[200] । अर्थात् तत्कालीन समाज में चित्रकला की अनुपम छवि थी, तभी लोगों द्वारा सुन्दर दिखाई देने वाली बारात को चित्रकार द्वारा चित्रित माना गया है । इस प्रकार जन साधारण द्वारा इस कला की शोभा को जानने का ज्ञान होता है ।

प्राकृतिक सौन्दर्य की तुलना भी प्रस्तुत महाकाव्य में चित्रकार द्वारा निर्मित वस्तु से की गई है, जिस से चित्रकारिता का चरमोत्कर्ष दिखाई देता है । पर्वत को देखकर कहते हैं कि मणिरूपी किरणों को धारण करने वाला यह पर्वत स्वयं विधाता द्वारा चित्रकर्म में कुशल चित्रकार द्वारा निर्मित कराया गया है[201] । इस प्रकार विविध प्रकार के चित्रकारों तथा उन की कलाकृतियों के प्रदर्शन से ~~इस प्रकार विविध~~ तत्कालीन समाज में चित्रकला का अच्छा प्रचलन प्रतीत होता है ।

वास्तुकला - वास्तुकला में पारंगत आचार्य विश्वकर्मा को माना जाता है । पुरातन काल में राजभवनों का निर्माण होने से पूर्व दुर्गों की रचना हुई थी । वास्तुकला में कुशल व्यक्ति द्वारा विनिर्मित भवन तब तक श्रेष्ठ नहीं माना जाता है, जब तक कि भव्य आकृतियों का विन्यास उस में नहीं किया जाता है । वास्तुकला में कुशल कलाकार आजकल के इन्जीनियरों की तरह ही होते थे, जो कि भवन तथा अन्य दुर्ग आदि बनाने का विशेष ज्ञान रखते थे । रामदेव उल्लेख करते

---

199. ना·चं· 2·13

200. ग्रामे ग्रामे पत्तने पत्तने च, वद्धश्रेणिर्जन्ययात्रां दिदृक्षुः ।
चित्राकारः सक्तचित्तेक्षणत्वा,- ल्लोके लोकोऽलोक्यत प्रत्युतैभिः ।। -ना·चं· 5·53

201. नानको ब्रूतशैलो यं महामणिगणोज्वालः ।
मणीनां किरणैर्धात्रा चित्रकर्म विनिर्मितम् ।।
- ना·चं· 12·22

हैं कि "रामायण काल में नल और नील जैसे महान् इन्जीनियरों का वर्णन मिलता है, जिन्होंने भारत से लंक तक पुल बनाया । महाभारतकाल में भी विश्वकर्मा तथा मय नामक बड़े इंजीनियरों का वर्णन मिलता है, जिन्होंने पाण्डवों का सुन्दर महल तैयार किया था तथा आज भी भारतीय शिल्पी अपने आप को विश्वकर्मा की सन्तान कहने में गर्व का अनुभव करते हैं[202] । कौटिल्य अर्थशास्त्र में यन्त्रों द्वारा महलों को बनाने और उन को सांपों तथा अग्नि से सुरक्षित रखने के लिये भी कई पालिश और पाउडरों के प्रयोग का उल्लेख किया गया है[203] । समराङ्गण सूत्रधार में राजवेश्म का उल्लेख करते हुये प्रतिपादन किया है कि 108 हाथ वाला ज्येष्ठ, 90 हाथ वाला मध्यम तथा 70 हाथ वाला निकृष्ट राजवेश्म होता है -

अष्टोत्तरशतं ज्येष्ठं मध्ये स्यान्नवतिकरान् ।
जघन्यं सप्ततिकरान् राजवेश्म प्रशस्यते[204] ।।

इस प्रकार परिमाण द्वारा राजवेश्म निर्माण करने को उद्धृत कर, राजभवनों में गजशालाओं तथा अश्वशालाओं का भी निर्माण वास्तुशास्त्र के अनुसार करने का उल्लेख किया गया है[205] ।

नानक चन्द्रोदय महाकाव्य में विभिन्न प्रकार के भवनों के निर्माण द्वारा तत्कालीन वास्तुकला प्रतीत होती है । मणियों से जड़ित, सुवर्ण के समान उज्ज्वल, आकाश के समान उन्नत, नीलनलिन की सुगन्ध से वासित, मुक्ताओं की पंक्तियों से सुशोभित तथा तोरण आदि से युक्त भवनों का उल्लेख किया गया है[206] । तलवण्डी नगरी का उल्लेख करते हुये कुशलता के साथ निर्मित दुर्गों का निरूपण

---

202. भारत वर्ष का इतिहास, आचार्य रामदेव, पृ. 65

203. कौ.अर्थ.शा. पृ.39

204. समराङ्गण सूत्रधार 43.1

205. लक्ष्मी गजशालामिदानीमभिदध्महे ।
चतुरश्रीकृतेक्षेत्रे भागैर्भक्ते ततोऽष्टभिः ।। - समराङ्गण सूत्रधार, 45.1-2; 46.1-2

206. ना.चं. 13.121

भी किया गया है,[207] जिस से दुर्ग निर्माण में भी शिल्पियों की दक्षता दिखाई देती है । तलवण्डी की अद्भुत शोभा तथा चित्रकला का अवलोकन कर "विश्वकर्मा" भी विस्मित हो जाये,[208] इस का उल्लेख किया है, जिस से प्रतीत होता है कि वास्तुकला चरमोत्कर्ष पर थी । गुरूनानक देव की वर यात्रा के प्रस्थान पर मार्ग में आने वाले भव्य भवनों का चित्रण भी मनोहर किया गया है,[209] जिन का निर्माण कर कलाकृति की गरिमा को सुरक्षित रखा गया है । नानक देव के श्वसुर "मूलचन्द" के भवन की शोभा भी मन को आकर्षित करने वाली प्रतिपादित की गई है[210] । बावलियों, तालाबों तथा कुओं आदि का निर्माण भी वास्तुकला की दृष्टि से सुन्दर ढंग से किया गया है, जिन के चारों तरफ निर्मित सीढ़ियाँ मणियों से जड़ित दृष्टिगोचर होती हैं[211] । इस प्रकार प्रस्तुत महाकाव्य के अध्ययन से प्रतीत होता है कि तत्कालीन समाज में वास्तुकला में निष्णात शिल्पी रहते थे जो कि सुन्दरतम भवनों, गृहों आदि का निर्माण करते थे ।

संगीतकला - संगीतकला भारतीय संस्कृति का प्रधान अङ्ग है । संस्कृति के साथ-साथ साधना का भी सङ्गीत मुख्य अंग है । सम् उपसर्ग पूर्वक गै (गाना) धातु से संगीत शब्द की व्युत्पत्ति होती है, इसीलिये संगीत का अर्थ गाना है । व्यवहारिक रूप से नृत्य एवं वाद्य को भी संगीत समझा जाता है । "गीतं वाद्यं च नृत्यं च त्रयं संगीतमुच्यते" यह उक्ति तीनों को संगीत कला में निहित करती है । संगीत कला चुम्बक-शक्ति की तरह प्राणिमात्र का आकर्षण करती है । योग के ज्ञाता याज्ञवल्क्य ने उल्लेख किया है कि जो वीणावादक मर्मज्ञ विधि से भरतादि मुनियों द्वारा प्रतिपादित श्रुति (जो सात स्वरों से बाईस प्रकार की होती है) जाति (षड्ज सात शुद्ध और ग्यारह संकर जातियाँ कुल मिला कर अठारह) और ताल का ज्ञान रखता है, वह बिना परिश्रम के मोक्ष को प्राप्त कर लेता है -

---

207. ना.चं. 2.5

208. वही, 2.12

209. वही, 5.77

210. वही, 5.104 एवं द्र. 111

211. वही, 13.120

वीणावादनतत्वज्ञः श्रुतिजाति विशारदः ।
तालज्ञश्चाप्रयासेन मोक्षमार्गं नियच्छति[212] ।।

यदि संगीत को जानने वाला परमपद को प्राप्त नहीं करता है तो भी रूद्र के साथ निवास कर उस के साथ ही आनन्द प्राप्ति करने का उल्लेख किया गया है[213]। सामाजिक जीवन में संगीत कला की परमावश्यकता दिखाई देती है, देवी देवताओं के लिये याग-यज्ञों में साम गान किये जाते थे, जिन के अभाव में यज्ञ-फल असम्भव माना जाता था । गीता में गायन है कि मैं वेदों में सामवेद हूँ -

वेदानां सामवेदोऽस्मि देवानामस्मि वासवः ।
इन्द्रियाणां मनश्चास्मि भूतानामस्मि चेतना[214] ।।

वेदों में मन्त्रों का उदात्त, अनुदात्त और स्वरित से जो उच्चारण किया जाता है, वह गान ही कहलाता है । कामसूत्र में कन्याओं को चौंसठ कलाओं का अभ्यास एकान्त में करने के लिये कहा गया है, जिन में संगीत तथा नृत्य भी आता है[215] । इस प्रकार पुरूषार्थ चतुष्टय की प्राप्ति संगीत से संभव होती है । भगवद्भक्ति युक्त मनुष्य को धर्म, संगीत द्वारा ऐश्वर्य सम्पन्न लोगों से प्राप्त सम्मान द्वारा अर्थ, अर्थ से काम और भगवान् की प्रसन्नता स्वरूप फल द्वारा मोक्ष प्राप्त होता है, इसलिये संगीत सुखजनक नाद विशेष है ।

नानक चन्द्रोदय महाकाव्य में संगीतकला के अंगों-गीत, वाद्य और नृत्य - का उल्लेख किया गया है । वाद्य यन्त्र वीणा का नाद करते हुये वैणिक लोग दीर्घस्वर में गान करते हुये मार्ग पर चल रहे पथिकों के मन को मोहित कर अपनी ओर आकृष्ट कर लेते हैं -

गायन्ति दीर्घस्वरमत्यूर्वं, ये वैणिकाः सैन्धवसन्निविष्टाः ।
वीणानिनादानुगतं जगुस्ते, मनांसि जहुः पथि संचलन्तः[216] ।।

---

212. याज्ञ.स्मृ. 3.115
213. वही, 3.116
214. गीता, 10.22
215. वात्सायन कामसूत्र, 1.3.13, 15
216. ना.चं. 5.89

वीररस से पूर्ण संगीत का उल्लेख भी दिखाई देता है । अश्वों पर आरूढ़ वीणावादकों के उदात्त स्वर द्वारा गाये जाने वाले गीत का श्रवण कर शरीर रोमांचित हो जाता है और पुन: पुन: उसे श्रवण कर भीरू भी शूरवीर बन जाते हैं[217] । सामाजिक जीवन में विवाह के शुभ कार्य पर स्त्रियों द्वारा एकत्रित हो गीत गाने का प्रचलन भी दिखाई देता है[218] ।

जिस प्रकार इन्द्र की पुरी में अप्सरायें नृत्य करती थीं उसी प्रकार के अभूतपूर्व नृत्य का प्रदर्शन नानकदेव की वरयात्रा के समय उद्धृत किया गया है,[219] जिस से संगीत के साथ नृत्यकला का अवलोकन होता है ।

संगीतकला के साथ वाद्य यन्त्रों का अभिन्न सम्बन्ध है । मार्कण्डेय पुराण में वेणु, वीणा, पणव, मृदङ्ग, और शंख आदि का उल्लेख मिलता है[220] । भागवत-पुराण में वेणु वाद्य यन्त्र का उल्लेख प्राप्त होता है -

इति वेणुरवं राजन् सर्वभूतमनोहरम्[221] ।

प्रस्तुत महाकाव्य में भी शंख की ध्वनि मंगलसूचक कार्यों में बजाई जाती है,[222] जिस से इसका वाद्य यन्त्र के अन्तर्गत माना जाना प्रतीत होता है । भेरी, मुरज, वेणु, काहल,[223] वीणा और मृदङ्ग[224] इत्यादि वाद्य यन्त्रों तथा विशेष संगीत के गान द्वारा जड़ पदार्थ वृक्षों में भी चेतना पैदा कर देने वाला रागिराय के उल्लेख से तत्कालीन समाज में संगीत, नृत्य के साथ-साथ वाद्यकला का अवलोकन भी होता है ।

---

217. अश्वास्ढैरत्युदात्तस्वरेण, वीणावादैर्गीति शुभं प्रगीतम् ।
रोमांचाली कांचुकं पर्यधूय, च्छ्रावं श्रावं भीरवश्चापि शूरा: ।। -ना·चं· 18·10

218. ना·चं· 5·33, 40

219. नृत्यं तथा चकारभूतपूर्वं, पुरो यथैवाप्सरसो मघोन: ।। - ना·चं· 5·90

220. वाद्यैर्भनरोमैर्वीणा वेणुशंखादिभिर्नरा: ।
..... ।।
मृदंगपणवातोद्यहारिवेश्वशाकुलम् ।
..... ।। - मार्क·पुरा· 17·12,21·10।

221. भाग·पुरा· 10·21·6

222. ना·चं· 2·42

223. भेरीणां मुरजानां वेणूनां काहलानां च ।। - ना·चं· 5·76 एवं द्र·6।

224. काहलावेणु वीणाश्चमृदङ्गाश्च समन्तत: ।
- ना·चं· 5·49 एवं द्र· 26, 52

इन वाद्ययन्त्रों के स्वर, लय, ताल आदि का श्रवण कर मनुष्य उसी लय में आनन्दित हो कर मूर्च्छित होते हैं -

आदाय मर्दनो बिभ्यद्वादयामास वल्लकीम् ।
श्रुतिस्वरग्रामताला आमूर्च्छन् मूर्च्छनास्ततः[225] ।।

वन में निवास करने वाले प्राणियों का भी वीणा को श्रवण कर मोहित हो जाना उल्लिखित किया गया है[226] ।

वीणा पर बजाये जाने वाले तानों में ग्रामतान राग[श्रेष्ठ] का उल्लेख करते हुये, उसे दो प्रकार का कहा गया है । तान प्रधान और मूर्च्छनाप्रधान । जब सभी कुटुम्बी एकत्रित हो कर स्वरों का गान करते हैं तब इसे ग्रामतान कहा गया है जिस में सप्त स्वर प्रस्फुटित है तथा जिस के उपर्युक्त दो भेद कहे गये हैं[227] । इस प्रकार नानक चन्द्रोदय महाकाव्य में वाद्य यन्त्रों द्वारा लय, तान आदि का सम्यक् ज्ञान प्राप्त कर वादकों द्वारा उन से स्वरों को प्रस्फुट करने का उल्लेख किया गया है ।

अन्य कलायें -

प्रस्तुत महाकाव्य में उपर्युक्त कलाओं के अतिरिक्त अन्य कला कौशल भी वर्णित मिलते हैं । श्रेष्ठ घुड़सवार अश्वों पर आरोहित हो कर गलियों में नृत्य करते हैं तथा अपनी हस्त-कला का कौशल लोगों को दिखाते हैं,[228] जिन से अश्वों पर बैठ कर खड्ग, धनुष चलाना आदि आता है । मदारी की तरह क्रीड़ा का प्रदर्शन करने वाले शिल्पियों का उल्लेख भी किया गया है जो कि अग्नि के गोलों को मुख से निकाल कर, सुवर्ण पुष्पों की तरह छवि को चारों ओर प्रसारित कर, बड़े-बड़े सांपों की क्रीड़ा का भी प्रदर्शन करते हैं[229] । वाहीक

---

225. ना·चं· 7·29
226. वही, 7·30
227. तपस्विना प्रीततरेण दत्ता, सेयं विपञ्ची विपिने वरिष्ठा ।
सग्रामताना: किल वाहितायां, सप्तस्वरा यत्र समुन्मिषन्ति ।।
- ना·चं· 7·77
228. ना·चं· 5·79
229. वही, 5·85-86

देश में उत्पन्न अश्व क्रीड़ा करते समय प्रणाम करते हैं तथा परस्पर आनन्द का अनुभव करते हैं[230] । जिस से पशुओं की कला कुशलता का आभास होता है । वैद्यविद्या प्राचीन काल से चली आ रही है जिस के द्वारा वैद्य लोग हस्त-नाड़ी के ज्ञान द्वारा रोग को ज्ञात कर उस का उपचार करते हैं । प्रस्तुत महाकाव्य में भी वैद्य-विद्या में निष्णात वैद्यों से परिवृत तलवण्डी नगरी का वर्णन किया गया है, जिस से तत्कालीन समाज में विद्यमान वैद्य कला का आभास होता है -

देवज्ञः कविको विदेर्गुणिगणैर्भूयश्च वैद्यैर्वृता ।
दृष्टा योगकलेन विश्वकुतुका लोकाय या कल्पते[231] ।।

इस प्रकार प्रस्तुत महाकाव्य में विभिन्न प्रकार की कलाओं का प्रत्यक्षतः चित्रण किया गया है, जिस से भारतीय संस्कृति की मूल भूत प्राचीन कलाओं का दिग्दर्शन होता है ।

= = = = = =

---

230. ना.चं. 5.7

231. वही, 2.14

दशम अध्याय

उपसंहार

दशम अध्याय

उपसंहार

पूर्वोक्त पृष्ठों में कविवर देवराजशर्मा के नानकचन्द्रोदय महाकाव्य के सांस्कृतिक पक्ष का अनुशीलन किया गया है इससे स्पष्ट होता है कि श्री देवराज शर्मा का अनुभव और सम्पर्क तत्कालीन भारतीय समाज के विविध वर्गों और पक्षों के साथ था, तथा संस्कृति से सम्बन्धित जितने भी तत्त्व या अङ्ग हैं, अधिकांशत: उन सबकी चर्चा और संदर्भ नानकचन्द्रोदय महाकाव्य में उपलब्ध हैं। कवि की दृष्टि भारतीयता तथा भारत के अन्त:करण की प्रकाशिका है। श्री गुरुनानक जी के माध्यम से अभिव्यक्त विचार जीवन-तत्त्वों एवं भावनाओं की अमूल्य धरोहर हैं, वे उनकी मानवीय संवेदनशीलता, लोकजीवन में दृढ आस्था और उसके उज्ज्वल भविष्य की व्यग्र चिन्ता का समुज्ज्वल लेखा हैं।

नानकचन्द्रोदय महाकाव्य में समकालीन जीवन के व्यापक अनुभव के आधार पर कतिपय शाश्वत तत्त्वों का अन्वेषण किया गया है। उन तत्त्वों में कुछ तत्त्व ऐसे भी थे जो उस समय हिन्दू मुस्लिम धर्मावलम्बियों के अन्तर्गत विभिन्न सम्प्रदायों में मान्य गुणों के रूप में स्वीकृत थे, उनका विश्लेषण तथा विवेचन काव्य के प्रमुख नायक श्रीगुरुनानक देव जी के द्वारा विभिन्न वर्णों, समाजों और वर्गों के बीच भेदभाव को मिटाने से हुआ है, तथा उन्होंने मानव-मानव एक है, यह मूलमन्त्र सबको सिखाया। प्रत्येक मानव में एकत्व और समत्व की स्थापना उस चेतन तत्त्व के अनुभव से प्राप्त होती है, जो सब में परिव्याप्त है। उसे सभी धर्म मानते हैं, तब उसके नाम, रूप में भेद हो सकता है। किन्तु यह नाम-रूप का भेद वास्तविक नहीं है। यदि इसको समझ लिया जाय तो मूलभूत धार्मिक एकता प्रतिष्ठित की जा सकती है।

इसी आध्यात्मिक तत्त्व की खोज और प्रतिपादन ही श्री गुरुनानक देव जी की देन रही है । वे व्यापक मानव धर्म के व्याख्याता के रूप में हमारे समक्ष आते हैं उन्होंने मानव को अमानवीय व्यवहार छोड़कर मानवीय व्यवहार को अपनाने का सदुपदेश दिया, तथा धर्म में मानव जीवन के विकासशील तत्त्वों को ही स्थान दिया, तर्ककर्कशाबुद्धि से उन्होंने बाह्याडम्बर एवं अन्धविश्वास के आवरण को भस्म कर दिया ।

नानकचन्द्रोदय महाकाव्य की सांस्कृतिक गरिमा मानवमात्र की समरसता और विश्वबन्धुत्व की भावना में अनुस्यूत है । भक्तिमार्ग की स्थापना विविध देवताओं का सम्मान स्मरण, जाति के भेद-भाव को दूर करना, ऊँच-नीच का व्यवहार न करना आदि अनेकों आदर्शों से तत्कालीन समाज में एकता का सूत्रपात हो जाता है, यह कहना न होगा कि श्रीगुरुनानक देव जी का मुख्य लक्ष्य उन्नतमना, उदार, सहिष्णु और मानवीय दृष्टि को लेकर मानव के समष्टिमूलक जीवन में सौन्दर्य सौहार्द तथा सौख्य की अभिवृद्धि करना रहा है ।

दार्शनिक दृष्टि से भी नानकचन्द्रोदय महाकाव्य में कवि ने अद्वैतवाद, एकेश्वरवाद, कर्मवाद, भाग्यवाद आदि का विश्लेषण करते हुए ब्रह्म को सर्वव्यापक मानकर उसके असीम महत्त्व को स्वीकार किया है । श्रीगुरुनानक देव जी ने धर्म के विकृत पक्ष पाखण्ड, बाह्याडम्बर, छूआछूत तथा ऊँच-नीच के भेद-भाव आदि की तीव्र भर्त्सना करते हुए धर्म के सामान्य तत्त्वों की स्थापना की, तथा भक्ति, प्रेम, अहिंसा, सदाचरण, सत्यव्रत, एवं जीवमात्र में अद्वैत की झाँकी देखने पर विशेष बल दिया है ।

मानव जीवन को महान् मूल्य का मूल्याङ्कन करते हुए श्रीगुरुनानक देव जी ने अपनी उदार दृष्टि का परिचय दिया है, मानवमात्र ईश्वर की वासभूमि है । उन्होंने किसी भी धर्म की निन्दा नहीं की अपितु विभिन्न धर्मों जातियों तथा वर्णों में विभक्त मानवसमुदाय मूलत: एक है, यह स्वीकार किया है । सर्वजनहिताय की भावना से प्रेरित होकर उन्होंने समाज के व्यापक एवं उदात्त स्वरूप का निर्माण किया । वे सर्वदा परोपकार तथा समाजसेवा का भाव लेकर मानव जाति को उन्नत करने का सफल प्रयत्न करते रहे । उनका

धर्म साम्प्रदायिक, देश, जातिगत धर्म नहीं है । उनकी सांस्कृतिक दृष्टि सार्वभौम है और समस्तमानवजाति की संस्कृति हो सकती है । उसको अपनाकर समस्त विश्व में एक महत्त्वपूर्ण समाज की स्थापना हो सकती है, तथा शोषण और उत्पीडन का तिरस्कार सर्वथा सर्वदा के लिए हो सकता है । साथ ही जनवादी संस्कृति के निर्माण से नवीन मुक्त समाज की रचना-प्रक्रिया में नानकचन्द्रोदय महाकाव्य में संगृहीत श्रीगुरुनानक देव जी के सदुपदेश अधिक महत्त्वपूर्ण सिद्ध हो सकते हैं ।

उक्त विवेचन के अतिरिक्त प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध के प्रत्येक अध्याय के विश्लेषण का निष्कर्ष भी समासत: प्रस्तुत किया जाता है ।

प्रथम अध्याय के विवेचन से सिद्ध होता है कि साहित्य, समाज और संस्कृति का परस्पर अभिन्न सम्बन्ध है । सत्साहित्य आदर्श समाज संस्कृति की ही देन है । सभी सांस्कृतिक तत्त्वों के अध्ययन से नानकचन्द्रोदय महाकाव्य संस्कृतिप्रधान महाकाव्य सिद्ध होता है । यह भी इस अध्याय की अन्तिम संसिद्धि है ।

द्वितीय अध्याय के अनुशीलन से मानवीय आदर्शों का महत्त्व प्रत्येक मानव के जीवन में ग्राह्य है । श्री गुरुनानक देव जी की सामाजिक सेवा, त्याग, तपस्या सभी प्राणियों में अद्वैतभावना आदि से आदर्शव्यक्तित्व का मूल्याङ्कन सरलतया सुधी पाठक कर सकेगा । यह भी इस अध्याय की विशेषता है ।

तृतीय अध्याय के अध्ययन से परिवार के विविध स्वरूपों का विश्लेषण, पारिवारिक जीवन का लेखा जोखा, भ्रातृस्नेह, मातृ-पितृ-वात्सल्य, दाम्पत्यप्रेम, स्वामिसेवक सम्बन्ध का महत्त्व स्वत: सिद्ध हो जाता है । तथा आदर्श परिवार ही सुखसमृद्धि का निधि हो सकता है, यह भी इस अध्याय का निष्कर्ष तत्त्व है ।

चतुर्थ अध्याय के परिशीलन से समाज का आधारस्तम्भ वर्णाश्रमधर्म का परिपालन आदर्श समाज का जन्मदाता हो सकता है । यह भी सिद्ध हो सकेगा, इसके साथ ही चातुर्वर्ण्य सृष्टि का प्रतिपादन, उनके वैवाहिक सम्बन्ध, सामाजिक

आदर्श क्या-क्या होते हैं । जिनके अपनाने से आदर्शमय समाज बन सके, यह भी इस अध्याय की देन है ।

पंचम अध्याय में धर्म को अनुशीलन का विषय बनाया गया । धर्म का मानव जीवन में सर्वोपरि महत्त्व है । उसके अनुष्ठान में विविध साधनों का विश्लेषण, नवधाभक्ति, धार्मिक अनुष्ठानों में भक्ति का महत्त्व तथा विविध उपायों की उपादेयता का विवेचन भी धर्माचरण की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण सिद्ध होता है इसके साथ ही धार्मिक क्षेत्र में निषेधात्मक कृत्य भी हेय होने चाहिएं, यह भी सिद्ध किया गया है ।

षष्ठ अध्याय में दार्शनिक मान्यताओं के विश्लेषण के अन्तर्गत विविधवादों का विवेचन किया गया है । साथ ही नैतिकआदर्शों के अन्तर्गत अतिथिसत्कार, विनम्रव्यवहार आदि का प्रतिपादन भी सांस्कृतिकदृष्टि-कोण का परिचायक सिद्ध होता है ।

सप्तम अध्याय में आर्थिक जीवन का विश्लेषण करते हुए जीवन में अर्थ का महत्त्व, उसके प्राप्ति के साधन विविध व्यवसायों के प्रतिपादन से तत्कालीन समाज की आर्थिक सम्पन्नता का अनुमान सहजतया लग सकेगा । साथ ही देश या समाज में अर्थ का महत्त्व प्राचीनकाल से ही चला आया है, यह भी सिद्ध हो जाता है ।

अष्टम अध्याय में राजनीति का विश्लेषण है । शासन के प्रमुख अंगों का युद्ध तथा संधि के प्रसङ्गों का, विविध प्रकार की सेनाओं का, विविध प्रकार की कूटनीतियों का विवेचन भी तत्कालीन राजनीति की स्वस्थता एवं जागरूकता का परिचय उपस्थापित करके देश एवं समाज की रक्षा का उत्तरदायित्व प्रत्येक देशवासी या नागरिक के सबल कंधों पर होता है, यह भी सिद्ध होता है ।

नवम अध्याय में ज्ञान-विज्ञान के अध्ययन से विविध लोकों का, द्वीपद्वीपान्तरों का, पर्वत-वनों का, खगोलविद्या का, विविधयानों का पाताल से सम्बद्ध, लोक एवं खनिजपदार्थों का तथा सभी कलाओं का ज्ञान

सरलतया हृदयङ्गम हो जाता है । जिससे मानव जीवन में ज्ञान के साथ कला-कौशल का महत्त्व भी सिद्ध हो जाता है ।

अन्त में मेरे इस सांस्कृतिक परिशीलन से आबालवृद्ध भारताभिज्ञ लाभान्वित हो सकेगा, तथा हम अपनी अमूल्य विरासत भारतीय संस्कृति की रक्षा करने में समर्थ होकर पुन: विश्वगुरु के पद को प्राप्त कर सकेंगे, यही मेरी आकांक्षा एवं विश्वास है । मेरे इस प्रयास में जो भी त्रुटि हों, उन्हें विद्वन्मण्डल "गच्छत: स्खलनं क्वापि भवत्येव प्रमादत:" इस कथनानुसार क्षमा करेगा ।

इति ।

= = = = = =

संदर्भ-ग्रन्थ-सूची

(क) संस्कृत-ग्रन्थ

1) अग्निपुराण, सं., पं. श्रीराम शर्मा आचार्य, संस्कृत संस्थान, बरेली, 1968

2) अथर्ववेद, विश्वेश्वरानन्द-वैदिक-शोध संस्थान, साधु आश्रम, होशियारपुर, प्रथम संस्करण, 1961

3) अमर कोश, सं. गुरुप्रसाद शास्त्री, चौखम्बा संस्कृत सीरीज़, वाराणसी, 1950

4) अष्टाध्यायी, पाणिनिकृत, रामलाल कपूर ट्रस्ट, अमृतसर, 1964-68

5) अभिज्ञान शाकुन्तलम्, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, वाराणसी, पटना, प्रथम संस्करण, 1970, द्वितीय संस्करण 1974

6) अर्थशास्त्र, कौटिल्यकृत - प्रकाशक - डा. चमनलाल गौतम, संस्कृति संस्थान, ख्वाजा कुतुब (वेदनगर) बरेली, प्रथम संस्करण, 1973

7) अष्टादश स्मृति, वंकटेश्वर स्टीम प्रेस, बम्बई, 1908

8) आदि पुराण, जिनसेनकृत - भारतीय ज्ञानपीठ, काशी, भाग प्रथम, 1951 तथा द्वितीय भाग 1965

9) आश्वलायन गृह्यसूत्र, सं., एम.ए.एफ. स्टेंज्लर लिप्सिग, 1864 । हरदत्तअनाकुला, जयस्वामिकृत विमलोदया तथा देव स्वामिन् नारायण कृत टीकाओं सहित

10) आपस्तम्ब गृह्यसूत्र, ओरियण्टल लायब्रेरी सीरीज़, मैसूर

11) आपस्तम्ब धर्मसूत्र, चौखम्बा संस्कृत सीरीज़, वाराणसी, 1939

12. उपनिषत्सङ्ग्रहः, मोतीलाल बनारसीदास, बंगलो रोड़, जवाहर नगर, दिल्ली, चौक, वाराणसी-1, अशोक राजपथ पटना-4, बिहार, प्रथम संस्करण, 1970

13) ऐतरेय ब्राह्मण, सं. टी आफ्रेख्ट, बान (जर्मनी) 1879 तथा त्रिवेन्द्रम्, 1942

14) ऐतरेय ब्राह्मण, आनन्दाश्रम प्रेस द्वारा प्रकाशित, द्वितीय- आवृति 1931

15) ऋग्वेद संहिता, सायण भाष्य द्वितीय संस्करण, 1940

16) ऋतुसंहार, कालिदासकृत - हरिप्रसाद भारीरथ, 1971

17§ कठोपनिषद्, वसन्त श्री सातवलेकर, बी॰ए॰, आनन्दाश्रम, पारडी§सूरत§, 1950, वि॰सं॰ 2007 तथा गीता प्रेस गोरखपुर, 2048 वि॰

18§ कथा सरित्सागर, सोमदेवकृत - निर्णयसागर प्रेस तुकारामजाव द्वारा प्रकाशित, तृतीय संस्करण, वि॰सं॰ 1837

19§ कादम्बरी, प्रकाशक रतिरामशास्त्री, साहित्य भण्डार, मेरठ, द्वितीय संस्करण, 1969

20§ कालिदास ग्रन्थावली, सं॰ रेवाप्रसाद द्विवेदी, काशी हिन्दु विश्वविद्यालय, वाराणसी, 1976

21§ कामसूत्र, वात्सायनकृत - चौखम्बा संस्कृत सीरीज़ आफिस, वाराणसी-1, 1964

22§ कालिका पुराण, वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई

23§ कामन्दक नीतिसार, सं॰ गणपति शास्त्री, त्रिवेन्द्रम्, 1912

24§ काठक गृह्यसूत्र, सं॰ डा॰ कैलेण्ड, 1925

25§ किरातार्जुनीयम्, भारवि कृत, मल्लिनाथकृत "घण्टापथ" दिल्ली, मोतीलाल, 1961॰

26§ कूर्म पुराण, सं॰ नीलमणि मुखोपाध्याय, कलकत्ता, 1890 तथा भाग 1 और 2 संस्कृत संस्थान बरेली, 1970

27§ कौटिल्य अर्थशास्त्र, चौखम्बा प्रकाशन, 1962

28§ खादिर गृह्यसूत्र, सं॰ ए॰ महादेव शास्त्री एवं एल॰ श्री निवासाचार्य मैसूर, 1913

29§ गोरक्ष संहिता, सं॰, डा॰ चमनलाल गौतम, संस्कृति संस्थान ख्वाजा कुतुब §वेदनगर§, बरेली, वि॰सं॰ 1982

30§ गोभिल गृह्यसूत्र, सं॰ एफ॰ नावर, डारमेट, 1884

31§ गोपथ ब्राह्मण, कलकत्ता, 1872

32§ गौतमधर्म सूत्राणि, चौखम्बा संस्कृत सीरीज़आफिस, वाराणसी-1, प्रथम संस्करण, 1966 वि॰सं॰ 2023

33§ घेरण्ड संहिता, सं॰ श्रीश चन्द्र वसु, अड्यार मद्रास, सन् 1933

34§ चाणक्य नीति, विष्णुगुप्त कृत, बरेली, प्रेम पुस्तक भण्डार, 1971

35§ छान्दोग्योपनिषद्, आनन्दाश्रम मुद्रणालय द्वारा मुद्रित , 1913
तथा गीता प्रेस, गोरखपुर, वि॰सं॰ 1994

36§ ज्योतिष सर्व संग्रह:, पं॰ रामस्वरूप शर्मा, प्रकाशक - जवाहर बुक डिपो,
भारतीय प्रेस गुजरी बाजार, मेरठ, संशोधित संस्करण, 1970

37§ तैत्तिरीय उपनिषद्, वसन्त श्रीपाद सातवलेकर, स्वाध्याय मण्डल,
आनन्दाश्रम पारडी, 1956, प्रथम संस्करण

38§ तैत्तिरीय ब्राह्मण, सं॰ राजेन्द्र लाल मित्र, कलकत्ता, 1869-74

39§ तैत्तिरीय संहिता, सायण भाष्य सहित, पूना, 1898

40§ तैत्तिरीय-अरण्यक, हरिनारायण आप्टे, पूना, 1898

41§ दशकुमार चरित, दण्डीकृत चौखम्बा संस्कृत सीरीज़ आफिस, वाराणसी, 1948

42§ धर्मशास्त्र का इतिहास, डा॰ पाण्डुरङ्ग वामण काणे द्वारा कृत, प्रथम
भाग, हिन्दी समिति, उत्तर प्रदेश शासन लखनऊ, प्रथम संस्करण

43§ नानकचन्द्रोदय महाकाव्य, देवराजशर्मा कृत सं॰, पं॰ व्रजनाथ झा, प्रकाशक,
सम्पूर्णानन्द-संस्कृत-विश्वविद्यालय, वाराणसी, 1977

44§ नानकचन्द्रोदय महाकाव्य, लाल संग्रह, जगदीश्वर शिला प्रेस, बम्बई,
1956 तथा हस्तलिखित, विश्वेश्वरानन्द वैदिक शोध संस्थान, होशियारपुर

45§ नारद भक्तिसूत्र, गोविन्दशर्मा शास्त्री, निर्णयसागर प्रेस, बम्बई, वि॰सं॰1944

46§ नाट्यशास्त्र, भरत मुनिकृत, चौखम्बा संस्कृत सीरीज़ आफिस, वाराणसी, 1921

47§ पद्म पुराण, पं॰ श्रीराम शर्मा आचार्य - सं॰, संस्कृति संस्थान बरेली
§उ॰प्र॰§ तथा कलकत्ता, 1957

48§ प्रश्नोपनिषद्, गीता प्रेस, गोरखपुर, सं॰वि॰ 1994

49§ पातंजल योग दर्शन, श्री मदन लाल लक्ष्मी निवास चंड्क, अजमेर नगर,
द्वितीय संस्करण, 1961

50§ पारस्कर गृह्यसूत्र, सं॰ गोपाल शास्त्री, चौखम्बा संस्कृत सीरीज़,
वाराणसी, 1926

51§ पाराशर स्मृति, प्रकाशक, चौखम्बा संस्कृत सीरीज़ आफिस, वाराणसी,
प्रथम संस्करण 2025 वि॰

52§ पातंजल महाभाष्य, अभ्यंगर शास्त्री, पूना तथा सं॰, यॅफ॰ कीलहार्न,
बम्बई, 1892-1906

53§ पंचतन्त्र, श्री विष्णु शर्मा रचित, प्रकाशक - डा॰ चमन लाल गौतम, संस्कृति संस्थान ख्वाजा कुतुब §वेदनगर§ बरेली, ऊ॰प्र॰, सम्पादक - भारतीय योगी, तृतीय संस्करण 1978

54§ ब्रह्म पुराण, प्रभात शास्त्री, हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग, प्रथम संस्करण, 1976

55§ ब्रह्मवैवर्त पुराण, श्री बंकटेश्वर प्रेस, बम्बई, 1906 तथा कलकत्ता 1955

56§ बौधायन गृह्यसूत्र, सं॰ ओरियण्टल लाईब्रेरी पब्लिकेशन, मैसूर, 1920

57§ बौधायन धर्मसूत्र, गोविन्द स्वामीकृत, सं॰ ओरियण्टल लायब्रेरी, मैसूर, 1907

58§ बेणी संहार, भट्ट नारायणकृत, सं॰ जीवानन्द विद्यासागर, कलकत्ता, 1875

59§ भर्तृहरि शतक त्रयी, श्रीरामचन्द्र बुधेन्द्र विरचित सहृदयानन्द व्याख्या सहित, निर्णयसागर प्रेस, बम्बई, अष्टम संस्करण

60§ भगवती सूत्र, घासीलाल कृत, सं॰ मंगलदास, राजकोट शान्तिलाल, प्रथम संस्करण, 1962 द्वितीय संस्करण, 1963

61§ भक्ति मीमांसा, विश्वनाथ शुक्ल, श्रीमती वीणा शर्मा, विवेक पब्लिकेशन्स, अलीगढ़, प्रथम सं॰ 1980

62§ भक्तिदर्शन, रामानुजाचार्य विशिष्टाद्वैतिक, प्रकाशक - कृष्णा ब्रदर्स, कचहरी रोड, अजमेर

63§ भागवतपुराण, गीताप्रेस, गोरखपुर, 1960

64§ मनु स्मृति, चौखम्बा संस्कृत सीरीज़ आफिस, वाराणसी-1, तृतीय संस्करण, वि॰सं॰ 2027 तथा मेधातिथि कृत मनु भाष्य सहित, भाग II कलकत्ता 1932-39

65§ महाभारत §आदिपर्व§ शंकर नरहरि द्वारा मुद्रित एवं प्रकाशित, शाका 1850

66§ महाभारत, शान्तिपर्व - वसन्त श्रीपाद सातवलेकर स्वाध्याय-मण्डल, भारत मुद्राणालय, किल्ला-पारडी, गुजरात, 1980

67§ महाभारत, §द्वितीय भाग§ प्रकाशक शंकर नरहर जोशी, चित्रशाला प्रेस, पूना शहर, प्रथम संस्करण 1930 तथा प्रथम भाग - आदि, सभापर्व, शाका 1850

68§ महाभारत §तृतीय भाग§, शंकर नरहरि जोशी, चित्रशाला प्रेस, पूना शहर, प्रथम संस्करण, 1931 तथा चतुर्थ भाग प्रथम संस्करण 1931

69§ मत्स्य पुराण, आनन्दाश्रम प्रेस, मुद्रक श्री जगत नारायण लाल, हिन्दी साहित्य प्रेस, प्रयाग, प्रथम संस्करण, वि॰सं॰ 2003

70§ मार्कण्डेय पुराण, §द्वितीय खण्ड§ वेदमूर्ति तपोनिष्ठ, संस्कृति संस्थान, खवाजा, बरेली, प्रथम संस्करण 1967 तथा अनुवादक पार्जिटर बंगवासी एडीशन, कलकत्ता, 1904

71§ मानवगृह्यसूत्र, एफ नावर, सेण्टपीर्सबर्ग, 1897 तथा गायकबाड़ ओरियण्टल सीरीज़, बड़ौदा

72§ मनुस्मृति, श्रीमत्कुल्लूकभट्टकृतया मन्वर्थमुक्तावल्या, निर्णयसागर प्रेस, 1946

73§ मुहूर्त पारिजात, पं॰ मोहन लाल व्यास, ज्योतिष शास्त्री, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, प्रथम संस्करण, वि॰सं॰ 2027

74§ मानसागरी, आदित्य प्रकाशन, काल भैरवमार्ग, वाराणसी, प्रथमावृत्ति, 1981

75§ मुहूर्तचिन्तामणि, चौखम्बा विद्याभवन, बनारस, 1960

76§ यजुर्वेद संहिता §भाग - 2§ बम्बई, 1929

77§ यजुर्वेद भाष्यम, श्रीमद्दयानन्द सरस्वती स्वामी निर्मित, अजमेर नगर वैदिक यन्त्रालय, प्रथम भाग, वि॰सं॰ 2015

78§ यशस्तिलक - निर्णयसागर प्रेस, बम्बई, 1901 तथा 1903

79§ याज्ञवल्क्यस्मृति, चौखम्बा संस्कृत सीरीज़, वाराणसी-1, 1967

80§ रघुवंश, कालिदासकृत - मल्लिकानाथकृत संजीविनी समेतम्, निर्णयसागर प्रेस, बम्बई, शाका॰ 1815

81§ राजतरंगिणी, कल्हणकृत - अनु॰ आर॰एस॰ पंडित, इलाहाबाद 1935 तथा बम्बई 1892

82§ लिंग पुराण §प्रथम खण्ड§ डा॰ चमनलाल गौतम, संस्कृति संस्थान, बरेली, सम्पादक श्रीराम शर्मा आचार्य, द्वितीय संस्करण 1970

83§ वक्रोक्ति जीवितम्, कुन्तककृत - चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वाराणसी, तृतीय संस्करण, वि॰सं॰ 2037

84§ वाल्मीकि रामायण, सं॰ - पं॰ शिवराम शर्मा वासिष्ठ, चौखम्बा विद्या भवन, चौक, वाराणसी-1, 1957

85§ वायु पुराण, अनुवादक - श्रीराम प्रताप त्रिपाठी, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, प्रथम संस्करण, वि॰सं॰ 2007

86§ विवेक चूड़ामणि, हनुमान प्रसाद पोद्दार, गीता प्रेस गोरखपुर, ग्यारहवां संस्करण, बारहवां संस्करण वि॰सं॰ 2014, 2016

87§ वेदान्त दर्शन, घनश्यामदास जालान, गीता प्रेस, गोरखपुर, प्रथम संस्करण तथा द्वितीय संस्करण, वि॰सं॰ 2009 तथा 2012

88§ वैशेषिक दर्शन, प्रशस्तपाद भाष्यम्, चौखम्बा संस्कृत सीरीज़ आफिस, वाराणसी-1, प्रथम संस्करण, 1966

89§ वीरमित्रो संस्कार प्रकाश, मित्र मिश्र, चौखम्बा संस्कृत सीरीज़, वाराणसी

90§ विवाह पद्धति, प्रकाशक, पन्नालाल शर्मा, पं॰ देवी दयालु ज्यो॰ ऐण्ड सन्ज़, पंचाग दिवाकर कार्यालय, माई हीरां गेठ, जालन्धर, वि॰सं॰2031

91§ वृहदारण्यक उपनिषद्, गीता प्रेस गोरखपुर, वि॰सं॰ 2012

92§ वृहदारण्यक, पं॰ श्री हरिशचन्द्र त्रिवेदि द्वारा अजमेर वैदिक प्रेस, वि॰सं॰ 1968

93§ वासिष्ठ धर्मसूत्र, सं॰ भण्डारकर रिसर्च इंस्टीच्यूट, पूना, 1930

94§ वराह पुराण, बम्बई, 1902

95§ वशिष्ठ संहिता, दी धर्मशास्त्र, एम॰एन॰ दत्त, कलकत्ता, 1908, जिल्द-1

96§ व्यास संहिता, दी धर्मशास्त्र, एम॰एन॰ दत्त, कलकत्ता, 1908, जिन्द-2

97§ विक्रमोर्वशीयम्, चक्रधर शास्त्री कृत हिन्दी अनु॰ सं॰, परमेश्वरानन्द शास्त्री, लक्ष्मणदास प्यारेलाल, लाहौर 1926

98§ व्यास स्मृति, कलकत्ता, 1876

99§ शतपथ ब्राह्मण, आक्सफोर्ड, 1882-1900, तथा श्री राम स्वरूप शर्मा, प्राचीन वैज्ञानिक अध्ययन अनुसन्धान संस्थान, वेस्ट पटेल नगर, दिल्ली, 1967

100§ शिशुपालवध महाकाव्य, माघकृत, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, प्रथम संस्करण, वि॰सं॰ 2009

102§ शिव संहिता, खेमराज श्रीकृष्णदास - मलिक - श्री वेङ्कटेश्वर स्टीम प्रेस, बम्बई, वि॰सं॰ 1994, शाका॰ 1859

103§ श्वेताश्वतार उपनिषद्, डा॰ तुलसीराम शर्मा, प्रथम संस्करण, 1976

104§ षड्दर्शनम्, स्वामी जगदीश्वरानन्द सरस्वती, सरस्वती मुद्रण प्रतिष्ठान, 1979

105§ षोडश संस्कार विधि, भीमसेन, मेरठ, 1960

106§ श्रीमद्भागवतपुराण, गीताप्रेस गोरखपुर तथा पेरिस 1840

107§ श्रीमद्भागवद्गीता, गीता प्रेस, गोरखपुर, 2023, वि॰सं॰

108§ श्री भागवद्भक्ति रसायनम्, श्रीमधुसूदन सरस्वती कृत, अच्युत ग्रन्थमाला कार्यालय, काशी, प्रथम संस्करण, वि॰सं॰ 1984

109§ श्री भक्तिरसामृतसिन्धुबिन्दु, श्री विश्वनाथ चक्रवर्ति विरचित, श्री गिरिराज प्रसाद, श्री हरिनाम प्रेस, वृन्दावन, द्वितीय संस्करण, 2034 वि॰सं॰

110§ श्री रामचरितमानस, तुलसीदासकृत, मोतीलाल जालान, गीताप्रेस गोरखपुर, संस्करण 34-35 वि॰सं॰ 1999 से 2037, 2038

111§ सांख्य दर्शन, श्री स्वामी विज्ञानानन्द सरस्वती, अध्यक्ष, विरजानन्द वैदिक संस्थान गाज़ियाबाद, प्रथम संस्करण, वि॰सं॰ 2017

112§ सर्वदर्शन संग्रह, भण्डारकर ओरियण्टल रिसर्च इन्स्टीच्यूट, पूना, 1924

113§ सुभाषित रत्न भाण्डागारम्, नारायण राम आचार्य "काव्यतीर्थ", दिल्ली, 1978 तथा काशीनाथ शर्मा द्वारा निर्णयसागर प्रेस बम्बई, षष्ठ संस्करण, 1929

114§ सुरथचरितम् महाकाव्यम्, क्षेमधारि स्मृति प्रकाशनम्, मधुबनी दभङ्गा, 1967

115§ समराङ्गण सूत्रधार, डा॰ द्विजेन्द्रनाथ शुक्ल §द्वितीयभाग§, वास्तु-वाङ्मय प्रकाशन, शाला लखनऊ, जून, 1967

116§ स्कन्द पुराण, आनन्द आश्रम प्रेस, पूना, 1924

117§ हठयोग प्रदीपिका, लक्ष्मीवेङ्कटेश्वर, स्टीम प्रेस कल्याण, बम्बई, वि॰ सं॰ 1988 शाका 1853

118§ हरिवंश पुराण, क्षेमराज वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई, 1947

§ख§ हिन्दी-साहित्य-ग्रन्थ

119§ अध्ययन, डा॰ भगीरथ मिश्र, हिन्दी साहित्य भण्डार, लखनऊ, 1962

120§ कला और संस्कृति, डा॰ वासुदेव शरण अग्रवाल, द्वितीय संस्करण, 1958

121§ कादम्बरी एक सांस्कृतिक अध्ययन, डा॰ वासुदेव शरण अग्रवाल, चौखम्बा, विद्याभवन, वाराणसी

122§ कला और आधुनिक प्रवृत्तियाँ, रामचन्द्र शुक्ल, शाखा सूचना विभाग, उत्तर प्रदेश, प्रथम संस्करण, 1958

123§ पारिवारिक समाजशास्त्र, डा॰ कैलाशनाथ शर्मा, प्रथम संस्करण, 1956, द्वितीय 1959, तृतीय 1862

124§ प्राचीन भारत का इतिहास - डा॰ रमाशंकर त्रिपाठी, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 1968

125§ प्राचीन भारतीय साहित्य की सांस्कृति भूमिका - डा॰ रामजी उपाध्याय, लोकभारती, इलाहाबाद, 1966

126§ प्राचीन भारतीय कला एवं संस्कृति §प्रारम्भ से लेकर गुप्त युग पर्यन्त§ डा॰ राज किशोर सिंह, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा, तृतीय संस्करण, 1975

127§ प्राचीन भारतीय शासन पद्धति, ड॰ए॰स॰ अल्तेकर, भारतीय भण्डार, लीडर प्रेस, इलाहाबाद, 1959

128§ प्राचीन भारत में राज्य और न्यायपालिका - हरिहरनाथ त्रिपाठी, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, पटना, वाराणसी, 1965

129§ प्राचीन भारत के कलात्मक विनोद, डा॰ हज़ारीप्रसाद द्विवेदी, हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर कार्यालय, बम्बई, 1952

130§ भारतवर्ष का इतिहास, आचार्य रामदेव कृत तथा सत्यकेतु हरिद्वार, §गुरुकुल विश्वविद्यालय कांगड़ी§, द्वारा कृत, प्रथम संस्करण 1980 द्वितीय 1983॰

131§ भारत में समाज शास्त्र, प्रजाति और संस्कृति, गौरी शंकर भट्ट, साहित्य सदन, देहरादून

132§ भारत के पक्षी, राजेश्वरप्रसाद नारायण सिंह, ज्ञान मंडल, बनारस, वि॰सं॰ 2013

133§ भारत की राष्ट्रीय संस्कृति, आबिद हुसैन, रूपान्तरकार, महेन्द्र चतुर्वेदी, साहित्य सदन, चिरगांव, वि॰सं॰ 2015

134§ भारत की चित्रकला, रामकृष्णदास, भारती भण्डार, प्रयाग, 1957

135§ भारतीय संस्कृति और साधना, डा॰ गोपीनाथ कविराज, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना, 1963, भाग 2॰

136§ भारतीय संस्कृति, श्री शिवदत्त ज्ञानी, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 1944

137§ भारतीय संस्कृति एवं सभ्यता, पी॰के आचार्य, प्रथम संस्करण, वि॰सं॰2014

138§ भारतीय दर्शन के मूल तत्त्व, डा॰ रामनाथ शर्मा, भारतीय प्रकाशन, मन्दिर, लखनऊ, 1960

139§ भारतीय संस्कृति और उसका इतिहास, डा॰ सत्येकेतु विद्यालंकार, सरस्वती सदन, मसूरी, 1956

140§ भारतीय संस्कृति, डा॰ देवराज, सूचना विभाग, उत्तर प्रदेश, लखनऊ, 1960

141§ मध्यकालीन भारतीय संस्कृति, डा॰ गौरीशंकर ओझा, हिन्दुस्तानी एकेडेमी, संयुक्त प्रदेश, प्रयाग, 1928 तथा मध्यकालीन भारतीय संस्कृति, डा॰ आशीर्वादी लाल श्रीवास्तव

142§ मध्यकालीन हिन्दी काव्य में भारतीय संस्कृति, डा॰ मदन गोपाल गुप्त

143§ मध्यकालीन भारतीय संस्कृति, युसु हुसैन, भारत प्रकाशन मन्दिर, अलीगढ़

144§ मध्यकालीन हिन्दी संत, विचार और साधना, डा॰ केशनीप्रसाद चौरसिया

145§ तुगलम कालीन भारत, डा॰ सैय्यद अतहर अब्बास रिज़वी, भाग-1

146§ समाजशास्त्र, राजेश्वर प्रसाद अर्गल, लक्ष्मीनारायण अग्रवाल हास्पिटल, रोड, आगरा, 1956

147§ समाज शास्त्र, सत्यकेतु विद्यालंकार, सरस्वती सदन, मसूरी, प्रथम संस्करण 1961

148§ सिद्धान्त और अध्ययन, डा॰ गुलाबराय, प्रतिभा प्रकाशन, दिल्ली, द्वितीय संस्करण, 1955

149§ संस्कृति के चार अध्याय, रामधारी सिंह दिनकर, उदयचल प्रकाशन, राष्ट्रकवि दिनकर पथ, राजेन्द्र नगर, पटना, छठा संस्करण, 1977 तथा प्रथ द्वितीय संस्करण 1956

150§ संस्कृति का दार्शनिक विवेचन, डा॰ देवराज, सृजनात्मक सूचना, मानववाद की भूमिका, लखनऊ विभाग §उ॰प्र॰§ 1957

151§ संस्कृति का दार्शनिक विवेचन, डा॰ देवराज, हिन्दी समिति, लखनऊ, 1960

152§ हमारे पशु-पक्षी, श्रीचन्द्र जैन, आत्माराम एण्ड संस, कश्मीरी गेट, दिल्ली, 1971

153§ हिन्दु परिवार मीमांसा, श्री हरिदत्त वेदालंकार, सरस्वती सदन, मसूरी, प्रथम संस्करण, 1954 द्वितीय 1963

154§ हिन्दी साहित्य का वृहत् इतिहास, डा॰ राजबली पाण्डेय §भाग-1§ हिन्दी साहित्य पीठिका, काशी, वि॰सं॰ 2014

155§ हिन्दु संस्कार, डा॰ राजबली पाण्डेय, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, 1966

156§ हर्षचरित एक सांस्कृतिक अध्ययन, डा॰ वासुदेव शरण अग्रवाल, चौखम्बा प्रकाशन, 1970

§ग§ आंगल-साहित्य

157§ अर्ली चौहान, डायनेस्टीज़, दशरथ शर्मा, यशवन्द एण्ड कम्पनी, दिल्ली, जालन्धर, लखनऊ, 1959

158§ इवोल्यूशन आफ तंत्राज, बागची, कल्चरल हेरिटेज़ आफ इंडिया, वाल्यूम-4

159§ दी क्वायन्स आफ इण्डिया, ब्राउन

160§ दी सर्किल आफ लाईफ, केनेथ्वाकर

161§ दी हिन्दु व्यू आफ लाइफ, लन्दन, एलेन-उनविन, 1927 तथा इण्डियन फिलॉसफी, लन्दन, एलेन-उनविन, भाग-2, 1927

162§ दी स्प्रिट आफ इण्डिया कल्चर, डा॰ बी॰एल॰ अत्रेय

163§ मैन एण्ड हिज़ वर्क्स, हर्सकोविटस, एम॰जे॰

164§ राईज़ एण्ड फाल आफ दी मुगल इम्पायर, डा॰ रामप्रसाद त्रिपाठी

165§ लेक्चर्स आन न्युमिस्मेटिक्स, भण्डारकर युनिवर्सिटी आफ, कलकत्ता, 1921

166§ वैदिक इंडेक्स आफ नेन्स, मैकडोनल, ए॰ए॰ एवं कीथ एण्ड सब्जक्टस, वाल्यूम 1,2, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, पटना, वाराणसी, 1967

167§ स्टडीज़ इन कौटिल्य, एम॰वी॰, कृष्णाराय, कौटिल्य मण्डली पब्लीकेशन्ज़, मैसूर

§घ§ पत्र-पत्रिकाएं

168§ कल्याण योगांक, गीता प्रेस, गोरखपुर, वि॰सं॰ 1992

169§ कल्याण, हिन्दु संस्कृति अंक, जनवरी, 1950

170§ वेदोद्धारिणी, डा॰ आनन्दसुमन, तपोवन, देहरादून §उ॰प्र॰§, जुलाई, 1984

171§ विश्व-संस्कृतम्, विश्वेश्वरानन्द वैदिक शोध संस्थान, साधु आश्रम, होशियारपुर, दिसम्बर, 1981 वि.सं. 2038

172§ ओरियण्टल कान्फरेन्स, बनारस

173§ जर्नल ऑफ दी बिहार एण्ड उड़ीसा रिसर्च सोसायटी

174§ इलाहाबाद यूनिवर्सिटी स्टडीज़, इलाहाबाद

175§ इन्डियन कल्चर, कलकत्ता

176§ इन्डियन आर्ट एण्ड लेटर्स

177§ साहित्य सम्मेलन पत्रिका, प्रयाग

178§ जर्नन ऑफ दी बिहार एण्ड उड़ीसा रिसर्च सोसायटी, पटना

179§ जर्नल ऑफ पंजाब हिस्टोरिकल सोसायटी

§इ§ कोष

180§ संस्कृत अंग्रेज़ी कोश, आप्टे, वी.एस., पूना, 1967

181§ संस्कृत हिन्दी कोश, आप्टे, वामन शिवराम, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, पटना, वाराणसी

= = = = = =